प्रेमचन्द-साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन

[इलाहाबाद यूनिवर्सिटी की डी० फ़िल्० उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध]

लेखिका

निर्मला शर्मा एम. ए.

निर्देशक—डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय

एम० ए०, डी० फ़िल्०, डी० लिट्०

यूनिवर्सिटी प्रोफेसर एवं अध्यक्ष

हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषा विभाग,

इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, इलाहाबाद

जुलाई सन् १९७०

इलाहाबाद

भूमिका

कुछ वर्ष पूर्व मैंने प्रेमचन्द के 'कुछ विचार' संग्रह में प्रगतिशील लेखक संघ के लखनऊ अधिवेशन में सभापति के आसन से दिए गए प्रेमचन्द के भाषण का वह अंश पढ़ा जहां पर उन्होंने हिन्दी साहित्यकारों के सीमित ज्ञान की चर्चा करते हुए कहा था - "मगर आज तो हिन्दी में साहित्यकार के लिए प्रवृत्ति मात्र अलम समझी जाती है, और किसी प्रकार की तैयारी की उसके लिए आवश्यकता नहीं। वह राजनीति, समाजशास्त्र या मनोविज्ञान से सर्वथा अपरिचित हो, फिर भी वह साहित्यकार है।" मेरे मन में जिज्ञासा हुई और मैंने श्री चण्डी प्रसाद जोशी जी का शोध-प्रबन्ध 'हिन्दी उपन्यास: समाजशास्त्रीय विवेचन' देखा, उसमें प्रेमचन्द से सम्बन्धित अंश पढ़ा। मेरे मन में तर्क-वितर्क हुए और मैंने 'प्रेमचन्द-साहित्य का राजनैतिक अध्ययन' अथवा 'प्रेमचन्द-साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन' विषय पर शोध करने की धारणा बनाई। समाजशास्त्र विषय पर मेरी रुचि थी अतः गुरुओं की सलाह से मैंने प्रस्तुत विषय चुना। वैसे प्रेमचन्द-साहित्य पर बहुत अधिक मात्रा में अध्ययन किया जा चुका है या तो स्वतंत्र रूप से अथवा हिन्दी उपन्यासों के अध्ययन के साथ। प्रस्तुत विषय को स्वीकार करने के पूर्व जोशी जी के शोध-प्रबन्ध को पुनः देखना अनिवार्य हो गया। पुनः अवलोकन के बाद ऐसा लगा कि जोशी जी का अध्ययन समाजशास्त्रीय अध्ययन के एक पक्ष युग बोध तक सीमित है और मोटे रूप में वह मात्र सांस्कृतिक अध्ययन है समाजशास्त्रीय नहीं।

मैंने प्रेमचन्द-साहित्य से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थों के पृष्ठ पलटने शुरू किए। इसी बीच अमृतराय द्वारा सम्पादित प्रेमचन्द जी की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित अथवा अप्रकाशित सामग्री पर मेरी दृष्टि गई। विविध प्रसंग भाग ३ में मैंने 'साहित्य-दर्शन' शीर्षक को देखकर उसे पढ़ना प्रारम्भ किया। इस ग्रन्थ के पृष्ठ पचपन में मैंने हिन्दू विश्वविद्यालय के बिहारी एसोसिएशन के वार्षिकोत्सव पर पढ़े गए प्रेमचन्द के भाषण के उस अंश को देखा जहां पर उन्होंने कहा था - "समाज का वर्तमान संगठन दूषित है। दुख, दरिद्रता, अन्याय, ईर्ष्या, द्वेष आदि मनोविकार, जिनके कारण संसार नरक के समान हो रहा है, इनका कारण दूषित समाज संगठन है। सोशिलिज्म के साथ साहित्य भी इसी प्रश्न को हल करने में लगा हुआ है।" इन शब्दों ने मेरे हृदय को स्पर्श किया। समाज के सम्बन्ध

में जो कुछ प्रेमचन्द ने कहा है वह मैंने देखा, समझा और अनुभव किया था। एम० ए० में विशिष्ट विषय के रूप में प्रेमचन्द का अध्ययन भी किया था। इधर प्रेमचन्द से सम्बन्धित अनेक पुस्तकों को देखने के बाद यह भी पता लग चुका था कि इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य नहीं हुआ जिसके अभाव में प्रेमचन्द ऐसे समाजदर्शी सामाजिक साहित्यकार के साहित्य का मूल्यांकन अधूरा है। अतः मैंने प्रस्तुत विषय पर कार्य करने का निश्चय किया और औपचारिक रूप से प्रवेश लेने के पूर्व ही इस पर कार्य प्रारम्भ कर दिया जो दो वर्षों के अथक परिश्रम के बाद समाप्त हुआ है।

प्रेमचन्द जी की यह मान्यता थी कि "हमें अपने साहित्य का मानदण्ड ऊंचा करना होगा जिसमें वह समाज की अधिक मूल्यवान सेवा कर सके, जिसमें समाज में उसे वह पद मिले जिसका वह अधिकारी है।" प्रेमचन्द की यह साहित्यिक मान्यता उनके साहित्य में साकार हो उठी है। प्रेमचन्द का समस्त साहित्य इस बात का साक्षी है कि वे अपने सम्पूर्ण साहित्य में सामाजिकता को नहीं भूले। समाज में क्या अच्छा या बुरा है, समाज किन समस्याओं, विकृतियों, विसंगतियों, त्रुटियों, विषमताओं और कमियों से युक्त है और उनसे कैसे छुटकारा मिल सकता है, प्रेमचन्द के चिन्तन का मूल विषय रहा है। वे अपने युगीन समाज की समस्त गतिविधियों - राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, धार्मिक तथा सामाजिक से भली भांति परिचित थे और इस बात के लिए प्रयत्नशील थे कि इनको कौन सी दिशा मिलनी चाहिए जिससे समाज का अधिक-से-अधिक उपकार हो सके। समाज-शास्त्री भी समाज के लिए वही करता है जो प्रेमचन्द ने समाज के संदर्भ में अपने साहित्य के माध्यम से किया है। यही वह आधार है जिसके बल पर 'प्रेमचन्द-साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन' प्रस्तुत करने का साहस किया गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध (उपसंहार सहित) सात अध्यायों में विभक्त किया गया है। शोध-प्रबन्ध का प्रथम अध्याय साहित्य-समाज और समाजशास्त्र के सम्बन्धों की व्याख्या करता है। इसमें सर्वप्रथम व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों पर विचार किया गया है। इसके बाद क्रमशः समाज और समाजशास्त्र, साहित्य-समाज और जीवन तथा साहित्य और समाजशास्त्र के सम्बन्धों पर दृष्टि डाली गई है। इस

अध्ययन का विषय है कि व्यक्ति और समाज की धुरी में साहित्य और समाजशास्त्र स्थित हैं और साहित्य एवं समाजशास्त्र सामाजिक संदर्भों में अपने उद्देश्यों और कार्यों में समरूप और समदृष्टा हैं।

शोध-प्रबन्ध का दूसरा अध्याय प्रेमचन्द साहित्य की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए उनके सामाजिक दर्शन की विवेचना के साथ प्रेमचन्द-साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन के आधार को प्रशस्त करता है। इसमें प्रेमचन्द-साहित्य को उपन्यास-साहित्य, कहानी-साहित्य और अन्य साहित्य के रूप में देखा गया है। विशेष रूप से उनके साहित्य में तिथि निर्धारण की समस्या को ध्यान में रखते हुए उनके साहित्य की सामाजिकता को प्रकाश में लाने का प्रयास किया गया है। इसके साथ ही प्रेमचन्द के सामाजिक दर्शन, सामाजिक मानदण्डों के लिए उनके प्रयत्नों तथा प्रेमचन्द और उनके साहित्य से समाजशास्त्र के सम्बन्ध पर विचार किया गया है जिसके आधार पर अगले अध्यायों में उनके साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन का दावा किया गया है।

तीसरे अध्याय में प्रेमचन्द-साहित्य में वर्णित ग्राम और शहर जीवन का समाजशास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस अध्ययन में सामान्य समाजशास्त्र के साथ ग्रामीण समाजशास्त्र, शहरी समाजशास्त्र और औद्योगिक समाजशास्त्र से विशेष सहायता ली गई है। प्रारम्भ में प्रेमचन्द-साहित्य में गांव और शहर-जीवन के अस्तित्व निर्धारण के साथ समाजशास्त्रीय अध्ययन विधि पर विचार किया गया है। इसके पश्चात् प्रथम प्रकरण में ग्रामीण जीवन तथा ग्रामीण समाजशास्त्र, प्रेमचन्द का ग्राम-प्रेम, गांव और उनका भौगोलिक पर्यावरण भूमि-व्यवस्था और भूमि पर आधारित वर्ग तथा ग्रामीण समुदाय आदि ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित पक्षों का अध्ययन किया गया है। ग्रामीण समुदाय के अन्तर्गत ग्रामीण जीवन में सामूहिकता, संयुक्त परिवार, प्राचीनता के प्रति आस्था, धार्मिक आस्था, ग्रामीण प्रशासन-पंचायत-व्यवस्था आदि के साथ आधुनिक जीवन में ग्रामीण समुदाय की परिवर्तनशील स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। द्वितीय प्रकरण में नगरीकरण, नगर-जीवन तथा शहरी समाजशास्त्र पर विचार करते हुए प्रेमचन्द-साहित्य में नगरीकरण और औद्योगीकरण की स्थिति, परिस्थितिविज्ञान और प्रेमचन्द के नगर

का विवेचन किया गया है। इस प्रकरण में शहरी समुदाय के अन्तर्गत शहर समुदाय का नवीनता के प्रति आग्रह, टूटती हुई कुटुम्ब-व्यवस्था, नगर-जीवन में वैयक्तिकता आदि के साथ नगर-संस्कृति तथा स्थानीय प्रशासन आदि का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, जो समाजशास्त्र के अध्ययन विषय हैं।

चौथे अध्याय में प्रेमचन्द-साहित्य में युग का सामाजिक बोध ऐसे महत्वपूर्ण पहलू पर प्रकाश डाला गया है। अध्याय के प्रारम्भ में यह देखा गया है कि इस अध्ययन के अन्तर्गत कौन-कौन से पक्ष आ सकते हैं और उनके अध्ययन का समाजशास्त्रीय आधार क्या है? इसके बाद तत्कालीन राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, धार्मिक, सामाजिक जीवन पर प्रकाश डालते हुए प्रेमचन्द-साहित्य में उसकी स्थिति और प्रभाव को खोजने का प्रयत्न किया गया है। राजनैतिक जीवन के अन्तर्गत परिवेश, ब्रिटिश-शासन की नीति और प्रेमचन्द-साहित्य में उसके स्वरूप, राजनैतिक धरातल पर सामाजिक रचनात्मक कार्य एवं विभिन्न राष्ट्रीय आंदोलनों पर प्रकाश डाला गया है। आर्थिक जीवन के अन्तर्गत तत्कालीन समाज का आर्थिक ढांचा, विभिन्न प्रकार के आर्थिक वर्ग एवं आर्थिक आचरण का अध्ययन प्रेमचन्द-साहित्य के संदर्भ में किया गया है। इसी प्रकार सांस्कृतिक, शैक्षिक एवं धार्मिक-सामाजिक पहलुओं का अध्ययन उनके साहित्य के संदर्भ में तत्कालीन परिस्थितियों, मान्यताओं एवं दशाओं के आधार पर किया गया है।

पांचवां अध्याय सामाजिक विकृतियां और उनके सुधार से सम्बन्धित है। इस अध्याय में सर्वप्रथम इस बात का विचार किया गया है कि समाजशास्त्र सामाजिक विकृतियों और उनसे सम्बद्ध समस्याओं का किस प्रकार अध्ययन करता है और किन तरीकों का प्रयोग करता है। इसके बाद उन सामाजिक विकृतियों और समस्याओं का जिनका चित्रण प्रेमचन्द-साहित्य में हुआ है, समाजशास्त्रीय अध्ययन किया गया है। इनमें अछूत और अछूतपन, सम्प्रदाय और साम्प्रदायिकता, धार्मिक पाखण्ड और अंधविश्वास, आर्थिकविसंगतियां, नारी की दयनीय स्थिति तथा हिन्दू समाज के अनेक तरह के वैवाहिक प्रश्न आदि हैं। इनके अध्ययन के साथ प्रेमचन्द द्वारा इनके सम्बन्ध में किए गए सुधार सम्बन्धी प्रभावों का भी उल्लेख किया गया है।

शोध-प्रबन्ध के छठे अध्याय में प्रेमचन्द-साहित्य में अवशिष्ट समाजशास्त्रीय

अध्ययन के लिए उपयोगी अन्य विभिन्न पहलुओं पर विचार किया गया है। इन पक्षों में सामाजिक वर्ग और जाति, परिवार और पारिवारिक विघटन, अपराध और अपराधी तथा भीड़ और प्रक्रिया आदि हैं। इन सबके अध्ययन में समाजशास्त्रीय आधार के साथ युग विशिष और परिस्थिति का ध्यान रखा गया है। उपसंहार में समाजशास्त्रीय अध्ययन से सम्बन्धित अपना निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार से इस अध्ययन में यथाशक्ति इस बात की पुष्टि का प्रयास किया गया है कि प्रेमचन्द एक कुशल समाजशास्त्री की भांति अपने सम्पूर्ण साहित्यिक जीवन में समाज के प्रति जागरूक रहे, वे अपने सामाजिक दायित्व को समझते ही नहीं रहे बल्कि उस दायित्व को निभाते भी रहे। यही कारण है कि उनके साहित्य में समाज के विभिन्न पहलुओं से सम्बन्धित इतने तत्व आ गए हैं जिनकी विशद समाजशास्त्रीय व्याख्या सम्भव है। साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन से सम्बन्धित समाजशास्त्र के सम्पूर्ण रूपों और समाजशास्त्र के अन्तर्गत आज तक प्रचलित विभिन्न स्वरूपों और शाखाओं के आधार पर किया गया हिन्दी का यह पहला शोध-प्रबन्ध है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता जो मेरी दृष्टि में है वह यह कि साहित्य के सम्बन्ध में किसी मान्यता को देने के पहले उसके समाजशास्त्रीय आधार और समाजशास्त्र के सिद्धान्तों पर विचार किया गया है। आशा है यह शोध हिन्दी में साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन को आगे बढ़ाएगा।

अन्ततः मुझे उन व्यक्तियों की याद बरबस आ जाती है जिनकी शुभ कामनाओं, प्रेरणा और सहयोग से मेरा यह शोध-कार्य पूरा हुआ। पूज्य गुरु श्री माताबदल जायसवाल और मम्मी श्रीमती राज वाजपेयी की मैं हृदय से आभारी हूं जिनकी प्रेरणा और प्रोत्साहन ने मुझे परिश्रम में लगाए रखकर मेरे निराश मन को आशान्वित रखा। मैं अपने पूज्य माता पिता के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूं जिनकी सहानुभूति मुझे सदैव मिलती रही। देवरों तथा अपनी बहनों की उन भावनाओं की कद्र करती हूं जिनके अनुसार वे चाहते थे कि मेरा शोध शीघ्र पूरा हो जाय। अन्य व्यक्तियों में जिनसे मुझे शोध-काल में सहयोग मिला उनमें रामसिंह, श्री बी० आर० प्रजापति एवं मेरे जीवन साथी डा० सत्यव्रत शर्मा हैं। पति की अनवरत अनुकम्पा से ही मेरे लेखन-कार्य की समाप्ति अवधि के अन्दर हो सकी है।

उन्हीं के सहयोग से मेरा धैर्य भी बंधा रहा और कार्य में निराशा की झलक नहीं आने पाई । उनके प्रति किसी भी प्रकार का आभार व्यक्त करना उनके किए गए सहयोग को भुलाना है ।

अन्त में मैं अपने पूज्य गुरु और शोध-प्रबन्ध के निर्देशक डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय जी को अपना शोध-प्रबन्ध समर्पित करती हुई उन्हें प्रणाम करती हूं । उनकी अनुकम्पा और संबल के कारण ही मैं शोध-भार उठा सकी और इसे पूरा कर सकी । उनके प्रति आभार व्यक्त करके अथवा उन्हें धन्यवाद की कोटि में लाकर उनके प्रति आदर और उपकार के भाव को कम करना होगा । अत: मैं उन्हें पुन: प्रणाम करती हूं ।

निर्मला शर्मा

(निर्मला शर्मा)

विषय - सूची

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

भूमिका

प्रथम अध्याय : ---- 1-35

साहित्य-समाज और समाजशास्त्र -

व्यक्ति और समाज

समाजशास्त्र और समाज

साहित्य, समाज और जीवन

साहित्य और समाजशास्त्र

द्वितीय अध्याय : ---- 36-75

प्रेमचन्द-साहित्य और उसका समाजशास्त्रीय आधार -

उपन्यास-साहित्य

कहानी साहित्य

अन्य साहित्य

प्रेमचन्द का सामाजिक दर्शन

सामाजिक मानदण्डों के लिए संघर्ष

समाजशास्त्र और प्रेमचन्द

तृतीय अध्याय : ---- 76-175

प्रेमचन्द-साहित्य में गांव और शहर : समाजशास्त्रीय दृष्टि -

गांव और शहर : समाजशास्त्रीय अध्ययन-विधि

प्रथम प्रकरण - ग्रामीण जीवन

ग्रामीण जीवन तथा ग्रामीण समाजशास्त्र

प्रेमचन्द का ग्राम-प्रेम : ग्राम जीवन से सहानुभूति

प्रेमचन्द के गांव : भौगोलिक पर्यावरण

पृष्ठ संख्या

भूमि व्यवस्था : भूमि पर आधारित वर्ग
ग्रामीण समुदाय

द्वितीय प्रकरण - शहरी जीवन

नगरीकरण : नगर-जीवन और शहरी समाजशास्त्र
नगरीकरण और प्रेमचन्द
परिस्थितिशास्त्र और प्रेमचन्द के नगर
औद्योगीकरण और प्रेमचन्द
शहरी समुदाय

चतुर्थ अध्याय : 176-305

प्रेमचन्द-साहित्य : युग का सामाजिक बोध -

अध्ययन का समाजशास्त्रीय आधार
राजनैतिक जीवन
राजनैतिक परिवेश और प्रेमचन्द
ब्रिटिश प्रशासन : विभाजन, शोषण तथा उत्पीड़न की नीति
राष्ट्रीय जागृति और रचनात्मक कार्य
राष्ट्रीय आन्दोलन : विविध स्वरूप
आर्थिक जीवन
समाज का आर्थिक ढांचा
पूंजीपति-व्यवसायी : उद्योग और व्यवसाय
भूपति अथवा भूस्वामी
किसान और मजदूर
आर्थिक जागरण और प्रेमचन्द
शिक्षा और संस्कृति
तत्कालीन शिक्षा और शिक्षा-व्यवस्था
युग का सांस्कृतिक परिवेश

पृष्ठ संख्या

धार्मिक-सामाजिक जीवन

धार्मिक-सामाजिक जागरण और प्रेमचन्द

पंचम अध्याय : ---- 306-420

सामाजिक विकृतियां : सुधार के प्रयत्न -

सामाजिक विकृतियां और समाजशास्त्र

अछूत और अछूतपन

सम्प्रदाय और साम्प्रदायिकता

अंधविश्वास : एक सामाजिक विकृति

आर्थिक विसंगतियां : कुछ आर्थिक प्रश्न

नारी की अधोगति : रक्षा का यत्न

वैवाहिक प्रश्न : समाधान की खोज

षष्ठम अध्याय : ----- 421-472

समाजशास्त्रीय अध्ययन के अन्य पक्ष -

सामाजिक वर्ग और प्रजाति

परिवार और पारिवारिक विघटन

अपराध और अपराधी

भीड़ और प्रक्रिया

प्रेमचन्द की भाषा का समाजशास्त्रीय महत्व

सप्तम अध्याय : ------ 473-476

उपसंहार

प्रथम अध्याय -

साहित्य-समाज और समाजशास्त्र

-:o:-

साहित्य-समाज और समाजशास्त्र

साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन के लिए सर्वप्रथम यह आवश्यक हो जाता है कि हम साहित्य और समाजशास्त्र के उस सम्बन्ध को खोजें जिसके आधार पर साहित्य की समाजशास्त्रीय व्याख्या के औचित्य को सिद्ध कर सकें। साहित्य अति प्राचीन काल से मनुष्य की भावाभिव्यक्ति का साधन रहा है। जिसके माध्यम से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मानव जीवन, उसकी संस्कृति, उसके अन्तर्जगत के विचार और मानव-समाज का स्वरूप प्रतिबिंबित होता रहा है। भारतवर्ष का अतिप्राचीन कालीन धर्म मूलक साहित्य भी मानव-जीवन के इन विविध पक्षों की अभिव्यक्ति करता है। समूह की संरचना मनुष्य ने अपनी जंगली अवस्था में ही कर ली थी। जैसे ही वह अधिक मिज्ञ हुआ, उसकी आवश्यकताओं ने उसे समाज की संरचना के लिए प्रेरित किया और उसका समाज गठित हो गया, जो विस्तृत होकर आज मानव-समाज का स्वरूप ग्रहण कर चुका है। जनसंख्या की संकुलता मे समय-समय पर समाज के सामने अनेक प्रश्न और अनेक समस्याएं उत्पन्न कीं जिसके कारण समाज को नियमों, विधानों और सामाजिक मूल्यों की आवश्यकता हुई। इन्हीं आवश्यकताओं के फलस्वरूप सर्वप्रथम, धर्म, धार्मिक नियमों, धार्मिक मूल्यों के साथ धर्म-शास्त्र का अभ्युदय हुआ। धर्म के अलावा आगे चलकर राजनैतिक विधानों का सृजन हुआ और राजनीति-शास्त्र प्रकाश में आया। मनुष्य ने अपने अनुभवों और अपने समय की घटनाओं को जीवन्त रखने का प्रयास किया जिसके फलस्वरूप इतिहास-शास्त्र की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार जैसे-जैसे मनुष्य का ज्ञान बढ़ा, उसकी सामाजिक चेतना का घेरा बड़ा हुआ, उसके समाज की भौगोलिक परिधि विस्तृत होती गई, जीवन में आर्थिक आवश्यकता सम्बन्धी संघर्ष बढ़ा, मनुष्य समाज में जटिलताएं बढ़ती गईं, अनेक तरह की समस्याएं खड़ी हुई जिनके समाधान के लिए जिज्ञासु प्रवृत्ति के मानव ने प्रयत्न किए, उसने जीवन के विभिन्न पक्षों का अध्ययन और विवेचन करना चाहा और परिणाम हुआ कि भूगोल-शास्त्र, अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र, मनोविज्ञान-शास्त्र, मानव-शास्त्र और समाज-शास्त्र आदि शास्त्रों तथा उनके विभिन्न आन्तरिक स्वरूपों को जन्म मिला। इन समस्त शास्त्रों में समाजशास्त्र सबसे अर्वाचीन है। अधिक गहराई में न जाकर यदि हम संक्षेप में यह कहें कि समाजशास्त्र ही वह शास्त्र है जो समाज के सम्पूर्ण पक्षों का अध्येता है तो दूसरी ओर हमें कहना पड़ेगा कि साहित्य अपने नवीनतम स्वरूप में अन्य कलाओं और दशाओं की अपेक्षा समाज के अति निकट है। यही

सर्वाधिक शक्तिशाली पक्ष है जो हमें आज समाजशास्त्र और साहित्य के मूल्य और कार्य सम्बन्धी सम्बन्धों के प्रति जिज्ञासु बना देता है और हम साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन की आवश्यकता का अनुभव करते हैं। यहां पर यह कह देना भी आवश्यक है कि साहित्यकार व्यक्ति होता है और समाज से प्रेरित होता है। व्यक्ति समाज की इकाई होता है और समाज से प्रभावित होता है तथा समाजशास्त्र की विवेचना करता है। इस प्रकार से साहित्य, समाज और समाजशास्त्र के बीच अन्ततम सम्बन्ध की कड़ी व्यक्ति और व्यक्तित्व होता है। अत: साहित्य, समाज और समाजशास्त्र के संबन्धों में व्यक्ति का मूल्य सर्वाधिक है। हमें इन तीनों का सम्बन्ध विषय को अधिक स्पष्ट करने के लिए जानना आवश्यक है। इसका सीधा यही उपाय है कि हम व्यक्ति और समाज, समाज और समाजशास्त्र, साहित्य, समाज और समाजशास्त्र तथा साहित्य और समाजशास्त्र के सम्बन्धों को जानें।

व्यक्ति और समाज

व्यक्ति समाज की इकाई है। व्यक्तियों के सामूहिक स्वरूप से ही समाज निर्मित हुआ है। समाज की परिभाषा से ही समाज और व्यक्ति के सम्बन्धों, समाज के अस्तित्व में व्यक्ति के स्थान, समाज में व्यक्ति के कार्यों, संगठनों और रुचियों का बोध हो जाता है। प्रो० अर्नाल्ड समाज को एक विस्तृत समूह मानते हैं जिससे मनुष्य सम्बन्धित है। उनके अनुसार समाज का निर्माण जनसंख्या, संगठन, समय, स्थान और स्वार्थों से हुआ है। इनकी जनसंख्या में स्त्री-पुरुष दोनों शामिल हैं। उनका अभिमत है कि प्रारम्भ में सामाजिक जीवन श्रम-विभाजन के आधार पर एक सामान्य भू-भाग में संगठित हुआ और समय आने पर वह स्थाई हो गया।[१] मैकाइवर के अनुसार `समाज व्यवहारों और प्रणालियों का एक विधान है, शासन और सहयोग, समूहों और विभक्तियों,

- -

१-- "A society is the largest group to which any individual belongs. A society is made up of a population, organisation, time, place and interests. The population includes both sexes and all ages. Social life is organized, primarily as a division of labour, within a common territory and on a permanent basis in time."
प्रो० आर्नाल्ड डब्लू ग्रीन: "सोशियोलॉजी ऐन एनालैसिस ऑफ लाइफ इन माडर्न सोसायटी"

मानव व्यवहार के नियंत्रणों और स्वाधीनताओं का एक ढांचा है। इस सम्पूर्ण संगठन को हम समाज कहते हैं।'[१] पेज भी समाज की इस परिभाषा से सहमत हैं।[२] भारतीय विचारक गुरुमुख निहाल सिंह की विचारधारा में `समाज विभिन्न प्रकार के उद्योगों का अनुसरण करने तथा अनेक रूप के कार्यों में संलग्न, विभिन्न प्रकार की संस्थाओं और संगठनों को निर्मित करके अपने अन्तिम लक्ष्य, अपनी नैतिक और भौतिक दशा को विकसित करने तथा अपने सर्वोत्तम स्व को प्राप्त करने वाले मनुष्यों की एक बहुत बड़ी सदस्यता वाला संगठित समुदाय है।'[3] इस प्रकार से समाज की विभिन्न परिभाषाएं इस बात का संकेत करती हैं कि समाज व्यक्तियों द्वारा, व्यक्ति के समूहों द्वारा संगठित मनुष्यों का एक स्वरूप है। समाज में मनुष्य के अपने विधान, अपनी प्रणालियां, अपना अनुशासन है, जिनका निर्माण उसने अपने उद्योग-धंधों, कार्यों और लक्ष्यों की सफलता प्राप्त करने के लिए किया है। समाज का आधार पारस्परिक सम्बन्ध है जिनके आधार पर उसने विभिन्न प्रकार के संगठनों, संस्थानों और संस्थाओं का निर्माण किया है।

व्यक्ति और समाज आपस में इतने घुले-मिले हैं कि उनके अलगाव की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। डाक्टर टाड व्यक्तित्व को समाज की उत्पत्ति मानते हैं।[४] उनके अनुसार बच्चे का मस्तिष्क साधारण रूप में अनुभव है और वैज्ञानिक रूप में वह सामाजिक वंशानुक्रम है। बच्चा अज्ञान रूप में संसार में उत्पन्न होता है और यहीं पर सीख कर वह अपने ज्ञान को विस्तृत करता है। इसी कारण डा० टाड मनुष्य के मस्तिष्क

- -

१-- "It is a system of usages and procedures, of authority and of mutual aid, of groupings and divisions, of controls and liberties. That whole organization we call society."

आर० एम० मैकाइवर: `सोसाइटी', १९३७ (न्यूयार्क), पृ० ६

२-- आर० एम० मैकाइवर और चार्ल्स एच० पेज द्वारा सम्मिलित रूप से लिखी गई पुस्तक `सोसायटी: ऐन इन्ट्रोडक्टरी एनालिसिस' १९६२ (लन्दन) में मैकाइवर की परिभाषा के अन्तिम वाक्य के स्थान पर यह लिखा है -

"This ever changing complex system we call society. It is the web of social relationship. And it is always changing. जिसका अर्थ हुआ। इस सदैव परिवर्तनशील पेचीदे विधान को हम समाज कहते हैं। दे० पृ० ५

3- गुरुमुख निहाल सिंह: 'द चेंजिंग कनसेप्ट ऑफ सिटीजनशिप', १९५२ (कलकत्ता) पृ.१३

४-- डा० आर्थर जेम्स टाड: `थ्योरीज ऑव सोशल प्रोग्रेस', १९१८ (न्यूयार्क. बास्टन

को भी समाज की देन मानते हैं।[१] मैकाइवर और पैग जब समाज और व्यक्ति के सम्बन्ध को देखते हैं तो वे विभिन्न पदों - मनुष्य किस रूप में सामाजिक प्राणी है (इन ह्वाट सैन्स मैन इज़ ए सोशल एनीमल), व्यक्ति और समाज (इनडिवीजुएलिटी एण्ड सोसाइटी), संस्कृति और व्यक्तित्व (कल्चर ऐण्ड परसनालिटी), समाज में मनुष्यों के मध्य सहयोग और वैचारिक भेद (कोपरेशन ऐण्ड कनफ्लिक्ट) पर गौर करते हैं, और समाज और मनुष्य को आपस में सम्बद्ध पाते हैं।[२] मैकाइवर और पैग की तो यह धारणा है कि समाजशास्त्रीय अन्वेषण का प्रारम्भिक स्वरूप व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध से ही प्रारम्भ होता है और समाजशास्त्रीय अध्ययन के प्रतिफल का मूल्यांकन व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध की समस्या के प्रति योगदान से ही होता है।[३] उनकी

- -

१-- "What, in the case of the child's mind, is this bringer out or completer of the writing ? Speaking popularly it is experience; speaking scientifically it is social heredity. But what is social heredity ? It is the process by which the stock of incomplete instincts and tendencies secured to the individual by natural selection is completed, strengthened, shaped, and matured. In other words, it is the process by which the individual who arrives into the world with only a very incomplete kit of rude life-tools is enabled to fill up his kit with sharp tools which he knows how to use, and to go on his way equipped in the struggle for life. Briefly, it is education conceived in its widest sense. It is a social process, the social process. This is what we mean when we say that the human mind is a social product."

आर्थर जेम्स टाड: `थ्योरीज ऑव सोशल प्रोग्रेस' १९१८ (न्यूयार्क, बास्टन आदि) पृ० ३१

२-- आर०एम० मैकाइवर ऐण्ड चार्ल्स एच० पेज: `सोसायटी: एन इन्ट्रोडक्टरी एनालिसिस', १९६२ (लन्दन) पुस्तक का दे० अध्याय ३ `इनडिवीजुअल ऐण्ड सोसायटी' पृ० ४१-७०

३-- "This question is the starting point and the focus of all sociological investigation, and, to a great extent, the fruitfulness of any sociological study is measured by its contribution to the

व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध में सैद्धांतिक समझ है कि शाश्वत रूप से परिवर्तित सामाजिक जीवन के तरीके में व्यक्ति और व्यक्ति, व्यक्ति और समूह के बीच उन प्रक्रियाओं का सम्बन्ध है जो उनके बीच में कार्यान्वित होती हैं।[१] प्रसिद्ध विचारक दुर्खाइम की धारणा है कि समाज मनुष्य को चेतनता प्रदान करता है। उनके अनुसार समाज हमें स्वार्थ त्याग और बलिदान सिखाता है, हमें अनुशासित बनाता है, हमें चिन्तन एवं आत्मशक्ति प्रदान करता है, परिस्थितियों से संघर्ष करने योग्य बनाता है तथा हमें विचार और अनुभूति प्रदान करता है।[२] समाज व्यक्ति को सक्षम बनाता है। दुर्खीम के अनुसार 'हम जिस भाषा को बोलते हैं वह हमारी बनाई हुई नहीं है, हम जिन प्रसाधनों का प्रयोग करते हैं, वह हमारे खोजे हुए नहीं हैं, हम जिन अधिकारों का प्रयोग करते हैं, वह हमारे द्वारा निर्मित नहीं है, पीढ़ियों दर पीढ़ियों का प्रदत्त ज्ञान समूह भी अपने तई निर्मित नहीं हुआ है। यह समाज है जिसने हमें सभ्यता के इन विभिन्न लाभों

- -

problem of the relationship of individual and society."

आर० एम० मैकाइवर ऐण्ड चार्ल्स एच० पेग, 'सोसायटी: 'एन इन्ट्रोडक्टरी एनालेसिस', १९६२ (लन्दन) पृ० ४१

१-- "Our essential theoretical understanding of individual and society, then, is the understanding of a relationship - a relationship involving these processess that operate between man and man and between man and group in the constantly changing pattern of social life."

आर० एम० मैकाइवर ऐण्ड चार्ल्स एच० पेग, 'एन इन्ट्रोडक्टरी एनालेसिस', १९६२ (लन्दन) पृ० ४९

२-- इमिल दुर्खीम (Emile Durkheim) : 'सोसायटी ऐण्ड इनडिवीजुवल कान्ससनेस', दे० टाल्कार परसन्स, एडवर्ड शिल्स, कास्पर डी० नैगेल ऐण्ड जे० आर० पिट्स : (सं) 'द थ्योरीज ऑव सोसाइटी' द्वितीय भाग,(१९६१), न्यूयार्क पृ० ७२०-७२४

को प्रदान किया है।[१] मैकाइवर मनुष्य पर समाज के प्रभाव को इतना अधिक मानता है कि उसके अनुसार समाज में व्यक्तित्व का अपना स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है वह तो व्यक्तित्व का एक भेद (टाइप परसनालिटी) है। उसके अनुसार मनुष्य को यह नहीं भूल जाना चाहिए कि वह पहले स्कूल और परिवार का सदस्य है तब व्यक्ति है।[२] वर्गेस के अनुसार मनुष्य का सामाजीकरण हो जाता है और मनुष्य का यह सामाजीकरण उसके विचार, भाव और समूह के कार्यों में बहुमुखी होता है। वर्गेस के अनुसार `सामाजीकरण स्वतंत्र रूप से स्वस्थ सम्बन्धों में व्यक्ति विकास की उन्नति के लिए स्वत: व्यक्तित्व है।[३]

- -

१-- "We speak a language that we did not make. We use instruments that we did not invent; we invoke rights that we did not found; a treasury of knowledge is transmitted to each generation that it did not gather itself, etc. It is to society that we owe these varied benefits of civilization, and if we do not ordinarily see the source from which we get them, we at least know that they are not our own work."

इमिल दुर्खीम: `सोसायटी ऐण्ड इनडिवीजुएल कान्सेसनेस', दे० टाल्कार परसन्स, एडवर्ड शिल्स, कास्पर डी, नैगल ऐण्ड जे० आर० पिट्स (सं) `द थ्योरीज ऑव सोसाइटी', द्वितीय भाग १९६१ (न्यूयार्क), पृ० ७२२

२-- "The whole history of society bears but this truth that only at the last and in his full development does the social being find the social focus in himself. To the primitive man the group is all. He finds himself in the group, but he never finds himself. He is not a personality, but one of the bearers of a type-personality. He is summed up in the group, the clan or tribe. So it is with the boy, the analogue of primitive man. He need not be bidden to remember that he is first a member of a school or a family and then an individual."

आर०एम० मैकाइवर: `कम्युनिटी - ए सोशियॉलॉजिकल स्टडी', १९२०(लन्दन) पृ० ३३२-३३३

३-- "The socialization of the person consists, in his all round

सामान्य रूप से सीधे शब्दों में व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों को समझने के लिए गुरुमुख निहाल सिंह का स्पष्टीकरण अत्यंत सहायक है। उनके अनुसार "यह स्पष्ट है कि मनुष्य और समाज के बीच सम्बन्ध एक तरफा नहीं है बल्कि पारस्परिक है। दोनों एक दूसरे के प्रति क्रिया-प्रतिक्रिया करते हैं। निस्संदेह यह सत्य है कि मनुष्य समाज के बिना न तो रह सकता है और न ही विकास कर सकता है। मनुष्य पर समाज का प्रभाव अत्यंत गहन है। यह भी सत्य है कि व्यक्ति समाज को निर्मित करते हैं। बिना व्यक्ति के समाज सम्भव नहीं है। समाज की प्रगति व्यक्तियों के विचारों और उनके कार्यों पर निर्भर करती है, जो उसे निर्मित करते हैं।" १

व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध में उपर्युक्त विचारधाराओं और विवेचनों से व्यक्ति और समाज के घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध होने के प्रमाण खोजने की आवश्यकता नहीं रह जाती है। व्यक्ति समाज में जन्म लेता है, वहीं पलता है, वहां पर उसका जीवन चक्र गतिशील रहता है, समाज से ही वह सीखता है, समाज में ही उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता है और वह सामाजिक क्रियाओं, प्रक्रियाओं और वातावरण से प्रभावित रहता है।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

group. In short, socialisation is "personality" freely unfolding under conditions of healthy concern for the promotion of personal development."

ई० डब्ल्यू० बर्गेस : 'द फन्क्शन आव सोशिअलाइजेशन इन सोशल इवोल्यूशन' १९१६ (शिकागो) पृ० २३६-२३७

१-- "It is thus clear that the relationship between society and the individual is not one sided but mutual, both act and react on each other while it is undoubtedly true that man cannot live and develop except in society and that the influence of society on man is profound; it is not less a fact that it is the individuals who constitute society - that these can be no society are dependent, to no small extent, upon the thoughts and actions of individuals who compose it."

गुरुमुख निहालसिंह : 'द बेसिक कन्सेप्ट आव सिटीजनशिप' १९५८ (कलकत्ता) पृ० १६

प्राणी समाज को यथाशक्ति कुछ देता है और कुछ प्राप्त करता है। उसके मन, मस्तिष्क, हृदय, ज्ञान और प्रतिभा पर समाज का प्रभाव पड़ता है। समाज अथवा जीवन में जो कुछ घटित होता रहता है मनुष्य उससे भी बिना प्रभावित हुए नहीं रह सकता है। एक तरह से समाज मनुष्य के व्यवहारों, अन्त:क्रियाओं और मनुष्य द्वारा निर्मित सामूहिक प्रणालियों का विधान है। जब मनुष्य ने उसे निर्मित किया है तब सृजनकर्ता और सृजन की गई व्यवस्था में असम्बद्धता का प्रश्न ही नहीं उठता है। मनुष्य की सामूहिक प्रेरणाएं और प्रतिक्रियाएं सामाजिक व्यवहार हैं और समाज की प्रेरणाएं और प्रतिक्रियाएं व्यक्ति के व्यवहार और आचरण के सजीव स्रोत हैं। समाज का ज्ञान और समाज की विचारधारा व्यक्ति के ज्ञान और उसकी विचारधारा को बिना प्रभावित किए नहीं रह सकती है। इस प्रकार से व्यक्ति और समाज आपस में सम्बद्ध और प्रभावित ही नहीं है बल्कि दोनों एक दूसरे के आन्तरिक और बाह्य(अध्यात्म और चिंतन सम्बन्धी तथा भौतिक) रूपों के निर्माता भी हैं। व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध अनन्य है। कवि, कलाकार, योगी, नीतिज्ञ, इतिहासकार, अर्थवेत्ता, भूगोलशास्त्री एवं समाजशास्त्री कैसा भी व्यक्तित्व क्यों न हो, उस पर समाज की छाप अवश्य पड़ती है। समाज में ही रहकर वह अपनी शक्ति से प्रतिभा के कार्य करता है, जिससे वह समाज के मनुष्यों अर्थात समाज को प्रभावित करता है। साहित्यकार का समग्र व्यक्तित्व भी समाज की छाया होता है इसलिए उसके द्वारा रचित साहित्य समाज से अवश्य सम्बन्धित होगा। इस तथ्य को और अधिक स्पष्ट करने के लिए साहित्य, जीवन और समाज में सम्बन्धों का विवेचन इसी अध्याय में किया जायेगा।

समाजशास्त्र और समाज

समाज के अध्ययन के लिए विभिन्न प्रकार के सामाजिक विज्ञानों को जन्म मिला है। इनमें राजनीति शास्त्र, इतिहास, भूगोलशास्त्र आदि प्रमुख हैं। इनके अलावा नीतिशास्त्र, मानव-शास्त्र, मनोविज्ञान-शास्त्र, अर्थशास्त्र तथा समाजशास्त्र आदि भी मानव, मानव-समाज के अथवा मानव-समाज के किसी विशेष पक्ष का अध्ययन करते हैं। इनमें समाजशास्त्र का स्वरूप सबसे नया है। प्रो० मारवर समाजशास्त्र को पूर्णतया नया विज्ञान मानने के लिए सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि इसका नामकरण अभी हुआ है परन्तु वह एक पुराना विषय है।[१] समाज के अध्ययन के लिए समय-समय पर विभिन्न प्रकार

- -

१-- "It is only partially true that sociology is a new science. It

(शेष अगले पृष्ठ पर)

के तरीकों का उपयोग किया जाता रहा है और जब कोई नया ढंग प्रकाश में आया तो इसके बाद वह भी समाज के अध्ययन का एक अंग बन गया । ओडम और जोचर ने समाज के अध्ययन के जिस विभिन्न तरीकों (टाइपस आव अप्रोच) की ओर संकेत किया है और उनका परिचय दिया है उनमें दार्शनिक (फिलासफिकल), सामान्य विवेचना (जनरल एनालाजिकल), प्राणिशास्त्रीय (बायोलाजिकल), मनोवैज्ञानिक (साइकोलाजिकल), मनुष्य-शरीर-रचना-शास्त्रीय (आन्थ्रोपलाजिकल), राजनीति-न्याय सम्बन्धी (पोलिटिको-जूरिस्टिक), आर्थिक (इकोनामिक), समाजशास्त्रीय (सोशियॉलॉजिकल), ऐतिहासिक (हिस्टारिकल), तथा वैज्ञानिक मानव शास्त्रीय (साइंटिफिक ह्यूमन) आदि हैं ।[१] इन विभिन्न प्रकार के तरीकों द्वारा मानव समाज के विभिन्न पहलों का अध्ययन किया जाता है और समाज की समस्याओं का हल निकालने का प्रयास किया जाता है । इन समस्त विधियों में समाजशास्त्र ही वह शाखा है जिसने अन्य सामाजिक विज्ञानों के साथ बड़े ही प्रभावशाली ढंग से सह-सम्बन्ध स्थापित करके समाज के सामूहिक अध्ययन में अपनी विभिन्न विधाओं के साथ विशेष योग दिया है ।[२] मैकाइवर की धारणा है कि

- -

is true that the name has only recently been applied to a definite body of knowledge, and it is still more recently that there has been a group of scholars devoting themselves exclusively to this subject and going by the name of sociologists. But it is not true that human society, the subject of sociological study, has only recently attracted the attention of students. On the contrary, it is one of the oldest subjects of inquiry and speculation."

थामस निक्सन कारवर: 'सोशियॉलॉजी ऐण्ड सोशल प्रोग्रेस', १६०५ (न्यूयॉर्क,लंदन आदि)पृ० १

१-- डा० हावर्ड डब्ल्यू ओडम, ऐण्ड डा० कैथरीन जोचर: 'ऐन इन्ट्रोडक्शन टू सोशल रिसर्च', १६२६, (न्यूयार्क) द्रष्टव्य है ।

२-- "There is a decided tendency on the part of sociology to coordinate and correlate its work and research more effectively with the other social sciences and to draw upon them more and more for special data needed in the synthetic study of society. Examples of this are abundant. Thus sociology has tended to increase the variety

(शेष अगले पृष्ठ पर)

समाज के विभिन्न पदार्थों के अध्ययन के लिए विज्ञान के अनेक नये और पुराने वर्ग हैं। परन्तु उनमें से कोई भी समाज का सम्पूर्ण अध्ययन नहीं करता है। समाजशास्त्र ही वह विज्ञान है जो समाज की सम्पूर्ण व्याख्या करता है।[१]

अपने व्यापक अर्थों में समाजशास्त्र मानव क्रियाओं, उनके अन्त: सम्बन्धों, उसकी समस्याओं और परिणामों का अध्ययन है। प्रो० अर्नाल्ड के शब्दों में - "समाजशास्त्र सम्पूर्ण सामाजिक सम्बन्धों के संदर्भ में मनुष्य का संश्लेषण और सामान्य विवेचन करने वाला विज्ञान है।"[१] अगबर्न और निमकाफ के अनुसार `समाजशास्त्र सामाजिक जीवन का वैज्ञानिक अध्ययन है।"[२] मेरिल के अनुसार "समाजशास्त्र अपने विस्तृत स्वरूप में वर्ग के

- -

of its approach to the study of society."
डा० हावर्ड डब्ल्यू० ओडम ऐण्ड डा० कैथरीन जोचर: `ऐन इन्ट्रोडक्सन टू सोशल रिसर्च' १९२९ (न्यूयार्क), पृ० १९८

१-- "There is group of sciences which study particular aspects of social life. Of these politics is perhaps the most ancient, while economics is the youngest and most aggressive. Others are jurisprudence, penology, comparative ethics, and perhaps eugenics. None of these sciences study society as a whole. They are not concerned with its whole structure, with the character of evolution of the whole interdependent mass of its functions and relationships. They select for study the working of particular social motives, such as the economic, particular associations such as the state, particular institutions such as law. They thus leave room for, in fact they invite, a more comprehensive science. This is the science now named sociology."
आर०एम० मैकाइवर: `एलीमेण्ट ऑव सोशल साइन्स' १९२१ (न्यूयार्क), पृ० १२

२-- "Sociology is the synthesizing and generalizing science of man in all his social relationships."
प्रो० अर्नाल्ड डब्ल्यू० ग्रीन: `सोशियोलॉजी ऐन एनालेसिस ऑव लाइफ इन माडर्न सोसाइटी', १९६० (न्यूयार्क, लन्दन), पृ० १

३-- "Sociology is the scientific study of social life."
विलियम एफ० अगबर्न, मेयर एफ० निमकाफ: सोशियोलॉजी १९५८,(बास्टन) पृ० २५

अन्तर्सम्बन्धों सम्बन्धी कार्यों और उन अन्तर्सम्बन्धों की उत्पत्ति का अध्ययन है।"[1] मैकाइवर के अनुसार 'अकेले समाजशास्त्र अपने आप में सामाजिक सम्बन्धों तथा अपने आप में समाज का अध्ययन करता है।"[2] इस प्रकार से यह स्पष्ट है कि समाजशास्त्र समाज की विवेचना करता है। सच तो यह है कि सामाजिक व्यवहार को जानने के लिए एक विषय की आवश्यकता थी। समाजशास्त्र अन्य सामाजिक विज्ञानों की अपेक्षा इस क्षेत्र में अधिक उपयोगी है। यह वह शास्त्र है जो पहली दृष्टि में ही यह स्पष्ट कर देता है कि वह समाज का विवेचक है। समाजशास्त्र अन्य सामाजिक विषयों से संबन्धित होने पर भी सामाजिक व्यवहार, सामाजिक क्रियाओं-प्रक्रियाओं तथा सामाजिक संबन्धों की अधिक उचित व्याख्या करता है। समाजशास्त्र का मुख्य कार्य सामाजिक सम्बन्धों - राजनैतिक, नैतिक, धार्मिक, कानूनी, बौद्धिक तथा आर्थिक पहलुओं के सम्बन्धों - का अध्ययन करता है। वह सामाजिक परिवर्तन सम्बन्धी दशाओं और उसके द्वारा उत्पन्न समस्याओं का भी अध्ययन करता है।

समाजशास्त्र का क्षेत्र विस्तार अत्यन्त व्यापक है। वह समाज के सम्पूर्ण पक्षों का अध्ययन करता है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री डाक्टर ठेबू समाजशास्त्र के स्वभाव की विवेचना करते हुए कहते हैं कि इसका स्वभाव सर्वप्रथम सामाजिक समस्याओं को देखना, समझना और उनका निराकरण करना है। दूसरा समाजशास्त्र का स्वरूप सार्वजनिक है। वह समाज का सार्वजनिक हित करना चाहता है। तीसरा उसका स्वभाव क्रियात्मक है जिसके कारण वह अनुभवों के आधार पर निर्णय देता है। उसका चौथा स्वभाव संश्लेषण है। वह समाज का संश्लेषण करके उसे सुदृढ़ बनाना चाहता है। समाजशास्त्र की पांचवी विचारधारा स्वीकृति है। वह नये तत्वों को ग्रहण करता है और समाज

- -

१-- "In the broadest sence, therefore, sociology is the study of group interaction and the products of the interaction."

फ्रान्सिस ई० मेरिल: 'सोसायटी ऐण्ड कल्चर', १९५२ (अमेरिका) पृ० १०

२-- "Sociology alone studies social relationships themselves, society itself."
आर० एम० मैकाइवर : 'सोसायटी: ए टेक्स्ट बुक ऑव सोशियॉलॉजी', १९३७ (न्यूयार्क), पृ० ४

की विभिन्नता को मिटाना चाहता है ।[1] मैकाइवर समाजशास्त्र के अध्ययन विषय की ओर संकेत करता हुआ कहता है कि समाजशास्त्र का अध्ययन विषय (सबजेक्ट मैटर) सामाजिक सम्बन्ध (सोशल रिलेशनशिप) है । राजनीति, धर्म, अर्थ और संस्कृति सम्बन्धी उन पक्षों का भी अध्ययन करता है जो समाज से सम्बन्धित हैं अथवा समाज को अपनी दशाओं के आधार पर प्रभावित करते हैं ।[2] प्रोफेसर अर्नाल्ड के अनुसार समाजशास्त्र सिद्धान्त और पक्ष के बीच सम्बन्धों के मध्य सम्बन्ध का प्रयास करता है । समाजशास्त्र कार्य और कारण की व्याख्या करके कार्य चाहता है । समाजशास्त्र मानव व्यवहार का अध्ययन करता है, सामाजिक नीति के निर्धारण में सहायता करता है तथा व्यक्ति के जीवन की व्याख्या करके उसे व्यवहृत करने का प्रयास करता है ।[3] प्रो० अर्नाल्ड समाजशास्त्र को 'एक प्रकार के ज्ञान प्रदान करने का साधन मानते हैं जो समाज के मिश्रित स्वरूप को समझने के लिए आवश्यक होता है । यह ज्ञान सामाजिक नीति के आधार के रूप में कार्य करता है और राजनैतिक तथा आर्थिक निर्णयों को उलझने नहीं देता । वह अपने अध्येता को अपने सम्बन्ध में तथा दूसरों के सम्बन्ध में जानने का, जिस सम्बन्ध में आवश्यकता होती है, ज्ञान प्रदान करता है ।[4] समाजशास्त्र का यही ज्ञान पक्ष सामाजिक

- -

१-- डा० एडवर्ड केरी हैज: 'इन्ट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑव सोशियॉलॉजी', १६२५ (न्यूयार्क) का दे० प्रथम अध्याय 'द नेचर ऑव द स्टडी', पृ० ३-१०

२-- आर० एम० मैकाइवर: 'सोसायटी', ए टेक्सबुक ऑव सोशियॉलॉजी', १६३७ (न्यूयार्क) दे० प्रसंग 'ए वर्ड एबाउट सोशियॉलॉजी इटसैल्फ' पृ० vii - viii.

३-- प्रो० आर्नाल्ड डब्लू० ग्रीन: 'सोशियॉलॉजी ऑव लाइफ इन मार्डन सोसाइटी',१६६०, (न्यूयार्क) का दे० प्रथम अध्याय 'इन्ट्रोडक्शन: द फील्ड ऑव सोशियॉलॉजी' पृ० १-१०

४-- "Sociology is one means of sypplying the kind of knowledge which becomes more essential as society becomes more complex. This knowledge, which can serve as the basis for social policy, should not be confused with political and economic decision making. Sociology also provides the student with a great deal of that knowledge about self and others which successful living, in the broadest meaning of that term, requires."

प्रो० अर्नाल्ड डब्लू० ग्रीन: 'सोशियॉलॉजी दैन एनालिसिस ऑव लाइफ इन मार्डन सोसाइटी', १६६०, (न्यूयार्क, लन्दन) पृ० १०

व्यवहार और सामाजिक सम्बन्धों के साम्य की एक निश्चित ढांचे के अन्तर्गत रचना और यथार्थ के रूप में मानवीय मूल्यों और विचारधाराओं के संदर्भ में समझने का प्रयास करेगा। सामाजिक व्यवहार प्रतिनिधित्व भी होगा और स्वरूप भी। अपने प्रथम स्वरूप में वह कल्पनात्मक गुण होगा और दूसरे रूप से वह एक वास्तविक उद्देश्य श्रेणी का निर्माण करेगा।[१]

आज के जीवन में समाजशास्त्र का क्षेत्र विस्तार अत्यन्त व्यापक हो गया है। इस विस्तार की स्थिति में समाजशास्त्र को समझना और भी सरल हो गया है। टी०बी० बाटमभोर की समाजशास्त्र के सम्बन्ध में धारणा है कि बिना दूसरे विज्ञानों से संबन्धित किए हुए भी समाज के अध्ययन में समाजशास्त्र के स्थान को अब अधिक स्पष्ट बताया जा सकता है। समाजशास्त्र (मानव-शरीर-रचना-शास्त्र) के साथ मनुष्य के सम्पूर्ण सामाजिक जीवन, उन वर्गों के साथ जो समाज की रचना करते हैं अध्ययन करने वाला पहला विषय है। समाजशास्त्र में मूल स्वरूप और निर्देश देने वाले विचार समाज का ढांचा है। इस रूप में समाजशास्त्री की रुझान सामाजिक जीवन के विविध पक्षों परिवार, धर्म, नैतिक, मूल्यों, सामाजिक तत्वों के अलगाव और शहर जीवन आदि के अध्ययन में है जिनका अध्ययन पहले अव्यवस्थित रूप से किया गया है।[२] आज के जीवन में समाजशास्त्र का महत्व

- -

१-- "Sociology would endeavour to understand uniformities of social behaviour and social relationships within the frame work of peoples values and ideas both as projections and as realities. Social behaviour would be representation as well as thing, in the former sense it would have an ideational quality and in the latter form it would constitute an objective realional catagory."

योगेन्द्रसिंह: 'द स्कोप ऐण्ड मेथड ऑव सोशियोलॉजी इन इण्डिया' देo टीoकेoएनo उनायन, योगेन्द्रसिंह, नरेन्द्रसिंह, इन्द्रदेव (सम्पादक): 'सोशियोलॉजीफार इण्डिया', १९६७ (नई दिल्ली), पृ० ३६

२-- "The place of sociology in the study of society can now be more accurately defined, though without any intention of establishing a closed from tier between it and the other sciences. Sociology (with social anthropology) was the first science to be concerned with social life as a whole, with the groups which constitutes a society.

(शेष अगले पृष्ठ पर)

इतना बढ़ गया है कि वह समाज और राष्ट्र की समस्याओं को सुलझाने में महत्वपूर्ण योगदान कर रहा है। पश्चिमी देशों में विशेष रूप से अमेरिका और जर्मनी में समाजशास्त्र की बहुत अधिक प्रगति हुई। इन देशों में यह सिद्ध कर दिया गया है कि जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जिसका अध्ययन समाजशास्त्र के अन्तर्गत नहीं किया जा सकता।

आज समाजशास्त्र समाज और जीवन के जिन भागों, पक्षों और स्वरूपों का अध्ययन करता है उनमें व्यक्ति और वंशानुक्रम, समाज और वातावरण, सांस्कृतिक पर्यावरण, भौगोलिक परिवेश, ग्रामीण तथा शहरी जीवन, औद्योगिक जीवन, सामाजिक संगठन और विघटन, सामाजिक समूह, संस्थाएं एवं वर्ग, समाज की जाति एवं श्रेणियां, परिवार और उसका संगठन एवं विघटन, सामाजिक परिवर्तन तथा विकास, सामाजिक नियंत्रण तथा सामाजिक अन्त:क्रियाओं एवं प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है। इसके अलावा समाज की प्रत्येक तरह की समस्या अर्थ, धर्म, राजनीति, नैतिकता किसी से भी सम्बन्धित हो, जो समाज या सामाजिक जीवन को प्रभावित करती हैं उसका अध्ययन समाजशास्त्र के अन्तर्गत किया जाता है। आज के युग में समाजशास्त्र से जीवन के विभिन्न राजनैतिक, आर्थिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, यहां तक कि सैनिक जीवन भी अछूता नहीं है। यहां तक कि समाजशास्त्र अपराध, भीड़ तथा भाषा आदि प्रश्नों पर भी विचार करता है।

समाजशास्त्र के अन्तर्गत समाज और जीवन के अध्ययन के लिए समाजशास्त्र के जो विभिन्न स्वरूप हमारे सामने आए हैं उनमें सामान्य समाजशास्त्र (जनरल सोशियोलॉजी) के अलावा शहर और ग्रामीण जीवन के अध्ययन के लिए शहरी समाजशास्त्र और ग्रामीण समाजशास्त्र (अरबन सोशियोलॉजी एण्ड रूरल सोशियोलॉजी), राजनीतिक प्रक्रिया और राजनीति का जीवन और समाज में प्रभाव के अध्ययन के लिए राजनीतिक समाजशास्त्र

- -

The fundamental conception, or directing idea, in sociology is that of social structure. From this follows the sociologist's interest in aspects of social life which had previously been studied only in an unsystematic way, the family, religion and morals, social stratification, urban life."

टी०बी० बाटमोर: "सोशियोलॉजी, ए गाइड टू प्राब्लेम्स एण्ड लिटरेचर", १९६२ (लन्दन), पृ २०

(पौलिटिकल सौशियॉलॉजी), समाज में ऐतिहासिक तथ्यों के प्रभाव के अध्ययन के लिए ऐतिहासिक समाजशास्त्र (हिस्टारिकल सोशियॉलॉजी), धर्म, धार्मिक स्थिति और उनके सामाजिक प्रभाव के अध्ययन के लिए धार्मिक समाजशास्त्र (द सोशियॉलॉजी ऑव रिलीजन), शिक्षा, शैक्षिक स्तर और प्रभाव के अध्ययन के लिए शैक्षिक समाजशास्त्र (एजूकेशनल सोशियॉलॉजी), सांस्कृतिक स्थिति और समाज में उसके प्रभाव के अध्ययन के लिए सांस्कृतिक समाजशास्त्र (सौशियॉलॉजी ऑव कल्चर), आर्थिक स्थिति और आर्थिक संगठनों के अध्ययन के लिए आर्थिक संगठनों का समाजशास्त्र (सौशियॉलॉजी ऑव इकोनामिक आर्गनाइजेशन), औद्योगिक जीवन और उद्योगों के आस-पास की समस्याओं के अध्ययन के लिए औद्योगिक समाजशास्त्र (इन्डस्ट्रियल सोशियॉलॉजी) विभिन्न पेशों के स्वभाव और दशा के अध्ययन के लिए पेशों का समाजशास्त्र (सौशियॉलॉजी ऑव प्रोफेसन्स) सैनिक जीवन के अध्ययन के लिए सैनिक समाजशास्त्र (मिलिट्रीसौशियॉलॉजी) आदि के साथ ज्ञान के अध्ययन के लिए (सौशियो-लाजी आव नालेज) साहित्य के अध्ययन के लिए (सौशियॉलॉजी ऑव लिटरेचर), भाषा के अध्ययन के लिए (सौशियॉलॉजी ऑव लैंग्वेज), अपराधों के अध्ययन के लिए (क्रिमिनोलाजी) तथा मनुष्य की भौगोलिक दशाओं के अध्ययन के लिए परिस्थितिशास्त्र (ह्यूमन ईकोलाजी एण्ड ह्यूमन ज्योग्रेफी) आदि हैं। इस प्रकार से मानव और मानव-समाज का सम्पूर्ण जीवन और उससे सम्बन्धित विविध पक्ष समाजशास्त्र के अध्ययन-विषय हैं।

साहित्य, समाज और जीवन

व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों में हम देख चुके हैं कि व्यक्ति समाज से प्रभावित और प्रेरित होता है। उसके संस्कार, उसके मस्तिष्क और हृदय पक्ष दोनों पर शिक्षा, चिन्तन और भाव धारा पर समाज का प्रभाव पड़ता है। साहित्यकार की उपज भी समाज में होती है। अतः समाज से उसका प्रभावित होना भी अवश्यम्भावी है। साहित्यकार सामाजिक अनुभूति और समाज के विविध पक्षों से उत्प्रेरित होकर अपने ज्ञान-पक्ष और हृदय-पक्ष की सम्मिलित शक्ति से समाज को अपनी रचनाएं देता है। यह इसलिए कहा गया है क्योंकि समाज का प्रत्येक सदस्य साहित्यकार नहीं होता और न ही हो सकता है। साहित्यकार की अपनी विशिष्ट प्रतिभा होती है, जिस प्रतिभा को वह समाज को साहित्य के रूप में प्रदान करता है।

कला के दो प्रमुख प्रयोजन माने गए हैं। उनमें कला कला के अर्थ (आर्ट फार आर्ट्स सेक) कला जीवन के अर्थ (आर्ट फार लाइफ्स सेक), कला जीवन के पलायन के अर्थ

(आर्ट ऐज़ ऐन इस्केप फ्राम लाइफ), कला जीवन में प्रवेश के लिए (आर्ट ऐज़ ऐन इस्केप इन्टू लाइफ), कला सेवा के अर्थ (आर्ट फार सरविस`स सेक), कला आत्मानुभूति के अर्थ, (आर्ट फार सैल्फ रियलाइजेशन) आदि हैं।[१] इनमें कला कला के लिए, कला जीवन में पलायन के लिए, कला विनोद अथवा आनन्द के लिए के तर्क अब पुराने पड़ गए हैं। कला का सम्बन्ध अब सीधे जीवन से हो गया है। बाबू गुलाबराय के शब्दों में "कला का उदय जीवन से है, उसका उद्देश्य जीवन की व्याख्या ही नहीं वरन् उसे दिशा भी देना है। वह जीवन में जीवन डालती है। वह स्वयं साधन न बनकर एक वृहत्त उद्देश्य की साधिका होकर अपने को सार्थक बनाती है। वह जीवन को जीवन के योग्य बनाकर उसे ऊंचा उठाती है। वह जीवन में नए आदर्शों की स्थापना कर उनका प्रचार करती है और हमारे जीवन की समस्याओं पर नया प्रकाश डालती है।"[२] महादेवी वर्मा के शब्दों में "कला और सौन्दर्य, जीवन के परिष्करण और उससे उत्पन्न सामंजस्य के पर्याय हैं।"[३] दूसरे स्थान पर उन्होंने लिखा है "कला और साहित्य में जीवन के रहस्य, सजीवता, सौंदर्य, उपयोग और सृजन शक्ति का एकीकरण रहता है, अत: उसका सृष्टा साम्य का अन्वेषक है।"[४] साहित्य कला का सर्वोत्तम स्वरूप है। कला जीवन के निकट है तो उसका सर्वोत्तम स्वरूप साहित्य भी जीवन के निकट है। जीवन और समाज में विभेद नहीं किया जा सकता। अत: साहित्य समाज से सम्बद्ध है।

साहित्य मानव जीवन का व्याख्याता है। मानव जीवन को आनन्द और मंगलमय बनाने के उद्देश्य से उसकी रचना की जाती है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में "साहित्य मानव-जीवन से सीधा उत्पन्न होकर सीधे मानव जीवन को प्रभावित करता है। साहित्य पढ़ने से हम जीवन के साथ ताजा और घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करते हैं। साहित्य में उन सारी बातों का जीवन्त विवरण होता है जिसे मनुष्य ने देखा है, अनुभव किया है, सोचा है और समझा है। जीवन के जो पहलू हमें नजदीक से और स्थायी रूप से प्रभावित करते हैं उनके विषय में मनुष्य के अनुभवों के समझने का

- -

१-- डा० गुलाबराय: `सिद्धान्त और अध्ययन', पांचवां संस्करण (दिल्ली), पृ० ७६

२-- डा० गुलाबराय: `सिद्धान्त और अध्ययन', पांचवां संस्करण (दिल्ली), पृ० ८०

३-- महादेवी वर्मा: `साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध', १९६२, (इलाहाबाद), पृ० १४२

४-- महादेवी वर्मा: `साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध', १९६२, (इलाहाबाद), पृ० १४३

एकमात्र साधन साहित्य है ।"[1] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के इस कथन की स्पष्टता डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय के शब्दों से हो जाती है । उनके अनुसार "प्रत्येक देश के साहित्य में उस देश का जीवन प्रतिबिम्बित होता है । इसके अतिरिक्त प्रत्येक साहित्यकार का व्यक्तित्व, भूत-वर्तमान और भविष्य तीनों को अपनी भुजाओं में समेटे रहता है । किसी देश के समूचे साहित्य में भी उसी प्रकार उस देश के जीवन की अखण्ड धारा प्रवाहित होती हुई मिलती है, उसका उत्कर्षापकर्ष प्रत्यक्षत: दृष्टिगोचर होता है ।"[2] स्पष्ट है साहित्यकार साहित्यकार की अनुभूतियों को तो पाठक के समक्ष प्रस्तुत करता ही है इसके साथ ही वह देश-काल और परिस्थिति को भी स्पष्ट करता है । विलियम हेनरी हडसन के अनुसार 'साहित्य में हम सर्वप्रथम गहरे और गम्भीर मनुष्य तत्व देखते हैं । एक महान पुस्तक का अध्ययन हम इसलिए करते हैं क्योंकि उसका जीवन से घनिष्टतम सम्बन्ध होता है । साहित्य मनुष्य के अनुभव, चिंतन और जीवन में देखे गए विषय तत्वों की धरोहर होता है । मूल रूप से भाषा के माध्यम से वह जीवन की अभिव्यक्ति होता है ।[3] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी भी साहित्य में इसी अनुभूति के दर्शन करते हैं । उनका अभिमत है - "हम साहित्य के किसी महान् ग्रन्थ को इसलिए महान नहीं कहते कि किसी व्यक्ति ने उसे महान कह दिया है, बल्कि इसलिए कि उसके पढ़ने से हम मानव-जीवन को निविड़-भाव से अनुभव करते हैं, या तो हम उसमें अपने को पाते हैं या अपने

- -

१-- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी: 'साहित्य-सहचर', १९६८ (इलाहाबाद) पृ० ३

२-- डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय: 'पश्चिमी आलोचना शास्त्र', १९६५ (लखनऊ) पृ० २०३

३-- "We care for literature primarily on account of its deep and lasting human significance. A great book grows directly out of life; in reading it, we are brought into large, close and fresh relations with life; and in that fact lies the final explanation of its power. Literature is a vital record of what men have seen in life, what they have experienced of it, what they have thought and felt about those aspects of it which have the most immediate and enduring interest for all of us."

विलियम हेनरी हडसन: "ऐन इन्ट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑव लिटरेचर, १९७० (लन्दन)पृ० १०

इर्द-गिर्द के अनुभूत अर्थों को प्रगाढ़-भाव से अनुभव करते हैं।"[१]

साहित्यकार अपने युग के अनुभव को अपने में समेटे रहता है। समाज का वास्तविक जीवन साहित्य में प्रतिबिंबित हो जाता है। हावर्ड फास्ट के अनुसार "साहित्य वास्तविकता का एक भाग है। साहित्य जीवन की वास्तविकता पर आधारित और उससे बंधा हुआ है। जीवन से अलग न तो साहित्य का अस्तित्व है और मनुष्य से अलग न ही कलाकार का।"[२] प्रेमचन्द जीवन से विमुख साहित्य को निर्जीव और बेकार मानते हैं। उनके शब्दों में "जिस साहित्य में हमारे जीवन की समस्याएं न हों, हमारी आत्मा को स्पर्श करने की शक्ति न हो, जो केवल जिंसी भावों में गुदगुदी पैदा करने के लिए, या भाषा-चातुरी दिखाने के लिए रचा गया हो वह निर्जीव साहित्य है, सत्यहीन, प्राणहीन।- - - - - - - - वह साहित्य जो हमें विलासिता के नशे में डुबा दे, जो हमें वैराग्य, पस्तहिम्मती, निराशावाद की ओर ले जाय, जिसके नजदीक संसार दुख का घर है - उससे निकल भागने में हमारा कल्याण है। जो केवल लिप्सा और भावुकता में डूबी हुई कथाएं लिखकर, कामुकता को भड़काये, निर्जीव है।"[३] साहित्य मात्र आनन्द और लिप्सा के लिए नहीं है। विनोद और मनबहलाव के लिए रचित साहित्य का अस्तित्व बाजीगर के खेल से अधिक कुछ नहीं है। साहित्य में जीवन के तत्व, जीवन की अनुभूति और जीवन को उल्लसित करने की क्षमता होनी चाहिए। महादेवी जी के शब्दों में - "साहित्य जीवन का अलंकार नहीं है, वह स्वयं जीवन है। साहित्यकार सृजन के क्षणों में उस जीवन में जीता है और पाठक पढ़ने के क्षणों में। इस प्रकार साहित्य में हम जीवन के अनेक गहरे अपरिचित स्तरों में, मनोवृत्तियों के अनेक अज्ञात छाया

- -

१-- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी: 'साहित्य-सहचर' १९६८ (इलाहाबाद) पृ० ४

२-- "Literature is a part of reality. Literature is bound, wedded, and sealed to the reality of life. Literature has no separate existence from life, and the artist can have no separate existence from the citizen. Surrender, of course, is open to him, but it is not open to him to surrender and to remain a creative, living writer."

हावर्ड फास्ट: 'लिटरेचर एण्ड रियलिटी' १९५५ (दिल्ली) पृ० १०५

३-- प्रेमचन्द: 'कुछ विचार', पृ० ८५

लोकों में जीवित होकर अपने जीवन को विस्तार, अनुभूतियों को गहराई और चिन्तन को व्यापकता देकर उसे समष्टि से आत्मीय सम्बन्धों में जोड़ते है। इस प्रकार एक जीवन में अनेक जीवन जीने के उल्लास के पीछे यदि कोई गम्भीर विश्वास नहीं है तो वह बाजीगर का खेल मात्र रह जायगा।"[1] प्रेमचन्द के अनुसार "साहित्यकार का काम केवल पाठकों का मन बहलाव नहीं है। यह तो भाटों और मदारियों, विदूषकों और मसखरों का काम है। साहित्यकार का पद इससे कहीं ऊंचा है। वह हमारा पथ-प्रदर्शक होता है, वह हमारे मनुष्यत्व को जगाता है, हममें सद्‌भावों का संचार करता है, हमारी दृष्टि को फैलाता है। कम से कम उसका यही उद्देश्य होना चाहिए।"[2]

साहित्य युग के जीवन का प्रतीक होता है। समाज, देश या राष्ट्र में जो कुछ घटित होता है साहित्यकार उससे मुंह नहीं मोड़ सकता है। प्रेमचन्द के शब्दों में "साहित्य अपने काल का प्रतिबिम्ब होता है। जो भाव और विचार लोगों के हृदयों को स्पंदित करते हैं, वही साहित्य पर भी अपनी छाया डालते हैं।"[3] मैथ्यू आर्नाल्ड ने १८५७ में अपने एक भाषण में कहा था कि यह हो सकता है कि राष्ट्र का उदय और साहित्य का उत्थान एक तरह न हो। यह सम्भावना हो सकती है कि राष्ट्र की सांस्कृतिक, भौतिक प्रगति अधिक हो जाय और साहित्य उससे पिछड़ जाय अथवा अपने राष्ट्रीय जीवन की अपेक्षा साहित्य अधिक प्रगतिशील हो जाय। परन्तु साहित्य को युग की सापेक्षता में समझना और आंकना चाहिए।[4] महादेवी जी की धारणा है कि

- -

१-- महादेवी वर्मा: `साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध`, १९६२ (इलाहाबाद), पृ० २७

२-- प्रेमचन्द: `कुछ विचार` पृ० ५१

३-- प्रेमचन्द : `कुछ विचार` पृ० ८

४-- "And I shall not, I hope, be thought to magnify too much my office. It I add, that it is to the poetical literature of an age that we must, in general, look for the most perfect, the most adequate interpretation of that age, -- for the performance of a work which demands the most energetic and harmonious activity of all the powers of the human mind."

मैथ्यू आर्नाल्ड: दे० फ्रेजर नीमन (सं): `एसेज़, लेटर्स एण्ड रिव्यूज़ बाई मैथ्यू अर्नाल्ड`, १९६० (कैम्ब्रिज), पृ० ७.

साहित्यकार का दायित्व है कि वह समसामयिक परिस्थितियों से संघर्ष करके जीवन को लक्ष्य तक पहुंचाने में सहायता दे। उनका कथन है - "जिन युगों में एक भू-खण्ड दूसरे से परिचित नहीं था, उनमें भी मनुष्य ने वसुधा को कुटुम्ब के रूप में स्वीकार कर अनदेखे सहयात्रियों के प्रति आस्था व्यक्त की है। तब आज मंगल-ग्रह खोजी वैज्ञानिक युग की आस्था का अभाव क्यों हो ? आज साहित्यकार की आस्था का क्षेत्र अधिक व्यापक हो गया है, पर यह व्यापकता उसे समसामयिक परिस्थितियों से संघर्ष कर उन्हें लक्ष्योन्मुख बना लेने की शक्ति दे सकती है।"[१] महादेवी जी की भांति लक्ष्मी नारायण सुधांशु साहित्य के एक अंग काव्य को सामान्य जीवन के निकट लाना चाहते हैं। उनके अनुसार सामान्य जीवन अर्थात समाज के बहुसंख्यक वर्ग की उपेक्षा करने वाले काव्य में रस की वास्तविक सृष्टि नहीं हो सकती है। उनका कथन है - "मनुष्य समाज के जो भिन्न-भिन्न अंग हैं उनके अतिरिक्त काव्य में उन उपयोगी साधनों का भी उल्लेख होता आया है जो हमारे बौद्धिक विकास तथा सभ्यता के परिचायक रहे हैं। काव्य में जहां राजा को स्थान मिला है वहां उसके साथ वीणा, वेणु, रथ, मंदिर, भवन आदि को भी समुचित स्थान प्राप्त हो गया है, किन्तु कृषक या श्रमिक को काव्य से अपदस्थ रखने के साथ-साथ उनके ढोल, झोपड़ी, बैल-गाड़ी तथा हंसिया-हथौड़ा को भी अलग रखना पड़ा।- - - - - - - - यदि सामान्य जीवन को काव्य में प्रसंगानुकूल स्थिति प्राप्त हो जाय तो वे साधन भी रस ग्राह्य रूप प्राप्त कर ले सकेंगे। प्रत्येक देश का काव्य अपनी भूमि के मौलिक आधार को प्राप्त कर ही रस ग्राह्य हो सकता है।"[२] सुधांशु यह भी मानते हैं कि "रूढ़िग्रस्तता या सामाजिक अव्यवस्था को दूर करने के लिए सामयिक साहित्य का उपभोग किया जा सकता है।"[३] जबकि प्रेमचन्द उससे चार कदम आगे हैं। वे साहित्य को केवल रूढ़ियों और अव्यवस्थाओं को दूर करने में सहायक ही नहीं मानते हैं वल्कि उनकी स्पष्ट घोषणा है - "साहित्य सामाजिक आदर्शों का सृष्टा है।"[४]

- -

१-- महादेवी वर्मा: `साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध`, १९६२ (इलाहाबाद), पृ० २९

२-- लक्ष्मी नारायण सुधांशु: `जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धांत`, १९४२ (भागलपुर), पृ० २४६

३-- लक्ष्मी नारायण सुधांशु: `जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धांत`, १९४२ (भागलपुर), पृ० २४७

४-- प्रेमचन्द: `कुछ विचार`, पृ० ६७

आज के सामाजिक जीवन में राजनीतिक मत-मतान्तरों और गतिविधियों की प्रसरता है। सत्य यह है कि प्रजातंत्रीय तरीकों और समाजवादी राजनैतिक जागरूकता ने ही साहित्य को समाजपरक बनाने की जोरदार वकालत की है। मार्क्स के समाजवाद ने साहित्य और जीवन तथा साहित्य और समाज के निकटतम सम्बन्धों की मांग की है। साहित्यकार युग के प्रति जागरूक रहता है। वह युग की हलचलों से अपने को दूर नहीं रख सकता है। युग के प्रभाव और साहित्यकार की सामाजिक निकटता के कारण उसे साहित्य और समाज ऐसे प्रश्न पर सोचना पड़ रहा है। क्रिस्टोफर काडवेल का कहना है कि 'कला सामाजिक कार्य है। वह किसी स्वप्न दृष्टा का स्वप्न नहीं है।'[१] जहां तक साहित्य का समाज की राजनीतिक गतिविधियों के सम्बन्ध का प्रश्न है? उस सम्बन्ध में प्रेमचन्द को धारणा है कि साहित्य "देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सचाई ही नहीं, बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सचाई है।"[२] केवल राजनीति ही नहीं साहित्य में सम्पूर्ण राष्ट्र का जीवन स्पंदित होता है। साहित्य की किसी भी विधा में राष्ट्रीय जीवन का चित्र अवश्य प्रतिबिंबित होता है। यही कारण है कि हडसन का कहना है कि किसी भी राष्ट्र के साहित्य का इतिहास अपनी महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति के रूप में राष्ट्र के चरित्र और बुद्धि का लेखा है। उनके अनुसार इतिहास राष्ट्र के बाह्य तत्वों का विश्लेषण करता है तो साहित्य राष्ट्र के आन्तरिक पक्ष बुद्धि और आध्यात्म पक्ष को प्रदर्शित करता है।[३] प्रेमचन्द भी साहित्य की इस महत्वपूर्ण शक्ति को मान्यता देते हैं। उनका

- -

१-- "Art is a social function ...... only those things are recognised as Art forms which have a conscious social function. The phantaries of dreamers are not art."

क्रिस्टोफर काडवेल: 'स्टडीज इन ए डाईंग कल्चर', १९७० (लन्दन), पृ० ४४

२-- प्रेमचन्द: 'कुछ विचार', पृ० २०

३-- "The history of any nation's literature, then, is the record of the unfolding of that nation's genious and character under one of its most important forms of expression. In this way literature becomes at once a supplement to what we ordinarily call history and a commentary upon it. History deals mainly with the externals of a

(शेष अगले पृष्ठ पर)

स्पष्ट मत है कि "हमारी सभ्यता साहित्य पर ही आधारित है। हम जो कुछ हैं, साहित्य के ही बनाये हैं। विश्व की आत्मा के अन्तर्गत भी राष्ट्र या देश की एक आत्मा होती है। इसी आत्मा की प्रतिध्वनि है - साहित्य।"[१] यदि हम राष्ट्रीय जीवन को राष्ट्रीय-सामाजिक जीवन से भिन्न न मानें तो साहित्य का राष्ट्रीय या राष्ट्र से सम्बन्धित पक्ष भी साहित्य और राष्ट्र के अन्तर्सम्बन्धों के साथ समाज और जीवन के प्रति अपने सम्बन्धों की भी अभिव्यक्ति करता है।

प्रेमचन्द साहित्य की "सर्वोत्तम परिभाषा" `जीवन की आलोचना`[२] मानते हैं। वह साहित्य जिसमें जीवन के प्रति पलायन हो साहित्य कहा जाने का अधिकारी नहीं होता है। प्रेमचन्द का दृढ़ निश्चय था कि "साहित्य उसी रचना को कहेंगे जिसमें कोई सचाई प्रगट की गई हो, जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित और सुन्दर हो, और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो और साहित्य में यह गुण पूर्ण रूप से उसी अवस्था में उत्पन्न होता है, जब उसमें जीवन की सच्चाइयां व्यक्त की गई हों।"[३] साहित्य में अन्य गुणों के साथ जीवन से सम्बद्धता का होना प्रेमचन्द की दृष्टि में अनिवार्य है। जीवन और साहित्य के अनन्य सम्बन्ध का पुष्टीकरण बाबू गुलाबराय जी के प्रस्तुत कथन से स्पष्ट हो जायगा। उनका कहना है - "साहित्य जीवन से भिन्न नहीं है वरन् वह उसका ही मुखरित रूप है। वह जीवन के महासागर से उठी हुई उच्चतम

- -

people's civilization, portrays the outward manner of their existence, and tells us what they did or failed to do in the practical work of the world. But it is to their literature that we must turn if we would understand their mental and moral characteristics, realise what they sought and achieved in the world of inner activity, and follow through the stages of their changing fortunes the ebb and flow of the forces which feel their emotional energies and shaped their intellectual and spiritual life."
विलियम हेनरी हडसन: `ऐन इन्ट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑव लिटरेचर, १९१७ (लन्दन)पृ० ११

१-- प्रेमचन्द: `कुछ विचार`, पृ० ६७

२-- प्रेमचन्द: `कुछ विचार`, पृ० ७

३-- प्रेमचन्द: `कुछ विचार`, पृ० ६

तरंग है। मानव-जाति के भावों, विचारों और संकल्पों की आत्मकथा साहित्य के रूप में प्रसारित होती है। साहित्य जीवन-विटप का मधुमय सुमन है। वह जीवन का चरम विकास है किन्तु जीवन से बाहर उसका अस्तित्व नहीं है। उसके पाचन (Assimilation), वृद्धि (Growth), गति और पुनरुत्पादन (Reproduction) आदि जीवन की सभी क्रियाएं मिलती हैं। अंग अंगी से भिन्न गुणवाला नहीं होता, इसलिए जीवन की मूल प्रेरणाएं ही साहित्य की मूल प्रेरक शक्तियां हैं। जो वृत्तियां जीवन की और सब क्रियाओं की मूलस्रोत हैं वे ही साहित्य को भी बल देती हैं।'[1] साहित्य और समाज के सम्बन्ध और समाज के साहित्य पर प्रभाव का स्पष्टीकरण डा० वार्ष्णेय का प्रस्तुत अभिमत कर देता है। उनके अनुसार 'साहित्य और समाज का परस्पर सम्बन्ध ध्यान में रखते हुए ही साहित्येतिहास का काल विभाजन निर्धारित किया जाता है।'[2] साहित्य, साहित्यकार और समाज के सम्बन्धों को देवेन्द्र इस्सर का प्रस्तुत कथन भी स्पष्ट करता है। उनके अनुसार 'साहित्यकार भी एक सामाजिक प्राणी है और जब वह अपने साहित्य द्वारा पाठकों तक अपनी बात पहुंचाता है तो यह भी एक सामाजिक क्रिया है, अतएव साहित्य का सामाजिक उद्देश्य होना आवश्यक है।'[3] साहित्य और जीवन तथा साहित्य और समाज के सम्बन्धों का विस्तृत विवेचन विभिन्न विद्वानों के मतों एवं धारणाओं के आधार पर किया जा चुका है। अन्त में यह स्पष्ट कर देना आवश्यक जान पड़ता है कि जीवन और समाज अलग नहीं है। साहित्यकार जब जीवन के समष्टि रूप को ग्रहण करता है तो वह समाज के जीवन को ही ग्रहण करता है। जीवन व्यक्ति का होता है। व्यक्ति और समाज के अनन्य सम्बन्ध का उल्लेख 'व्यक्ति और समाज' शीर्षक में किया जा चुका है। अत: यहां पर हमें यह कहने की स्वतंत्रता होनी चाहिए कि साहित्य, समाज और जीवन आपस में सम्बद्ध हैं। इस सम्बन्ध के विवेचन का समाधान यदि हम 'साहित्य का उद्देश्य' निबन्ध में प्राप्त प्रेमचन्द द्वारा बताए गए सम्बन्ध से करें तो अधिक उचित होगा। प्रेमचन्द ने लखनऊ अधिवेशन में 'प्रगतिशील लेखक संघ' के अध्यक्षीय भाषण में कहा था - "अब साहित्य केवल मन-बहलाव की चीज नहीं है, मनोरंजन के सिवा उसका और भी कुछ

- -

१-- डा० गुलाबराय: 'सिद्धान्त और अध्ययन', पांचवां संस्करण (दिल्ली) पृ० ६६

२-- डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय: 'पाश्चात्य आलोचना सिद्धान्त', १९६५ (लखनऊ) पृ० २०१

३-- देवेन्द्र इस्सर: 'चिन्तन और साहित्य', १९५८ (दिल्ली) पृ० २८

उद्देश्य है । जब वह केवल नायक-नायिका के संयोग-वियोग की कहानी नहीं सुनाता, किन्तु जीवन की समस्याओं पर भी विचार करता है और उन्हें हल करता है । जब वह स्फूर्ति या प्रेरणा के लिए अद्भुत आश्चर्यजनक घटनाएं नहीं ढूंढता और न अनुप्रास का अन्वेषण करता है, किन्तु उसे उन प्रश्नों से दिलचस्पी है जिससे समाज या व्यक्ति प्रभावित होता है ।"[1] इसी धरातल पर हमें उनके साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन के अन्तर्गत मूल्यांकन करना होगा । इसके पूर्व कि हम साहित्य और समाजशास्त्रीय के उद्देश्य और सम्बन्ध पर विचार करें हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम पहले साहित्य और समाजशास्त्र के सम्बन्धों पर विचार कर लें ।

साहित्य और समाजशास्त्र

व्यक्ति और समाज, समाज और समाजशास्त्र तथा साहित्य, समाज और जीवन के पारस्परिक सम्बन्धों पर विचार करने के बाद साहित्य-समाज समाजशास्त्र के सम्बन्ध को पूरा स्वरूप देने के लिए साहित्य और समाजशास्त्र के सम्बन्धों पर विचार करना अनिवार्य है । प्रश्न यह है क्या साहित्य और समाजशास्त्र आपस में किन्हीं स्वरूपों में सम्बद्ध हैं ? क्या साहित्य और समाजशास्त्र के बीच कोई ऐसा आधार है जो दोनों को जोड़ता है ? क्या अपने उद्देश्यों और मूल्यों के संदर्भ में दोनों में स्वाभाविक एका है ? क्या अपने स्वरूपों में दोनों किसी स्तर पर एक दूसरे को प्रभावित कर सकते हैं या करते हैं ? क्या अन्य जीवन के पक्षों की भांति साहित्य का भी समाजशास्त्रीय अध्ययन सम्भव है ? यदि इन समस्त पक्षों का उत्तर हम खोज निकालें तो साहित्य और समाजशास्त्र के सम्बन्धों को स्पष्ट करने में हमें सुविधा होगी ।

साहित्य और समाजशास्त्र के किन्हीं रूपों में सम्बद्धता के प्रश्न का उत्तर तब तक पूरा नहीं हो सकता जब तक हम सम्पूर्ण पक्षों का उत्तर न दे दें । यहां पर हम मात्र इतना कहेंगे कि साहित्य और समाजशास्त्र समाज के सन्दर्भ में दोनों किसी सीमा तक अध्ययन, विवेचन और उद्देश्य में समान हैं । दोनों का कार्य समाज और जीवन का विवेचन करना, उन्हें दिशा प्रदान करना है और उनकी समस्याओं को सुलझाना है । दूसरा प्रश्न है क्या साहित्य और समाजशास्त्र के मध्य कोई ऐसा आधार है जो दोनों को जोड़ता है । प्रस्तुत अध्याय में ही हम देख चुके हैं कि व्यक्ति और समाज आपस में

१-- प्रेमचन्द: "कुछ विचार", पृ० १

सम्बद्ध है, एक दूसरे के बिना एक दूसरे का अस्तित्व मूर्तहीन है। व्यक्ति सामाजिक अनुभूतियों के सहारे अपने व्यक्तित्व की संरचना करता है। साहित्यकार भी समाज और जीवन से प्रेरित होकर उसी के लिए साहित्य का सृजन करता है और समाजशास्त्री भी अपने अन्वेषण समाज और जीवन में समाज और जीवन के लिए करता है। अत: जीवन और समाज ही वह आधार हैं जिन पर साहित्य और समाजशास्त्र की नींव आधारित है। यहां पर पुन: यह दुहरा देना आवश्यक है कि साहित्य का कलावादी, जीवन से पलायन, मात्र विनोद और आनन्द के लिए साहित्य के प्रयोजन का तर्क अब पुराना पड़ गया है। कम-से-कम प्रेमचन्द ऐसे साहित्यकार के सम्बन्ध में, जिनके साहित्य का उद्देश्य जीवन की आलोचना और समाज का उपकार है, ये तर्क सारहीन हैं।

साहित्य और समाजशास्त्र के उद्देश्यों और मूल्यों के स्वाभाविक एका के प्रश्न का उत्तर सामान्य रूप से 'साहित्य समाज और जीवन' तथा 'समाज और समाजशास्त्र' शीर्षकों को पढ़कर सोचने के बाद मिल सकता है। जैसा कि हम देख चुके हैं आज का साहित्य जीवन और समाज से सम्बद्ध है। हम यह भी देख चुके हैं कि 'साहित्य जीवन का अलंकार नहीं है, वह स्वयं जीवन है'[1] साहित्य मानव जीवन से सीधा उत्पन्न होकर सीधे मानव जीवन को प्रभावित करता है'[2] तथा साहित्य की सर्वोत्तम परिभाषा 'जीवन की आलोचना' है।'[3] साहित्य और समाज की सान्निध्यता पर भी हम विचार कर चुके हैं। समाजशास्त्र का अस्तित्व भी जीवन और समाज से अलग नहीं है। उसका भी उद्देश्य मानव जीवन की विवेचना करना और उसके जीवन की समस्याओं को सुलझाना है।[4] इस प्रकार से आज का साहित्य और समाजशास्त्र अपने उद्देश्यों में एक हैं। समाजशास्त्री भी साहित्य के सामाजिक मूल्य को स्वीकार करते हैं। प्रसिद्ध सामाजिक विचारक और समाजशास्त्री हेनरी थामस बकल (Buckle) की धारणा है कि सामाजिक जागृति के लिए, सामाजिक मूल्यों को समझने और जानने के लिए साहित्य का बहुत बड़ा महत्व है। साहित्य के माध्यम से सामाजिक मूल्यों को सीधा

- -

१— महादेवी वर्मा: 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध', १९६२ (इलाहाबाद) पृ० २७

२— डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी: 'साहित्य-सहचर', १९६८ (इलाहाबाद) पृ० ३

३— प्रेमचन्द: 'कुछ विचार', पृ० ७

४— दे० प्रस्तुत अध्याय का अंश 'समाज और समाजशास्त्र'

जा सकता है और उससे लाभ उठाया जा सकता है। उनकी धारणा है जिस प्रकार से धर्म समाज में महत्वपूर्ण भूमिकाअदा करता है उसी प्रकार साहित्य भी समाज संचालन में महत्वपूर्ण कार्य करता है।[१] परन्तु उनकी धारणा यह भी है कि साहित्य निर्माता की अपेक्षा पाठक के लिए साहित्य का अधिक मूल्य है।[२] प्रेमचन्द साहित्य के सामाजिक उद्देश्य को समझते हुए कहते हैं - "हमें अपने साहित्य का मानदण्ड ऊंचा करना होगा जिसमें वह समाज की अधिक मूल्यवान सेवा कर सके, जिसमें समाज में उसे वह पद मिले जिसका वह अधिकारी है, जिसमें वह जीवन के प्रत्येक विभाग की आलोचना विवेचना कर सके।"[३] समाजशास्त्र द्वारा जीवन और समाज के प्रत्येक क्षेत्र और पक्ष की विवेचना के विस्तृत स्वरूप पर हम 'समाज और समाजशास्त्र' शीर्षक के अंतिम अंश में विचार कर चुके हैं। कला का उद्देश्य (साहित्य के संदर्भ में) "जीवन की व्याख्या ही नहीं वरन् उसे दिशा भी देना है।"[४] समाजशास्त्र भी क्या है? क्या होगा? के साथ क्या होना चाहिए? को निर्देशित करने की शक्ति रखता है।[५] समाजशास्त्र सामाजिक प्रश्नों को उठाता है। वह जीवन को स्पर्श करता

- -

१-- दे० हेनरी थामस बकल: 'इनक्वायरी इन टू द इनफ्लूएंस इक्सरसाइज्ड बाई रिलीजन, लिटरेचर ऐण्ड गवर्नमेंट, शीर्षक का साहित्य सम्बन्धी अंश दे० पुस्तक थामस निक्सन कारवर: सोशिओलॉजी ऐण्ड सोशल प्रोग्रेस' १६०५ (न्यूयार्क, लन्दन आदि) पृ० ५५७-५६२

२-- "It is in this way that the nature of the literature possessed by a people is of very inferior importance in comparison with the disposition of the people by whom the literature is to be read. In what are rightly termed the Dark Ages there was a literature in which valuable materials were to be found, but there was no one who knew how to use them."

हेनरी थामस बकल: 'इनक्वायरी इन टू द इनफ्लूएंस इक्सरसाइज्ड बाई रिलीजन, लिटरेचर ऐण्ड गवर्नमेंट, दे० पुस्तक थामस निक्सन कारवर (सं) सोशिओलॉजी ऐण्ड सोशल प्रोग्रेस, १६०५ (न्यूयार्क, लन्दन आदि) पृ ५६२

३-- प्रेमचन्द: 'कुछ विचार', पृ० २२

४-- डा० गुलाबराय: 'सिद्धान्त और अध्ययन, पांचवां संस्करण (दिल्ली) पृ० ८०

५-- "It says be that an accurate and detailed knowledge of "What is"

(शेष अगले पृष्ठ पर)

है। समाजशास्त्री अपने विशिष्ट ज्ञान के आधार पर सामाजिक नीति के निर्धारण में सहायता करता है। वह सामाजिक परिवर्तन का अनुमान लगा सकता है, नियंत्रित कर सकता है और निर्देशित कर सकता है तथा सामाजिक प्रगति को गति दे सकता है। वह समुदाय के निर्माण में इंजीनियर का कार्य करता है और सामाजिक समस्याओं को सुलझाने में सहायक हो सकता है।[१] प्रेमचन्द साहित्य का यही कर्तव्य मानते हैं। उनकी दृष्टि में वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें "सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो, जो हममें गति और बेचैनी पैदा करे, सुलाये नहीं।"[२] तथा उनकी दृष्टि में "साहित्यकार हमारा पथ-प्रदर्शक होता है, वह हमारे मनुष्यत्व को जगाता है, हममें सद्भावों का संचार करता है, हमारी दृष्टि फैलाता है।"[३] माधुरी: २३ अक्टूबर १९२२ के अंक में प्रेमचन्द लेखक के सम्बन्ध में लिखते हैं - "लेखक वृन्द प्राय: अपने काल के विधाता होते हैं। उनमें अपने देश को, अपने समाज को दुख अन्याय तथा मिथ्यावाद से मुक्त करने की प्रबल आकांक्षा होती है। ऐसी दशा में

- -

gives the sociologist power to predict "what will be" and hense also power the direct it."

ए० के० सरन: `इण्डिया`, दे० जोसफ एस० राउसेक (सं): कन्टम्पोरेरी सोशिओलॉजी, १९५८, (न्यूयार्क) पृ० १०३१

१-- "Here comes the real role of sociologist, for, in this sense, his discipline represents an instrument of social policy. With his expert knowledge of social relationships. The sociologist can help predict, control and direct social change and speed up social progress. It is in the field of cousation and change that the sociologist role of an engineer for the community rebuilding is manifest. The academician-sociologist in his role of social engineer has an important contribution to make in solving social problems."

जोसेफ एस० राउसेक (सं०): `कन्टेम्पोरेरी सोशिओलॉजी`, १९५८, (न्यूयार्क) पृ० १०३० से उद्धृत।

२-- प्रेमचन्द: `कुछ विचार`, पृ० २१

३-- प्रेमचन्द: `कुछ विचार`, पृ० ४१

असम्भव है कि वह समाज को अपने मनमाने मार्ग पर चलने दे और स्वयं खड़ा हाथ पर हाथ रखते देखता रहे।"[१] इस प्रकार से साहित्य और साहित्यकार, समाजशास्त्र और समाजशास्त्री समाज के लिए लगभग एक ही तरह का कार्य करते हैं।

इस सम्बन्ध में एक शंका अवशेष है। वह यह कि क्या साहित्य और समाजशास्त्र का उद्देश्य जीवन और समाज के सुन्दर पक्ष का ही अध्ययन करना है अथवा वे उसके असुन्दर पक्ष को भी स्पर्श करते हैं। इस सम्बन्ध में दो मत नहीं हो सकते कि दोनों समाज के सुन्दर और असुन्दर दोनों पक्षों को देखते हैं और उनमें से सुन्दर की सृष्टि करके उसे जगत को या मानव-समाज को प्रदान करना चाहते हैं। प्रसिद्ध समाजशास्त्री डा० हैज ने अपनी पुस्तक 'इन्ट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑव सोशियॉलॉजी' में सर्वप्रथम इसी पक्ष पर विचार किया है। उनकी पुस्तक की प्रथम अध्याय की पहली पंक्ति यही है कि समाजशास्त्र अच्छे और बुरे दोनों का अध्ययन एक साथ करता है (सोशियॉलॉजी स्टडीज गुड ऐण्ड बैड एलाइक)। इनका कहना है कि प्राय: लोग समझते हैं कि समाजशास्त्र अपराध, पाप, गरीबी और इसी तरह की असुन्दर बातों का अध्ययन करता है परन्तु समाजशास्त्र सामान्य और असामान्य दोनों का अध्ययन करता है। समाज की अच्छाइयाँ और बुराइयाँ दोनों का अध्ययन करके सुन्दर और असुन्दर पर दृष्टि डाल कर समाजशास्त्र सुन्दर के माध्यम से असुन्दर को दूर करना चाहता है।[२] साहित्य के सम्बन्ध में भी यही बात लागू होती है। 'साहित्य और कला' में 'घृणा की उपयोगिता' शीर्षक में प्रेमचन्द लिखते हैं - "मानव हृदय आदि से ही सु और कु का

- -

१-- माधुरी: २३ अक्टूबर १९२२ ई० विविध प्रसंग भाग ३ पृ० २५

२-- "Apparently many persons turn to sociology with the idea that it is a study of vice, crime, and poverty, and that the typical sociological exercise is "slumming". It is, however, at least as important scientifically to understand the normal as to understand the abnormal, and at least as important practically to know how to promote the good as to know how to combat the evil. We should at the outset divest ourselves of the one-sided idea that sociology is a study of evils, and look forward rather to a study of social life as a whole, good and evil existing together."

डावर्ड सी० हेज़ "इन्ट्रोडक्शन टू द स्टडी आव सोशियॉलॉजी" १९२५ (न्यूयार्क,लन्दन) पृ० ३

प्रसंग-स्थल रहा है और साहित्य की सृष्टि भी इसलिए हुई कि संसार में जो सु या सुन्दर है और इसलिए कल्याण कर है। उसके प्रति मनुष्य में प्रेम उत्पन्न हो और कु या असुन्दर और इसलिए असत्य वस्तुओं से घृणा। साहित्य और कला का यही उद्देश्य है। कु और सु का संग्राम ही साहित्य का इतिहास है।"[1] साहित्यकार भी समाजशास्त्री की भांति सुन्दर की प्रतिस्थापना चाहता है। प्रेमचन्द की विचारधारा इस सम्बन्ध में स्पष्ट है। उनका कहना है - "साहित्य की रचना करने वाले तो वही होते हैं जो जगत गति से विशेष रूप से प्रभावित होते हैं, जिनके मन में संसार को कुछ अधिक सुन्दर, कुछ अधिक उत्कृष्ट देखने की महत्वाकांक्षा होती है। वे असुन्दर को देखकर जितने दुखी होते हैं उतने ही सुन्दर को देखकर प्रसन्न होते हैं।"[2] स्पष्ट है साहित्यकार और समाजशास्त्री अथवा साहित्य और समाजशास्त्र सामाजिक मूल्यों की स्थापना, सामाजिक सुधार के प्रयत्नों के उद्देश्यों में एक रूप हैं या समभाव हैं।

प्रश्न है साहित्य और समाजशास्त्र अपने स्वरूपों में किस स्तर पर एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। इस सम्बन्ध में हमें स्पष्ट कहना है कि साहित्यकार बुद्धिजीवी प्राणी होता है वह बनाया नहीं जाता। उसमें पैदायशी प्रतिभा होती है। परन्तु फिर भी वह देश, काल और परिस्थिति से प्रभावित होता है। जो कुछ जीवन में घटित होता है या जीवन के अध्ययन-विवेचन के लिए उसके युग में जो पद्धतियां प्रचलित होती हैं उन पर उसकी दृष्टि अवश्य जाती है। प्रेमचन्द स्वत: मानते थे कि साहित्यकार को मात्र कोरा साहित्यकार नहीं होना चाहिए। साहित्यकार को मानवशास्त्र, राजनीति, समाजशास्त्र और मनोविज्ञान शास्त्र का ज्ञाता होना चाहिए। तभी वह अच्छा और प्रभावशाली साहित्यकार हो सकता है। उन्होंने जनवरी १९२५ के `समालोचक' में उपन्यास-लेखन के सम्बन्ध में लिखा था - `बिना मानव शास्त्र का उचित ज्ञान प्राप्त किये, कभी भी कलम न उठाइये।"[3] राजनीति, समाजशास्त्र और मनोविज्ञान के अध्ययन की आवश्यकता पर प्रेमचन्द बल देते हैं इसका पता उनके इस कथन से चलता है जहां पर वे हिन्दी साहित्यकारों के विषय में कहते हैं "आज तो हिन्दी

१— हंस दिसम्बर १९३३ ई० विविध प्रसंग भाग ३ पृ० ५०

२— हंस मार्च १९३३ ई० विविध प्रसंग भाग ३, पृ० ५५

३— `समालोचक' जनवरी १९२५ ई० विविध प्रसंग भाग ३, पृ० ३८

में साहित्यकार के लिए प्रवृत्ति-मात्र अलम् समझी जाती है, और किसी प्रकार की तैयारी की उसके लिए आवश्यकता नहीं। वह राजनीति, समाजशास्त्र या मनोविज्ञान से सर्वथा अपरिचित है फिर भी वह साहित्यकार है।"[१] प्रेमचन्द की धारणा थी कि साहित्य को व्यक्तिवादी और अहंवादी नहीं होना चाहिए उसे उन सीमाओं से बाहर आकर समाजवादी और मनोवैज्ञानिक होना चाहिए। आधुनिक युग में साहित्य में मनोवैज्ञानिक भावधारा तथा सामाजिक विधाओं के प्रभाव को जानते थे और उनका सहयोग आवश्यक मानते थे। उन्होंने लिखा है - "साहित्यकार के सामने आजकल जो आदर्श रखा गया है, उसके अनुसार वे सभी विधाएं (राजनीति, समाजशास्त्र या मनोविज्ञान)[२] उसके विशेष अंग बन गई है और साहित्य की प्रवृत्ति अहंवाद या व्यक्तिवाद तक परिचित नहीं रही बल्कि वह मनोवैज्ञानिक और सामाजिक होती जाती है।"[३] इस प्रश्न का एक दूसरा पक्ष भी है कि क्या साहित्य समाजशास्त्र के अध्ययन में सहायता करता है, क्या वह उसे दिशा प्रदान कर सकता है, क्या उसके स्वरूप निर्माण में उसका कोई योगदान हो सकता है ? इस सम्बन्ध में आधुनिक समाजशास्त्री बाटममोर के विचार द्रष्टव्य हैं। उनका कहना है कि यह सत्य है कि हम समस्त सभ्यताओं और युगों के दार्शनिकों, धार्मिक उपदेशकों और विधि-निर्माताओं के लेखन में उनके विचार और अन्वीक्षण प्राप्त कर सकते हैं जो आधुनिक समाजशास्त्र के लिए प्रासंगिक रूप से आवश्यक हैं। उदाहरण स्वरूप उन्होंने बताया है कि कौटिल्य का अर्थशास्त्र और अरिस्टाटिल के राजनीतिक व्यवस्था सम्बन्धी विवेचन आज भी समाजशास्त्रियों के लिए रुचि के विषय हैं।[४] भारतीय समाजशास्त्र के सम्बन्ध में

- -

१-- प्रेमचन्द: 'कुछ विचार' पृ० २१

२-- कोष्टक के शब्द अपनी ओर से लिखे गए हैं प्रेमचन्द उनकी चर्चा ऊपर कर चुके हैं जो कुछ विचार के इससे पहले उद्धृत अंश में उल्लिखित है।

३-- प्रेमचन्द: 'कुछ विचार' पृ० २१

४-- "It is true that we can find, in the writings of philosphers, religious teachers, and legislators of all civilizations and epochs, observation and ideas which are relevant to modern sociology. <u>Kautilya's Arthashastra and Aristotle's politics analyze political systems in ways which are still of interest to the sociologist.</u>"

टी०बी० बाटममोर: 'सोशियोलॉजी, ए गाइड टू प्राब्लेम्स ऐण्ड लिटरेचर', १९६२ (लन्दन) पृ० ३

ए० के० सरन का अभिमत है कि भारतीय समाजशास्त्रियों को भारतीय विचारों के मूल स्वरूप को खोजना चाहिए। उनकी धारणा है कि "भारतीय सामाजिक चिंतन भारतीय समाजशास्त्र हैं।[१] प्रश्न यह है कि उन विचारों के जानने के लिए साधन कौन से है जिनके आधार पर हम भारतीय सामाजिक विचारों को जानकर उन्हें समाजशास्त्र के आधार रूप में स्वीकार करें। इस सम्बन्ध में युवराजसिंह चौहान की धारणा है कि भारतवर्ष में उच्चकोटि का साहित्य और चेतना स्वरूप में सामाजिक ढांचे का आदर्श, लिखित या मौखिक रूप में विद्यमान है जो मात्र प्राचीन उत्पत्ति ही नहीं है बल्कि उसकी अपनी स्वत: की शाश्वतता है, जिसके परखने का प्रयास भारतीय समाजशास्त्री को करना चाहिए।[२] समाजशास्त्री साहित्यिक गतिविधि तथा साहित्य स्वरूप से लाभ उठा सकता है। आज का समाजशास्त्री इस दिशा में सचेत है। क्लिफ्टन आर० जौन्स की धारणा है कि समाजशास्त्री साहित्य के समाजिक नियंत्रण सम्बन्धी कार्य से अनभिज्ञ नहीं है। उनके अनुसार प्रत्येक सामाजिक आंदोलन

- -

१-- "Though we have devoted a good deal of space to theoretical work by Indian sociologists and this was necessary in our view for a proper orientation - it should not give the impression that there has been considerable work in the theoretical field. In fact, Indian social thought is largely Indian Sociology."

ए० के० सरन: `इण्डिया` दे० जोसेफ एस० टाइसेक (सं) `कन्टेम्पोररी सोशियोलोजी`, १९५८, (न्यूयार्क) पृ० १०२३

२-- "If some sociologists in India instead of trying to study the problems facing the country, concentrate their energies on the pursuit of the subject with a view to enriching the academic content of the disciplene, their efforts would also have to be taken note of, In case of India, there exist the classical Literature and the conscious models of social structure, written and oral Literature, arts and systems of values that have not merely ananceint origin but also a continuity of their own."

युवराज चौहान: `पासिबिलिटीज ऑफ डेवलपिंग इण्डियन सोशियोलॉजी` दे० टनायन, योगेन्द्रसिंह, नरेन्द्रसिंह, इन्द्रदेव (सं०): `सोशियोलॉजी फार इण्डिया` १९६७(नई दिल्ली), पृ० १११

महान साहित्यिक विधा से प्रभावित हुआ है जिसमें समय की दशा, आशा और दबे हुए लोगों के भय को साहित्यिक रूप में प्रस्तुत किया है।[१] इस सम्बन्ध में उन्होंने उदाहरण स्वरूप वाल्टायर के लेखन का फ्रांस की क्रान्ति तथा हैरियट बीचर स्टौप के लेखन का निग्रो दासता के लिए मुक्ति के प्रयास पर प्रभाव का उल्लेख भी किया है। साहित्यकार के लेखन का सामाजिक क्रांति में, सामाजिक सुधार में प्रभाव अवश्यम्भावी है। इस विवेचन से स्पष्ट है कि साहित्य और समाजशास्त्र एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।

साहित्य और समाजशास्त्र के एक दूसरे पर प्रभाव के विवेचन के पश्चात अंतिम प्रश्न जो अवशेष है वह है क्या साहित्य की भी समाजशास्त्रीय व्याख्या हो सकती है? यह सिद्ध है कि साहित्य समाज को प्रभावित करता है, आज के जीवन में साहित्य और समाज या सामाजिक जीवन (चाहे वह व्यक्ति का हो या समूह का) अलग नहीं किए जा सकते हैं। यहां पर यह कहना आवश्यक है कि साहित्य कला का एक भाग है और कला अपने किसी रूप में अपने युग की तथा उस समय के समाज की आत्माभिव्यक्ति है। कला वह साधन है जो कलाकार और समाज, जिसमें वह रहता है, के बीच अन्तर्सम्बन्ध स्थापित करती है, जो अपने उद्देश्य रूप में समाज की मान्यता उसकी इच्छा तथा उसकी विशिष्टता की ओर संकेत करती है। कला में सौन्दर्य पक्ष तथा आत्म पक्ष दोनों का समन्वय होता है। कला का आत्म पक्ष ही वह सबल पहलू है जो समाज के लिए अत्यन्त उपयोगी है। इस आत्म पक्ष की उपयोगिता की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए गौट्शाल्क ने इसे समाज के लिए अत्यंत उपयोगी कहा है। उनके अनुसार 'यह एक आध्यात्मिक सम्पत्ति है जो समाज के सदस्यों के लिए विभिन्न प्रकार की तत्कालीन

- -

१-- "On the other hand, sociologists have not been unaware of the function of Literature as an agency of social control. Every great social movement has been marked by the emergence of a great body of Literature which dramatically described the conditions of the times, and hopes and fears of the oppressed."

विल्बूटन आर० बौन्ट: 'द सोशियोलॉजी ऑव सिम्बल्स, ईस्थैटिक्स एण्ड सैमिटिक्स', जे० जोसेफ एस० राउसैक (सं०); 'कन्टैम्पोरेरी सोशियोलॉजी', १९५८, (न्यूयार्क), पृ० ४४८

लामों को उत्पन्न कराती है जो स्वयं अपनी एक न्यायिक दृष्टि रखती हैं अर्थात उनका निश्चित तथा निर्णयात्मक पक्ष रहता है। यह एक सभ्यता प्रदान करने वाली शक्ति भी है जो विभिन्न मार्गों से समाज को प्रभावित करने की क्षमता रखती है। यह सामाजिक जीवन को प्रकाशित करने के लिए अगणित सहयोग प्रदान करती है। प्रत्येक स्थिति में कम-से-कम समाज को विकसित करने, मूल्य विस्तार और व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास सम्बन्धी तीन प्रकार के सहयोग अवश्य प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त वह मानव सम्मान की भावना को प्रफुल्लित करके उसे जीवन का लक्ष्य और उद्देश्य प्रदान करती है ताकि वह साकार स्वरूप धारण करके व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन का मार्ग प्रदर्शन कर सके।[१]

कला की यही मूल्यवान और महत्वपूर्ण स्थिति है जिसके कारण समाजशास्त्री कला के समाजशास्त्रीय अध्ययन की उपेक्षा नहीं कर सकते। पिछले चार-पांच दशकों से समाजशास्त्रियों की रुचि कला के समाजशास्त्रीय अध्ययन की ओर गई है। कला के समाजशास्त्रीय अध्ययन के लिए गम्भीर रूप से विचार किया गया है। भारतवर्ष में इस ओर कदम उठाने के लिए प्रयत्नशील व्यक्तियों में राधाकमल मुकर्जी का योग सर्वाधिक प्रशंसनीय है। उनके अनुसार "कलात्मक समाजशास्त्र ------ कला सम्बन्धी कार्यों का एक उद्देश्य मुक्त अध्ययन है जो (अ) किसी व्यक्ति के व्यक्तिगत परिश्रम और पूर्णता की आदर्श धरातल पर अभिव्यक्ति और उसकी विशिष्ट भावनाओं का मूल्य है

- -

१-- "It is spiritual asset, yielding to the members of society a Large variety of immideate goods which in themselves have a justification that is positive and decisive. It is also a civilizing force, capable of exerting a Social influence along two different lines. It can make innumerable contributions to an enlightend social life .... and it can make atleast three major breed contributions - developing the capacities, the value range, and personality of the individual, fostering a sense of human dignity and providing a vision of human purpose in ideal embodiment that can serve as a guide for both personal and group life."

डी० डब्लू० गौट्सल्क: 'आर्ट एण्ड द सोशल आर्डर' १९४७ (शिकागो) पृ० २१७

जो किसी युग या संस्कृति के सामाजिक मूल्यों का पुनर्निर्माण, प्रदर्शन और व्याख्या करता है। (ख) व्यक्तिगत भाग्य और मूल्यों को स्वरूप देने के लिए प्रचलित सामाजिक अभिव्यक्ति का साधन है (ग) किसी युग या संस्कृति का संकलन और समारोह है तथा किसी सभ्यता के जीवन और उद्देश्यों की बिना त्रुटि का हल है और जो मानव चेतना के बहुमत द्वारा स्वीकार कर लिया गया है। यह कला से सम्बन्धित समाजशास्त्र तिथियों, उपाधियों, नामों, आत्म-कथाओं, व्यक्तिगत कार्यों, व्यक्तिगत भावनाओं से कम सम्बन्धित है। वह इन्हें कला के इतिहास के लिए छोड़ देता है। वह क्षेत्रीय आर्थिक, सामाजिक पदार्थों की पृष्ठभूमि में कला के स्वरूपों, उसके उद्देश्यों एवं विषय को प्रभावित करने वाली दशाओं तथा कला की प्रेरणाओं, विक्षिप्तताओं और सम्पूर्णताओं में अपने को सीमित रखता है।[१]

साहित्य कला की ही एक विधा है। ललित कलाओं का सर्वोत्तम रूप है। वह व्यक्तिगत प्रयासों का प्रतिफल है, साहित्यकार की भावनाओं और विशिष्टताओं

- -

१-- "The sociology of Arts is......, an objective study of art work as (a) an expression of the man's personal striving and fulfillment in the ideal plane and his unique sense of values that orient, articulate or explain the Social values of an epoch or culture. (b) a vehicle of communication of prevailing social values moulding the values and destiny of the indevidual; and (c) a record and celebration of a culture or age, an unerring clue to the life and aims of a civilization as Judged by Larger conscience of humanity. It is less directly concerned, however, with dates, titles, Names and biographies or with the Sensuous values of works of art as individual, independent objects, which it would leave Art history. It confines itself to the Social conditions of origin and operation of art work, to the background of regional, economic and social factors and forces that determine the forms of art and Largely condition its motifs and themes, and also its aspirations, frustrations and full-fillments."

राधाकमल मुकर्जी: "द सोशल फन्क्शन आफ आर्ट" १९४८ (बम्बई), पृ० ३०-३१

की प्रतिमूर्ति है। वह युग और संस्कृति को अपने को समेटे रहता है और आज के अपने नवीनतम रूप में वह सामाजिक मूल्यों एवं आदर्शों के निर्माण के लिए मात्र चिंतित ही नहीं उनके लिए प्रयत्नशील है। कला के समाजशास्त्रीय अध्ययन के अन्तर्गत उसका अध्ययन होना स्वाभाविक है। क्लिफ्टन आर० जोन्स के अनुसार 'साहित्य सामाजिक संस्थान है। सामाजिक कलाकार अवमूल्यित स्वरूपों, व्याकरणों के नियमों, गठबन्धनों, कथानकों और दशाओं का पालन करता है। उसके चरित्र समाज के वास्तविक अथवा आदर्श चरित्र होते हैं।[1] इसलिए साहित्य का समाजशास्त्रीय विवेचन उपयोगी भी है और आवश्यक भी। कला की समाजशास्त्रीय व्याख्या के प्रचलन के बाद समाजशास्त्रियों का ध्यान कला के सर्वोत्तम उपभेद साहित्य की ओर भी गयाहै। और अब साहित्य की समाजशास्त्रीय व्याख्या और अवमूल्यन भी प्रारम्भ हो गया है।[2] साहित्य में युग की सामाजिक परिस्थितियों एवं सामाजिक मानदण्डों का बोध होता है तथा सांस्कृतिक पक्षों का अवमूल्यन किया जाता है। युग की राजनीति, अर्थव्यवस्था, धार्मिक स्वरूप और शैक्षिक दशा का चित्रण होता है। साहित्य में शहर और ग्रामीण जीवन के अनेक पक्ष सम्पूर्ण स्वरूप में अथवा आंशिक रूप में चित्रित होते हैं। इन सबका विवेचन समाजशास्त्र के अन्तर्गत होता है। जिनकी व्याख्या के लिए समाजशास्त्र के विभिन्न स्वरूपों का उल्लेख इसी अध्याय के 'समाज और समाजशास्त्र' शीर्षक के अन्तर्गत किया गया है। साहित्य के इस विस्तृत स्वरूप के कारण ही

- -

१-- "Literature is also a social institution. The Literrary Craftman follows standardized forms, rules of grammar, cliches, plots and situations. The roles of the characters are the roles of society, ideally or realistically portroyed."

क्लिफ्टन आर० जोन्स: 'द सोशियोलॉजी ऑव सिम्बल्स, लैंग्वेज एण्ड सेमिटिक्स', दे० जोसेफ एस० राउसेक (सं०): 'कन्टेम्पोरेरी सोशियोलॉजी', १९५८, (न्यूयार्क), पृ० ४४८-४४९

२-- क्लिफ्टन आर० जोन्स: 'द सोशियोलॉजी ऑव सिम्बल्स, लैंग्वेज एण्ड सेमिटिक्स' शीर्षक का अंश दे० 'द सोशियोलॉजी ऑव लिटरेचर' जोसेफ एस० राउसेक (सं०): 'कन्टेम्पोरेरी सोशियोलॉजी', १९५८ (न्यूयार्क) पृ० ४४०-४४९

साहित्य की प्रभावशाली समाजशास्त्रीय व्याख्या हो सकती है।

स्पष्ट है समाजशास्त्र और साहित्य अपने उद्देश्यों में एक दूसरे से मिलते जुलते हैं। किसी-न-किसी स्थिति या स्वरूप में वे एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। समाज और जीवन आज के युग में दोनों के आधार हैं। यही कारण है कि साहित्य की समाजशास्त्रीय व्याख्या सम्भव है। इसमें प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में प्रेमचन्द साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन करना है।

द्वितीय अध्याय -

प्रेमचन्द-साहित्य और उसका समाजशास्त्रीय आधार

-:o:-

प्रेमचन्द-साहित्य और उसका समाजशास्त्रीय आधार

अपने आलोच्य ग्रंथ में 'साहित्य की मूल प्रेरणाओं' पर विचार करते समय कला के प्रयोजन में 'कला जीवन के अर्थ' की व्याख्या में उदाहरण देते हुए बाबू गुलाबराय लिखते हैं -"मुंशी प्रेमचन्द के उपन्यास प्राय: जीवन के ही लिए लिखे गए हैं।"[1] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी 'जातीय (राष्ट्रीय) साहित्य' पर विचार करते हुए प्रेमचन्द को हिन्दी और उर्दू की दुनिया में सबसे बड़ा सचाई का पारदर्शक मानते हैं। वे लिखते हैं - "अगर कोई उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार-विचार, भाव-भाषा, रहन-सहन, आशा-आकांक्षा, दुख-सुख और सूझ-बूझ को जानना चाहे तो प्रेमचन्द से उत्तर परिचायक इस युग में नहीं पा सकेगा। झोपड़ियों से लेकर महलों तक, खोमचे से लेकर बैंकों तक, ग्राम-पंचायतों से लेकर धारा-सभाओं तक उसे इतने कौशलपूर्ण और प्रामाणिकता के साथ कोई दूसरा नही ले जा सकता।"[2] स्पष्ट है प्रेमचन्द ने सामान्य से सामान्य व्यक्तियों के जीवन से लेकर बड़े से बड़े और छोटे से छोटे लोगों के जीवन को धैर्य के साथ तटस्थता और सूक्ष्मता से परखने का प्रयास किया है। यदि उन्होंने उच्च वर्ग के सामन्तों, पूंजीपतियों, उद्योगपतियों और प्रशासन के अधिकारियों का चित्र प्रस्तुत किया है तो वहीं मध्य वर्ग के वकीलों, डाक्टरों, अध्यापकों, संपादकों, क्लर्कों, जमींदारों के साथ निम्न वर्ग के औद्योगिक और खेतिहर मजदूरों और कामगरों को भी अपने साहित्य में स्थान दिया है। किसान जीवन के तो वे सच्चे कलाकार हैं। कोई भी पाठक प्रेमचन्द साहित्य के सहारे खेतों में काम करते किसानों, स्वार्थ के लिए षड्यंत्र करते हुए जमींदारों, क्रूर षड्यंत्र में लीन कारिन्दों, विलासिता में गोता लगाते हुए सामन्तों, ऐयाशी करते हुए और जनता में आतंक जमाते हुए सरकारी अधिकारियों, जनता के सीधे-सादे विश्वास को लूटने वाले ढोंगी पंडितों, मंदिरों और मठो में आसन जमाए हुए महन्तों, कर्तव्यच्युत अध्यापकों या प्रोफेसरों, सम्पत्ति के पीछे सब कुछ भूल जाने वाले उद्योगपतियों, व्यवसायियों एवं बैंकरों, राष्ट्र के लिए संघर्ष करते हुए राष्ट्र-प्रेमियों, समाज के उद्धार के लिए प्रयत्नशील समाज सेवियों, भूख की ज्वाला से विदग्ध रोटियों के लिए छटपटाते भिखमंगों, समाज के दुर्बल और भ्रांत नियमों और परम्पराओं

- - - - - - - - - - - - - - - - - -

१-- डा० गुलाबराय: 'सिद्धान्त और अध्ययन' पांचवां संस्करण (दिल्ली) पृ० ८१

२-- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी: 'साहित्य-सहचर' १९६८ (वाराणसी) पृ २५

से सताए गए अछूतों, साहसी चमारों, फरेबी पटवारियों और महाजनों को देख सकते हैं। इन सब चित्रणों के होते हुए प्रेमचन्द-साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता उनकी दलित वर्ग के प्रति सहानुभूति है। प्रेमचन्द एक ऐसे समाज की रचना करना चाहते हैं जिससे मानवता का एक नया स्वरूप सुगठित हो। उनके साहित्य का यही वह पक्ष है, जिसके आधार पर अनेक आलोचक प्रेमचन्द और गोर्की की तुलना करने लग जाते हैं। शचीरानी गुर्टू ने प्रेमचन्द और गोर्की के सम्बन्ध में लिखा है - "प्रेमचन्द और गोर्की में सबसे बड़ी समानता का सूत्र, जो हमें मिलता है, वह यह कि इन दोनों की रचनाओं को पढ़कर मानवता का एक नया क्षितिज नज़रों के सामने उभरने लगता है - एक ऐसा क्षितिज जहां दूर से दूरतर होती हुई धुंधली पगडंडी में अगणित चित्र बनते और मिटते हैं। नंगे, अधनंगे, बूढ़े-जवान, बच्चे-बच्चियां, तरुणी-वृद्धाएं और वे भी किसान-जमींदार, मालिक-मजदूर, धनी-निर्धन, छूत-अछूत, शिक्षित-अशिक्षित सभी वर्ग के इन चित्रों में जादुई आकर्षण है जिसकी सुहानी दीप्ति हमारी चेतना पर छा जाती है।"[1] प्रेमचन्द-साहित्य की सामाजिकता का मूल्यांकन करते हुए डा० नगेन्द्र लिखते हैं - "वास्तव में जिस समय उत्तर भारत के इस काल-खण्ड का सामाजिक इतिहास लिखा जायगा, उस समय प्रेमचन्द के उपन्यासों से अधिक व्यवस्थित सामग्री अन्यत्र नहीं मिलेगी, और यदि इतिहासकार, राजनीति से आतंकित होकर विवेक न खो बैठा, तो वह उन्हें भी पट्टाभि के इतिहास और नेहरू और राजेन्द्र बाबू की जीवनियों से कम महत्व नहीं देगा।"[2]

प्रेमचन्द सामाजिक विभीषिकाओं से परिचित थे। इस अव्यवस्थित समाज की अनेक कठिनाइयों को उन्होंने भोगा था और शैव का अनुभव किया था। उनकी गहन सामाजिक अनुभूति ही उनके साहित्य में अभिव्यक्त हुई है। जीवन भर संघर्ष करने वाला यह साहित्यकार, मूल रूप में कथाकार यह जानता था कि गरीबी क्या है, दुख किसे कहते हैं, संघर्ष के बीच मनुष्य किस प्रकार जीने के लिए, जीवन का भार ढोने के लिए छटपटाता है। वे दूषित सामाजिक व्यवस्था में मध्य वर्ग और निम्न वर्ग की पीड़ा और कठिनाई से परिचित थे। यही कारण है कि वे सामाजिक संघर्ष के योद्धा के रूप में समाज को, सामाजिक स्थितियों और समाज की समस्याओं को यथार्थवादी

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

१— शचीरानी गुर्टू (सं): 'प्रेमचन्द और गोर्की', १९५५ (दिल्ली) भूमिका का पृ० १
२— डा० नगेन्द्र : 'विचार और विवेचन', १९५३ (दिल्ली) पृ० ६१

दृष्टि से पहचान सके । वे जीवन भर उसमें परिवर्तन लाने, उसे नियंत्रित करने और स्वस्थ स्वरूप देने के लिए संघर्षरत रहे ।

इसके पूर्व कि हम इस अध्याय के उत्तरार्ध में प्रेमचन्द के सामाजिक दर्शन पर विचार करें हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम प्रेमचन्द-साहित्य से संक्षिप्त रूप से परिचय पा लें । अपनी सुगमता और सुविधा की दृष्टि से हम उनके साहित्य पर उपन्यास-साहित्य, कहानी-साहित्य तथा अन्य साहित्य - के उपविभाजन के आधार पर दृष्टि डालेंगे ।

उपन्यास-साहित्य

प्रेमचन्द जी के हिन्दी में `वरदान`, `सेवासदन`, `प्रेमाश्रम`, `रंगभूमि`, `कायाकल्प`, `निर्मला`, `प्रतिज्ञा`, `गबन`, `कर्मभूमि`, `गोदान` आदि दस पूरे और ग्यारहवां मंगलसूत्र अधूरा उपन्यास है । इन उपन्यासों की रचना तिथि और प्रकाशन तिथि के सम्बन्ध में अनेक तरह की भ्रांतियां है ।[१] हंसराज रहबर `वरदान` (रचनाकाल १९०५-६), `प्रेमा` अथवा `प्रतिज्ञा` (रचनाकाल १९०६), `प्रेमाश्रम` (रचनाकाल १९१८-१९ प्रकाशन काल १९२२ ई०), `निर्मला` (रचनाकाल १९२२-२३), `रंगभूमि` (रचनाकाल २७-२८), `कर्मभूमि` (रचनाकाल १९३२), मानते हैं ।[२] उनकी आलोचना में `सेवासदन`, `कायाकल्प`, `गोदान` और मंगलसूत्र के सम्बन्ध में तो न तो प्रकाशन तिथि का उल्लेख है न रचना तिथि का ही । डा० इन्द्रनाथ मदान `वरदान` (१९२१), `सेवासदन` (१९१९), `प्रेमाश्रम` (१९२१), `रंगभूमि` (१९२५), `कायाकल्प` (१९२६), `निर्मला` (१९२५-२६), `प्रतिज्ञा` (१९२७), `गबन` (१९३१), `कर्मभूमि` (१९३२), `गोदान` (१९३६) मानते हैं ।[३] इन उपन्यासों में रचनाकाल या प्रकाशनकाल का उल्लेख नहीं है परन्तु यह प्रकाशन काल ही है । मन्मथ नाथ गुप्त प्रेमचन्द जी के

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

१-- प्रकाशन काल का उल्लेख करते हुए कोष्ठक में सन् दिया गया है । रचनाकाल के सम्बन्ध में रचनाकाल भी लिख दिया गया है ।

२-- `हंसराज रहबर` : प्रेमचन्द: जीवन और कृतित्व, १९५२ (दिल्ली) के दे० क्रमश: पृ० ११२, ११६, १२५, १३३ एवं १३७

३-- डा० इन्द्रनाथ मदान: प्रेमचन्द: एक विवेचन, १९६८ (दिल्ली) का दे० क्रमश: पृ० १५, २९, ४३, २१, ६५, ३६, ७०, ९१, ७७ तथा ८५

उपन्यासों का प्रकाशन काल-क्रम `प्रेमा` या `प्रतिज्ञा` (१९०५), `वरदान` (१९०५ के लगभग), `सेवासदन` (१९१६), `प्रेमाश्रम` (१९२२), `निर्मला` (१९२३), `रंगभूमि` (१९२५), `कायाकल्प` (१९२८), `गबन` (१९३१), `कर्मभूमि` (१९३२), `गोदान` (१९३६), तथा मंगलसूत्र अधूरा मानते हैं।[1] आचार्य नन्द दुलारे वाजपेई ने भी प्रेमचन्द के कुछ उपन्यासों के प्रकाशन काल और कुछ के रचनाकाल का उल्लेख किया है। उनके अनुसार विभिन्न उपन्यासों का प्रकाशन अथवा रचनाकाल `प्रतिज्ञा` (१९०५-६), `सेवासदन` (१९१६), `प्रेमाश्रम` (१९२२-२३), `निर्मला` (१९२२-२३), `रंगभूमि` (१९२४-२५), `कायाकल्प` (१९२८), `गबन` (रचनाकाल १९३१), `कर्मभूमि (१९३२), `गोदान` (१९३६) हैं।[2] राजेश्वर गुरु ने प्रेमचन्द-साहित्य का विश्लेषण करते हुए उसका विकास क्रम दिखलाने का प्रयास किया है। प्रेमचन्द के उपन्यासों के रचनाकाल अथवा प्रकाशनकाल के सम्बन्ध में जहां उन्होंने स्पष्ट उल्लेख किया है वे इस प्रकार हैं - `सेवासदन` (१९१६ में हिन्दी पाठकों का ध्यान आकर्षित किया), `प्रेमाश्रम` (१९२१-२२ के पहले लिखा गया), `प्रतिज्ञा` (१९०४ एवं १९०७), `निर्मला` (१९२४), `रंगभूमि` (रंगभूमि के कथानक के सम्बन्ध में १९२४ में गंभीरता से सोचने लगे थे), `कायाकल्प` (१९२८), तथा `कर्मभूमि` (१९३२)।[3] उन्होंने वरदान, गबन और गोदान के सम्बन्ध में तिथि का उल्लेख नहीं किया। `सेवासदन` और `रंगभूमि` के सम्बन्ध में भी वे कोई स्पष्ट मत नहीं दे पाए हैं। ऐसा लगता है राजेश्वर गुरु जहां विवाद देखते हैं वहां से उलझनेअस्पष्ट मत देने के स्थान पर चुपचाप कट जाना चाहते हैं।

पत्रिका `आजकल` के आधार पर प्रेमचन्द की जीवन रेखाओं पर प्रकाश डालती हुई शचीरानी गुर्टू प्रेमचन्द की चार रचनाओं की तिथियों का उल्लेख करती हैं। उनके अनुसार `बाजारे हुस्न` के अनुवाद `सेवासदन` का प्रकाशन काल (१९१६), `रंगभूमि` (सन् १९२४ में लखनऊ में `रंगभूमि` का प्रकाशन काल आरम्भ हो चुका था), `गबन`

- -

१-- मन्मथ नाथ गुप्त: `प्रेमचन्द: व्यक्तित्व और साहित्यकार`, १९६१ (वाराणसी, इलाहाबाद) पृ० १४०

२-- नन्द दुलारे वाजपेई: `प्रेमचन्द: साहित्यिक विवेचन` १९५६ (इलाहाबाद और जालन्धर) दे० क्रमश: पृ० १९६, २२, ४२, १६७, ६७, ६०, १२०, १०२ तथा १११

३-- राजेश्वर गुरु: प्रेमचन्द: एक अध्ययन; १९६७ (दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता) दे० क्रमश: पृ० १२८, १९५, १६६, २००, १६७ तथा २२१

(१६३० में लिखा जा रहा था), तथा `गोदान` (१६३६), में प्रकाशित हुआ ।[१] सर्वाधिक भ्रामक स्थिति इसी पुस्तक में प्रकाशित मुंशी दया नारायण निगम के लेख `प्रेमचन्द की बातें` लेख के `प्रेमचन्द की कुछ रचनाएं, अंश को पढ़कर उत्पन्न होती है। साहित्यिक जीवन में प्रेमचन्द जी के अभिन्न साथी मुंशी जी के द्वारा इस अंश में निश्चयात्मक रूप से कुछ भी नहीं कहा गया । वे `हम खुरमा हम सवाब` के प्रकाशन का उल्लेख करते हैं परन्तु रचना-तिथि या प्रकाशन-तिथि नहीं दे पाते । `प्रतिज्ञा` के सम्बन्ध में उनका कहना है कि हिन्दी में उनका सबसे पहला उपन्यास प्रतिज्ञा है जो शायद सन् १६०६ में लिखा गया और जिसका उर्दू अनुवाद `बेवा` के नाम से प्रकाशित हुआ है । `सेवासदन` के विषय में उनका कहना है `जब उन्होंने अपना दूसरा हिन्दी उपन्यास `सेवासदन` लिखा तो गंगा पुस्तक एजेन्सी ने उसके प्रथम संस्करण के लिए मकमुस्त साढ़े चार सौ रूपये दिए । शायद सन् १६१४ की बात है ।`निर्मला` को १६२३ में प्रकाशित किया । `रंगभूमि` को चौथा उपन्यास मानते हुए वे लिखते हैं - "शायद सन् १६२६ में आपने अपना चौथा उपन्यास `रंगभूमि` लिखा, जो गंगा पुस्तक माला लखनऊ से प्रकाशित हुआ ।" `कायाकल्प` को वे `रंगभूमि` के बाद की रचना मानते हैं । इसके सम्बन्ध में तिथि का उल्लेख किया नहीं गया । वे `गबन`, `कर्मभूमि` और `गोदान` को क्रमश: १६३१, १६३२ और १६३६ में प्रकाशित मानते हैं ।[२]

रामदीन गुप्त विभिन्न सामग्रियों एवं ग्रंथों के सहारे यह दावा करते हैं कि नवीनतम शोध के आधार पर प्रेमचन्द के उपन्यासों का प्रकाशन काल इस प्रकार है - `वरदान` (प्रकाशन तिथि निर्धारित नहीं कर सके) `सेवासदन` (१६१८), `प्रेमाश्रम` (१६२२), `रंगभूमि` (१६२५), `कायाकल्प` (१६२६), `निर्मला` (१६२७), `प्रतिज्ञा` (१६२६), `गबन` (१६३१), `कर्मभूमि` (१६३२), `गोदान` (१६३६) तथा मंगलसूत्र (अपूर्ण)(१६३६)।"[३] इस प्रकार से प्रेमचन्द के कुल दस पूर्ण और एक अधूरे हिन्दी

- -

१-- शचीरानी गुर्टू: जीवन की रेखाएं: आजकल सं० दे० शचीरानी गुर्टू: प्रेमचन्द और गोर्की, १६५५ (दिल्ली) पृ० ४ और ५

२-- मुंशी दया नारायण निगम: `प्रेमचन्द की बातें: दे० शची रानी गुर्टू: प्रेमचन्द और गोर्की, १६५५ (दिल्ली) पृ० १४ एवं १५

३-- रामदीन गुप्त: `प्रेमचन्द और गांधीवाद`, १६६१ (पटना, दिल्ली) पृ० १३६-१४०

उपन्यास की तिथि-निर्धारण हिन्दी साहित्य संसार और प्रेमचन्द के आलोचक नहीं कर सके। `गबन`, `कर्मभूमि`, `गोदान` तथा `मंगलसूत्र` (अधूरे) के सम्बन्ध में प्रकाशन-तिथि सम्बन्धी मतभेद नहीं है। केवल वाजपेई जी ने `कर्मभूमि` का रचनाकाल १९३२-३३ माना है और प्रकाशन-काल १९३२। उन्होंने अपनी पुस्तक के पृ० १९ पर लिखा है - `कर्मभूमि` उपन्यास १९३२-३३ के लगभग लिखा गया। और पृ० १०३ पर लिखते हैं - `कर्मभूमि` का प्रकाशन काल १९३२ में हुआ था।[1] रचना के पहले प्रकाशन की बात समझ में नहीं आती। परन्तु उनका `लगभग` शब्द पूरी तौर से तो नहीं परन्तु अंशत: उनकी रक्षा करता हुआ प्रतीत होता है। प्रेमचन्द के शेष उपन्यासों `वरदान`, `प्रतिज्ञा`, `सेवासदन`, `प्रेमाश्रम`, `रंगभूमि`, `कायाकल्प`, एवं निर्मला के सम्बन्ध में प्रकाशन-काल और किन्हीं किन्हीं में रचना-काल में विभिन्न तिथियों का उल्लेख है। इनके सम्बन्ध में अपनी क्षमतानुसार तिथियों पर विचार करना अनिवार्य है।

प्रेमचन्द ने १३ वर्ष की अवस्था में ही लिखना प्रारम्भ कर दिया था। जैसा कि उनकी `मेरी पहली रचना` कहानी से स्पष्ट होता है। उन्होंने अपने मामू को चिढ़ाने के लिए एक सत्य घटना चमारिन से उनके प्रेम और चमारों द्वारा उनकी पिटाई आदि का हाल नाटक के रूप में लिखा था जिसे वे मामू के सिरहाने रखकर स्कूल चले गए।[2] उस रचना के सम्बन्ध में वे लिखते हैं "मेरी वह पहली रचना कहीं न मिली। मालूम नहीं, मामू साहब ने उसे चिरागअली के सुपुर्द कर दिया था या अपने साथ स्वर्ग ले गए।"[3] प्रेमचन्द ने १९०१ ई० में अपना साहित्यिक जीवन प्रारम्भ करने का उल्लेख करते हुए २७ जुलाई १९२६ ई० को मुंशी दया नारायण निगम के नाम अपने पत्र में लिखते हैं - "सन् १९०१ ई० से लिटरेरी जिन्दगी शुरू की। रिसाला ज़माना में लिखता रहा। कई साल तक मुतफर्रिक मजामीन लिखे। सन् १९०४ में एक हिन्दी नाविल प्रेमा लिखकर इण्डियन प्रेस से शाया कराया। सन् १२ में `जल्वए ईसार` और सन् १८ में `बाजारे हुस्न` लिखा। हिन्दी में `सेवासदन`, `प्रेमाश्रम`, `रंगभूमि`,

- -

१-- नन्द दुलारे वाजपेई: "प्रेमचन्द: `साहित्यिक विवेचन` १९५६ (इलाहाबाद और जालन्धर) से० पृ० १९ और १०३

२-- प्रेमचन्द: "मेरी पहली रचना" से० `कफन` १९५१ (इलाहाबाद) पृ० ५४

३-- प्रेमचन्द: "मेरी पहली रचना" से० `कफन` १९५१ (इलाहाबाद) पृ० ५४

`कायाकल्प`, चारों नाविल दो-दो साल के वक्फ़े बाद निकले ।"[1] प्रेमचन्द के पत्र का यह अंश दो रूपों में अत्यधिक महत्वपूर्ण है । प्रथम तो यह उनके साहित्यिक जीवन के प्रारम्भिक अवस्था को प्रमाणित करता है दूसरा `रंगभूमि` और `कायाकल्प` के १६२६ के बाद के प्रकाशन-काल और रचनाकाल की मान्यताओं और धारणाओं को निर्मूल कर देता है । हम ऐसा स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं कि प्रेमचन्द जी ने १६२६ ई० में `रंगभूमि` और `कायाकल्प` के अस्तित्व को झूठ-मूठ लिख दिया है । अत: हंसराज रहबर की `रंगभूमि` के रचनाकाल के सम्बन्ध में २७-२८ की धारणा, तथा मुंशी दया नारायण निगम की १६२६ में `रंगभूमि` रच जाने की संभावना सही नहीं प्रतीत होती । `कायाकल्प` के सम्बन्ध में मन्मथ नाथ गुप्त, नन्द दुलारे वाजपेई तथा राजेश्वर गुरु की १६२८ ई० में प्रकाशन की धारणा सत्य के निकट नहीं है । ऐसा लगता है कि इन उपन्यासों के सम्बन्ध में जो तिथि सम्बन्धी धारणा बनाई गई है वह उनके उर्दू रूपान्तरों के प्रकाशन के आधार पर बनाई गई है । `रंगभूमि` के सम्बन्ध में अमृतराय लिखते हैं - "१ अक्टूबर सन् २२ को लिखना शुरू हुआ और १ अप्रैल सन् २४ को `रंगभूमि` का उर्दू मसौदा, 'चौगाने हस्ती' के नाम से खत्म हुआ ।"[2] प्रेमचन्द का यह अंतिम उपन्यास था जिसका मसौदा प्रेमचन्द ने पहले उर्दू में लिखा था । मदन गोपाल इस सम्बन्ध में लिखते हैं - "रंगभूमि भी प्रेमचन्द के `सेवासदन` तथा `प्रेमाश्रम` की भांति पहले उर्दू में ही लिखा गया । इसकी मूल उर्दू पाण्डुलिपि पर आरम्भ की तारीख १ अक्टूबर १६२२ लिखी है और यह खत्म हुआ १ अप्रैल १६२४ को । पहले दो उपन्यासों की भांति यह लिखा गया तो पहले उर्दू में, परन्तु छपा पहले हिन्दी में । इस सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि पहले उर्दू में लिखे जाने वाला प्रेमचन्द जी का यह आखिरी उपन्यास था ।"[3] मदन गोपाल के इस कथन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि रंगभूमि पहले हिन्दी में छपा और उसका उर्दू रूपान्तर `चौगाने हस्ती` बाद को छपा । संभवत: यह २८-२६ में छपा होगा जिसके आधार पर `रंगभूमि` को २८-२६ की रचना माना गया होगा । अमृतराय `रंगभूमि` का प्रकाशन काल १६२५

- -

१-- चिट्ठी पत्री, भाग १, १६६२ प्रथम संस्करण, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद पृ० १६२

२-- अमृतराय: `कलम का सिपाही: प्रेमचन्द`, १६६२, प्रथम संस्करण, इलाहाबाद पृ० ३२२

३-- मदन गोपाल: `कलम का मजदूर प्रेमचन्द`, १६६५ प्रथम संस्करण, दिल्ली पृ० १५७

मानते हैं। उन्होंने लिखा है - "सितम्बर २४ को (लखनऊ) पहुंचे, नवम्बर में 'कर्बला' निकल गई। जनवरी आते आते 'रंगभूमि' निकल आयी।"[१] 'कायाकल्प' के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है - "सितम्बर २४ से सितम्बर २५ तक के एक साल में मुंशी जी ने न सिर्फ 'अधूरे' कायाकल्प को खत्म कर लिया था बल्कि रामचन्द्र टण्डन के कहने पर, उन्हीं की प्रति लेकर अनातोल फ्रांस की अमर कृति 'थायस' का हिन्दी रूपान्तर भी कर डाला।"[२] 'कायाकल्प' के सम्बन्ध में मदन गोपाल ने लिखा है - "जिस समय प्रेमचन्द लखनऊ से बनारस लौटे, 'कायाकल्प' नामक उनका चौथा वृहद उपन्यास लगभग तैयार ही था। इस उपन्यास को प्रेमचन्द ने मूलतः हिन्दी ही में लिखा था और उसकी पाण्डुलिपि से पता चलता है कि यह १० अप्रैल, १९२४ को आरम्भ किया गया था और अगले सात महीनों में इसका पहला भाग खत्म हुआ। दूसरा भाग १२ नवम्बर १९२४ को शुरू किया गया। बनारस आते ही 'कायाकल्प' के छपवाने का काम शुरू हुआ। यह सरस्वती प्रेस में ही छपा।[३] आगे उन्होंने लिखा है - "कायाकल्प १९२६ में छपकर तैयार हो गया।"[४] इस प्रकार से स्पष्ट है कि हिन्दी उपन्यास 'रंगभूमि' का प्रकाशन-काल (१९२५) तथा कायाकल्प का (१९२६) ही है।

प्रेमचन्द के उपन्यास 'प्रतिज्ञा' के सम्बन्ध में सूत्र साफ है। सर्व प्रथम १९००-१९०१ ई० के आस पास उर्दू में 'हम खुर्मा व हम सवाब' लिखा गया जिसका हिन्दी स्वरूप 'प्रेमा' १९०४ में लिखा गया और १९०७ में इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद से 'प्रेमा' अर्थात 'दो सखियों का विवाह' नाम से प्रकाशित हुआ।[५] यही आगे चलकर १९२९ ई० में 'प्रतिज्ञा' के रूप में प्रकाश में आया। 'प्रतिज्ञा' के सम्बन्ध में राजेश्वर गुरु और हंसराज रहबर प्रकाशन-काल १९२७ ई० मानते हैं। सही स्थिति यह है प्रतिज्ञा जनवरी १९२७ ई० से धारावाही के रूप में प्रकाशित होना आरम्भ हुआ था

- -

१— अमृतराय: 'कलम का सिपाही: प्रेमचन्द, १९६२ (इलाहाबाद) पृ० ३५७

२— अमृतराय: 'कलम का सिपाही: प्रेमचन्द, १९६२ (इलाहाबाद) पृ० ३५२

३— मदन गोपाल: 'कलम का मजदूर' प्रेमचन्द, १९६५ (दिल्ली) पृ० १६८

४— मदन गोपाल: 'कलम का मजदूर' प्रेमचन्द, १९६५ (दिल्ली) पृ० १६९

५— मदन गोपाल: 'कलम का मजदूर' प्रेमचन्द, १९६५ (दिल्ली) के पृ० २०० से २००१ के बीच १९०७ में प्रकाशित प्रेमा के मुखपृष्ठ के अनुचित्र में यह विवरण है।

बाद को यह सरस्वती प्रेस से प्रकाशित हुआ ।[१] पुस्तकाकार रूप उसे १६२६ ई० में ही मिला ।

प्रेमचन्द के उपन्यास `वरदान` को `राजेश्वर गुरू` - `रूठी रानी` के बाद और `प्रतिज्ञा` के पहले की रचना मानते हैं । उन्होंने लिखा है - `वरदान` `रूठी रानी` के बाद और `प्रतिज्ञा` के पहले की कृति जान पड़ती है ।"[२] प्रेमचन्द का उर्दू उपन्यास `जल्वए ईसार` (१६१२), ई० में प्रकाशित हुआ था । अमृतराय इस सम्बन्ध में लिखते हैं - `जल्वए ईसार` जो करीब दस साल बाद `वरदान` के नाम से हिन्दी में छपा ।`[३] उपन्यासों के काल निर्देश में वे वरदान को १६२१ में ग्रंथ-भण्डार से प्रकाशित मानते हैं ।[४] `वरदान` का रचना काल हंसराज रहबर (१६०५-६), मन्मथ नाथ गुप्त (१६०५ के लगभग) मानते हैं, जबकि इन्द्रनाथ मदान उसका प्रकाशन (१६२१) मानते हैं । अमृतराय के मंगलाचरण की भूमिका में प्रेमचन्द ने भी `प्रतापचन्द` नाम की रचना का उल्लेख किया है । उनका मन्तव्य है "अगर इस नाम की कोई किताब मुंशी जी ने सचमुच लिखी है तो वह शायद `जल्वए ईसार` या `वरदान` का कोई आरम्भिक रूप हो ।"[५] `जल्वए ईसार` और `वरदान` का नायक प्रतापचन्द ही है । निश्चित रूप से मुंशी जी ने `प्रतापचन्द` नाम की कोई रचना लिखी थी जो अप्राप्य है और जिसका उल्लेख जगेश्वर नाथ `बेताब` बरेली ने किया है । यह वह सूत्र है जिसके आधार पर `वरदान` का रचना-काल (१६०५-६) माना गया है । प्रेमचन्द ने `प्रेमा` को भी बीस वर्ष के बाद `प्रतिज्ञा` के रूप में लिखा था ।

प्रेमचन्द के उपन्यास `सेवासदन` और `प्रेमाश्रम` के प्रकाशन काल में भी विद्वानों का मतभेद है । `सेवासदन` के प्रकाशन-काल के तीन सन् दिए गए हैं १६१६, १६१८ तथा १६१६ ई० । इसी प्रकार `प्रेमाश्रम` के लिए विभिन्न आलोचकों द्वारा सन् १६२१, १६२२ तथा १६२३ ई० स्वीकार किया गया है । प्रेमचन्द ने १६ फरवरी १६२२ के एक

- -

१-- मदन गोपाल: `कलम का मजदूर` प्रेमचन्द, १६६५ (दिल्ली) पृ० १८६

२-- राजेश्वर गुरु: `प्रेमचन्द एक अध्ययन` १६६७ (दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता) पृ० १३३

३-- अमृतराय: `कलम का सिपाही: प्रेमचन्द`, १६६२ (इलाहाबाद) पृ० ४००

४-- अमृतराय: `कलम का सिपाही: प्रेमचन्द`, १६६२ (इलाहाबाद) पृ० ६५५

५-- अमृतराय: "मंगलाचरण की भूमिका" १६६२ (इलाहाबाद) पृ० १०

पत्र में इम्तियाज़ अली 'ताज' को लिखा था - "मेरा हिन्दी नाविल खत्म हो गया। अब उर्दू काम जल्द होगा। जब तक 'बाज़ारे हुस्न' प्रेस से निकलेगा, शायद नये नाविल का हिस्साए अव्वल आप की खिदमत में हाजिर हो जाये।"[१] निश्चित रूप से यह हिन्दी नाविल 'प्रेमाश्रम' ही था। अतः डा० मदान द्वारा 'प्रेमाश्रम' की १९२१ प्रकाशन-तिथि लिखा जाना सही नहीं है। 'प्रेमाश्रम' के विषय में अमृतराय ने लिखा है - "बाज़ारे हुस्न' खत्म होने के तीन महीने के भीतर २ मई १९१८ को मुंशी जी ने 'प्रेमाश्रम' मूल उर्दू रूप 'गोशए आफियत' पर काम शुरू कर दिया।"[२] तथा "२५ फरवरी १९२० को मुंशी जी ने उर्दू 'प्रेमाश्रम' का लिखना समाप्त किया।"[३] इसके बाद ही 'प्रेमाश्रम' का हिन्दी स्वरूप लिखा गया। अमृतराय 'प्रेमाश्रम' का प्रकाशन-काल १९२१ का पूर्वार्द्ध मानते हैं। परन्तु यह समय सत्य नहीं हो सकता है। क्योंकि हिन्दी अनुवाद में समय लगा होगा और ताज़ के नाम लिखे गए पत्र में १९२२ तक हिन्दी नाविल खत्म होने की बात कही गयी है।[४] मदन गोपाल मई १९२१ की चर्चा करते हुए लिखते हैं कि 'प्रेमाश्रम' (गोशा-ए-आफियत का हिन्दी अनुवाद) पर काम जारी था।[५] 'प्रेमाश्रम' के सम्बन्ध में १ अक्टूबर १९२२ को दया नारायण निगम को लिखा था - "आपको यह सुनकर खुशी होगी कि 'प्रेमाश्रम' की १२०० जिल्दें निकल गयी। अब दूसरे एडीशन की तैयारी है।"[६] इस आधार पर 'प्रेमाश्रम' का प्रकाशन-काल १९२२ का पूर्वार्द्ध माना जाना चाहिए।

'ताज' को लिखे गए १६ फरवरी १९२२ के पत्र में 'बाज़ारे हुस्न' के प्रकाशन की संभावना का उल्लेख किया गया है। मदन गोपाल 'बाज़ारे हुस्न' के प्रकाशन से ४ वर्ष पूर्व इसके हिन्दी रूपांतर सेवासदन के हिन्दी एजेन्सी द्वारा छपने की बात लिखते हैं। उन्होंने लिखा है - "इसी प्रकाशन संस्था ने प्रेमचन्द का एक उपन्यास भी प्रकाशित किया। यह उपन्यास पहले उर्दू में लिखा गया। इसका मूल नाम था 'बाज़ारे हुस्न' परन्तु इसका हिन्दी रूपांतर 'सेवासदन' उर्दू संस्करण से चार वर्ष पहले छपा।"[७]

- -

१-- चिट्ठी पत्री, भाग २, १९६२ हंस प्रकाशन (इलाहाबाद) पृ० १२५

२-- अमृतराय: 'कलम का सिपाही' १९६२ (इलाहाबाद) पृ० २०३

३-- अमृतराय: 'कलम का सिपाही' १९६२ (इलाहाबाद) पृ० २२८

४-- अमृतराय: 'कलम का सिपाही' १९६२ (इलाहाबाद) पृ० ६५४

५-- मदन गोपाल: 'कलम का मजदूर' १९६५ (दिल्ली) पृ० १२९

६-- चिट्ठी पत्री, भाग १, १९६२, (इलाहाबाद) पृ० १२७ (शेष अगले पृष्ठ पर)

इसके आधार पर `सेवासदन` को १६१८ में छपना चाहिए। अमृतराय ने इस सम्बन्ध में लिखा है - "छपाई में लगभग साल भर समय लेकर `सेवासदन` १६१६ के मध्य में प्रकाशित हुआ।"[१] यदि दोनों को सत्य माना जाय तो यह निष्कर्ष निकलता है कि `सेवासदन` का प्रकाशन १६१८ ई० में प्रारम्भ होकर १६१६ ई० में समाप्त हुआ। अत: इसका प्रकाशन-काल १६१८-१६ माना जाना चाहिए। जैसा कि हम देख चुके हैं मुंशी दया नारायण निगम के `बाजारे हुस्न` के सम्बन्ध में १६१४ के दरम्यान चर्चा की है। यह संभावना हो सकती है कि `जल्वए ईसार` (१६१२) के प्रकाशित होने के बाद प्रेमचन्द `बाजारे हुस्न` के लिखने की बात सोचने लगे हों जो १६१७ तक उर्दू में लिखा जाकर तथा इसके बाद हिन्दी में पूरा होकर १६१८-१६ में प्रकाशित हो सका।

तिथि निर्धारण के सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी का एक उपन्यास `निर्मला` रह जाता है। हंसराज रहबर इसका रचनाकाल (१६२२-२३), डा० इन्द्रनाथ मदान प्रकाशन काल (१६२५-२६), मन्मथ नाथ गुप्त (१६२३) नन्द दुलारे बाजपेई (१६२२-२३), राजेश्वर गुरु (१६२४) मानते हैं। मुंशी दया नारायण निगम इसे १६२३ में इलाहाबाद के चांद प्रेस से प्रकाशित मानते हैं। १६२३ ई० में प्रेमचन्द की `आभूषण` कहानी `माधुरी` में छपी थी जिसको पढ़कर चांद के सम्पादक सहगल ने मुंशी जी को इस तरह की कहानियां चांद में छापने का आग्रह किया था। मुंशी जी इसके बाद से `चांद` में इस तरह की कहानियां लिखते रहे। संभवत: लोगों को इसी आधार पर भ्रम हुआ और लोग `निर्मला` के रचना और प्रकाशन को १६२२ से लगातार १६२७ तक मानते हैं। `निर्मला` के रचना-काल का विशेष उल्लेख कहीं नहीं है। प्रकाशन के सम्बन्ध में अवश्य अमृतराय लिखते हैं - "पहली सितम्बर को (मुंशी जी) बनारस पहुंचे और नवम्बर के महीने से `निर्मला` क्रमश: `चांद` में निकलने लगी। साल भर बाद `चांद` प्रेस से पहली बार १६२७ के आरम्भ में वह पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुई।"[२] निगम साहब और अमृतराय दोनों `चांद` में धारावाहिक रूप से प्रकाशन को मानते हैं परन्तु तिथियों में १६२३ और १६२५ का भेद है। निगम साहब निश्चयात्मकता से तिथियों का निर्धारण नहीं कर सके। अत: अमृतराय की बात मानना तर्क संगत है। पुस्तक के

- -

७-- मदन गोपाल: `कलम का मजदूर` १६६५ (दिल्ली) पृ० ६३

१-- अमृतराय: `कलम का सिपाही` १६६२ (इलाहाबाद) पृ० १६३

२-- अमृतराय: `कलम का सिपाही` १६६२ (इलाहाबाद) पृ० ३६०

रूप में इसका प्रकाशन-काल १६२७ ई० है। इसका रचना-काल १६२३ से १६२५ के मध्य कभी भी हो सकता है। प्रेमचन्द के "किशना" नाम के एक अन्य उपन्यास का उल्लेख है परन्तु वह 'प्रतापचन्द' की तरह अप्राप्य है। प्रेमचन्द जी ने 'हम खुर्मा व हम सवाब' के साथ इसका उल्लेख किया है। उन्होंने २६ जनवरी १६२१ ई० को ताज़ के नाम लिखे पत्र में लिखा था - "हम खुरमा - वो हम" सवाब व 'किश्ना' वगैरह मेरी इब्तदाई तसानीफ हैं। पहली किताब तो लखनऊ के नवल प्रेस ने छापा की थी दूसरी किताब बनारस के मैडिकल हाल प्रेस ने। यह गालिबन उन्नीस सौ भी तसानीफ हैं। मेरे पास इनमें से एक जिल्द भी नहीं और न शायद पब्लिशरों के यहां निकल सकें।"[१] 'किशना' का तो पता अभी तक नहीं लग सका परन्तु अमृतराय ने 'हम खुरमा - वो - हम सवाब' को खोज निकाला। "असरारे मआबिद" (देवस्थान रहस्य) और 'रूठी रानी' नाम की रचनाएं भी अमृतराय को प्राप्त हुई हैं। 'असरारे मआबिद' (देवस्थान रहस्य अनूदित) की "आवाज़ए खल्क" में पहली किस्त २ अक्टूबर १६०३ के अंक में छपी थी। 'रूठी रानी' नाम का बड़ा किस्सा अप्रैल १६०७ से लेकर अगस्त १६०७ तक 'ज़माना' में प्रकाशित हुआ था। 'हम खुरमा वो हम सवाब' का प्रकाशन-काल अमृतराय १६०६ का मध्य भाग मानते हैं।[२] यथाशक्ति सम्बन्धी उपर्युक्त विवेचना के बाद प्रेमचन्द की इन कृतियों की तिथि सम्बन्धी निष्कर्ष का क्रमश: उल्लेख करना आवश्यक है।

नीचे दी गई तालिका में उपन्यासों के हिन्दी और उर्दू रूपों के साथ उनके रचना-काल और हिन्दी में प्रकाशन का भी उल्लेख किया गया है। उर्दू रूपों के उल्लेख के साथ कोष्ठक में जो सन् का उल्लेख किया गया है वह उर्दू में उनके प्रकाशन तिथि का संकेत करता है। जिनमें प्रकाशन तिथि का उल्लेख नहीं है वे हिन्दी में प्रकाशन के बाद दो-तीन वर्षों के अंतर में उर्दू में प्रकाशित हुए हैं।

- -

१-- चिट्ठी-पत्री, भाग २, १६६२ (इलाहाबाद) पृ० १२६

२-- अमृतराय (सं) 'मंगलचरण' १६६२ (इलाहाबाद) की दे० भूमिका पृ० ७-१०

हिन्दी रूप	उर्दू रूप	रचना-काल	हिन्दी स्वरूप का प्रकाशन-काल
--	किशना	१६०० ई० अथवा १६०१ ई०	अप्राप्य
हम खुरमा व हम सवाब (प्रेमा)	हम खुरमा व हम सवाब (१६०६)	१६०० ई० अथवा १६०१ ई०	१६६२ ई० (मंगलाचरण में)
असरारे मआबिद उर्फ देव स्थान रहस्य (अनु०)	असरारे मआबिद उर्फ देवस्थान रहस्य	१६०३ ई०	१६६२ ई० (मंगलाचरण में)
प्रेमा (प्रतिज्ञा)	बेवा (अनु०)	१६०४ ई०	१६०७ ई० तथा १६२६ ई० (प्रेमा मंगलाचरण में १६६२ में)
`रूठी रानी` (अनु०)	रूठी रानी (१६०७)	१६०७ ई० के पूर्व	१६६२ ई० (मंगलाचरण में)
`प्रतापचन्द` (वरदान)	जल्वए ईसार(१६१२)	१६०५-६ ई०	१६२१ ई०
`सेवासदन`	बाजारे-हुस्न(१६२२)	१६१४-१८ ई०	१६१८-१६ ई०
`प्रेमाश्रम`	गोशए आफियत	१६१८-२२ ई०	१६२२ ई०
`रंगभूमि`	चौगाने-हस्ती	१६२२-२४ ई०	१६२५ ई०
`कायाकल्प`	पर्दए-मजाज़	१६२४-२६ ई०	१६२६ ई०
`निर्मला`	--	१६२३-२५ के मध्य कभी	१६२७ ई० (पुस्तकाकार)
`गबन`	--	१६३०-३१ ई०	१६३१ ई०
`कर्मभूमि`	मैदाने अमल	१६३१-३२ ई०	१६३२ ई०
`गोदान`	गऊदान	१६३२-३६ ई०	१६३६ ई०
`मंगलसूत्र`	--	१६३६ ई०	१६४८ ई०

जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है `किशना` अप्राप्य है। `हम खुरमा व हम सवाब` `प्रेमा या दो सखियों का विवाह` का प्रारम्भिक उर्दू रूप है। वही प्रेमा आगे चलकर `प्रतिज्ञा` के रूप में आया। `हम खुरमा व हम सवाब`, `प्रेमा` और `प्रतिज्ञा` के कथानक में साम्य है। थोड़ा सा अंतर है वह यह कि `हम खुरमा व हम सवाब` में कम्मन लाल और गुलजारी लाल ऐसे कुछ अधिक पात्र है और इस उपन्यास में

विधवा पूर्णा और अमृतराय का विवाह सम्पन्न हो जाता है। `प्रेमा` में भी `हम खुरमा व हम सवाब` की भांति दाननाथ, प्रेमा, अमृतराय, पूर्णा, बदरी प्रसाद, कमला प्रसाद आदि के साथ दोनों पात्र हैं और इसमें भी पूर्णा और अमृतराय का विवाह हो जाता है। इन उपन्यासों में विवाह के समय शहर में हंगामें की भी संभावना है। इनका `प्रतिज्ञा` रूप अधिक सुव्यवस्थित है। इसमें झम्मन लाल और गुलजारी लाल ऐसे पात्रों का अस्तित्व नहीं है। `हम खुरमा व हम सवाब` के पंडित भृगुदत्त, सेठ धूनीमल, पंडा महाराज, जोरावर सिंह आदि पात्र भी `प्रतिज्ञा` में नहीं है। `प्रतिज्ञा` उपन्यास में अमृतराय और पूर्णा का विवाह न होकर अमृतराय विधुर रहने की प्रतिज्ञा करते हैं और विधवाश्रम की स्थापना करके नारियों का उपकार करना चाहते हैं। समाज की विधवा समस्या को इस उपन्यास का आधार बनाया गया है। `असरारे मआबिद उर्फ देवस्थान रहस्य` उपन्यास में मठों और पंडों और महन्तों के ढोंग उनके व्यभिचार, वेश्यागामी प्रवृत्ति तथा विलासी जीवन का मखौल बनाया गया है। `रूठी रानी` ऐसे लम्बे बड़े किस्से में राजाओं की विलासिता, बहुविवाह आदि का उल्लेख है। प्रेमचन्द का `वरदान` उपन्यास राष्ट्रीय धरातल पर लिखा गया उपन्यास है जिसमें प्रतापचन्द या बालाजी का चरित्र इसी आधार पर निर्मित किया गया है। प्रेमचन्द का `सेवासदन` उपन्यास वेश्या समस्या को लेकर चलता है यह एक सामाजिक उपन्यास है। उनका उपन्यास `निर्मला` भारतीय समाज में स्त्री की दयनीय स्त्री की उद्घोषणा करता है। यह अनमेल विवाह की समस्या लेकर चलने वाला पारिवारिक धरातल पर लिखा गया सामाजिक उपन्यास है। `गबन` उपन्यास का पूर्वार्द्ध सामाजिक धरातल पर लिखा गया है जिसमें मध्य वर्ग की कहानी कहने के साथ आभूषण की समस्या को उठाया गया है। इस उपन्यास का उत्तरार्द्ध क्रांतिकारियों की कहानी के साथ उन्हें फंसाने के लिए पुलिस के हथकण्डों की कहानी भी कहता है।

प्रेमचन्द जी के `प्रेमाश्रम`, `रंगभूमि`, `कायाकल्प`, `कर्मभूमि` उपन्यास राष्ट्रीय धरातल पर लिखे गए उपन्यास हैं। `प्रेमाश्रम` में किसान जीवन के साथ उनकी जागृति और अपने अस्तित्व के लिए सामन्तों और सरकार की शक्ति से संघर्ष की कथा है। `रंगभूमि` उपन्यास में औद्योगीकरण की समस्या को उठाने के साथ प्रेमचन्द ने उसका विरोध सांस्कृतिक धरातल पर किया है। `कायाकल्प` उपन्यास में जहां एक ओर कारों का विद्रोह और सरकार तथा सामन्तों द्वारा उसका दमन राष्ट्रीय धरातल का संकेत करता है। वहीं चक्रधर का अहल्या से विवाह, चक्रधर और शंखधर

की ग्रामीणों की सेवा उसकी सामाजिकता को सिद्ध करती है । `कर्मभूमि' उपन्यास में राष्ट्रीय संघर्ष के साथ अछूत ऐसे सामाजिक तथा लगान और आवास ऐसे आर्थिक प्रश्नों को राष्ट्रीय धरातल पर उठाया गया है । इन उपन्यासों में राष्ट्रीयता के साथ प्रेमचन्द की सामाजिकता का कहीं भी लोप नहीं हुआ है । राष्ट्रीय चेतना के साथ ही उनकी सामाजिक दृष्टि और सामाजिक चेतना में अंतर नहीं आ पाता । उनका उपन्यास `गोदान' उनके सम्पूर्ण उपन्यासों में सर्वाधिक यथार्थवादी रचना है । इसमें शहर और ग्रामीण जीवन से कथानक लिए गए हैं । ग्रामीण जीवन का कथानक होरी के माध्यम से जहां किसान जीवन के यथार्थ को प्रकट करता है वहीं ग्रामीण जीवन में कर्ज की समस्या के विकृत रूप को भी प्रस्तुत करता है । शहर जीवन का कथानक स्वच्छंदता की कहानी के साथ स्वार्थ, धनलोलुपता, व्यापार के लिए व्यापार औद्योगिक शोषण और विलासी जीवन तथा पारिवारिक मूल्यों के विघटन की भी कहानी कहता है । उनके अधूरे उपन्यास `मंगलसूत्र' में साहित्यकार के जीवन की व्यथाओं के साथ प्रकाशकों के शोषण की कहानी भी कहे जाने का संकेत है । काश कि उनका यह उपन्यास पूरा हो पाता और वे अपने सम्पूर्ण जीवन के लेखन और प्रकाशन की कहानी कह पाते जिससे लेखकों के जीवन के संकट और प्रकाशकों के शोषण का इतिहास लिखने में साहित्यकारों को सहायता मिल पाती । प्रेमचन्द-साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन में इन उपन्यासों से यथावसर सहायता ली जायगी जिसके साथ ही उनके स्वरूप और कथा की अधिक व्याख्या भी सम्भव हो सकेगी ।

कहानी - साहित्य

उपन्यासकार प्रेमचन्द की भांति कहानीकार प्रेमचन्द का भी हिन्दी साहित्य में एक विशिष्ट स्थान है । उपन्यासकार की भांति कहानीकार के रूप में भी हिन्दी कहानीकारों में हिन्दी कहानी परम्परा का निर्वाह करने, उसे नया मार्ग देने और कहानी को जीवन और यथार्थ के धरातल पर लाने में वे अग्रणी हैं । अमृतराय ने `कलम का सिपाही' पुस्तक के अन्त में उनकी २२४ कहानियों का उल्लेख करते हुए उनके प्रकाशन-काल और प्रकाशित होने वाले पत्रों अथवा संग्रहों की ओर संकेत किया है ।[१] सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि इतने पृष्ठों वाली इस पुस्तक में पत्रों-लेखों का उल्लेख

- -

१— मदन गोपाल: `कलम का मजदूर' १९६५ (दिल्ली) दे० परिशिष्ट २ पृ० ६५७-६६४

बहुत अधिक मात्रा में किया गया है परन्तु प्रेमचन्द के कहानी संग्रहों के प्रकाशन क्रम या प्रकाशन-काल के निर्धारण का प्रयास नहीं किया गया । अमृतराय द्वारा कहानियों की दी गई सूची भी अधूरी है । इसका सबसे बड़ा प्रमाण उन्हीं द्वारा संपादित दो कहानी संग्रहों, गुप्तधन भाग १ तथा गुप्तधन भाग २ की कुछ कहानियां हैं जिनका उल्लेख इस सूची में नहीं है गुप्तधन भाग १ की चार कहानियां - `मनावन` `विजय, `मुबारक बीमारी` तथा `वासना की कड़ियां` तथा गुप्तधन भाग २ की दस कहानियां - `होली की छुट्टी`, `नादान दोस्त`, `प्रतिशोध`, `खुदी`, `राष्ट्र का सेवक`, `कातिल`, `बन्द दरवाजा`, `तिरसूल`, `स्वांग` तथा `कोई दुख न हो तो बकरी खरीद लो` - का उल्लेख अमृतराय द्वारा प्रस्तुत `कलम का सिपाही` की सूची में नहीं है ।[१] अभी तक प्रेमचन्द की कहानियों की एक निश्चित संख्या का निर्धारण नहीं हो सका । उनकी कहानियां विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में बिखरी पड़ी हैं जिनकी खोज का लगातार प्रयत्न आलोचक कर रहे हैं । नन्द दुलारे वाजपेई ने प्रेमचन्द की कहानियों की संख्या का अनुमान लगाते हुए लिखा है - "प्रेमचन्द जी की कहानियां संख्या में तीन सौ के लगभग हैं । इसके अतिरिक्त उनकी उर्दू कहानियों की संख्या भी चार सौ से ऊपर है ।"[२] प्रेमचन्द जी की कहानियों को तीन सौ हिन्दी कहानियों और सौ उर्दू कहानियों में अलग अलग नहीं विभाजित किया जा सकता है क्योंकि उनमें से बहुत सी कहानियां (कुछ को छोड़कर लगभग सब) उर्दू में लिखे जाने के बाद या तो हिन्दी में अनूदित है या लिखी गई हैं अथवा हिन्दी में लिखे जाने के बाद उर्दू में अनूदित अथवा लिखी गई हैं । जो उर्दू कहानियां अब तक मिली हैं और उनका हिन्दी अनुवाद नहीं हुआ उनके हिन्दी अनुवाद का प्रयास अमृतराय द्वारा किया गया है । प्रेमचन्द के उपन्यासों के साथ ही `निर्मला` और `गबन` को छोड़कर यही स्थिति है । प्रेमचन्द जी की कहानियों के लिए यह कहना कि उर्दू में अलग कहानियां लिखी गई हैं और हिन्दी में अलग, बड़ा कठिन है । इसके लिए अलग से एक शोध प्रबन्ध लिखे जाने की आवश्यकता है ।

- -

१-- `कलम का सिपाही` की सूची और `गुप्तधन` के दोनों भागों की कहानियों को देखकर यह निष्कर्ष निकाला गया है । ये दोनों पुस्तकें उपलब्ध हैं ।

२-- `नन्द दुलारे वाजपेई प्रेमचन्द: `साहित्यिक विवेचन` १९५६ (इलाहाबाद और जालंधर) के अंश `कहानियां` से दे० पृ० १६१

प्रेमचन्द ने लिखने का काम तो १३ वर्ष की अवस्था से ही शुरू कर दिया था जैसा कि उनकी `पहली रचना` से पता चलता है। उपन्यास लिखने का काम उन्होंने १६०० ई० से प्रारम्भ कर दिया था। इस सम्बन्ध में `ताज` को लिखे गए पत्र का संकेत पीछे किया जा चुका है। उन्होंने कहानी कब से लिखना प्रारम्भ किया वह मतभेद का विषय है। हंसराज रहबर इस सम्बन्ध में लिखते हैं - "संसार का सबसे अमूल्य रत्न" जिसे वे अपनी पहली कहानी कहते हैं और जो १६०५ में प्रकाशित हुई थी, रक्त के उस विन्दु को अमूल्य रत्न कहा गया है जो देश-प्रेम में बहाया जाता है।"[1] प्रेमचन्द `जीवन-सार` में लिखते हैं - "मैंने पहले-पहल १६०७ में गल्पें लिखनी शुरू की। डाक्टर रवीन्द्र नाथ की उर्दू गल्पें मैंने अंग्रेजी में पढ़ी थीं और उनका उर्दू अनुवाद उर्दू पत्रिकाओं में छपवाया था। उपन्यास तो मैंने १६०१ ही से लिखना शुरू किया। मेरा एक उपन्यास १६०२ में निकला और दूसरा १६०४ में। लेकिन गल्प १६०७ से पहले मैंने एक भी न लिखी। मेरी पहली कहानी का नाम था `संसार का सबसे अनमोल रत्न`। वह १६०७ में `ज़माना` में छपी। उसके बाद मैंने चार कहानियां और लिखीं। पांच कहानियों का संग्रह `सोजे वतन` के नाम से १६०४ में छपा।"[2] मदन गोपाल ज़माना की फाइलों में इस रचना को नहीं पाते। उन्होंने प्रेमचन्द की द्वारा लिखे गए ऊपर के अंश को उद्धृत करते हुए अपनी टिप्पणी दी है वह इस प्रकार है - "इसी लेख में आगे लिखा है -""मेरी पहली कहानी का नाम था `दुनिया का सबसे अनमोल रत्न`। वह १६०७ में `ज़माना` में छपी। उसके बाद मैंने चार-पांच कहानियां और लिखी।" हैरानी की बात यह है कि दुनिया का सबसे अनमोल रत्न शीर्षक कहानी `ज़माना` की फाइलों में कहीं नज़र नहीं आई। नवाबराय की जो पहली कहानी वहां मिलती है, वह है `इश्के दुनिया और हुब्बे वतन` (अप्रैल १६०८) परन्तु जिन कहानियों की ओर इशारा है वे छपी अवश्य उसी समय। वे कहानियां इस प्रकार हैं - `दुनिया का सबसे अनमोल रत्न`, `शेख मखमूर`, `यही मेरा वतन है`, `सिलाए मातम` तथा `इश्के दुनिया और हुब्बे वतन`,[3] तीन व्यक्तियों की तीन तरह की बातें हैं। इसमें संदेह नहीं कि प्रेमचन्द का `सोजे वतन` कहानी संग्रह १६०६ में प्रकाशित हुआ और वह उनका प्रथम कहानी संग्रह है। प्रेमचन्द ने इसका

- -

१— हंसराज रहबर: प्रेमचन्द: `जीवन और कृतित्व` १६५२ (दिल्ली) पृ० ५०

२— प्रेमचन्द: `जीवन सार` दे० कहानी संग्रह `कफन` १६६१ (इलाहाबाद) पृ० ६३-६४

३— मदन गोपाल: `कलम का मज़दूर` १६६५ (दिल्ली) पृ० ४२

प्रकाशन-काल १६०६ लिखा है। मदन गोपाल के अनुसार इसका पहला विज्ञापन `ज़माना` के अगस्त १६०८ अंक में मिलता है।"[1] यह संभावना है कि प्रकाशन के पूर्व ही इसका विज्ञापन दे दिया गया हो और उसके प्रकाशित होने में अगस्त १६०८ से ५-६ महीने लग गए हों और १६०६ के जनवरी-फरवरी में यह प्रकाशित हो गया हो। उनकी यह रचना देश-प्रेम से ओत-प्रोत थी। हमीरपुर के कलक्टर द्वारा `सोजे वतन` जब्त कर लिया गया था। इसका उल्लेख प्रेमचन्द ने `जीवन-सार` में किया है।

उर्दू की भांति हिन्दी में भी प्रेमचन्द की कहानियों में प्रथम कहानी की रचना के सम्बन्ध में मतभेद है। मदन गोपाल `सप्तसरोज` को प्रेमचन्द का पहला कहानी संग्रह मानते हैं। उनका कहना है कि गोरखपुर के `स्वदेश` साप्ताहिक के संस्थापक श्री दशरथ प्रसाद द्विवेदी तथा `हिन्दी पुस्तक एजेन्सी` के मालिक महावीर प्रसाद पोद्दार ने प्रेमचन्द को पूर्णतया हिन्दी में आने की प्रेरणा दी। मदन गोपाल लिखते हैं - "पोद्दार जी ने भी `सप्त सरोज` नाम से प्रेमचन्द का पहला हिन्दी गल्प संग्रह छापा। यह १६१७ में प्रकाशित हुआ।"[2] इस संग्रह में सात कहानियां `बड़े घर की बेटी`, `सौत`, `सज्जनता का दण्ड`, `पंच परमेश्वर`, `नमक का दरोगा`, `उपदेश और परीक्षा` थीं। इन कहानियों में `सौत`, `सज्जनता का दण्ड`, और `पंच परमेश्वर` १६१५-१६ में इलाहाबाद से प्रकाशित `सरस्वती` पत्रिका में छप चुकी थी। इसके बाद के हिन्दी कहानी संग्रहों में `नवनिधि` और `प्रेम पूर्णिमा` है। प्रो० गीता लाल ने अपने शोधपूर्ण निबन्ध जो `त्रैमासिक साहित्य` जनवरी १६६० में प्रकाशित हुआ था `कहानी संग्रह के प्रकाशन-काल को निर्धारण करने का प्रयास किया है। वह क्रम इस प्रकार है - `सप्त सरोज` (१६१७), `नवनिधि` (१६१८), `प्रेम-पूर्णिमा` (१६२०), `प्रेम-पचीसी` (१६२३), `प्रेम-प्रसून` (१६२४), `प्रेम-प्रमोद` (१६२६), `प्रेम-प्रतिमा` (१६२६), `प्रेम-द्वादशी` (१६२६), `प्रेम तीर्थ` (१६२६), `अग्नि समाधि तथा अन्य कहानियां (१६२६), `पांच फूल` (१६२६), `समर यात्रा तथा ग्यारह अन्य राजनीतिक कहानियां` (१६३०), `प्रेम-पंचमी` (१६३०), `प्रेरणा और अन्य कहानियां (१६३२), `प्रेमचन्द की सर्वश्रेष्ठ कहानियां (१६३३), `मानसरोवर

- -

१— मदन गोपाल : `कलम का मजदूर` १६६५ (दिल्ली) पृ० ७८

२— मदन गोपाल : `कलम का मजदूर` १६६५ (दिल्ली) पृ० ६१

पहला भाग` (१९३६ ई०) है।[१] प्रो० प्रकाश चन्द्र गुप्त ने प्रेमचन्द की कहानियों पर विचार करते समय उनके कुछ कहानी संग्रहों का विकास-क्रम निर्धारित करने का प्रयास किया है। वह विकास-क्रम इस प्रकार है - (१) `सप्त सरोज`, (२) `नवनिधि`, (३) `प्रेम-पूर्णिमा`, (४) `प्रेम-पचीसी`, (५) `प्रेम-प्रतिमा` तथा (६) `मानसरोवर`।[२] प्रकाश चन्द्र गुप्त ने केवल क्रम निर्धारण का प्रयास किया है यहां तक कि प्रकाशन-काल तक का उल्लेख नहीं किया गया। प्रेम-पूर्णिमा की टीका करते हुए वे लिखते हैं - "प्रेम-पूर्णिमा में प्रेमचन्द की कहानी कला में कुछ विकास न हुआ। अधिकतर कहानी सुगठित है और `सप्त सरोज` के पथ पर चली हैं।"[३] मदन गोपाल का कहना है कि `प्रेम-पूर्णिमा` की अनेक कहानियां प्रेम पचीसी (भाग १) उर्दू में प्रकाशित हो चुकी थी। उन्होंने स्पष्ट लिखा है - "नवनिधि के प्रकाशन के थोड़े दिन बाद `प्रेम-पूर्णिमा` नामक एक संग्रह भी निकला। इसमें भी कुछ कहानियां हमीरपुर के समय की थीं और जो `प्रेम-पचीसी` (भाग १) में छप चुकी थीं। ये कहानियां इस प्रकार हैं - (१) `ईश्वरीय न्याय` (२) `शंखनाद` (३) `खून सफेद` (४) `गरीब की हाय` (५) `दो भाई` (६) `बेटी का धन` (७) `धर्म संकट` (८) `दुर्गा का मंदिर` (९) `सेवा मार्ग` (१०) `शिकारी राजकुमार` (११) `बलिदान` (१२) `बोध` (१३) `सचाई का उपहार` (१४) `ज्वालामुखी` और (१५) `महातीर्थ`।[४] स्पष्ट है प्रकाशचन्द्र गुप्त की टीका और उनका काल-क्रम-निर्धारण बिना किसी आधार का है। केवल उन्होंने कुछ संग्रह पढ़कर बिना कहानियों के प्रकाशन तिथि पर विचार किए हुए प्रेमचन्द की कहानी कला पर कलम चला दी है। यह तो वैसे ही है कि जैसे कि कोई आलोचक प्रेमचन्द के `मानसरोवर` भाग १ से लेकर `मानसरोवर` भाग ८ तक कहानियों की आलोचना क्रमानुसार कर दें और इन संग्रहों को कहानी का विकास क्रम मानकर विशेषताएं भी बता दें। प्रो० गीता लाल के द्वारा उल्लिखित कहानी संग्रहों में `प्रेम-पीयूष` और `कफन` कहानी संग्रहों का उल्लेख नहीं है।

- -

१-- रामदीन गुप्त: `प्रेमचन्द और गांधीवाद` १९६१ (पटना, दिल्ली) पृ० २८०-८१

२-- प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त: `प्रेमचन्द कहानीकार` दे० इन्द्रनाथ मदान, प्रेमचन्द; चिन्तन और कला (संस्करण नहीं दिया) प्रयाग पृ० १३७-१४०

३-- प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त: `प्रेमचन्द कहानीकार` दे० इन्द्रनाथ मदान, प्रेमचन्द: चिन्तन और कला (संस्करण नहीं दिया गया) प्रयाग पृ० १४१

४-- मदन गोपाल: `कलम का मजदूर` १९६५ (दिल्ली) पृ० ९२-९३

प्रथम बार कहानी संग्रहों में प्रकाशित कहानियों के अलावा प्रेमचन्द की कहानियां जिन पत्र-पत्रिकाओं में छपती रहीं वे `जमाना`, `सुबहे उम्मीद`, `कहकशां`, `जामिया`, `बहारिस्तान` आदि उर्दू पत्रों के अलावा `सरस्वती`, `माधुरी`, `चन्दन`, `भारतेन्दु`, `चांद`, `विशाल भारत`, `भारत`, `मर्यादा`, `स्वदेश`, `प्रभा`, के साथ प्रेमचन्द द्वारा प्रकाशित पत्र `जागरण` और `हंस` हैं। इस बात की भी संभावना है कि अन्य पत्रों में भी प्रेमचन्द की कहानियां प्रकाशित हुई हों जो अप्राप्य हैं।

प्रेमचन्द का कहानी-साहित्य बहुत लम्बे विस्तार तक फैला हुआ है। प्रेमचन्द ने जीवन के हर क्षेत्र की कहानियां लिखी हैं। उच्चवर्ग के पूंजीपतियों, व्यवसायियों, उद्योगपतियों, मध्यवर्ग के व्यवसायियों तथा छोटे-मोटे दुकानदारों, उच्च वर्ग के अधिकारियों से लेकर निम्न मध्य वर्ग के क्लर्क और निम्न वर्ग के चपरासी, सामन्तवर्गीय राजे-महाराजों, ताल्लुकेदारों से लेकर कारिन्दों, बड़े बड़े भूपतियों से लेकर दलित और शोषित किसानों, खेतिहर और औद्योगिक मजदूरों, धर्म के ठेकेदार पंडितों, महन्तों से लेकर, क्षत्रियों, वैश्यों, अहीरों, दलित वर्ग के अछूतों, रानियों-महारानियों से लेकर अछूत महिलाओं, गरीब विधवाओं का जीवन प्रेमचन्द की कहानियों का विषय है। इनकी कहानियां इतिहास के पन्नों से लेकर आधुनिक समाज के शोषित, दलित, उपेक्षित जीवन से सम्बद्ध हैं जिनमें ऐतिहासिक, राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक चित्रण के साथ साथ मनोवैज्ञानिकता का भी अद्भुत निर्वाह है। नन्द दुलारे वाजपेई प्रेमचन्द की कहानियों का विभाजन `नारी सम्बन्धी`, `ग्राम सम्बन्धी`, `मनोविज्ञान संबन्धी` तथा राजनीति और समाज सम्बन्धी कहानियों में करते हैं।[१] प्रेमचन्द की कहानियों के सम्बन्ध में वाजपेई जी का मन्तव्य है - "उच्च स्तर की निर्माण क्षमता प्रेमचन्द जी की थोड़ी सी कहानियों में पाई जाती है। वे साधारण और व्यापक प्रयोजन की दृष्टि से श्रेष्ठ कलाकार हैं किन्तु विशिष्ट और सूक्ष्म प्रयोजन की पूर्ति थोड़ी सी कहानियों में कर पाए हैं।"[२] प्रेमचन्द जी से एक विवाद के कारण वाजपेई जी चिढ़े थे इसी कारण वे प्रेमचन्द की रचनाओं को ईर्ष्या की दृष्टि से देखते हैं। वस्तुस्थिति

- -

१-- नन्द दुलारे वाजपेई: `प्रेमचन्द: साहित्यिक विवेचन` १९५६ (इलाहाबाद और जालंधर) से० पृ० १६२-१६४

२-- नन्द दुलारे वाजपेई: `प्रेमचन्द: साहित्यिक विवेचन` १९५६ (इलाहाबाद और जालंधर) पृ० १६४

यह है कि यदि कोई आलोचक प्रेमचन्द की कहानियों में निर्माण क्षमता नहीं पाता तो उसे समस्त हिन्दी कहानियों में इस क्षमता के दर्शन कहीं नहीं होंगे ।

प्रेमचन्द स्वत: मानते हैं `कहानी सदैव से जीवन का एक विशेष अंग रही है'[१] दूसरे स्थान पर उन्होंने लिखा है - "वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ और स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है । उसमें कल्पना की मात्रा कम, अनुभूतियों की मात्रा अधिक होती है, इतना ही नहीं बल्कि अनुभूतियां ही रचनाशील भावना से अनुरंजित होकर कहानी बन जाती है ।"[२] प्रेमचन्द कहानियों के दो तरह के आधार मानते हैं पहला अनुभूति की अनिवार्यता और दूसरा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की आवश्यकता । कहानीकार मनोवैज्ञानिक सत्य के उद्घाटन के लिए कुछ घटनाएं चुनता है ये घटनाएं जीवन से ली जाती हैं । प्रेमचन्द साहित्य में घटना प्रधान और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण सम्बन्धी दोनों तरह की कहानियां मिलती हैं । इन्द्रनाथ मदान इस सम्बन्ध में लिखते हैं - "उन्होंने दोनों प्रकार की बहुत सी कहानियां लिखी है, जिनमें उनका उद्देश्य जीवन के उदात्त पक्ष का निरूपण रहा है । कथावस्तु और चरित्र-चित्रण दोनों का ही उद्देश्य सामाजिक रहा है । ---- सामाजिक उद्देश्य की ओर केवल संकेत नहीं किया गया, उसे खुले रूप में व्यक्त किया गया है ।"[३] प्रेमचन्द जी की किसी भी कहानी का उद्देश्य चाहे राजनैतिक चित्रण रहा हो या ऐतिहासिक विवेचन, पूंजीवादी व्यवस्था के प्रति आक्रोश रहा हो या दलित वर्ग का चित्रण, मनोवैज्ञानिक निरूपण रहा हो या घटना का चित्रण, वह कहानी चाहे ग्रामीण जीवन की हो या शहर जीवन की, कहानी में सामन्त की कथा कही गई हो चाहे गरीब किसान की, पंडित की कहानी कही गई हो अथवा अछूत की, सेठ का जीवन चित्रित किया गया हो, चाहे मजदूर का, परन्तु प्रेमचन्द अपने विशेष गुण सामाजिकता को कहीं नहीं भूले । समाज के प्रति जागरूक कलाकार कैसी भी रचना क्यों न करे वह समाज से नाता तोड़ ही नहीं सकता । प्रेमचन्द की ऐतिहासिक कहानियों के सम्बन्ध में रामावतार त्यागी की धारणा है - "कहानी शिल्प-विधान की सीमाओं

- -

१-- प्रेमचन्द: `कुछ विचार' १९६५ (इलाहाबाद) पृ० ३०

२-- प्रेमचन्द: `कुछ विचार' १९६५ (इलाहाबाद) पृ० ३२

३-- डा० इन्द्रनाथ मदान: प्रेमचन्द: एक विवेचन, १९६८ (दिल्ली) पृ० ११५

और किसी निर्धारित ढांचे की साध्यता मानकर नहीं चलती, बल्कि वह अपने लिए ढांचे का स्वयं निर्माण करती है। जीवन के अन्तर्विरोधों को अभिव्यक्ति देकर वह ऐतिहासिक - सामाजिक विकास की सीमाओं का निर्धारण करती है। प्रेमचन्द और उनकी कहानियों के बारे में यह बात और भी आसानी से कही जा सकती है।"[1] प्रेमचन्द की मनोवैज्ञानिक कहानियों में प्रेमचन्द की सामाजिकता का उल्लेख करते हुए डा० देवराज उपाध्याय ने लिखा है - "अपने उपन्यासों की तरह ही प्रेमचन्द राजनीतिक तथा सामाजिक जीवन की साधारण घटनाओं को भी अपनी कहानियों में स्थान दिया है। पर फिर भी कथा - शरीर के स्वरूप निर्माण ने लेखक की सारी शक्ति को अपनी ओर इस तरह केन्द्रित कर लिया है कि उसमें मानव मस्तिष्क में प्रवेश करने की शक्ति कम ही अवशिष्ट रह गई है।"[2] जब प्रेमचन्द की ऐतिहासिक और मनोवैज्ञानिक कहानियों में सामाजिकता का स्वरूप अदृश्य नहीं हो पाता तो तत्कालीन समाज, राजनीति, धर्म, अर्थ, शिक्षा और संस्कृति से सम्बन्धित कहानियों में सामाजिकता के अभाव की कल्पना करना प्रेमचन्द की कहानियों को न समझने के बराबर है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में जो समाजशास्त्रीय तत्व दिखाई देते हैं उनकी कहानियों में वे कम मात्रा में नहीं है। प्रेमचन्द के कहानी साहित्य की यह विशेषता है कि वे जीवन की जिन घटनाओं को ग्रहण करते हैं उनका यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं। साथ ही प्रेमचन्द किसी भी मूल्य पर अपनी कहानियों में चाहे वे जीवन के किसी भी भाग से ली गई हों सामाजिक धरातल और सामाजिक यथार्थ को नहीं छोड़ना चाहते। यही कारण है कि समाजशास्त्रीय यथार्थ प्रेमचन्द की कहानियों में स्पष्ट दिखाई देता है।

अन्य साहित्य

उपन्यास और कहानी साहित्य के अलावा प्रेमचन्द के अन्य साहित्य के रूप में उनका नाटक, निबन्ध, एवं पत्र-साहित्य भी है। निबन्ध के अन्तर्गत सम्पादकीय

- -

१-- रामावतार त्यागी: 'प्रेमचन्द की ऐतिहासिक कहानियां' दे० अमीरानी मुट्टू (सं) प्रेमचन्द और गोर्की १९५५ (दिल्ली), पृ० २३७

२-- डा० देवराज उपाध्याय: 'प्रेमचन्द की कहानियां और मनोविज्ञान' दे० अमीरानी मुट्टू (सं) 'प्रेमचन्द और गोर्की' १९५५ (दिल्ली) पृ० १९७

यह ऐतिहासिक धार्मिक नाटक है जो मुसलमानी संस्कृति एवं धार्मिक युद्धों के रूप में अंकित हुआ है। इसका रचनाकाल १६२३-२४ है। मुंशी दया नारायण निगम के १७ फरवरी १६२४ के पत्र में प्रेमचन्द लिखते हैं - "मैंने इधर पांच महीने में अपने नाविल 'रंगभूमि' के साथ एक ड्रामा लिखा है जिसका नाम है 'कर्बला'/ इसमें कर्बला के वाक्यात पर तारीखी हैसियत को कायम रखे हुए एक ड्रामा लिखा गया है। मैंने खत को हिन्दी रखा मगर जबान सरासर उर्दू है। ख्वाह (चाहे) हिन्दी पबलिक इसकी कद्र न करे पर मैंने मुसलमान कैरेक्टरों की जबान से फसीह (शुद्ध) हिन्दी निकलवाना बेमौका समझा।"[१] स्पष्ट है यह नाटक हिन्दी में होते हुए उर्दू की शब्दावली में लिखा गया है। उनका तीसरा नाटक 'प्रेम की वेदी' एकांकी प्रेम की कहानी है। यह १६३३ के आस-पास लिखा गया है। इस नाटक में मिस जेनी उमा के पति योगराज से प्रेम करती है। उसकी मां मिसेज गार्डन विलियम से उसका विवाह कराना चाहती है। जेनी तैयार नहीं है। धर्म और समाज वह बंधन है जिसके कारण जेनी और योगराज का विवाह नहीं सम्पन्न हो सकता और मानसिक यंत्रणा में योगराज का अंत होता है। लगता है यह कहानी 'रंगभूमि' के सोफिया और विनय की कहानी को पूरा करने के उद्देश्य से लिखी गई है। सोफिया भी मां की अवज्ञा करती है। वह विनय के प्रति आसक्त है। क्लार्क से विवाह की बात टालती रहती है। अन्तर यह है योगराज विवाहित है विनय अविवाहित। योगराज की मृत्यु प्रेम की असफलता के कारण होती है विनय की राष्ट्रीय स्तर पर। विवाह दोनों स्थानों पर सम्पन्न नहीं हो पाता। प्रेमचन्द के 'संग्राम' और 'प्रेम की वेदी' नाटकों में एक में शोषण, सामाजिक अनाचार, शक्ति और धन के दुरुपयोग तथा दूसरे में सामाजिक रूढ़ियों एवं बंधन के प्रति विरोध है।

प्रेमचन्द के निबन्ध 'साहित्य का उद्देश्य' और 'कुछ विचार' संग्रहों में संग्रहीत हैं। इन निबन्धों में साहित्य का उद्देश्य, जीवन में साहित्य का स्थान, उपन्यास तथा कहानी कला, और राष्ट्र भाषा, कौमी भाषा तथा भाषा के स्वरूप आदि पर प्रेमचन्द के मत व्यक्त हुए हैं। इनके अलावा प्रेमचन्द के साहित्य सम्बन्धी विचार, साहित्यिक समालोचनाएं, राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर विचार, धर्म, समाज, संस्कृति, शिक्षा, नारी जीवन, प्रकाशन आदि से सम्बन्धित लेख जो विभिन्न पत्र

- -

१— चिट्ठी पत्री, भाग १, १६६२, हंस प्रकाशन (इलाहाबाद) पृ० १३१

पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे उनके निबन्ध साहित्य के महत्वपूर्ण अंग हैं। इस सम्बन्ध में १३१८ पृष्ठों की प्राप्य सामग्री विविध प्रसंग भाग १, भाग २ तथा भाग ३ के रूपों में - संगृहीत है। इसका श्रेय प्रेमचन्द जी के पुत्र अमृतराय को है, जिन्होंने बड़े परिश्रम से इस बिखरी हुई सामग्री को संकलित करके और आवश्यकतानुसार उसका उर्दू से हिन्दी में रूपान्तर करके हिन्दी पाठकों के लिए सुलभ बनाया है। हिन्दी संसार उनके इस कार्य के लिए उनका कृतज्ञ रहेगा। विविध प्रसंग भाग १, में १९०३ से लेकर १९२० तक के लेख और समीक्षाएं काल क्रम से संगृहीत हैं। २६९ पृष्ठों की इस विषय सामग्री में केवल तीन लेखों जिनमें दो - `ओलियर क्रामवेल` तथा `स्वदेशी आन्दोलन` क्रमश: १ मई १९०३ से २४ सितम्बर तक तथा १६ नवम्बर १९०५ को प्रकाशित और एक `शरर और सरशार` उर्दू ए मुअल्ला सन् १९०६ में प्रकाशित, को छोड़कर शेष लेख क्रमश: `ज़माना` में ही प्रकाशित हुए हैं।[1] विविध प्रसंग भाग २ तथा भाग ३ में १९२१ से लेकर १९३६ तक के लेख, टिप्पणियां और समीक्षाएं हैं। इनमें भाग २ की ४४५ पृष्ठों की सामग्री को राष्ट्रीय रंगमंच: स्वाधीनता संग्राम, अन्तर्राष्ट्रीय रंगमंच: युद्ध और शान्ति, हिन्दू-मुसलमान, छूत-अछूत, किसान-मजदूर, नागरिक-शासन तथा जागरण-क्या ऐसे विविध रूपों में विभक्त है। इसी प्रकार भाग ३ की ५०४ पृष्ठों की सामग्री `साहित्य दर्शन`, `धर्म समाज`, `स्वदेशी`, `शिक्षा संस्कृति`, `महिला जगत`, `राष्ट्र भाषा`, `श्रद्धांजलियां`, `फुटकर चुटकुले` और `हंस-कथा` के रूप में विभक्त है। इन दोनों भागों की विषय सामग्री `स्वदेश`, `मर्यादा`, `ज़माना`, `माधुरी`, `समालोचक`, `चांद`, `इस्मत`, `भारत`, `शुद्धि समाचार`, `जागरण` और `हंस` पत्रों से ली गई है। इनमें अधिकतर सामग्री `हंस` और `जागरण` से ली गई सामग्री है। दूसरा स्थान `माधुरी` से ली गई विषय सामग्री का है।[2] यह सामग्री प्रेमचन्द-साहित्य की समीक्षा, उनके व्यक्तिगत, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, धार्मिक एवं सामाजिक विचारों को समझने के लिए अत्यंत उपयोगी है। विशेष रूप से प्रेमचन्द-साहित्य के समाजशास्त्रीय विवेचन के लिए इसका महत्व उनके कथा-साहित्य से कम नहीं है।

अन्य साहित्य के अन्तर्गत तीसरी कोटि का साहित्य प्रेमचन्द जी का पत्र-साहित्य है। प्रेमचन्द जी के पत्रों में उनके व्यक्तिगत विचार प्राप्त होते हैं। ये पत्र साहित्यिक

- -

१— डा॰ अमृतराय (सं): `विविध प्रसंग`, भाग १, १९६२ (इलाहाबाद)
२— डा॰ अमृतराय (सं): `विविध प्रसंग`, भाग १ तथा भाग २, १९६२ (इलाहाबाद)

जीवन, सामाजिक जीवन, पारिवारिक जीवन, तथा प्रेमचन्द के आर्थिक जीवन पर प्रकाश डालते हैं। प्रेमचन्द जी की रचनाओं के काल निर्धारण और उनके प्रकाशन आदि के सम्बन्ध में इनमें पर्याप्त संकेत मिलते हैं। प्रेमचन्द जी के पत्रों के संकलन में अमृतराय और मदन गोपाल जी का परिश्रम सराहनीय है। उनके पत्र चिट्ठी पत्री भाग १ तथा भाग २ में संगृहीत है। प्रथम भाग १ में मुंशी जी के अभिन्न मित्र मुंशी दया नारायण निगम के नाम लिखे गए पत्रों का हवाला दिया गया है। इसके दूसरे भाग में जैनेन्द्र कुमार, इन्द्रनाथ मदान, इम्त्याज अली 'ताज', केशोराम सब्बरवाल शिवपूजन सहाय, उपेन्द्रनाथ अश्क आदि के अलावा लगभग ४० अन्य व्यक्तियों के नाम लिखे गए पत्र हैं। इस अंक में कुछ ऐसे पत्र भी है जो अमरनाथ झा, हजारी प्रसाद द्विवेदी, रघुपत सहाय, 'फिराक' ऐसे व्यक्तियों द्वारा प्रेमचन्द के नाम लिखे गए हैं।

प्रेमचन्द का यह समस्त साहित्य उनके सामाजिक दर्शन, सामाजिक मानदण्ड, उन मान दण्डों के लिए संघर्ष के मूल्यांकन में पर्याप्त सहायता देगा। यह साहित्य उनके साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन में भी अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

प्रेमचन्द का सामाजिक दर्शन

प्रेमचन्द के सम्बन्ध में डा० इन्द्रनाथ मदान लिखते हैं - "वे इस संसार के सामाजिक दार्शनिक हैं और उनका प्राथमिक उद्देश्य उस समाज के क्रमिक विकास का प्रदर्शन करना है, जो सामाजिक आर्थिक विषमता और राजनीतिक दासता पर आधारित है। वे एक ऐसी समाज व्यवस्था का निर्माण करने के लिए लिखते थे, जिसमें किसी प्रकार का भय न होगा। उनका समाजवाद शुद्ध बौद्धिक विश्वास पर और ऊंचे प्रकार की भावुकता पर टिका हुआ है। ----- उनका समाजवाद भी मानव व्यक्तित्व के प्रति महान् आदर पर आधारित है। वह इसमें विश्वास करते हैं कि सबको समान अवसर मिले।"[1] उपन्यास कला पर विचार करते हुए स्वयं प्रेमचन्द ने २३ अक्तूबर १९२२ की 'माधुरी' में लिखा था - "लेखक वृन्द प्रायः अपने काल के विधाता होते हैं। उनमें अपने देश और समाज को दुख, अन्याय तथा मिथ्यावाद से मुक्त करने की प्रबल आकांक्षा होती है। ऐसी दशा में असंभव है कि वह समाज को मनमाने मार्ग पर चलने

- -

१-- डा० इन्द्रनाथ मदान: 'प्रेमचन्द: चिन्तन और कला' (प्रकाशन काल नहीं दिया) प्रयाग पृ० २३१

दे और स्वयं खड़ा हाथ पर हाथ रखे देखता रहे। वह अगर और कुछ नहीं कर सकता तो कलम तो चला ही सकता है।"[1] उन्होंने प्रगतिशील लेखक संघ के लखनऊ अधिवेशन के सभापति के भाषण में कहा था - "साहित्यकार या कलाकार स्वभावतः प्रगतिशील होता है। अगर यह उसका स्वभाव न होता, तो शायद वह साहित्यकार ही न होता। उसे अपने अंदर भी एक कमी महसूस होती है और बाहर भी। इसी कमी को पूरा करने के लिए उसकी आत्मा में चैन रहती है। अपनी कल्पना में वह व्यक्ति और समाज को सुख और स्वच्छंदता की जिस अवस्था को देखना चाहता है वह उसे दिखाई नहीं देती। इसलिए वर्तमान मानसिक और सामाजिक अवस्थाओं से उसका दिल कुढ़ता रहता है। वह इन अप्रिय अवस्थाओं का अंत कर देना चाहता है जिससे दुनिया में जीने और मरने के लिए इससे अधिक अच्छा स्थान हो जाय।"[2] प्रेमचन्द वर्तमान सामाजिक व्यवस्था से संतुष्ट नहीं थे। वे परम्परागत अंधविश्वासों, कुप्रथाओं, जनता की दरिद्रता, अशिक्षा, अज्ञान और उसके साथ उसका शोषण, धर्म, जाति, परम्परा, रीति, नियम और कानून के नाम पर लूट, आलस्य, व्यभिचार, विलासिता और अन्याय इनमें से कुछ भी प्रेमचन्द की आत्मा को स्वीकार नहीं था। वे रूढ़िगत विचारों, परम्पराओं, रीति रिवाजों तथा धर्म के नाम पर लूट, शोषण तथा प्रपीड़न से जनता को मुक्त कराना चाहते थे। हंसराज रहबर इस सम्बन्ध में प्रेमचन्द की भावनाओं और कार्यों का मूल्यांकन करते हुए लिखते हैं - "प्रेमचन्द इस सामाजिक व्यवस्था से न सिर्फ असंतुष्ट थे, बल्कि अपनी आत्मा की समस्त शक्ति के साथ घृणा करते थे। जहां मनुष्य को न्याय न मिले, जहां पर मुट्ठी-भर खून चूसने वाले लोगों का एक गिरोह, काम करने वालों की एक बहुत बड़ी संख्या को अपना गुलाम बनाए हुए हो, जहां मानवता का विकास न हो, जहां छुआ-छूत को धर्म के नाम पर उचित समझा जाता है, जहां औरत को दासी और पांव की जूती बना लिया गया हो प्रेमचन्द का उस समाज से कभी समझौता हो ही नहीं सकता था। वे साहित्य सेवा को तपस्या समझते थे और सदा अन्याय के विरुद्ध न्याय का पक्ष लेते थे।"[3]

- -

१-- २३ अक्टूबर १९३२ 'माधुरी' दे० विविध प्रसंग, भाग ३, पृ० १५

२-- प्रेमचन्द: 'कुछ विचार' १९६५ (इलाहाबाद) पृ० १४

३-- हंसराज रहबर: प्रेमचन्द: 'जीवन और कृतित्व' १९५२ (दिल्ली) पृ० २२४

समाज की विषमता, अन्याय, शोषण, प्रपीड़न आदि से जनवर्ग को मुक्ति दिलाने की प्रेमचन्द की आत्मा में छटपटाहट थी। वे समाज की अधोगति का अन्तर्मन से विवेकपूर्ण विचार करते हैं। वे एकदम मनुष्यों को दोषी ठहरा देने पर विश्वास नहीं रखते। वे 'प्रेमाश्रम' में लिखते हैं - "मानव चरित्र न बिलकुल श्यामल होता है न बिलकुल श्वेत। उसमें दोनों ही रंगों का विचित्र सम्मिश्रण होता है। स्थिति अनुकूल हुई तो ऋषितुल्य हो जाता है, प्रतिकूल हुई तो नराधम। वह अपनी परिस्थितियों का खिलौना मात्र होता है।"[1] कितनी विवेकपूर्ण अनुभव, चिन्तन और मनोवैज्ञानिक परीक्षणों से खरी उतरने वाली है उनकी यह उक्ति। वे पूर्णरूपेण व्यक्ति को दोषी न मानकर परिस्थितियों को भी दोषी मानते हैं। प्रश्न है वे परिस्थितियां क्या हैं? वे परिस्थितियां हैं समाज के निर्मित नियम, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक विधान जिनके आधार पर समाज का ढांचा निर्मित हुआ है। वे परिस्थितियां हैं समाज के आचार विचार, परम्परा, रीति-रिवाज, शिक्षा-दीक्षा, और आचरण। कभी-कभी मनुष्य चाह कर भी अच्छा नहीं बन पाता। कारण है वह परिस्थितियों से ऐसा बंध जाता है कि उसे निकलने का मौका नहीं मिलता। उनका 'गोदान' का पात्र अमरपाल सिंह अपने वर्ग की त्रुटियों, शोषण, अन्याय, व्यभिचार, विलासिता आदि अवगुणों से परिचित हैं। अपनी से वह चाहता है कि जनता को उस व्यवस्था से मुक्ति मिलनी चाहिए जो उसे तबाह कर रही है परन्तु चाहते हुए भी वह स्वत: उससे दूर नहीं रह पाता। वह जानता है - "हम परिस्थितियों के शिकार बने हुए हैं। यह परिस्थिति ही हमारा सर्वनाश कर रही है और जब तक संपत्ति की यह बेड़ी हमारे पैरों से न निकलेगी, जब तक यह अभिशाप हमारे सिर पर मंडराता रहेगा हम मानवता का वह पद न पा सकेंगे जिस पर पहुंचना ही जीवन का अंतिम लक्ष्य है।"[2] राय साहब की अपनी परिस्थिति है कि वह धन और वैभव से बंधे हुए हैं। 'सेवासदन' के ईमानदार दरोगा कृष्णचन्द्र भी अपनी परिस्थिति है जिसके फलस्वरूप उसके सामने दो उपाय हैं "या तो सुमन को किसी कंगाल के पल्ले बांध दूं या कोई सोने की चिड़िया फंसाऊं"।"[3] और यह परिस्थिति

- -

१-- 'प्रेमाश्रम' पृ० २६५

२-- 'गोदान' पृ० १६

३-- 'सेवासदन' पृ० ७

ही है जिसके कारण फैसला लेना पड़ता है - "आज से मैं भी वही करूंगा जो सब लोग करते हैं।"[1] सुमन का वेश्या होना, ज्ञानशंकर का धन लोलुप बनना, अमर का सकीना के प्रेम में फंसना, विनय का जसवन्तनगर के प्रशासन के साथ अन्याय और अत्याचार में हाथ बंटाना ये सब परिस्थितियां ही हैं। प्रश्न है क्या प्रेमचन्द इन परिस्थितियों को जैसा का तैसा स्वीकार कर लेते हैं अथवा वे चाहते हैं कि मनुष्य अपनी परिस्थितियों के मध्य भी अच्छे के लिए संघर्ष रत और सुन्दर के लिए प्रयत्नशील हो। प्रेमचन्द की यह प्रवृत्ति है कि वे पात्रों को परिस्थितियों से जूझने का अवसर देते हैं और चाहते हैं कि उनका आदर्श पात्र उन परिस्थितियों के बीच से समाज के सामने सुन्दर और अच्छे, चरित्रवान और साहसी, धैर्यशाली और त्यागी, समाज-सेवी और राष्ट्र-सेवी के रूप में आवे।

प्रेमचन्द समाज की आस्थाओं और सामाजिक भावनाओं का विकास समाज में ही कर लेना चाहते हैं। उनके पारिवारिक कथानकों से यह स्पष्ट है। 'रंगभूमि' का प्रभु सेवक विनय से कहता है - "दाम्पत्य मनुष्य के सामाजिक जीवन का मूल है। उसका त्याग कर दीजिए, बस, हमारे सामाजिक संगठन का शीराजा बिखर जायगा। हमारी दशा पशुओं के समान हो जायगी। ---- दया, सहानुभूति, सहिष्णुता, उपकार, त्याग आदि देवोचित गुणों के विकास के जैसे सुयोग्य गार्हस्थ्य जीवन में प्राप्त होते हैं और किसी अवस्था में नहीं मिल सकते।"[2] पारिवारिक जीवन में सामाजीकृत मनुष्य समाज में रहकर समाज का अधिक हित कर सकता है। वह असामाजिक कार्यों की ओर प्रवृत्त नहीं होगा। यही कारण है कि प्रेमचन्द परिवार में ही मनुष्य का सामाजीकरण कर लेना चाहते हैं।

प्रेमचन्द जी के सामाजिक विचारधारा की उस सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि वे सामान्य दशाओं और साधारण स्थितियों में सामाजिक मर्यादाओं और बंधनों को त्यागना नहीं चाहते हैं। 'रंगभूमि' की सोफिया प्रेमाकुल विनय से स्पष्ट कह देती है - "मैं कभी कोई ऐसा कार्य न करूंगी, जिससे तुम्हारा अपमान, तुम्हारी अप्रतिष्ठा, तुम्हारी निन्दा हो। मेरा यह संयम अपने लिए नहीं, तुम्हारे लिए है।

- -

१-- 'सेवासदन' पृ०

२-- 'रंगभूमि' पृ० ६०-६१

आत्मिक मिलाप के लिए कोई बाधा नहीं होती, पर सामाजिक संस्कारों के लिए अपने सम्बन्धियों और समाज के नियमों की स्वीकृति अनिवार्य है।"[1] एक बार प्रेमचन्द जी ने जैनेन्द्र जी की 'अभिप्राय' कहानी को अस्वीकृत कर दिया। जैनेन्द्र जी के पूछने पर उन्होंने कहा कहानी हृदय की वस्तु है, नियम की वस्तु नहीं। इसकी चर्चा करते हुए जैनेन्द्र जी लिखते हैं कि प्रेमचन्द ने अनेक बार कहा है - "जैनेन्द्र हम समाज के साथ हैं, समाज में हैं।"[2] 'मंगलसूत्र' के देवकुमार से उनका पुत्र आग्रह करता है कि पुस्तक के सम्बन्ध में किए गए अनुबन्ध को (कागजी कार्यवाही को) अदालत से रद्द करा दिया जाय क्योंकि प्रकाशक ने परिस्थिति का बेजा लाभ उठाया है। यह कार्य देवकुमार की आत्मा के विरुद्ध था और वे आत्मा में धर्म का सहारा ले लेते हैं। उस पर तर्क किए जाने पर वे सामाजिक मर्यादा का सहारा लेते हुए कहते हैं - "समाज अपनी मर्यादाओं पर टिका हुआ है। उन मर्यादाओं को तोड़ दो और समाज का अन्त हो जाय।"[3] शोषण के विरुद्ध संघर्ष करना सामाजिक मर्यादा नहीं होती संभवत: यही कारण है कि प्रेमचन्द पुत्र को आगे चलकर सहमति दे देते हैं। परन्तु देवकुमार के रूप में कहे गए प्रेमचन्द के ऊपर के वाक्य उनकी सामाजिक मर्यादा की रक्षा की भावना को प्रमाणित करते हैं।

यह लेखक के जीवन के अपने अनुभव थे इसी कारण वे यहां पर सामाजिक मर्यादा का सवाल उठाते हैं। वैसे प्रेमचन्द गरीबों और असहायों का शोषण अपनी आंखों नहीं देख सकते। यहां तक कि आर्थिक शोषण से उनका मन इतना भर जाता है कि वे अपने को बोलशेविक तक करार कर देते हैं। २१ दिसम्बर १९१९ को उन्होंने मुंशी दया नारायण निगम को लिखा था - "मैं अब करीब करीब बोलशेविस्ट उसूलों का कायल हो गया हूं।"[4] १७ फरवरी १९२३ को वे पुन: लिखते हैं - "मैं तो उस आने वाली पार्टी का मेम्बर हूं जो कोतेहुन्नास (छोटे लोगों) की सियासी तालीम को अपना दस्तूर-उल-अमल (कार्य-प्रणाली) बनाये।"[5] प्रेमचन्द को गरीबों से इतनी सहानुभूति

- -

१— 'रंगभूमि' पृ० ४२४

२— अमृतराय (सम्पा) 'प्रेमचन्द स्मृति' १९५९ (इलाहाबाद) पृ० ८०

३— प्रेमचन्द: 'मंगलसूत्र' से० अमृतराय (सम्पा) 'प्रेमचन्द स्मृति' १९५९ (इलाहाबाद) पृ०२८८

४— चिट्ठी पत्री भाग १

५— चिट्ठी पत्री भाग १

थी, इतना लगाव और प्यार था कि उनकी पीड़ा और वेदना को देखकर वे ईश्वर के अस्तित्व तक को नकारने में नहीं झिझकते थे। जैनेन्द्र जी एक समय की वार्ता का उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि प्रेमचन्द ने कहा था - "कैसे विश्वास करूं, जब देखता हूं, बच्चा बिलख रहा है, रोगी तड़प रहा है। यहां भूख है, क्लेश है, ताप है। वह ताप इस दुनिया में कम नहीं। तब इस दुनिया में मुझे ईश्वर का साम्राज्य नहीं दिखता तो यह मेरा कसूर है? मुश्किल तो यह है कि ईश्वर को मानकर उसे दयालु भी मानना होगा। मुझे यह दयालुता नहीं दीखती। तब उस दयासागर में कैसे विश्वास हो?"[1] सच तो यह है कि प्रेमचन्द को धर्म और धार्मिकों की धार्मिकता से घृणा हो गई थी। ईश्वर के मंदिरों में स्त्रियों के साथ व्यभिचार, शराब, जुआ और अनाचार प्रेमचन्द को ईश्वर के अस्तित्व के प्रति संदेहशील बना दिया था। हिन्दू समाज के वीभत्स दृश्य `मंदिरों पर एक दृष्टि` लेख में उन्होंने महंतों, पुजारियों और पंडों के कुकृत्यों, पाखण्डों, विलासी प्रवृत्तियों, स्त्री अपहरण और बलात्कार की निन्दा करते हुए उनको सलाह दिया है कि "देश की दशा को भली भांति देखते हुए धर्म के आडम्बरों, उसकी रूढ़ियों और राक्षसी नियमों से मुक्त करके ही वे अपना, अपने धर्म का, अपने समाज तथा अपने देश का सबसे बड़ा हित कर सकेंगे और जनता के हृदयों में ऊंचा स्थान पा सकेंगे।"[2] ईश्वर पूजा को वे दीन दुखियों, गरीबों और निराश्रितों की सेवा में देखते थे। उन्होंने २० नवम्बर १९३३ के जागरण में लिखा था - "ईश्वर पूजा का सर्वोत्कृष्ट मार्ग दीन दुखियों और आश्रयहीन रोगियों की सेवा-सुश्रूषा है।"[3]

प्रेमचन्द समाज में जहां रूढ़ियों, परम्पराओं और धार्मिक आडम्बर को समाप्त कर देना चाहते थे। वे इस समाज में आर्थिक विषमता को भी मिटा देना चाहते थे। उन्होंने इन्द्रनाथ मदान के नाम लिखे गए १६ दिसम्बर १९३४ के अपने पत्र में कहा था - "मैं सामाजिक विकास में विश्वास रखता हूं, हमारा उद्देश्य जनमत को शिक्षित करना है। ------ मेरा आदर्श समाज वह है जिसमें सबको समान अवसर मिले।"[4] बनारसीदास चतुर्वेदी को १६ दिसम्बर १९३५ के पत्र में लिखा था - "मैं ऐसे महान आदमी की कल्पना

- -

१— अमृतराय (अनु) "प्रेमचन्द स्मृति" १९५९ (इलाहाबाद) पृ० ८६

२— विविध प्रसंग भाग ३ पृ० १६२

३— विविध प्रसंग भाग ३ पृ० १६१

४— चिट्ठी पत्री भाग २ पृ० २३७

ही नहीं कर सकता जो धन संपत्ति में डूबा हुआ हो । जैसे ही मैं किसी आदमी को धनी देखता हूं, उसकी कला और ज्ञान की सब बातें मेरे लिए बेकार हो जाती है । मुझको ऐसा लगता है कि इस आज की वर्तमान समाज व्यवस्था को, जो अमीरों द्वारा गरीबों के शोषण पर आधारित है, स्वीकार कर लिया है । इस प्रकार कोई भी बड़ा नाम जो लक्ष्मी से असंयुक्त नहीं है, मुझको आकर्षित नहीं करता ।"[1] उन्होंने २५ सितम्बर १९३४ को 'भारत के सम्पादक' के नाम बम्बई से लिखे गए पत्र में लिखा था - "मैं खुद सोशिलिस्ट विचारों का आदमी हूं और मेरी सारी जिन्दगी गरीबों और दलितों की वकालत करते गुजरी है ।"[2]

प्रेमचन्द की सामाजिकता ऐसे समाज का निर्माण करना चाहती थी जहां पर मनुष्य मनुष्य की भांति रह सके । वह साहित्य के माध्यम से ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते थे जिसमें जनता के लिए स्थान हो, मानव को विकास करने का अवसर मिले और मानवता दृढ़ हो । उनका विश्वास था - "साहित्य में जो सबसे बड़ी खूबी है वह यह है कि वह हमारी मानवता को दृढ़ बनाता है, हममें सहानुभूति और उदारता के भाव पैदा करता है ।"[3] इलाचन्द्र जोशी प्रेमचन्द साहित्य में इसी मानवता की खोज निकालते हैं । वे लिखते हैं - "जनता प्रेमचन्द जी को केवल एक ऊंचे कलाकार के रूप में जानती है, पर कला के अतिरिक्त उनमें मनुष्यत्व कितना अधिक था, इस बात से बहुत कम लोग परिचित हैं । अपनी रचनाओं में उन्होंने जिन दलितात्माओं के निपीड़न का निर्देशन किया है उनके प्रति उनकी केवल मौलिक सहानुभूति नहीं थी वह अपनी सहानुभूति को अनेक बार वास्तविक जीवन में व्यवहारिक रूप में प्रकट करके हमारे कलाकारों के लिए एक महान् आदर्श छोड़ गये हैं ।"[4]

प्रेमचन्द की सामाजिकता पर विचार करते हुए डा० रामदरश मिश्र लिखते हैं - "वे निश्चय ही विचारों और संस्कारों से मूल भारतीय आदर्शों के पोषक थे परन्तु यथार्थवादी कलाकार की हैसियत से समाज में व्याप्त पुराने नये मूल्यों के संघर्षों, पुराने जर्जर मूल्यों के विघटन और नये भौतिकवादी मूल्यों की उत्तरोत्तर प्रतिष्ठा को

- -

१-- चिट्ठी पत्री भाग२ पृ० ९३

२-- चिट्ठी पत्री भाग २ पृ० २९०

३-- प्रेमचन्द: 'कुछ विचार' १९६५ (इलाहाबाद) पृ० ८८

४-- अमृतराय (सम्पा) 'प्रेमचन्द स्मृति' १९५९ (इलाहाबाद) पृ० २१

आंख से ओझल नहीं कर सकते थे । ---- प्रेमचन्द के उपन्यासों में समस्याएं तरह-तरह की हैं, तरह-तरह के वर्ग और समाज चित्रित है किन्तु सबके मूल में मानों आर्थिक समस्या ही अन्तः सलिला की भांति बहती रहती है ।"[1] प्रेमचन्द इस आर्थिक वैषम्य का हल साम्यवाद में खोजते हैं । वे 'पशु से मनुष्य' कहानी में साम्य के प्रति आस्थावान है । वे लिखते हैं - "समाज का चक्र साम्य से आरम्भ होकर फिर साम्य पर ही समाप्त होता है । एकाधिपत्य, रईसों का प्रभुत्व, और वाणिज्य प्राबल्य, उसकी मध्यवर्गीय दशाएं हैं । वर्तमान चक्र ने मध्यवर्ती दशाओं को भोग लिया है और वह अपने अंतिम स्थान के निकट आता जाता है ।"[2] अपने युगीन समाज की प्रशासनिक, धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था में प्रेमचन्द इस साम्य को प्राप्त करने की कठिनाइयों को देखकर सुदूर पश्चिम से उद्भूत नई सभ्यता का स्वागत करते हैं । वे इस सभ्यता की विकासमान स्थिति से परिचित हैं । वे जानते हैं "एक नई सभ्यता का सूर्य सुदूर पश्चिम से उदय हो रहा है, जिसने इस नाटकीय महाजनवाद या पूंजीवाद की जड़ खोदकर फेंक दी है, जिसका मूल सिद्धांत यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को, जो अपने शरीर या दिमाग से मेहनत करके कुछ पैदा कर सकता है । राज्य और समाज का परम सम्मानित सदस्य हो सकता है और जो केवल दूसरों की मेहनत बाप-दादों के जोड़े हुए धन पर रईस बना फिरता है, वह पतितम प्राणी है । उसे राज्य प्रबन्ध में राय देने का हक नहीं और वह नागरिकता के अधिकारों का पात्र नहीं ।"[3] प्रेमचन्द का आत्म विश्वास है - "जिसमें मनुष्यता, आध्यात्मिकता, उच्चता और सौंदर्य बोध है, वह कभी भी ऐसी समाज व्यवस्था की सराहना नहीं कर सकता, जिसकी नींव लोभ, स्वार्थपरता और दुर्बल मनोवृत्ति पर खड़ी हो ।"[4] प्रेमचन्द यह भी मानते है कि किसी भी नंगे-भूखे देश में महाजनवाद बहुत दिन तक नहीं चल सकता है । और जो व्यवस्था एक देश के लिए उपयोगी है दूसरे में उसकी अनुपयोगिता का प्रश्न ही नहीं उठता है । इस लेख की समाप्ति में वे लिखते हैं - "जो शासन-विधान और समाज-व्यवस्था एक देश के लिए कल्याणकारी है, वह दूसरे देशों के लिए भी हितकर होगी । हां, महाजनी सभ्यता और उसके गुर्गे अपनी शक्ति भर उसका विरोध करेंगे, उसके बारे में भ्रामक

- -

१-- रामदरश मिश्र: 'हिन्दी उपन्यास: एक अन्तर्यात्रा' १९६८ (दिल्ली) पृ० ९१-९२

२--'पशु से मनुष्य' दे० मानसरोवर भाग ८ पृ० ११२

३-- प्रेमचन्द: 'महाजनी सभ्यता' दे० 'प्रेमचन्द स्मृति' १९५९ (इलाहाबाद) पृ०२६१-६२

४-- प्रेमचन्द: 'महाजनी सभ्यता' दे० 'प्रेमचन्द स्मृति' १९५९ (इलाहाबाद) पृ० २६३

बातों का प्रचार करेंगे, जन-साधारण को भड़कावेंगे, उनकी आंखों में धूल फोंकेंगे, पर जो सत्य है एक न एक दिन उसकी विजय होगी और अवश्य होगी।"[१]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रेमचन्द की सामाजिक विचारधारा सुस्पष्ट है। वे एक शोषण-विहान, पंडों-पुजारियों, महन्तों और पंडितों के पाखण्ड विहीन आर्थिक विषमता विहीन, राजनैतिक दासता विहीन, और सड़ी गली रूढ़िवादिता तथा गलित परम्परा विहीन मेहनत कश समाज की संरचना चाहते हैं। वे ऐसे समाज की कल्पना करते हैं जहां छूत-अछूत का भेद न हो, स्त्री इसलिए गिरी न मानी जाय क्योंकि वह स्त्री है, अबला है, पराश्रिता है, गरीब इसलिए दलित न समझा जाय क्योंकि वह सम्पत्ति का स्वामी नहीं है, मजदूर इसलिए शोषित न हो क्योंकि वह परवश है, किसान इसलिए सताया न जाय क्योंकि वह सरल, सीधा और संसार का पोषक है बल्कि इन सबको उस समाज में यथायोग्य सम्मान का पद मिले जिसके वे अधिकारी हैं।

सामाजिक मानदण्डों के लिए संघर्ष

प्रेमचन्द अपनी कल्पना के सुव्यवस्थित समाज के लिए जिन सामाजिक मूल्यों और मानदण्डों को मान्यता देना चाहते थे वे जीवन पर्यन्त उनके लिए संघर्ष रत रहे। प्रेमचन्द अपनी प्रारम्भिक उर्दू रचनाओं - असरारे मआबिद (देवस्थान रहस्य), 'हम खुर्मा व हम सवाब' तथा 'रूठी रानी' में भी इन मान्यताओं और मूल्यों के लिए जागरूक दिखाई देते हैं। 'असरारे मआबिद' में यशोदानन्दन, पंडा, त्रिलोकी और गद्दी के मालिक महन्त सबके सब वेश्या रामकली के यार हैं। बाबा जी को रामकली से संतोष नहीं है वे रामदुलारी का भी उपभोग करना चाहते हैं। रामकली से कहते हैं - "यह तो बड़ी उस्ताद निकली जी, हमने समझा था, जुटकी बजाते फंस जायगी, मगर यह तो हम लोगों को भी उड़नबाइयां बताने लगी।"[२] 'हम खुर्मा व हम सवाब' में प्रेमचन्द विधवा समस्या को उठाते हैं - समाज की उपेक्षित, दलित विधवा पूर्णा का विवाह वह अमृतराय से कराते हैं। उनके प्रसिद्ध विधवा-समस्या सम्बन्धी उपन्यास 'प्रतिज्ञा' की नींव प्रेमचन्द के रचनाकाल के प्रारम्भिक वर्षों में ही पड़ गई थी। 'रूठी रानी' में वे ऐतिहासिक कथानक के मध्य सामन्तों की विलासिता और बहु-विवाह का चित्र प्रस्तुत

- -

१-- प्रेमचन्द: 'महाजनी सभ्यता' से० प्रेमचन्द स्मृति १९५९ (इलाहाबाद) पृ० २६४

२-- प्रेमचन्द: 'मंगलाचरण' १९६२ (इलाहाबाद) पृ० ७२

करते हैं। इससे स्पष्ट है कि सामाजिकता के बीज प्रारम्भिक साहित्यकार प्रेमचन्द में विद्यमान थे।

प्रेमचन्द भारतीय समाज को सुदृढ़ और स्थायी बनाना चाहते थे। डा० माखन लाल शर्मा ने इस पक्ष का पुष्टिकरण करते हुए लिखा है - "समाज को स्थायित्व देने वाले तथा प्रगतिशील बनाने वाले तत्वों की स्थापना और समाज में उनके अनुरूप मानदण्डों की प्रतिष्ठा करना युग दृष्टाओं और महान साहित्यकारों का कर्म है। प्रेमचन्द ने यथार्थवादी होने के नाते अपने उस रूप को भी समझ लिया है और समाज में सत्य, अहिंसा, श्रमनिष्ठा, दूसरों को धोखा न देना, जीना और जीने देना आदि के आदर्शों की स्थापना पर जोर दिया है।"[1] प्रेमचन्द अपने किसी भी उपन्यास या कहानी में अपने सामाजिक दायित्व को नहीं भूलते हैं। प्रेमचन्द के समस्त उपन्यासों में सामाजिकता की परख करते हुए डा० सुरेश सिनहा का अभिमत है - "प्रेमचन्द के सभी उपन्यास सामाजिक हैं। उनके उपन्यासों में वर्णित समस्याओं को यदि एक स्थान पर एकत्र किया जाय तो समूचे युग के मानव जीवन का एक विस्तृत इतिहास तैयार हो जायगा, जो पूर्णतया यथार्थ है।"[2] प्रेमचन्द ने 'सेवासदन' से लेकर 'गोदान' तक प्रत्येक उपन्यास में चाहे वह सामाजिक धरातल पर लिखा गया उपन्यास हो अथवा राष्ट्रीय धरातल पर, समाज की कोई न कोई समस्या अवश्य उठाते हैं। इनमें चाहे वे नारी सम्बन्धी - वेश्या, विधवा, दहेज, अनमोल विवाह, बहु-विवाह, अन्तर्जातीय विवाह की समस्याएं हों, चाहे परिवार सम्बन्धी पारिवारिक विघटन या अलगाव की समस्या हो, चाहे वह धर्म सम्बन्धी छूत-अछूत, मंदिर-प्रवेश, अंधविश्वास अथवा साम्प्रदायिकता की समस्या हो, चाहे वह अर्थ से सम्बन्धित किसानों के कर्ज की समस्या, लगान की समस्या, निम्नवर्ग की आवास की समस्या अथवा औद्योगिक मजदूरों के वेतन की समस्या हो, आदि है।

प्रेमचन्द समाज में कुल प्रतिष्ठा सम्बन्धी, जाति बिरादरी सम्बन्धी, छूत-अछूत सम्बन्धी, धनवान निर्धन अर्थात आर्थिक विषमता सम्बन्धी, ऊंच-नीच सम्बन्धी, उद्योगपति औद्योगिक मजदूर सम्बन्धी, महाजन-कर्जदार सम्बन्धी, जमींदार-किसान सम्बन्धी, राजा-

- -

१— डा० माखन लाल शर्मा: 'हिन्दी उपन्यास: सिद्धान्त और समीक्षा' १९६५ (दिल्ली) पृ० २१९

२— डा० सुरेश सिनहा: 'हिन्दी उपन्यास: उद्भव और विकास' १९६५ (दिल्ली) पृ० १९६

प्रजा सम्बन्धी, मालिक-मजदूर सम्बन्धी विषमताओं को उखाड़ फेंकना चाहते हैं। वे इस विषमता के विरुद्ध समानता लाने के लिए शाश्वत संघर्ष करते हुए दिखाई देते हैं।

प्रेमचन्द को 'सेवासदन' के रचनाकाल से ही यह विश्वास हो जाता है कि "सच्ची हितकांक्षा कभी निष्फल नहीं होती अगर समाज को विश्वास हो जाय कि आप उसके सच्चे सेवक हैं, आप उसका उद्धार करना चाहते हैं, आप निःस्वार्थ हैं तो वह आपके पीछे चलने को तैयार हो जाता है। लेकिन यह विश्वास सच्चे भाव के बिना कभी प्राप्त नहीं होता। जब तक अन्तःकरण दिव्य और उज्ज्वल न हो, वह प्रकाश का प्रतिबिंब दूसरों पर नहीं डाल सकता है।"[१] प्रेमचन्द के 'सेवासदन' के पद्मसिंह में इन भावना और गुणों का योग है। यही कारण है कि वे अपने उद्योग में सफलता की ओर अग्रसर दिखाई देते हैं। 'प्रेमाश्रम' के प्रेमशंकर, 'कायाकल्प' के चक्रधर और 'प्रतिज्ञा' के अमृतराय में भी इन गुणों और भावनाओं का मेल है। यही कारण है कि समाज के लोग उनके साथ हैं और वे समाज का कुछ हित कर सकने में समर्थ हैं। 'प्रेमाश्रम' और 'रंगभूमि' में अपने उद्देश्य को पूर्ण-रूपेण सफल न पाकर भी 'कायाकल्प' के रचनाकाल में प्रेमचन्द की आस्था में अंतर नहीं आया है। वे लिखते हैं - "सार्वजनिक काम करने के लिए कहीं भी क्षेत्र की कमी नहीं, केवल मन में निःस्वार्थ सेवा का भाव होना चाहिए।"[२] प्रेमचन्द के पात्र प्रेमशंकर की किसानों की सेवा, चक्रधर की चमारों के साथ संघर्ष और ग्रामों में ग्रामीणों की सेवा, विनय को राजस्थान में जागृति का काम और जंगल में भीलों की शिक्षा, सूरदास की ग्रामीणों की लड़ाई का नेतृत्व, अमृतराय की विधवाओं के लिए कार्य, अमरकान्त को किसानों की सेवा, सुखदा की अछूतों की लड़ाई और गरीबों के लिए आवास के प्रश्न पर संघर्ष का अवसर, नैना को बलिदान का अवसर आदि सार्वजनिक जीवन के कार्य आप-से-आप मिल जाते हैं, उन्हें खोजने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। सच तो यह है कि प्रेमचन्द उन पात्रों के सृजन के साथ आजीवन सार्वजनिक जीवन की लड़ाई आस्था, आशा और विश्वास के साथ लड़ते रहे।

यह प्रेमचन्द जी की क्षमता है कि उनका वह देहात का किसान-पुत्र बलराज अपने अधिकार की कल्पना कर लेता है और रूस देश के समाचार में पढ़ लेता है कि "रूस देश में

- -

१-- 'सेवासदन' पृ० २२१

२-- 'कायाकल्प' पृ० २१६

काश्तकारों का राज है, वह जो चाहते हैं करते हैं ।"[1] इतना ही नहीं वह किसान और खेतिहर मजदूर में भेद की दीवार को भी मिटा देता है । वह अपनी माँ से कहता है - "हमने तुमसे बार बार कह दिया है कि रसोई में जो कुछ थोड़ा बहुत हो, वह सबके सामने आना चाहिए । अच्छा खायें, बुरा खायें तो सब खायें । ----- ऐसी कोई बेगार आदमी नहीं है, घर का आदमी है । वह मुंह से चाहे न कहे, पर मन में अवश्य कहता होगा कि छाती फाड़कर काम मैं करूं और मूँछों पर ताव देकर खायें यह लोग ।"[2] किसान में यह सुबुद्धि आ गई है परन्तु शक्ति और धन वालों को इसका भान नहीं हुआ है । सूरदास 'रंगभूमि' में आर्थिक लड़ाई लड़ता है । और 'कायाकल्प' में चक्रधर बेगार की लड़ाई लड़ता है । राजा विशाल सिंह का दावा है - "हमें परम्परा से बेगार लेने का अधिकार है ।"[3] चक्रधर का उत्तर है - "कोई अन्याय इसलिए मान्य नहीं हो सकता कि लोग उसे परम्परा से सहते आये हैं ।"[4] 'कायाकल्प' में यही संघर्ष चमारों के विद्रोह के रूप में होता है । 'गोदान' में मजदूर अप्रमी वेतन के लिए संघर्ष-रत दिखाई देते हैं ।

प्रेमचन्द केवल सामाजिक-धार्मिक बुराइयों और आर्थिक शोषण तथा विषमता से ही समाज को मुक्त नहीं करना चाहते बल्कि वे राजनीतिक दासता से भी समाज को मुक्त करना चाहते हैं । परतंत्र देश में सबसे पहली कहानी 'दुनिया का सबसे अनमोल रत्न' लिखकर वह अपनी इस भावना का परिचय देते हैं । मृत्यु के चार वर्ष पहले ३ जून १९३२ को बनारसी दास के नाम पत्र में यह लिखकर - 'मेरी आकांक्षा कुछ नहीं है । इस समय तो सबसे बड़ी आकांक्षा यही है कि हम स्वराज्य संग्राम में विजयी हों । धन या यश की लालसा मुझे नहीं रही । खाने भर को मिल ही जाता है । मोटर और बंगले की मुझे हविश नहीं । हां, यह जरूर चाहता हूं कि दो चार ऊंची कोटि की पुस्तकें लिखूं पर उनका उद्देश्य भी स्वराज्य विजय है"[5] अपनी राष्ट्रीय मुक्ति की छटपटाहट की भावना को, संकल्प को दुहरा देते हैं । प्रेमचन्द अपने उपन्यास 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि',

- -

१-- 'प्रेमाश्रम' पृ० ४६

२-- 'प्रेमाश्रम' पृ० ५८

३-- 'कायाकल्प' पृ० १११

४-- 'कायाकल्प' पृ० १११

५-- चिट्ठी पत्री भाग २, पृ० ७७

'कायाकल्प' और 'कर्मभूमि' में या तो राष्ट्रीय संग्राम की तैयारी करते हैं अथवा वे राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय रूप से संघर्ष रत दिखाई देते हैं। वे जानते थे बिना राजनैतिक स्वतंत्रता के उत्तम समाज-व्यवस्था का निर्माण नहीं हो सकता है। यही कारण है कि वे संघर्ष में इस पक्ष की उपेक्षा नहीं करते।

प्रेमचन्द मानदण्डों और मूल्यों की प्रतिस्थापना के लिए समाज के किसी भी शक्तिशाली वर्ग से संघर्ष करने के लिए कमर कसे हुए तैयार दिखाई देते हैं। ये संघर्ष चाहे उन्हें महन्तों पुजारियों से करना पड़े, चाहे सामन्त वर्ग के राजे-महाराजों, ताल्लुकेदारों, जमींदारों अथवा उनको समर्थन देने वाली सरकार से करना पड़े, चाहे महाजनों, उद्योगपतियों, पूंजीपतियों, धनाधीशों से करना पड़े, चाहे सीधे सरकार से वे पीछे हटने का नाम नहीं लेते। प्रेमचन्द एक कुशल समाजशास्त्री की भांति समाज की बुराइयों को दूर करने का यत्न करते हुए दिखाई देते हैं। वे उन्हें दूर करने का उपाय ही नहीं सोचते, मात्र सुझाव ही नहीं देते बल्कि उनसे मुक्ति पाने के लिए किसी भी शक्ति से टकराने के लिए उद्यत रहते हैं। समाजशास्त्री का काम तो केवल उपाय सोचना और सुझाव देना है परन्तु प्रेमचन्द साहित्यकार के दायित्व को यहां तक सीमित न रखकर मुक्ति के लिए संघर्ष तक विस्तृत कर देते हैं।

समाजशास्त्र और प्रेमचन्द

प्रेमचन्द का साहित्य समाज प्रधान साहित्य है जिसकी सामाजिकता की ओर संक्षेप में संकेत किया जा चुका है। समाजशास्त्र समाज की व्याख्या करता है, सामाजिक मूल्यों का अवमूल्यन करके उन्हें समाज के लिए उपयोगी बनाने की सलाह देता है, वह सामाजिक युग बोध के साथ सामाजिक विकृतियों पर दृष्टि डालता है और उनसे छुटकारा पाने के लिए प्रयत्न करता है। समाजशास्त्र सामाजिक संस्थाओं, समूहों, समुदायों का अध्ययन करता है और उनकी उपयोगिताओं को भी आंकता है। वह सामाजिक रीति-रिवाजों, परम्पराओं के संदर्भ में सामाजिक सम्बन्धों को भी देखता है और उन संबन्धों को सुदृढ़ करता है। साहित्य का उद्देश्य भी इससे भिन्न नहीं है। साहित्य अपने सैद्धान्तिक रूप में सौन्दर्य बोध के साथ अपने व्यावहारिक रूप में मानव का, मानव-समाज का उपकार करना चाहता है। समाज में जो कुछ भी विकृत, विशृंखलित, त्रुटिपूर्ण, दोषयुक्त अथवा विसंगतियुक्त होता है उसे दूर करने के लिए साहित्य अनुगामी होता है।

समाज के वर्तमान दूषित संगठन में प्रेमचन्द समाजशास्त्र और साहित्य के इस दायित्व को समझते थे। उन्होंने हिन्दू विश्वविद्यालय के बिहारी एसोसिएशन के वार्षिकोत्सव पर अपने लिखित भाषण में १६३३ में कहा थी "समाज का वर्तमान संगठन दूषित है। दुःख, दरिद्रता, अन्याय, ईर्ष्या, द्वेष आदि मनोविकार, जिनके कारण संसार नरक के समान हो रहा है, इनका कारण दूषित समाज-संगठन है। सोशियालोजी के साथ साहित्य भी इसी प्रश्न को हल करने में लगा हुआ है।"[१]

प्रेमचन्द को समाजशास्त्र का ज्ञान था उन्होंने समाजशास्त्र का अध्ययन किया था। अमृतराय उनके सम्बन्ध में लिखते हैं - "मातृभूमि को मां के रूप में उसने पूजा है जो कि उसके भीतर का गहरा भारतीय संस्कार है, हिन्दू संस्कार है, स्वदेशी और अग्नियुग का संस्कार है, तिलक और बंकिम का संस्कार है। लेकिन अपने जीवन अनुभव से वह यह भी जानता है कि हवाई देश प्रेम काफी नहीं है। देश का असल मतलब देश का आदमी, उसका सुख-दुख। वह इतिहास और समाजशास्त्र का विद्यार्थी है और उसे पता है कि आजादी के बिना कभी देश उन्नति नहीं करता।"[२] ऐसा भी पता चलता है कि प्रेमचन्द ने समाजशास्त्र का अध्ययन ही नहीं अध्यापन कार्य भी किया था। उनका एक शिष्य छात्राध्यापक मुमताज अहमद लिखता है - "वे समाजशास्त्र पढ़ाते थे। इतिहास में उनकी अत्यधिक रुचि थी। उनकी अध्यापन शैली हृदयग्राहिणी थी।"[३]

प्रेमचन्द दूषित समाज संगठन के सुधार के लिए समाजशास्त्र की उपयोगिता से ही परिचित नहीं थे, वे मात्र समाजशास्त्र के विद्यार्थी और अध्यापक ही नहीं थे बल्कि साहित्य सृजन के लिए समाजशास्त्र के अध्ययन को आवश्यक मानते थे। राजनीति, समाजशास्त्र और मनोविज्ञान से अनभिज्ञ साहित्यकार को वे साहित्यकार नहीं मानते थे। उन्होंने हिन्दी के साहित्यकारों में इसका अभाव देखा था। 'प्रगतिशील लेखक संघ' के अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने हिन्दी साहित्यकारों का उल्लेख करते हुए कहा था - "आज तो हिन्दी में साहित्यकार के लिए प्रवृत्तिमात्र अलम् समझी जाती है और किसी प्रकार की तैयारी की उसे आवश्यकता नहीं है। वह राजनीति, समाजशास्त्र या मनोविज्ञान से सर्वथा अपरिचित हो, फिर भी वह साहित्यकार है।"[४] प्रेमचन्द

- -

१— अमृतराय (सं) 'विविध प्रसंग' भाग ३, १६६२ (इलाहाबाद), पृ० ५५

२— अमृतराय: 'कलम का सिपाही' १६६२ (इलाहाबाद), पृ० १६०

३— मदन गोपाल: 'कलम का मजदूर' १६६५ (दिल्ली) पृ० ८८

४— 'कुछ विचार' पृ० २१

साहित्यकार को समाज का अगुवा, पथ-प्रदर्शक और नेता मानते थे । उन्होंने इसी भाषण में कहा था - "हम तो समाज का झंडा लेकर चलने वाले सिपाही हैं ।"[1] वह यह भी मानते थे - "साहित्य सामाजिक आदर्शों का स्रष्टा है ।"[2] समाजशास्त्री समाज को गतिशील बनाने और उसे नियंत्रित करने का उपक्रम करता है । प्रेमचन्द की दृष्टि में साहित्यकार समाज के अगुवा के रूप में यही करता है । समाजशास्त्र सामाजिक मूल्यों और आदर्शों की परख करके उन्हें युगीन समाज के लिए उपयोगी बनाता है । प्रेमचन्द साहित्य को सामाजिक आदर्शों का सूचक मानते हैं । यह सारे तथ्य प्रेमचन्द की साहित्यिक समाजशास्त्रीय दृष्टि के परिचायक हैं ।

समाज के संदर्भ में साहित्यकार प्रेमचन्द का सामाजिक दृष्टिकोण समाजशास्त्री से भिन्न नहीं है । यह वह अवलम्ब है जिसके आधार पर प्रेमचन्द साहित्य की समाजशास्त्रीय व्याख्या का निर्णय किया गया है । अगले अध्यायों में हम प्रेमचन्द-साहित्य में चित्रित सामाजिक जीवन, उसके विविध रूपों तथा क्षेत्रों के आधार पर उनके साहित्य का समाजशास्त्रीय विवेचन करने का प्रयास करेंगे ।

- -

१-- 'कुछ विचार' पृ० २३

२-- 'कुछ विचार' पृ० [illegible]

तृतीय अध्याय -

प्रेमचन्द साहित्य में गांव और शहर : समाजशास्त्रीय दृष्टि

-:o:-

प्रेमचन्द-साहित्य में गांव और शहर : समाजशास्त्रीय दृष्टि

प्रेमचन्द-साहित्य की सीमा के अन्तर्गत गांव और शहर दोनों आ जाते हैं। प्रेमचन्द गांव जीवन के कुशल चितेरे थे। डा० इन्द्रनाथ मदान के अनुसार "ग्राम्य-जीवन का चित्रण करने में प्रेमचन्द अग्रदूत हैं और उन्होंने इस जीवन का चित्रण करते समय उसके विकास और विस्तार के एक विशेष समय में अपने प्रगतिशील दृष्टिकोण का परिचय दिया है।"[1] प्रेमचन्द ने केवल ग्राम्य जीवन का चित्र ही प्रस्तुत नहीं किया वरन् उसकी समस्याओं के समाधान का प्रयास करते हुए उसे प्रगतिशील बनाने का यत्न भी किया है। 'प्रेमाश्रम' और 'गोदान' उपन्यासों का कथानक मुख्य रूप से ग्रामीण जीवन से लिया गया है। 'कर्मभूमि' उपन्यास में भी ग्राम्य जीवन का सफल चित्रण है। इनके अलावा उनके प्रत्येक उपन्यास में गांव जीवन के प्रति सहानुभूति रखने वाले पात्र हैं और ग्राम-जीवन का चित्रण थोड़ा-बहुत सब में हुआ है। प्रेमचन्द के गल्प-साहित्य में ग्रामीण जीवन को प्रधानता मिली है। बनारसीदास के नाम लिखे गये अपने ३ जून १९३२ के पत्र में प्रेमचन्द ने इस तथ्य का उल्लेख करते हुए लिखा था - "हिन्दी में गल्प साहित्य अभी अत्यंत प्रारम्भिक दशा में है - किसी ने अभी तक समाज के किसी विशेष अंग का विशेष रूप से अध्ययन नहीं किया। ----- मैंने कृषक समाज को लिया मगर अभी कितने ही ऐसे समाज पड़े हैं जिन पर रोशनी डालने की जरूरत है"[2] ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित प्रेमचन्द की प्रमुख कहानियों में 'पंच परमेश्वर', 'सवा सेर गेहूं', 'अलग्योझा', 'ठाकुर का कुंआ', 'मंदिर', 'शंखनाद', 'सुजान भगत', 'बड़े घर की बेटी', 'बैर का अंत', 'दो भाई', 'बाबा-भीखा', 'सुभद्रा', 'विध्वंस', 'सुभागी', 'पूस की रात', 'गुल्ली डंडा', 'ज्योति', 'नेऊर', 'गरीब की हाय', 'बलिदान', 'परीक्षा', 'आधार', 'मुक्ति मार्ग' आदि मानसरोवर खण्डों में संगृहीत हैं। इनके अलावा गुप्त धन भाग १ तथा भाग २ में संगृहीत 'अंधेर', 'सिर्फ एक आवाज', 'बांका जमींदार', 'कमंख का पुतला', 'होली की छुट्टी', 'स्वांग', 'सौत और देवी' कहानियां भी ग्रामीण जीवन की महत्वपूर्ण कहानियां हैं।

१— इन्द्रनाथ मदान (सं०): 'प्रेमचन्द: चिन्तन और कला', (संस्करण नहीं है), प्रयाग, पृ० २१३

२— चिट्ठी पत्री भाग २, पृ० ७६

गांव-जीवन की भांति प्रेमचन्द साहित्य में शहर-जीवन का भी चित्रण किया गया है। उनके उपन्यासों में 'वरदान', 'सेवासदन', 'रंगभूमि', 'कायाकल्प', 'प्रतिज्ञा' तथा 'गबन' के कथानक मुख्य रूप से शहर जीवन से लिए गये हैं। इसके अलावा 'प्रेमाश्रम', 'कर्मभूमि' तथा 'गोदान' में भी शहर जीवन से कथानक लिए गये हैं। इन कथानकों के मध्य शहर-जीवन के विभिन्न पक्षों का चित्रण होता गया है। शहर-जीवन से सम्बन्धित प्रेमचन्द की प्रमुख कहानियों में 'सभ्यता का रहस्य', 'डामुल का कैदी', 'लांछन', 'चकमा', 'खेल', 'जुलूस', 'शराब की दुकान', 'मैकू', 'निर्वासित', 'सौभाग्य के कोड़े', 'कानूनी कुमार', 'नया विवाह', 'मिस पदमा', 'कुसुम', 'जीवन का शाप', 'मांगे की घड़ी', 'मृतक भोज', 'माड़े का टट्टू', 'पत्नी से पति', 'आदर्श विरोध', 'सुहाग की साड़ी', 'बैंक का दीवाला', 'सत्याग्रह', 'प्रेमसूत्र', 'इज्जत का खून', 'प्रतिशोध', 'आखिरी तोहफा', 'बोहनी', 'नसीहतों का दफ्तर' तथा 'दो कब्रें' आदि हैं। प्रेमचन्द की नगर-जीवन से सम्बन्धित कहानियों में भी शहर जीवन के विविध पक्षों पर प्रकाश पड़ा है। प्रेमचन्द साहित्य में नगर जीवन के विभिन्न पक्षों के चित्रण के सम्बन्ध में डा० यज्ञदत्त शर्मा के विचार दृष्टव्य हैं। उनके अनुसार - "प्रेमचन्द द्वारा किया गया शहर का निरूपण यथार्थ और सत्य के निकट है। प्रेमचन्द साहित्य में हमें शहर जीवन के तमाम पक्षों का चित्रण मिलता है। शहरों में रहने वाले दंभ - अभिमानी व्यक्तियों का चित्रण उनके कथा-साहित्य में प्रत्येक जगह है। ------ उद्योगों मिलों अथवा व्यवसायों की चर्चा प्रेमचन्द जी ने जहां कहीं भी की है, वह शहर जीवन में ही है।

प्रेमचन्द कथा-साहित्य में हमें शहर जीवन से सम्बद्ध जिन वर्गों का चित्र मिलता है, उनमें सामन्त वर्ग, उद्योगपति, मिल-मालिक, मध्य वर्ग के व्यवसायी, अधिकारी, वकील, डाक्टर, संपादक, अध्यापक, क्लर्क तथा मजदूर सब आ जाते हैं। इस जीवन के अन्य पहलुओं पर जो प्रकाश पड़ता है, उनमें शिक्षा, संस्कृति, पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन, रहन-सहन, वेश-भूषा, स्थानीय नगर, प्रशासन आदि आते हैं।"[1] इस प्रकार से स्पष्ट है कि प्रेमचन्द साहित्य में नगर-जीवन से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश पड़ा है। जिससे उनके जीवन का बोध होता है। इसी आधार पर

- -

१— डा० यज्ञदत्त शर्मा: 'प्रेमचन्द कथा-साहित्य में शहरी जीवन', इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी०फिल् उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय का अन्तिम अंश।

यह निर्णय लिया जा सकता है । ग्राम तथा शहर जीवन का समाजशास्त्रीय दृष्टि से अच्छा अध्ययन सम्भव है । इस अध्ययन से पूर्व हमें ग्रामीण तथा शहरी जीवन से सम्बन्धित समाजशास्त्रीय अध्ययन विधियों पर विचार कर लेना चाहिए ।

गांव और शहर : समाजशास्त्रीय अध्ययन-विधि

ग्रामीण और शहरी जीवन के अध्ययन के लिए समाजशास्त्र के अन्तर्गत ग्रामीण समाजशास्त्र और शहरी समाजशास्त्र दो भिन्न शाखाएं प्रचलित हो गई हैं । इन शाखाओं को विभिन्न ढंगों से परिभाषित किया गया है । इनमें शहरी समाजशास्त्र (अरबन सोशियलाजी) ग्रामीण समाजशास्त्र (रूरल सोशियलाजी) से पहले प्रचलित हुआ । ग्रामीण समाजशास्त्र विज्ञान शास्त्र के अध्ययन के प्रारम्भिक अवस्था से ही प्रचलित हो गया । वास्तव में ग्रामीण समाजशास्त्र प्रारम्भ में शहरी समाजशास्त्र के विरोध के रूप में उत्पन्न हुआ । नेल्स अन्डर्सन और के० ईश्वरन ने इस तथ्य का उल्लेख करते हुए लिखा है कि 'संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में ग्रामीण समाजशास्त्र का अध्ययन' शहरी आंदोलन के विरोध में ग्रामीण क्षेत्रों के जीवन को सुधारने और उसकी प्रगति के उद्देश्य से प्रारम्भ हुआ । इसकी प्रेरणाएँ गांवों के पक्ष में शहर के विस्तार के विरुद्ध सुरक्षात्मक थी । इन्होंने आगे यह भी स्पष्ट किया है कि अब वह स्थिति नहीं रही है शहरी समाजशास्त्र भी पहले कुछ इसी तरह की विरोधीधारा के रूप में प्रारम्भ हुआ परन्तु अब दोनों अपने उद्देश्यों में अध्ययन में विषयों की विभिन्नता के होते हुए भी एकरूपता की ओर बढ़ रहे हैं ।'[१] मेल० जे० रेसिट्रस ने भी अमेरिका में शहरी समाजशास्त्र

- -

१-- "When rural socielogy began in the united states it was in part an Anti-urban movement with the aim of Sustaining and improving rural life. Its motivations were defensive in behalf of the country against the encreaching city. This does not describe rural socielogy today, a half-century later, or reflect the attitudes of most rural sociologists, urban sociology began with a some what opposite orientation, but the two sociologies tend more and more to become integrated in their motivations, although separate in their subject matter."

नेल्स अन्डर्सन एण्ड के० ईश्वरन: "अरबन सोशियॉलॉजी",१९६६ (नई दिल्ली, न्यूयार्क),पृ० ६

और ग्रामीण समाजशास्त्र के अंतर की सूचना देते हुए कहा है कि यह अंतर द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व तक बना रहा। उनके अनुसार यह विभाजन दोनों स्थानों में एक तरह के व्यवहार होने के बावजूद भी बना रहा। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि वास्तविकता को सामने लाने की इच्छा से प्रेरित सम्भवत: प्रारम्भिक दिनों में यह उचित ढंग था जिसने इन दो क्षेत्रों में प्रत्येक को अवसर दिया कि वे विभिन्न विषयों का जो कि किसी एक क्षेत्र के हों या दोनों के हों, अध्ययन के लिए चुन सकें।[१] भारतवर्ष में भी सामाजिक विषयों के अध्येयताओं ने स्वतंत्रता के पहले जो कार्य किए वह नगर और ग्राम-जीवन में अलग-अलग विभाजित थे। परन्तु स्वतंत्रता के बाद यह विभाजन समाप्त हो गया और यह प्रयास किया गया कि गांव और शहर का अध्ययन सामान्य नियमों के आधार पर किया जाय। ए० के० सरन ने इस ओर संकेत करते हुए कहा है कि भारतीय स्वतंत्रता ने सामाजिक वैज्ञानिकों के रूख में महत्वपूर्ण परिवर्तन किया है। महत्वपूर्ण बात गांव और शहर दोनों स्थानों की वास्तविक स्थिति के अध्ययन की रुचि है जिसके आधार पर सामान्य तरीकों का उपयोग अच्छे सामाजिक सम्बन्धों तथा अन्य बातों के लिए किया जा सके।[२]

- -

१-- "This rural-urban distinction preoccupied sociologists of the pre-World War II days: as a consequence urban sociologists were interested in all phenomena that occurred within the City; whatever took place in the rural areas came within the purview of the rural sociologist. This division occurred despite the fact that of times the same kinds of behaviour happened in both places. This desire to curve out the proper realm of the two sociologies: rural and urban, was perhaps an appropriate approach for an earlier day that permitted each of the two fields to take unto itself a variety of topics that belonged to Neither or both." जे० जोसेफ एस० राउसेक, 'कन्टेम्पोरेरी सोशियॉलोजी' १९५८ (न्यूयार्क), पृ० ३२४

२-- "Independence has brought an important change in the attitude of the Indian Social Scientist.... The dominant trend accordingly is to make an intensive study of the actual state of

(शेष अगले पृष्ठ पर)

पिछले दो दशकों से संसार के विभिन्न देशों में सभ्यता और शिक्षा के विकास ने गांव और शहर के स्थाई अंतरों को समाप्त सा कर दिया है। डा० आर० एन० शर्मा के अनुसार गांव और शहर के लिए कोई भी ऐसी सर्वमान्य परिभाषा नहीं है जिससे गांव और शहर में अंतर जाना जा सके।[१] रेविट्ज के अनुसार अमेरिकी समाज में गांव और शहर को अलग करने वाली ऐसी महत्वपूर्ण विभाजक रेखायें नहीं और स्पष्ट्यान्ति हैं जो कि दोनों को अलग कर सकें। उनके अनुसार ~~क्योंकि~~ हमारा समाज अभिन्नता की ओर प्रगतिशील है।[२] जे० एलेन बीगल और चार्ल्स पी० लूमिस ने भी ग्रामीण समाजशास्त्र के उत्थान के सम्बन्ध में कहा है कि संसार के बहुत से भागों में इसका उत्थान अधिक उचित रूप में ग्रामीण शहरी समाजशास्त्र (रूरल-अरबन सोशियलाजी) के

- -

affairs both in the villages and the cities with a view to finding out how best the general characteristics, attitude, habits and means of communication could be utilized for introducting without too much maladjustment, economic and technological change and corresponding emergent social relationships."

एस० के० सरन: 'इण्डिया', दे० जोसेफ एस० टाउसेक (सं०), 'कन्टेम्पोरेरी सोशियॉलॉजी', १९५८ (न्यूयार्क), पृ० १०२८-२९

१-- डा० आर० एन० शर्मा: 'इण्डियन', 'रूरल सोशियॉलॉजी' १९६० (कानपुर) दे० पृ० ३९

२-- "The point is this: today's American Society is most accurately seen as mass Society within which there are very few important social dividing lines separating rural dweller and city dweller. Because our society is increasingly undifferentiated between a distinctly rural and distinctly urban realm, so too our Sociology ought to become increasingly undifferentiated."

मैल्क जे० रविट्ज: 'अरबन सोशियॉलॉजी', दे० जोसेफ एस० राउसेक (सं०) 'कन्टेम्पोरेरी सोशियॉलॉजी', १९५८, (न्यूयार्क), पृ० ३२३-३२४

रूप में हुआ है, जिसका आधार तुलनात्मक रहा है ।[१] ग्रामीण और शहरी समाजशास्त्र के अध्ययन के तुलनात्मक विधि की ओर रेविट्ज ने भी संकेत किया है । उनके अनुसार ग्रामीण और शहरी समाजशास्त्र का पिछला अध्ययन अधिक मात्रा में दो विभिन्न क्षेत्रों के विभिन्न रूपों के तुलना में सम्पन्न हुआ है । समाज में बहुत सा आवश्यक व्याख्यात्मक कार्य हुआ जो कि वास्तव में विभाजित था । उन्होंने यह भी कहा है कि यह कार्य ऐतिहासिक फैशन के रूप में चलता रहेगा ।[२]

प्रश्न यह उठता है कि प्रेमचन्द साहित्य के ग्राम्य और शहर जीवन के अध्ययन के लिए समाजशास्त्र की कौन सी विधि अपनाई जाय ? यह प्रश्न इसलिए उठ खड़ा हुआ क्योंकि हम पीछे देख चुके हैं कि ग्राम्य और शहर जीवन के अध्ययन के लिए दो तरह की समाजशास्त्र की विभिन्न शाखायें ग्रामीण समाजशास्त्र तथा शहरी समाजशास्त्र प्रचलित रही हैं । यह भी कहा गया है कि अब उनका भेद मिटता जा रहा है । तीसरी बात जो इस सम्बन्ध में है वह तुलनात्मक अध्ययन की है । इस सम्बन्ध में निर्णय लेने के पूर्व हमें भारतीय समाजशास्त्री डी० पी० मुकर्जी के विचारों

- -

१-- "Rural Sociology, as it has developed in many parts of the World, is more properly a "Rural-Urban Sociology", that is, one segment or the other, is used as a base line of comparison against which deviations may be measured."
जे० एलेन बीगेल एण्ड चार्ल्स पी० लूमिस: `रूरल सोशियोलॉजी`, देo जोसेफ एस० राउसेक (सं०) `कन्टेम्पोररी सोशियोलॉजी` १९५८ (न्यूयार्क), पृ० ३५८

२-- "Much of the past study of rural and urban Sociology was devoted to a comparison of the varying characteristics of these two different locales. Much of the necessary descriptive work was thereby done in a Society that was actually divided, to contime to treat these differences in any but a historical fashion will be to contime to play with concepts that have out-lived the reality that suggested them."
मैक्स जे० रेविट्ज: `अरबन सोशियोलॉजी`, दे० जोसेफ एस० राउसेक (सं०): `कन्टेम्पोररी सोशियोलॉजी, १९५८, (न्यूयार्क), पृ० ३२५

पर दृष्टि डाल लेनी चाहिए जिनके अनुसार "भारतीय समाजशास्त्री के लिए समाजशास्त्री होना पर्याप्त नहीं है। उसको पहले भारतीय होना चाहिए।"[१] इसके साथ ही हमें राम कृष्ण मुकर्जी के भारतीय नगरों और गांवों के अंतर के संदर्भ में कहे गए वाक्यों पर भी विचार कर लेना चाहिए। उनके अनुसार "ग्रामीण और शहरी एकता सम्बन्धी सामान्य विचार पुन: विचार योग्य हैं। इसके लिए यह तर्क दिया जायगा कि यदि यह मान लिया जाय कि कोई ऐसा विशेष नया शहरी सामाजिक संगठन ग्रामीण संगठन के विरोध में नहीं है या शहरी मनोवृत्ति और ग्रामीण मनोवृत्ति में विशेष अंतर नहीं है तब भी ग्रामीण और शहरी अलगाव ने समाज के आर्थिक संगठन तथा सांस्कृतिक रूपों को प्रभावित किया है, और अंतर बनाए रखने में यह अपनी भूमिका अदा करेंगे।"[२] अभी तक भारतीय गांवों और शहरों में अंतर बना हुआ है। पश्चिमी देशों अमेरिका और योरप की भांति भारतीय गांव और शहर विभिन्न संदर्भों में एक नहीं हुए हैं। प्रेमचन्द जी के समय तो यह अलगाव

- -

१-- "Thus it is that it is not enough for the Indian sociologists to be a sociologist. He must be an Indian first."
डी० पी० मुकर्जी: 'इण्डियन ट्रेडिशन एण्ड सोशल चेन्ज', दे० आर० एन० सक्सेना सोशियलाजी, 'सोशल रिसर्च एण्ड सोशल प्राब्लेम इन इण्डिया' १९६१ (बम्बई), पृ० २३२

२-- "The concept of rural-urban continuum thus comes up again for consideration. For it would be argued that even if it be accepted that there is not yet a specific urban brand of social organization as against a rural brand, or an urban mentality as distinct from a rural mentality, the rural-urban stratification effected in society in terms of economic organisation and the consequent cultural impulses would have its in due course in making this difference."
रामकृष्ण मुकर्जी: 'द सोशियोलाजिस्ट ऐण्ड सोशल चेन्ज इन इण्डिया टुडे', १९६५, (न्यू देहली), पृ० ३५

प्राचीन काल के गांव और नगर तथा आजादी के बाद के गांव और नगरों से अधिक महत्वपूर्ण था । अत: हमारे लिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम प्रेमचन्द-साहित्य में चित्रित गांव और नगर जीवन की ग्रामीण और शहरी समाजशास्त्र के अन्तर्गत अलग अलग व्याख्या करें । इसके साथ यह भी आवश्यक है कि आवश्यकता पड़ने पर तुलनात्मक विधि अपना ली जाय । यहां पर यह भी उल्लेखनीय है कि समाजशास्त्र के सामान्य नियमों की अवहेलना इस अध्ययन में नहीं की जा सकती ।

तृतीय अध्याय -

प्रथम प्रकरण - ग्रामीण जीवन

-:o:-

ग्रामीण जीवन तथा ग्रामीण समाजशास्त्र

ग्राम जीवन मुख्य रूप से कृषि पर आधारित जीवन है । जनसंख्या की न्यूनता, जीवन में सामूहिकता और सरलता, प्रकृति से सीधा सम्बन्ध, परिश्रम, सादगी, एकता, सामाजिक स्थिरता तथा सामुदायिक जीवन आदि ग्रामीण जीवन की प्रमुख विशेषताएं हैं । भारतीय गांवों के सम्बन्ध में कुछ विशेषताएं और जोड़ी जा सकती है वह है दरिद्रता, अशिक्षा तथा उनका पिछड़ापन । वैदिक काल और हिन्दू राजाओं के बाद से भारतवर्ष में गांवों की स्थिति दिन-प्रतिदिन गिरती गई । विशेष रूप से उत्तर भारत में, जो प्रेमचन्द साहित्य का मुख्य क्षेत्र है, विदेशी शासकों का प्रभुत्व रहा और सरल उत्तर भारत की ग्रामीण जनता लूटी खसोटी जाती रही । अंग्रेजों के समय भी ठेकेदारी और जमींदारी व्यवस्था ने गांव की जनता को दरिद्र बनाने के साथ ही ठेकेदारों और जमींदारों का दास बना दिया । ब्रिटिश प्रशासन के अधिकारियों ने भी ग्रामीणों पर कम अत्याचार नहीं किए । पटवारी, थानेदार यहां तक चौकीदार तक अपनी कोठी भरते रहे । साहूकारों ने एक नए वर्ग ने तो ग्रामीणों की स्थिति को और भी अधिक दयनीय बना दिया । प्रेमचन्द साहित्य में गांवों के संदर्भ में इन्हीं सबका चित्रण हुआ है । प्रेमचन्द साहित्य में ग्रामीण जीवन के समाजशास्त्रीय अध्ययन के पूर्व हमें ग्रामीण समाजशास्त्र तथा उसके विस्तार क्षेत्र पर विचार कर लेना चाहिए ।

ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण जीवन का वैज्ञानिक अध्ययन करता है । ड्वाइट सैन्डर्सन के अनुसार "ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण पर्यावरण में जीवन का समाजशास्त्र है ।"[१] डा० आर० एन० शर्मा के अनुसार "ग्रामीण समाजशास्त्र जैसा कि नाम से विदित है, गांव अथवा ग्रामीण समाज का शास्त्र है । दूसरे शब्दों में यह समाजशास्त्र की वह शाखा है जो कि ग्रामीण समाज का अध्ययन करती है ।"[२] ग्रामीण जीवन में भी

- -

१-- "Rural sociology is the sociology of life in rural environment".
ड्वाइट सैन्डर्सन: "रूरल सोशियोलॉजी ऐण्ड रूरल सोशल आर्गनाइजेशन", १९४२ (न्यूयार्क) पृ० १०

२-- "Rural sociology, as the name indicates, is the sociology of the village or rural society. In other words, it is that branch of sociology which studies rural society."
डा० आर० एन० शर्मा: "इण्डियन रूरल सोशियोलॉजी", १९६० (कानपुर) पृ० १

दूसरे समाजों की भांति विशेष प्रकार के सामाजिक सम्बन्ध, सामाजिक संगठन, सामाजिक क्रिया-कलाप, सामाजिक परिवर्तन तथा सामाजिक नियंत्रण आदि होते हैं। ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण संदर्भों में इनका भी अध्ययन करता है।

जे० एलेन बीगेल तथा चार्ल्स पी० लूमिस ने अपने निबन्ध ग्रामीण समाजशास्त्र (रूरल सोशियलाजी) में इसके अन्तर्गत अध्ययन किये जाने वाले जिन विषयों की ओर संकेत किया है उनमें ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था और उसके विकसित तत्व, ग्रामीण परिवार व्यवस्था, ग्रामीण परिस्थिति शास्त्रीय व्यवस्था, विभिन्न स्तरीय ग्रामीण व्यवस्थाएं (सामाजिक वर्ग, धार्मिक स्तर तथा विभिन्न स्तरों के व्यक्तियों का अध्ययन) तथा धर्म, शिक्षा, पेशा तथा प्रशासन आदि पर केन्द्रित व्यवस्थाएं आदि हैं।"[1] लारी नेल्सन के अनुसार 'ग्रामीण समाजशास्त्र के अध्ययन विषय ग्रामीण परिवेश में विभिन्न वर्गों की प्रगति की व्याख्या तथा उनका चित्रण है।'[2] ड्वाइट सैन्डर्सन ने ग्रामीण समाजशास्त्र के वैज्ञानिक ढंग के अध्ययन सम्बन्धी कार्यों की ओर संकेत करते हुए कहा है कि 'जैसा हम विचार करते हैं ग्रामीण समाजशास्त्र का विज्ञान के रूप में प्रथम प्रयास घटनाओं का चित्रण होना चाहिए जिसके साथ ही यह ग्रामीण समाज के विभिन्न संगठनों के रूपों, परिवार, समुदाय, चर्च (धार्मिक संगठन), स्कूल और अनेक प्रकार की संगठित संस्थाओं, और असामान्य असंगठित वर्गों का भी अध्ययन करता है जो कि वर्तमान ग्रामीण जीवन में अधिक महत्वपूर्ण होते जा रहे हैं।"[3]

- -

१— जे० एलेन बीगेल एण्ड चार्ल्स पी० लूमिस: 'रूरल सोशियोलॉजी' ज़े० जोसेफ एस० राउसेक 'कन्टेम्पोरेरी सोशियोलॉजी', १९५८, (न्यूयार्क), पृ० ३७७-४०९

२— "The subject matter of rural sociology is the description and analysis of the progress if various groups as they exist in rural environment."

लारी नेल्सन: 'रूरल सोशियोलॉजी', १९५२, (न्यूयार्क), पृ० ३

३— "As we conceive it, therefore, the primary effort of rural sociology as a science should be the accurate description of the Phenomena with which it deals, namely the forms of association in rural society, the family, the community, the church, the school, the lodge and the numerous organized societies and informal,

(शेष अगले पृष्ठ पर)

बर्ट्रेन्ड और सहयोगियों के अनुसार "अपने विस्तृत परिभाषित रूप में ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण परिवेश में मानव सम्बन्धों का अध्ययन है।"[१]

ग्रामीण समाजशास्त्र के कार्यों और उसके वैज्ञानिक स्वरूप को समझने के लिए हमें प्रसिद्ध समाजशास्त्री जे० एम० जिलेट के ग्रामीण समाजशास्त्र सम्बन्धी विचारों को जान लेना चाहिए। जिलेट के अनुसार "ग्रामीण समाजशास्त्र का महानतम कार्य, निर्मित होने वाले समुदायों के जीवन की सहानुभूतिक बोध की सम्प्राप्ति तथा उनमें सामाजिक प्रयत्नों के उचित सिद्धान्तों का प्रयोग है। जो सम्भवत: कभी भी रहेगा। उनके अनुसार यदि ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण जीवन की समस्याओं को उचित ढंग से समझे और उनका निराकरण करे तो यह अधिक वैज्ञानिक होगा, भले ही वह अपनी सीमित और शीघ्रतम रूप में सामान्य समाजशास्त्र से भिन्न है। आगे वे कहते हैं कि इसका सबसे पहला कर्तव्य ग्रामीण समुदायों का उनकी दशाओं के संदर्भ में बोध है और उसका दूसरा कार्य कार्य में उचित ढंग का निर्माण है। वे पुन: कहते हैं कि हम ग्रामीण समाजशास्त्र को समाजशास्त्र की उस शाखा के रूप में सोच सकते हैं जो उचित ढंग से ग्रामीण समुदायों की दशाओं तथा प्रवृत्तियों की खोज करती है तथा प्रगति के लिए सिद्धान्त निर्मित करती है।"[२]

- -

unorganized groups which are becoming more numerous in modern rural life."

डविट सैन्डर्सन: "रूरल सोशियोलॉजी ऐण्ड रूरल सोशल अर्गनाइजेशन", १९४६ (न्यूयार्क) पृ० १२

१— "In its broadest definition, rural sociology is the study of human relationships in rural environment."

बर्ट्रेन्ड ऐण्ड एसोसिएट्स: "रूरल सोशियोलॉजी," ऐन एनालिसिस ऑव कन्टेम्पोरेरी रूरल लाइफ", १९५८ (न्यूयार्क), पृ० ८

२— "The great business of rural sociology is, and perhaps ever will be, the attainment of sympathetic understanding of the life of farming communities and the application to them of rational principles of social endeavour. But general sociology, at its best, is but a wrought-out structure of intellectual problems, and if

(शेष अगले पृष्ठ पर)

रामकृष्ण मुकर्जी ने भारतीय गांवों के समाजशास्त्रीय अध्ययन की आवश्यकता पर बल देते हुए गांव जीवन के विविध पक्षों के अध्ययन की उपयोगिता पर बल दिया है। उन्होंने आधुनिक भारतीय ग्रामीण जीवन के प्रति किए गए कार्यों को कम बताते हुए गांवों में होने वाले परिवर्तनों के अध्ययन पर भी बल दिया है।[1] ग्रामीण समाजशास्त्र के अन्तर्गत गांव का सम्पूर्ण जीवन भौगोलिक दशा, भूमि व्यवस्था, आर्थिक स्थिति, गांवों में परिवर्तित समुदाय, उसकी समस्यायें, संस्कृति तथा प्रशासनिक रूप आदि सभी आ जाते हैं। अतः प्रेमचन्द साहित्य में गांव जीवन का अध्ययन इन्हीं विभिन्न रूपों में करना उचित होगा। सर्वप्रथम हमें प्रेमचन्द के गांव, प्रेम और उनकी इस जीवन के प्रति सहानुभूति पर विचार कर लेना होगा।

प्रेमचन्द का ग्राम-प्रेम : ग्राम-जीवन से सहानुभूति

प्रेमचन्द के 'वरदान' उपन्यास का कथानक मुख्य रूप से शहर जीवन से लिया गया है परन्तु उसके दो पात्र प्रतापचन्द (बाला जी) तथा विरजन का गांव से सम्बन्ध बना हुआ है। विरजन गांव में जाकर दीन-हीन ग्रामीणों के पास रहती है और उनके रीति-रिवाज परम्पराओं और स्थितियों का चित्रण अपने पत्रों में करती है।

- -

rural sociology pursues its mission of understanding and solving in a rational manner the issues of rural life, it will become scientific, but will differ essentially from sociology in general by reason of its more restricted and immediate sphere. Its first imperative is to understand rural communities in terms of their conditions. Its next imperative is to formulate right ways of action. We may think of rural sociology as that branch of sociology which systematically studies rural communities to discover their conditions and tendencies, and to formulate principles of progress."

जे० एल० गिलिट: "रूरल सोशियोलॉजी", १९२२, (न्यूयार्क), पृ० ६

१— रामकृष्ण मुकर्जी: "रूरल डिस्ट्रिक्टस ऐण्ड विलेज स्टडीज इन इण्डिया" अंश द्रष्टव्य है दे० रामकृष्ण मुकर्जी: "द सोशियोलॉजिस्ट ऐण्ड सोशल चेन्ज इन इण्डिया टुडे", १९६५ (न्यू देहली) पृ० १६०-१७८

बाला जी गांवों में जाकर ग्रामवासियों की सेवा-सहायता करते रहते हैं। उनके दूसरे उपन्यास 'सेवासदन' में भी ग्रामीणों पर 'बांके बिहारी जी' के नाम पर अत्याचार करने वाले महंत रामदास की चर्चा प्रारम्भ में ही की गई है। शहर जीवन के कथानक के मध्य भी प्रेमचन्द गांव के किसानों को नहीं भूले। वे किसान हैं जो अपनी परम्पराओं अपने जातीय गौरव की रक्षा कर रहे हैं। कुंवर अनिरुद्धसिंह के अनुसार गांव के किसान ही सही अर्थों में स्वाधीन हैं।[१] प्रेमचन्द के कथानकों, उनके पात्रों सम्पादकीय टीकाओं तथा व्यक्तिगत पत्रों से गांव के प्रति उनके प्रेम और सहानुभूति का पता चलता है।

निःस्वार्थ सेवी सार्वजनिक कार्यकर्ता विट्ठलदास वेश्या आंदोलन की समाप्ति के बाद 'आजकल वह कृषकों की सहायता के लिए एक कोष स्थापित करने का उद्योग कर रहे हैं जिससे किसानों को बीज और रुपये नाममात्र की सूद पर उधार दिये जा सकें।"[२] "सेवासदन" के "स्वामी गजानन्द अधिकतर देहातों में रहते हैं। उन्होंने निर्धनों की कन्याओं का उद्धार करने के निमित्त अपना जीवन अर्पण कर दिया है। शहर में आते हैं, तो दो एक दिन से अधिक नहीं ठहरते।"[३]

विभिन्न वर्गों द्वारा सताए गए किसान की दयनीय दशा का बोध प्रेमचन्द को भली भांति था। 'प्रेमाश्रम' में गांवों की दयनीय दशा का चित्रण प्रस्तुत करते हुए प्रेमचन्द जी ने लिखा है - "चारों तरफ तबाही ही तबाही छाई हुई थी। ऐसा विरला ही कोई घर था जिसमें धातु के बर्तन दिखाई देते हों। कितने घरों में लोहे के तवे तक न थे। मिट्टी के बर्तनों को छोड़कर झोपड़े में और कुछ दिखाई न देता था। न ओढ़ना, न बिछौना, यहां तक कि बहुत से घरों में खाटें तक न थीं और वह घर ही क्या थे एक-एक, दो-दो छोटी कोठरियां थीं। एक मनुष्यों के लिए, एक पशुओं के लिए। उसी एक कोठरी में खाना, सोना, बैठना सब कुछ होता था। बस्तियां इतनी घनी थीं कि गांव में खुली हुई जगह दिखाई ही नहीं देती थी। किसी के द्वार पर सहन नहीं, हवा और प्रकाश का शहरों की घनी बस्तियों में भी इतना अभाव न होगा। जो किसान बहुत सम्पन्न समझे जाते थे उनके बदन पर

- -

१-- 'सेवासदन' पृ० १८२
२-- 'सेवासदन' पृ० [illegible]
३-- 'सेवासदन' पृ० [illegible]

साबित कपड़े न थे, उन्हें भी एक जून चबेना पर ही काटना पड़ता था । वह भी ऋण के बोझ से दबे हुए थे । अच्छे जानवरों को देखने को आँखें तरस जाती थीं । जहाँ देखो छोटे छोटे मरियल, दुर्बल बैल दिखाई देते थे और खेत में रेंगते और चरनियों पर ऊँघते थे ।"[१]

कितनी गहन अनुभूति थी उपन्यास-सम्राट प्रेमचन्द की । गांव के इन दृश्यों को देखकर प्रेमचन्द का हृदय कितना रोया होगा यह वही जान सकता है जिसने गांव देखे हैं और जिसके हृदय में उनके प्रति सहानुभूति है । प्रेमचन्द जिस रूप में भारतीय गांवों को देखना चाहते थे उनका काल्पनिक निर्माण उन्होंने 'प्रेमाश्रम' में किया है । मायाशंकर जैसे उदार जमींदार की सृष्टि करके प्रेमचन्द ने गांवों की दशा सुधारने की चेष्टा की है । मायाशंकर के इलाके के गांव का चित्र प्रस्तुत करते हुए प्रेमचन्द ने लिखा है - "प्राय: सभी द्वारों पर सायबान थे । उनमें बड़े-बड़े तख्ते बिछे हुए थे । अधिकांश घरों में सफेदी हो गयी थी । फूस के झोपड़े गायब हो गये थे । अब सब घरों पर खपरैल थे । द्वारों पर बैलों के लिए चरनियां बनी हुई थीं । और कई द्वारों पर घोड़े बंधे हुए नजर आते थे । पुराने चौपाल में पाठशाला थी और उसके सामने एक पक्का कुंआ और धर्मशाला था ।"[२]

प्रेमचन्द का यह गांव लखनपुर जिसे ज्ञानशंकर ने हर सूरत से तबाह करने और मिटा देने का यत्न किया था वह अब खुशहाल है । लगता है गांधी के असहयोग आंदोलन और राष्ट्रीय जागृति के चिन्हों को देखकर प्रेमचन्द जी को आशा बंध गई थी कि अब भारतीय ग्रामों का सुधार सम्भव होगा । काश प्रेमचन्द के कल्पित इस गांव का स्वरूप भारतीय गांवों में आज स्वतंत्रता के २२ वर्षों बाद भी साकार हो जाता । गांधी के गांव प्रेम और कांग्रेस के कार्यों में गांव के लिए रचनात्मक कार्यों के जोड़े जाने पर भी भारतीय गांव अपनी जगह पर जैसे-के-तैसे बने रहे । वही लूट-खसोट, वही जोर जबरदस्ती वही पुराना ढंग कुछ नया होकर चलता रहा । 'गोदान' के जमींदार "राय साहब राष्ट्रवादी होने पर भी हुक्काम से मेल जोल बनाये रखते थे ।"[३] इनकी दलीलें बड़ी लम्बी थीं परन्तु किसानों से रुपया वसूलने और बेगार लेने में कहीं

- -

१— "प्रेमाश्रम" पृ० [illegible]

२— "प्रेमाश्रम" पृ० [illegible]

३— "गोदान" पृ० [illegible]

चुकते थे । 'प्रेमाश्रम' के रचनाकाल के १२ वर्ष बाद भी किसान संभला नहीं उसकी दशा दिन प्रतिदिन दयनीय होती गई । 'गोदान' में आकर प्रेमचन्द यथार्थ जगत पर उतर आए और जो देखा वही कह डाला । 'होरी की जीवन गाथा' 'भारतीय किसान-जीवन' की महागाथा के रूप में 'गोदान' में साकार हो उठी । होरी के परिवार की प्रारम्भिक अवस्था का चित्र प्रस्तुत करते हुए प्रेमचन्द ने लिखा है - "उसकी छः संतानों में अब केवल तीन जिन्दा हैं, एक लड़का गोबर कोई १६ साल का और दो लड़कियां सोना और रूपा, बारह और आठ साल की । तीन लड़के बचपन में मर गये । उसका (धनिया का) मन आज भी कहता था, अगर उसकी दवा दारू होती तो वे बच जाते, पर वह एक धेले की दवा भी न मंगवा सकी थी । उसकी उम्र अभी क्या थी । छत्तीसवां ही साल तो था, पर सारे बाल पक गये थे, चेहरे पर झुर्रियां पड़ गई थीं । सारी देह ढल गई थी, वह सुंदर गेहुंआ रंग संवला गया था और आंखों से भी कम सूझने लगा था । पेट की चिन्ता ही के कारण तो ।"[1]

गांव के किसान के पास दवा दारू के लिए पैसे नहीं हैं, पैसों के अभाव में उसकी सन्तान मरती है । केवल धनिया की ही ३६ वर्ष की अवस्था में यह दशा नहीं है होरी भी निराश है । उसको अपने भावी जीवन का परिणाम ज्ञात है । उसे पता है - "साठ तक पहुंचने की नौबत न आने पायेगी धनिया । इसके पहले ही चल देंगे ।"[2] होरी कर्ज के बोझ से दबा है । मेहनत करके जो भी पैदा करता है वह भी उसका नहीं है । भोला से वह अपनी इस दशा का वर्णन करते हुए कहता है - "उसी की चिन्ता तो मारे डालती है दादा अनाज तो सबका सब खलिहान में ही तुल गया । जमींदार ने अपना लिया, महाजन ने अपना लिया । मेरे लिए पांच सेर अनाज बच रहा । यह भूसा तो मैंने रातों-रात ढोकर छिपा दिया था, नहीं तिनका भी न बचता । जमींदार तो एक ही हैं, मगर महाजन तीन-तीन हैं, सहुआइन अलग, मंगरू अलग और दातादीन पंडित अलग ।"[3]

कैसी विडम्बना है किसान का अनाज खलिहान से ही उठ गया, उसके पास केवल पांच सेर बाकी बचा, उसे अपना ही भूसा छिपाना पड़ता है तब भी "किसी का ब्याज

- -

१— 'गोदान' पृ० १६

२— 'गोदान' पृ० १६

३— 'गोदान' पृ० २७

भी पूरा न चुका ।"[१] किसान जीवन भर पिसता रहता है। होरी के अनुसार "किसान और किसान के बैल इनको अगराज ही पिंसिन दें तो मिले ।"[२] जीवन भर परिश्रम करने वाला किसान भर-पेट भोजन भी न कर सके, जो सारे संसार को खिलाता है वह दो जून भोजन के लिए भी न जुटा सके । यह सब क्यों ? मेहता के अनुसार "इनका देवत्व ही इनकी दुर्दशा का कारण है । काश, ये आदमी ज्यादा और देवता कम होते, तो यों न ठुकराये जाते ।"[३]

सीधा-सादा किसान होरी जिन्दगी भर कमाता रहा परन्तु वह अपनी दशा न सुधार सका । यहां तक कि उसके सामने अपनी लड़की तक बेचने की नौबत आ गयी । प्रेमचन्द ने लिखा है - "होरी की दशा दिन-दिन गिरती जा रही थी । जीवन के संघर्ष में उसे सदैव हार हुई, पर उसने कभी हिम्मत नहीं हारी । प्रत्येक हार जैसे उसे लड़ने की शक्ति दे देती थी, मगर अब वह अंतिम दशा को पहुंच गया था, जब उसको आत्म-विश्वास भी न रहा था ।"[४] होरी को मजदूर बनना पड़ता है गाय की चिर अभिलाषा आजन्म पूरी न हो सकी । अपनी चिर संचित अभिलाषा लिए हुए उसे प्रस्थान करना पड़ता है । अंतिम अवस्था में दशा यह है कि होरी के घर में गो-दान के लिए न गाय है, न बछिया, न पैसा ।[५] केवल सुतली के बेच के बीस आने पैसे हैं ।[६]

'प्रेमाश्रम' और 'गोदान' के बीच के दो उपन्यासों में 'रंगभूमि' की मुख्य समस्या औद्योगीकरण की समस्या है परन्तु इस उपन्यास में प्रेमचन्द गांवों की परम्परा, संस्कृति और ग्रामीणों के लिए सूरदास के रूप में जीवन भर लड़ते रहते हैं । 'कर्मभूमि' में गांव के किसानों तथा मजदूरों (अछूतों) जो कि किसान भी हैं, की समस्या को लेकर अमरकान्त, आत्मानन्द, सकीना और सलीम संघर्ष करते हैं ।

यदि ध्यान से देखा जाय तो हम स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि 'वरदान' से

- -

१-- 'गोदान' पृ० २०

२-- 'गोदान' पृ० २०

३-- 'गोदान' पृ० २०१

४-- 'गोदान' पृ० ३१३

५-- 'गोदान' पृ० ३५९

६-- 'गोदान' पृ० ३६५

लेकर अन्तिम कृति 'गोदान' तक वह गांव को भूले नहीं । 'वरदान' के बाला जी तथा विरजन 'सेवासदन' के अनिरुद्ध सिंह, विट्ठलदास तथा स्वामी गजानन्द गांव से पूरी सहानुभूति रखते हैं । 'प्रेमाश्रम' में प्रेमशंकर और मायाशंकर को अपने किसानों से सहानुभूति है । प्रेमशंकर जो किसानों की सेवा के लिए अपना हक छोड़ देते हैं भाई के विरोध की चिन्ता नहीं करते । मायाशंकर किसानों का हितैषी और साथी जमींदार है जो उन्हें फलता-फूलता हुआ देखना चाहता है । 'रंगभूमि के विनय की इच्छा भी गांव में रहने की है, वह अपने भावना जगत में निश्चय करता है - "चल कर देहात में रहूंगा । वहीं एक छोटा-सा मकान बनाऊंगा, साफ खुला हुआ, हवादार, ज्यादा टीमटाम की जरूरत नहीं ।"[१] विनय और सोफिया भीलों के गांव में रहते भी हैं और उनकी सेवा करते हैं ।[२]

'कायाकल्प' के सार्वजनिक जीवन का हितैषी 'चक्रधर' गांवों में जागृति पैदा करता है । चक्रधर ने सेवा समिति की स्थापना कर रखी है जो कि गांवों में जागृति का काम करती है । मनोरमा भी चक्रधर के साथ गांवों में रहना चाहती है । वह चक्रधर से कहती है - "अच्छा, तो मैं आपके साथ देहातों में घूमूंगी । इसमें तो आपको आपत्ति नहीं है ।"[३] चक्रधर जीवन से विराग लेकर गांवों में ही रहते हैं । उनके सेवा और उपकार की चर्चा करती हुई गांव की एक वृद्धा शंखधर से कहती है - "महीने भर यहां रहे । इस बीच में कई जानें बचाईं । कई रोगियों को तो मौत के मुंह से निकाल लिया ।"[४] चक्रधर अपने पुत्र के मिल जाने पर बेटे के साथ-साथ गांव-गांव टहलते हैं और दीनों की सेवा करते हैं ।[५]

'कर्मभूमि' के अमरकान्त और आत्मानन्द स्वामी रूप से अन्त तक गांव में रहकर किसानों में जागृति पैदा करते हैं । उनके सुख-दुख में भाग लेते हैं । अमरकान्त के सम्बन्ध में प्रेमचन्द लिखते हैं - "अमरकान्त इसी भांति महीनों से देहातों का चक्कर लगाता चला आ रहा है । लगभग पचास छोटे बड़े गांवों को वह देख चुका है, जिनमे

- -

१-- 'रंगभूमि' पृ० २७८
२-- 'रंगभूमि' पृ० ४२२
३-- 'कायाकल्प' पृ० १४५
४-- 'कायाकल्प' पृ० २८८
५-- 'कायाकल्प' पृ० ३०८

ही आदमियों से उसकी जान पहचान तो हो गयी है, कितने ही उसके सहायक हो गये हैं, कितने ही भक्त बन गये हैं, नगर का सुकुमार युवक दुबला तो हो गया है, पर धूप और लू, आंधी और वर्षा, भूख और प्यास सहने की शक्ति उसमें प्रखर हो गयी है। ------- वह ग्रामवासियों की सरलता और सहृदयता, प्रेम और सहानुभूति से मुग्ध हो गया है। ऐसे सीधे-सादे, निष्कपट, मनुष्यों पर आये दिन जो अत्याचार होते रहते हैं, उन्हें देखकर उसका खून खौल उठता है। जिस शान्ति की आशा उसे देहाती-जीवन की ओर खींच लाई थी। उसका यहां नाम भी न था। घोर अन्याय का राज्य था और अमर की आत्मा इस राज्य के विरुद्ध झंडा उठाये फिरती थी।"[1]

वास्तव में अमर की आंखों से प्रेमचन्द ने गांवों की दशा को देखा था और अन्याय के विरुद्ध प्रेमचन्द की आत्मा विद्रोह का झण्डा उठाये हुए थी। इन तमाम परिस्थितियों के होते हुए भी प्रेमचन्द को गांव का जीवन प्रिय था। 'गबन' उपन्यास के रमानाथ, जालपा, देवीदीन और जोहरा को वह एकान्त जीवन व्यतीत करने के लिए प्रयाग के पास के गांव में भेजते हैं।[2]

'गोदान' के प्रोफेसर मेहता की सहानुभूति गांव के किसानों को प्राप्त है। वे मिस्टर खन्ना द्वारा राय साहब अमर पाल सिंह की तारीफ किये जाने पर कहते हैं- "मैं चाहता हूं हमारा जीवन हमारे सिद्धान्तों के अनुकूल हो। आप कृषकों के शुभेच्छु हैं, उन्हें तरह-तरह की रियायत देना चाहते हैं, जमींदारों के अधिकार छीन लेना चाहते हैं, बल्कि आप उन्हें समाज का शाप कहते हैं, फिर भी आप जमींदार हैं, वैसे ही जमींदार जैसे हजारों और जमींदार हैं। अगर आपकी धारणा है कृषकों के साथ रियायत होनी चाहिए, तो पहले आप खुद शुरू करें - काश्तकारी को बगैर नजराने के पट्टे लिख दें, बेगार बन्द कर दें, इजाफा लगान को तिलांजलि दे दें, चरावर जमीन छोड़ दें।"[3] आगे वह फटकारते हुए कहते हैं - "मुझे उन लोगों से जरा भी हमदर्दी नहीं है, जो बातें तो करते हैं कम्युनिस्टों की-सी, मगर जीवन है रईसों का-सा, उतना ही विलासमय, उतना ही स्वार्थ से भरा हुआ।"[4]

१— 'कर्मभूमि' पृ० १४१-४२

२— 'गबन' अन्तिम परिच्छेद (५२) द्रष्टव्य है दे० पृ० ३२२ से ३२६ तक

३— 'गोदान' पृ० [illegible]

४— 'गोदान' पृ० [illegible]

मेहता की यह फटकार राय साहब ऐसे स्वार्थ सेवी जमींदारों के लिए प्रेमचन्द की फटकार है। प्रो० मेहता और मालती ऐसे सुशिक्षित और पढ़े-लिखे लोगों को भी प्रेमचन्द गांव भेज देते हैं।"[1] मालती में गांवों की दशा देखने के बाद जो प्रतिक्रिया होती है उसका चित्र खींचते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं - "उसे ग्रामीणों पर क्रोध आ जाता था। क्या तुम्हारा जन्म इसलिए हुआ है कि जन्म भर मरकर कमाओ और जो कुछ पैदा हो उसे खा न सको ?"[2]

गांव का सरल समाज, गांव का यातना भरा जीवन, अत्याचारियों के करतब, गांव की दयनीय दशा, ग्रामीणों की सरलता प्रेमचन्द की सहानुभूति के रूप में उनके कथा-साहित्य में साकार हुई है। प्रेमचन्द जीवन पर्यन्त ग्रामीणों के साथी बने रहे, उनकी विपत्ति में आंसू बहाते रहे और उनकी खुशियों में मस्त होते रहे। यह बात अवश्य है समय की कठोर पाटों के बीच उनके समय गांव का जीवन पिसता रहा इसलिए उनको ग्रामीणों के दुख के साथ रोना अधिक पड़ा है। संकट और कठिनाई में साथ न छोड़ने वाला व्यक्ति ही सच्चा साथी होता है। प्रेमचन्द ही हिन्दी-साहित्य के वह साहित्यकार हैं जिन्होंने साहित्यकार के रूप में ग्रामीणों का साथ नहीं छोड़ा। गांव की पीड़ा को यदि किसी साहित्यकार ने समझा है और उन्हें सच्ची सहानुभूति दी है तो वे केवल प्रेमचन्द हैं।

<u>प्रेमचन्द के गांव : भौगोलिक पर्यावरण</u>

प्रेमचन्द साहित्य में हमें भारतीय गांवों के भौगोलिक पर्यावरण का बोध होता है। नदी, पहाड़, तथा खेतों के दृश्य, विभिन्न ऋतुओं के वर्णन तथा मौसम उनके सम्पूर्ण साहित्य में ग्राम जीवन के संदर्भों में मिलता है। इस चित्रण को प्रकाश में लाने के पूर्व हमें समाजशास्त्र के अन्तर्गत इस चित्रण की सार्थकता पर विचार कर लेना चाहिए। प्रसिद्ध ग्रामीण समाजशास्त्री सैन्डर्सन ने अपनी पुस्तक 'रूरल सोशियोलाजी ऐण्ड रूरल आर्गनाइजेशन' के चौथे अध्याय मानव भूगोल (ह्यूमन ज्योग्रफी) में समाजशास्त्रीय अध्ययन में मौसम (क्लाइमेट) स्थान चित्रण (टोपोग्रफी) के अन्तर्गत नदी,

---

1— 'गोदान', पृ० ३१०

2— 'गोदान', पृ० ३११

पहाड़ और मैदान आदि का जीवन में प्रभाव, भूमि तथा खनिज पदार्थ का भौगोलिक महत्व भौगोलिक परिवेश तथा भौगोलिक स्वीकृति अथवा नियंत्रण आदि को आवश्यक बनाया है ।[१]

ई० सी० सेम्पिल ने मौसम और तापक्रम के प्रभाव की महत्ता का उल्लेख करते हुए कहा है कि प्राचीन सभ्यतायें इनसे प्रभावित होती रहती हैं । उनके अनुसार अयनवृत्त मनुष्यता के हिंडोले थे और तापक्रमिक कोंका सभ्यता के झूले तथा शिक्षा के स्थान थे ।[२] समाजशास्त्री लेविंसकी ने ग्रामीण जीवन में स्थान के महत्व को संसार के विभिन्न देशों के उदाहरण के माध्यम से स्पष्ट किया है । भारतवर्ष के सम्बन्ध में उन्होंने कहा है कि भारतवर्ष में ग्रामीण समुदाय प्राय: मैदानी भाग में पाया जाता है वहीं दूसरी ओर वह हिमालय के पहाड़ी प्रदेशों में नहीं मिलता ।[३] इस प्रकार से स्पष्ट है कि ग्रामीण जीवन के अध्ययन के अन्तर्गत भौगोलिक स्थिति और भौगोलिक पर्यावरण का महत्वपूर्ण स्थान रहा है ।

- -

१-- डुविट सेन्डर्सन, 'रूरल सोशियॉलॉजी ऐण्ड रूरल सोशल अर्गनाइजेशन' १९४६(न्यूयार्क), पुस्तक का चौथा अध्याय "ह्यूमन जेओग्रफी" पृ० ४२-५१ से दृष्टव्य है ।

२-- "...Most of the ancient civilizations originated just within the mild but drier margin of the Temperate Zone, ...As the tropics have been the cradle of humanity, the Temperate Zone has been the cradle and school of civilization."

ई० सी० सेम्पिल: 'इन्फ्लूएन्सेस ऑव जेओग्रैफिक इनवायरन्मेन्ट', १९११ (न्यूयार्क), पृ० ६३५

३-- "...It is a commonly known fact that village communities are to be found in the valleys but not on the hill sides. In Switzerland, Tyrol and Bavarin Alps, we observe very clearly this dependence of forms of property on topographic conditions. Amongs the Scandinavians, the Norwegians living in a mountainous contry setle in 'gaards' or separate homesteads, the Danes in "bys" or villages. In India we find the village community in plain

(शेष अगले पृष्ठ पर)

प्रेमचन्द-साहित्य में भारतीय गांवों की भौगोलिक स्थिति का बहुत ही सुन्दर और यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है। `कर्मभूमि` में हिमालय की तराई के एक गांव का चित्र प्रस्तुत करते हुए प्रेमचन्द जी ने लिखा है - "उत्तर की पर्वत श्रेणियों के बीच एक छोटा-सा रमणीय पहाड़ी गांव है। सामने गंगा किसी बालिका की भांति हंसती उछलती, नाचती-गाती, दौड़ती चली जाती है। पीछे ऊंचा पहाड़ किसी वृद्ध योगी की भांति जटा बढ़ाये, शांत गंभीर, विचार मग्न खड़ा है। ----- उस गांव में मुश्किल से बीस-पच्चीस झोंपड़े होंगे। पत्थर के रोड़ों को तले ऊपर रखकर दीवारें बना ली गई हैं। उन पर छप्पर डाल दिया गया है। द्वारों पर बनकट की टट्टियां हैं। इन्हीं काबुकों में उस गांव की जनता अपने गाय-बैलों, भेड़-बकरियों को लिए अनन्त काल से विश्राम करती चली आती है।"[1] हरिद्वार के इस पहाड़ी गांव के वर्णन को पढ़ने मात्र से पहाड़ी गांवों की स्थिति, उनके घरों की बनावट तथा इन इलाकों में गाय-बैलों और भेड़-बकरियों के झुंडों के चित्र आंखों के सामने तैरने लग जाते हैं। उत्तर भारत में सरयू नदी के किनारे के एक गांव का चित्र प्रस्तुत करते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं - "सुबह का वक्त था, मैं मढ़ी में गया। नीचे सरयू नदी लहरें मार रही थी। उस पर सालू का जंगल था। मीलों तक बादामी रेत, उस पर तरबूजे और खरबूज की क्यारियां थीं। पीले-पीले फूलों से लहराती हुई। बगुलों और मुर्गाबियों के गोल-के-गोल बैठे हुए थे। सूर्य देवता ने जंगलों से सिर निकाला, लहरें जगमगायीं, पानी में तारे निकले। बड़ा सुहाना सात्विक उल्लास देने वाला दृश्य था।"[2] राजस्थान के देहात का चित्र प्रस्तुत करते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं -"थोड़ी दूर के बाद पथरीला रास्ता मिला। एक तरफ हरा-भरा मैदान, दूसरी तरफ पहाड़ का सिलसिला। दोनों ही तरफ बबूल, करील, करौंदे और ढाक के जंगल थे।"[3]

- -

country; at the same time we do not find it on the Himalayan hill sides."
जे० लिविंस्की: `ओरिजिन आव प्रापर्टी ऐण्ड द फार्मेशन आव द विलेज कम्युनिटी`
१९१३ (लन्दन), पृ० ६४

१-- `कर्मभूमि`, पृ० १४१

२-- "बनखंड का बुढ़ा", गुप्तधन भाग १, पृ० २०६

३-- "स्वांग", गुप्तधन भाग २, पृ० १२६

प्रेमचन्द-साहित्य में विभिन्न ऋतुओं में देहात के मौसम और स्थितियों के चित्र खींचे गये हैं। इन वर्णनों के मध्य देहात के किसानों की दशा का जो स्वाभाविक बोध हो जाता है वह स्मरणीय है। भारत के ही नहीं विदेश के निवासियों को भी इन चित्रणों के मध्य विभिन्न ऋतुओं में गांवों की स्थिति का बोध हो सकता है। आसाढ़ महीने की दशा का चित्र प्रस्तुत करते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं - "आसाढ़ का महीना था। किसान गहने और बर्तन बेच-बेच कर बैलों की तलाश में दर-दर फिरते थे। गांवों की बूढ़ी बनियाइन नवेली दुल्हन बनी हुई थी और फाका करने वाला कुम्हार बरात का दुल्हा था। मजदूर मौके के बादशाह बने हुए थे। टपकती छतें उनकी कृपा दृष्टि की राह देख रहीं थीं। घास से ढके हुए खेत उनके ममतापूर्ण हाथों के मुहताज ----- आम और जामुन के पेड़ों पर आठों पहर निशानेबाज मनचले लड़कों का धावा रहता था। बूढ़े गर्दनों में झोलियां लटकाये पहर रात से टपके की खोज में घूमते नजर आते थे जो बुढ़ापे के बावजूद भोजन और जाप से ज्यादा दिलचस्प और मजेदार काम था। नाले पुरशोर, नदियां अथाह चारों तरफ हरियाली और खुशहाली।"[1] आसाढ़ माह में खेती के लिए उत्सुक किसानों, मजदूरों की मनोवृत्ति, आम और जामुन के पेड़ों के नीचे गांव के मनचले लड़कों, पके आम के टपके के लिए लालायित वृद्धों, पानी से भरे हुए नाले और नदियाँ तथा हरियाली का अद्भुत चित्र प्रेमचन्द की कलम से ही सम्भव था। सावन की अंधेरी रात का चित्रण प्रस्तुत करते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं - दस बजे रात का वक्त और सावन का महीना। आसमान पर काली घटायें छाई हुई थी। ----खामोशी डरावनी और गंभीर साटे के झोंपड़े और मकान इस अंधेरे में बहुत गौर से देखने पर काली-काली भेड़ों की तरह नजर आते थे। ---- मगर आबादी से दूर कई पुरशोर नालों और ढाक के जंगलों से गुजर कर ज्वार और बाजरे के खेत थे और उनकी मेड़ों पर साटे (एक गांव) के किसान जगह-जगह मड़ैया डाले खेतों की रखवाली कर रहे थे। तले जमीन, न ऊपर अंधेरा, मीलों तक सन्नाटा छाया हुआ। कहीं जंगली सुअरों के गोल, कहीं नील गायों के रेवड़, चिलम के सिवा कोई साथी नहीं, आग के सिवा कोई मददगार नहीं।"[2] भादों का दृश्य मानो साकार हो उठा है - "भादों का

- -

१-- "बांका ज़मींदार", गुप्तधन भाग १, पृ० १६०

२-- "अंधेर", गुप्तधन भाग १, पृ० १२६

महीना था कपास के फूलों की सुर्ख और सफेद चिकनाई, तिल और ऊदी की बहार और सन का शोख पीलापन अपने रूप का जलवा दिखाता था। किसानों की मड़ैया और छप्परों पर भी फल-फूल की रंगीनी दिखाई देती थी। उस पर पानी की हल्की-हल्की फुहारें प्रकृति के सौन्दर्य के लिए सिंगार करने वाली का काम दे रही थी।"[1] भादों के सुहावने दृश्य के बाद कुंआर का महीना अपनी गर्मी और मच्छरों की बीमारियों के साथ आता है। कुंआर के महीने में भारतीय गांवों का दृश्य प्रेमचन्द के शब्दों में देखिए - "कुंआर का महीना था, वर्षाऋतु समाप्त हो गई थी। देहातों में जिधर निकल जाइए, सड़े हुए सन की दुर्गन्ध उड़ती थी। कभी ज्येष्ठ को लज्जित करने वाली धूप होती थी, कभी सावन को शरमाने वाले बादल घिर आते थे। मच्छर और मलेरिया का प्रकोप था, नीम की छाल और गिलोय की बहार थी। बराबर में दूर तक हरी हरी घास लहरा रही थी। अभी किसी को उसके काटने का अवकाश न मिला था।"[2]

वर्षा ऋतु भारतीय किसानों का जीवन, उनका प्राण तथा उनके जीवन का आधार होती है। प्रेमचन्द ने वर्षा ऋतु का वर्णन अनेक स्थलों में बहुत सुन्दर ढंग से किया है। 'रंगभूमि' में अरावली पहाड़ियों में वर्षा के दृश्य को चित्रित करते हुए वे लिखते हैं - "पावस ने उस जनशून्य, कठोर, निष्प्रभ, पाषाणमय स्थान को, प्रेम, प्रमोद और शोभा से मंडित कर दिया है, मानो कोई उजड़ा हुआ घर आबाद हो गया हो।"[3] 'प्रेमाश्रम' में वर्षा ऋतु में किसानों की व्यस्तता का चित्र प्रस्तुत करते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं - "बरसात के दिन थे। किसानों को ज्वार और बाजरे की रखवाली से दम मारने का अवकाश न मिलता था। जिधर देखिये, हाहू की ध्वनि आती थी। कोई ढोल बजाता था, कोई टीन के पीपे पीटता था। दिन को तोतों के झुण्ड-के-झुण्ड टूटते थे, रात को गीदड़ के गोल, उस पर धान की क्यारियों में पौधे बिठाने पड़ते थे। पहर रात रहे, ताल में जाते और पहर रात गये आते थे। मच्छरों के डंक से लोगों की देह में छाले पड़ जाते थे। किसी का घर गिरता था, किसी के खेत से मेंड़ कटी जाती थी। जीवन-संग्राम की दुहाई मची हुई थी।"[4]

- -

१-- 'चांका जमींदार' गुप्तधन भाग १, पृ० १५३

२-- 'प्रेमाश्रम' पृ० १६४

३-- 'रंगभूमि' पृ० २०६

४-- 'प्रेमाश्रम', पृ० २०८-२०६

जाड़े की ऋतु की ठंड और गरीब किसान का जाड़े के दिन काटने का चित्र प्रस्तुत करते हुए प्रेमचन्द 'पूस की रात' कहानी में लिखते हैं - "पूस की अंधेरी रात आकाश पर तारे भी ठिठुरते हुए मालूम होते थे। हल्कू (एक किसान) अपने खेत के किनारे ऊख के पत्तों की एक छतरी के नीचे बांस के खटोले पर अपनी पुरानी गाढ़े की चादर ओढ़े पड़ा कांप रहा था। खाट के नीचे उसका संगी कुत्ता जबरा पेट में मुंह डाले सर्दी से कूं-कूं कर रहा था। दो में से एक को भी नींद न आती थी।"[1] हल्कू को विवश होकर पत्तियों को बटोर कर जाड़ा छुटाने का यत्न करना पड़ा। नील गायें खेत चर गईं परन्तु जाड़े से परेशान किसान हल्कू इसलिए परेशान है कि "रात की ठंड में यहां सोना तो न पड़ेगा।"[2] आर्थिक तंगी ने किसान की मनोवृत्ति को बदल दिया है। माघ की भयानक ठंड में 'गोदान' का होरी खेत में सिकुड़ रहा है। प्रेमचन्द ने इस दृश्य का मार्मिक चित्र प्रस्तुत करते हुए लिखा है - "माघ के दिन थे, महावट लगी हुई थी, घटाटोप अंधेरा छाया हुआ था। एक जाड़े की रात, दो माघ की बर्षा। मौत का-सा सन्नाटा छाया था। अंधेरा तक न सूझता था।"[3]

माघ के बाद फागुन का महीना आता है। इस समय जाड़ा समाप्त होने लगता है। बसंत के महीने में पतझड़ प्रारम्भ होता है। पेड़ों में कोंपलें फूटती हैं। आमों में बौर आती है कोयल की कूक सुनाई देती है। प्रेमचन्द ने इसका भी चित्र प्रस्तुत किया है। एक स्थान में वे लिखते हैं - "पूरनमासी का पूरा चांद सरयू के सुनहरे फर्श पर नाचता था और लहरें खुशी से गले मिल मिलकर गीत गाती थी। फागुन का महीना था, पेड़ों में कोंपलें निकलीं थी और कोयल कूकने लगी थी।"[4] दूसरे स्थान पर वे लिखते हैं - "फागुन अपनी झोली में नवजीवन की विभूति लेकर आ पहुंचा। आम के पेड़ दोनों हाथों से बौर की सुगंध बांट रहे थे और कोयल आम की डालियों में छिपी हुई संगीत का गुप्त दान कर रही थी।"[5]

- -

१-- 'पूस की रात', मानसरोवर भाग १, पृ० १४५

२-- 'पूस की रात', मानसरोवर भाग १, पृ० १५०

३-- 'गोदान', पृ० १२१-१२२

४-- 'अमावस्या का ...', गुप्तधन भाग १, पृ० २१२

५-- 'गोदान', पृ० २०६

चैत का महीना किसान के श्रम का फल देने वाला होता है। किसान अब तक अपनी फसल खलिहान में पहुंचा देता है। फागुन तक फसल पक जाती है। किसान मड़ाई करता है। खलिहान का दृश्य प्रस्तुत करते हुए प्रेमचन्द जी ने लिखा है - "होरी लपक कर बैलों के पास पहुंच गया और उन्हें पौर में डालकर चक्कर देने लगा। सारे गांव का यही खलिहान था। कहीं मड़ाई हो रही थी। कोई अनाज ओसा रहा था, कोई गल्ला तौल रहा था।"[1] काश, कि किसानों का यह गल्ला उनके घर तक पहुंच पाता। इसके मालिक दातादीन, सहुआइन और झिंगुरी सिंह आदि महाजनों के घर न जा पाता।

प्रेमचन्द ने अन्य महीनों का चित्रण भी किया है। जेठ की दुपहरी में ही होरी सड़क पर काम करता हुआ बलिदान हो जाता है।[2] प्रेमचन्द के इन चित्रणों से जहां एक ओर भारतीय गांवों की भौगोलिक परिधि, देहाती मौसम और भारतीय गांवों की दशा का बोध होता है वहीं इस ओर भी संकेत मिलता है कि भारत का ग्रामीण अपनी आर्थिक तंगी और अपूर्ण साधनों के मध्य किस प्रकार से इन मौसमों से, इन परिस्थितियों से जूझता है, या उन परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाने का प्रयास करता है। विभिन्न ऋतुओं में किसानों के क्रिया-कलाप का बोध भी इन्हीं उक्त संदर्भों के मध्य हुआ है। ये सब समाजशास्त्रीय अध्ययन के महत्वपूर्ण पक्ष हैं।

भूमि व्यवस्था : भूमि पर आधारित वर्ग

संसार की अर्थ-व्यवस्था में भूमि का महत्वपूर्ण स्थान है। भूमि के स्वामी प्राय: किसान होते हैं और गांवों में उनका निवास होता है। खेती ही वह साधन है जिसके बल पर विश्व का आर्थिक ढांचा चलता है। विश्व की अन्य-क्रियायें भी खेती पर ही आधारित हैं। प्रसिद्ध समाजशास्त्री बेली के अनुसार "कृषि राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक ढांचे की नींव है। यदि भूमि को सुरक्षित न रखा जाय तो आगे नहीं बढ़ा हुआ जा सकता है। इस ग्रामीण कार्य की महानता उसके प्रतिफल पर निर्भर करती है उसके परिश्रम पूर्ण तरीकों पर नहीं। बेली के अनुसार

- -

1-- 'गोदान', पृ० २६८

2-- 'गोदान', पृ० ३६३-६४

'यदि कृषि व्यवस्था प्रजातंत्रीय नहीं हो सकती तो प्रजातंत्र है ही नहीं ।'[१]

भूमि और कृषि के इस महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है । अमेरिका में ग्रामीण समाजशास्त्र (रूरल सोशियोलाजी) की उत्पत्ति का सम्बन्ध भूमि और कृषि से है । "लैण्ड ग्रान्ड कालेज मूवमेन्ट" से इसका घनिष्ट सम्बन्ध है । इन कालेजों की स्थापना १८६२ के मोरिल एक्ट (Morrill Act) के आधार पर हुई थी । इस ऐक्ट का मुख्य विषय विश्वविद्यालयों और कालेजों में ऐसी शाखाओं की स्थापना से था जो कृषि और मैकनिक आर्ट्स का अध्ययन करें । १९०८ में जब अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने 'कन्ट्री लाइफ कमीशन' की नियुक्ति की उस समय से कृषि की ओर अधिक रुझान हुई । ग्रामीण समाजशास्त्र का क्षेत्र इसके बाद बढ़ता गया । भूमि-व्यवस्था का अध्ययन अब समाजशास्त्र में परिस्थिति शास्त्र के अन्तर्गत किया जाने लगा है । लोगेल और लूमिस ने परिस्थिति शास्त्रीय अध्ययन के अन्तर्गत इसकी ओर ध्यान दिलाया है । उनके अनुसार समाजशास्त्रियों का ध्यान किसानों में भूमि-विभाजन की ओर रहा है । इस व्यवस्था के अन्तर्गत उन्होंने जिन तीन बातों की ओर ध्यान आकर्षित किया है वे हैं (१) भूमि व्यवस्था के ढंग (२) स्वाभाविक वर्ग ग्रामीण समुदाय सहित तथा (३) भूमि वितरण का ढंग ।[२]

- -

१-- "Agriculture is in the foundation of the political, economic and social structure. If we cannot develop starting-power in the background people, we cannot maintain it elsewhere. The greatness of all this rural work is to lie in the results and not in the methods and absorb so much of our energy. If agriculture cannot be democratic, then there is no democracy."

एल० एच० बेली: "द होली अर्थ", १९१५, न्यूयार्क, पृ० १९४-९७

२-- "Among the oldest and most persistent interests of rural sociologists is in questions concerning the mode of distribution of farmers on the land. Interest in rural ecological systems may be categorized into those concerned with (1) Patterns of settlement on the land, (2) natural groupings, including the rural community

(शेष अगले पृष्ठ पर)

प्रत्येक देश की भूमि व्यवस्था का ढंग अलग-अलग होता है। प्रेमचन्द-साहित्य में ग्रामीण जीवन के संदर्भों में जहां इस तरह की समस्या की ओर संकेत किया गया है उसका आधार भारतीय व्यवस्था ही है।

अंग्रेजों के समय खेतों की जमींदारी व्यवस्था प्रचलित हुई। पहले के ठेकेदार अब भूमि के मालिक जमींदार के रूप में पनप उठे। जमींदार भूमि के मालिक थे और वे अपनी स्वेच्छा से किसानों को भूमि देते अथवा छीन लेते थे। प्राय: गरीब किसानों के पास न तो अदालत के लिए पैसे होते और न ही अदालत जाने का साहस ही। प्रेमचन्द ने `बलिदान` कहानी में इस सत्य का उद्घाटन किया है। "हरखू की मृत्यु के बाद उसके खेत गांव वालों की नजर में चढ़ गए। हरखू का लड़का गिरधारी तो क्रिया-कर्म में फंसा हुआ था। उधर गांव के मनचले किसान लाला ओंकार नाथ को चैन न लेने देते थे, नज़राने की बड़ी-बड़ी रकमें पेश हो रही थी।"[१] लालची जमींदार ओंकारनाथ गिरधारी के लिए लगान की वही दर रखने के लिए तैयार हैं परन्तु नजराने के सौ रुपये नहीं छोड़ सकते। गिरधारी बैल-बछिया बेचकर पचास रुपये की व्यवस्था करने के लिए तैयार है। इधर "एक सप्ताह बीत गया और गिरधारी रुपये का कोई बंदोबस्त न कर सका। आठवें दिन उसे मालूम हुआ कि कालिकादीन ने १००) नजराने देकर १०) बीघे पर खेत ले लिये।"[२] इस कहानी का अंत गिरधारी की आत्म हत्या से होता है। कहानी के कथानक से स्पष्ट है कि जमींदार की इच्छा ही भूमि की व्यवस्था के लिए अंतिम फैसला है। `बांका जमींदार` कहानी में जमींदार प्रद्युम्नसिंह गांव के लोगों से तीन साल का पेशगी लगान मांगते हैं और सुबह तक लगान न दिए जाने पर गांव में हल चलवाने की धमकी देते हैं। प्रात: काल जमींदार के आतंक से भयभीत "गरीब किसान अपनी-अपनी पोटलियां लादे, बेकल अंदाज से ताकते, आंखों में याचना भर बीवी-बच्चों को साथ लिए रोते बिलखते किसी अज्ञात देश को चले जाते थे। शाम हुई तो गांव उजड़ गया।"[३] गांव दुबारा बसता है परन्तु ठाकुर साहब को गांव में इत्मिनान और चैन नहीं मिलता इसके कारण

- -

and (3) Systems of Land division."

डे० एलेन बोसिल रेण्ड वाल्स पी० लूमिस: `रूरल सोशियोलॉजी`, डे० बोसिक एस० राउसेक (सं०), `कन्टेम्पोरेरी सोशियोलॉजी` १९५८ (न्यूयार्क), पृ० २४०

१-- `बलिदान` मानसरोवर भाग ८ पृ० ४२

२-- `बलिदान` मानसरोवर भाग ८ पृ० ४०

३-- `बांका जमींदार` गुप्तधन भाग १ पृ० १६१

उन्होंने प्रातः काल तक पुनः गांव खाली करने का आदेश दे दिया । "और ऐसा ही हुआ । दूसरी रात को सारे गांव में कोई दिया जलाने वाला तक न रहा । फूलता-फलता हुआ गांव भूत का डेरा बन गया ।"[1] तीसरी बार गांव में कंजारे बसते हैं जो बला के चीमड़ लोहे की सी हिम्मत वाले लोग थे । ठाकुर साहब को उनके सामने दबना पड़ता है ।

प्रेमचन्द की यह कहानी १९१३ में `जमाना` में छपी थी । इस कहानी में जहां एक ओर जमींदारों के भूमि के स्वामित्व की ओर और उनके अत्याचारों की ओर संकेत है वहीं किसानों के विरुद्ध शक्ति प्रयोग का भी । इस कहानी में कंजारों की एकता और उनका जमींदार से सामना करने का निर्णय आगे चल कर प्रेमचन्द के `प्रेमाश्रम` में जमींदारों के अत्याचार के विरुद्ध लखनपुर के किसानों के रूप में उठ खड़ा हुआ । `विध्वंस` कहानी में जिला बनारस में बीरा नामक गांव के जमींदार पंडित उदयभानु पांडे के कारिन्दे भुनगी भीलनी का भाड़ इसलिए तोड़ देते हैं क्योंकि वह प्रयत्न करने पर भी जमींदार साहब का सत्तू नहीं भून सकी । भुनगी पुनः भाड़ बनाना चाहती है । इसके अपराध में जमींदार उसे गांव से निकल जाने का आदेश देते हैं । भुनगी आग में कूदकर आत्म हत्या कर लेती है ।[2]

प्रेमचन्द-साहित्य में प्रमुख जमींदारों में `सेवासदन` के अनिरुद्धसिंह, `प्रेमाश्रम` के प्रभाशंकर, ज्ञानशंकर और मायाशंकर तथा `गोदान` के अमरपाल सिंह हैं । इनके अलावा उनके उपन्यासों और कहानियों में अनेक जमींदारों का उल्लेख है । जमींदारों के अलावा भूमि के स्वामी सामन्त वर्ग के अन्य लोग भी रजवाड़ों और रियासतों के राजे और महाराजे भी अपने क्षेत्र विशेष के भूमि के स्वामी थे । ऐसे लोगों में `रंगभूमि` के कुंवर भरतसिंह, राजा महेन्द्र कुमार सिंह तथा महाराजा जसवन्त नगर `कायाकल्प` की रानी देवप्रिया तथा राजा विशाल सिंह आदि हैं । राजे-महाराजाओं और जमींदारों के बीच सामन्तवर्ग के ताल्लुकेदार होते थे इनमें `प्रेमाश्रम` के राय कमला नन्द और महारानी गायत्री देवी हैं । त्रुटिपूर्ण भूमि-व्यवस्था के अन्तर्गत गांव के किसान और मजदूर इनके आधीन थे । इनको बेगार लेने की पूर्ण स्वतंत्रता थी । राजा विशाल सिंह रियासत के मजदूरों से बेगार लेते हैं जबकि राय अमरपाल सिंह

१-- "बांका जमींदार" गुप्तधन भाग १ पृ० १६२

२-- "विध्वंस" के० मानसरोवर भाग ८

किसानों से भी बेगार लेते हैं। भूमि के ये स्वामी गांव के लोगों पर प्रत्यक्ष शक्ति से अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सरकारी सहायता, मुकदमेबाजी आदि के माध्यम से अत्याचार करते रहते थे इसके अनेक उदाहरण प्रेमचन्द-साहित्य में मिलेंगे।[१]

स्वतंत्रता के बाद भारतवर्ष में भूमि-व्यवस्था का यह रूप नहीं रहा क्योंकि प्रचलित व्यवस्था की त्रुटियाँ और सामन्तों के अत्याचार, किसानों और मजदूरों की तबाही का अनुमान देश के स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों ने स्वतंत्रता आंदोलन के समय ही कर लिया था। स्वतंत्रता प्राप्त होते ही जो महत्वपूर्ण कार्य हमारे देश की अपनी सरकार ने किया था वह था रजवाड़ों और रियासतों की समाप्ति तथा जमींदारी प्रथा का उन्मूलन। अब भूमि का लगान सीधे सरकारी कर्मचारियों द्वारा वसूल किया जाता है। किसान और सरकार के बीच अब दूसरी शक्ति नहीं है। प्रेमचन्द-साहित्य में हमें उनके युग विशेष की भूमि-व्यवस्था के चित्र मिलते हैं।

जहां तक भूमि-विभाजन का प्रश्न है उसके सम्बन्ध में हम देख चुके हैं कि जमींदार ही भूमि का मालिक था। बहुत सी बंजर या परती जमीन का मालिक जमींदार ही होता था। 'प्रेमाश्रम' में विलासी के अपमानित होने का कारण ऐसी ही परती चरागाह भूमि है।[२] जो आगे गौस खां की हत्या का कारण बनी। अपने इलाके की ऐसी भूमि को वह स्वेच्छा से जिसे चाहे दे सकता था। गरीब और निर्बल किसानों की जोतदार भूमि को भी वह अपनी शक्ति से छीन सकता था। भूमि को इस रूप में छीने जाने की वैधानिक स्वतंत्रता उसे नहीं थी क्योंकि 'प्रेमाश्रम' के ज्ञानशंकर को भूमि का लगान बढ़ाने अथवा उसे बेदखल करने के लिए अदालत का सहारा लेना पड़ता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि लखनपुर के किसानों में एका हो गया है और ज्ञानशंकर धांधली करके भूमि नहीं छीन सकता। वैसे सामन्तवर्ग के लोग धौंसा-धड़ी और धांधली करते रहते थे।

भारतवर्ष में खेती में प्रयोग आने वाली भूमि के किसान काश्तकार बन गए थे। जिस भूमि का काश्तकार किसान हो गया हो वह उसकी भूमि मानी जाती थी। ऐसी भूमि का विभाजन पारिवारिक बंटवारे के रूप में किए जाने की प्रथा प्रचलित है जिसको वैधानिक मान्यता भी प्राप्त है। प्रेमचन्द-साहित्य में भूमि के पारिवारिक

- -

१— इस सम्बन्ध में अगले अध्याय में विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया जायगा।

२— 'प्रेमाश्रम' दे० पृ० २६६-२६७

विभाजन के अनेक उदाहरण मिलते हैं। प्रेमचन्द की 'अलग्योझा' कहानी में पारिवारिक भूमि का विभाजन भोला महतो के पहली स्त्री के पुत्र रग्घू और दूसरी पत्नी के पुत्रों केदार, खजामन और लुन्नू के मध्य होता है। इस बंटवारे का उल्लेख करते हुए प्रेमचन्द ने लिखा है 'आंगन में दीवार खिंच गयी थी, खेतों में मेड़ डाल दी गयी थीं, और बैल बछिये बांट लिये गये थे।'[1] 'दो भाई' कहानी में यह बंटवारा दो भाइयों-केदार और माधव के बीच होता है। माधव की दशा गिरती जाती है यहां तक कि उसे अपना घर भी केदार के यहां रेहन करना पड़ता है।[2] 'सवा सेर गेहूं' में भी भूमि का बंटवारा दो भाइयों-शंकर और मंगल-के मध्य होता है जिसके कारण शंकर किसान से मजूर हो गया है। 'एक साथ रहकर दोनों किसान थे, अलग होकर मजूर हो गये थे।'[3] 'गोदान' में यह विभाजन होरी, शोभा और हीरा तीन भाइयों में होता है। होरी अलग है शोभा और हीरा एक साथ हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि 'जब से अलग्योझा हुआ है, दोनों घरों में एक जून रोटी पकती है।'[4]

भूमि-व्यवस्था में जमींदार कारिन्दों और प्यादे की सहायता लेते थे। इनका अत्याचार चरम सीमा पर था। 'प्रेमाश्रम' में ज्ञानशंकर के कारिन्दे के रूप में गौस खां और प्यादे के रूप में फैजू का चित्रण किया गया है। 'गोदान' में राय अमरपाल सिंह के कारिन्दे के रूप में ठाकुर झिंगुरी सिंह का चित्रण हुआ है। उत्तर भारत में भूमि के सरकारी हिसाब-किताब के लिए पटवारी होता था। 'गोदान' का पटेश्वरी पटवारियों का प्रतिनिधि है जो झिंगुरी सिंह और दातादीन के साथ मिलकर किसानों से लाभ उठाने का प्रयास करता रहता है।

भारतवर्ष की इस भूमि-व्यवस्था के अन्तर्गत गांव जीवन से सम्बन्धित जो वर्ग उभर कर सामने आए उनमें सामन्तवर्ग के राजे-महाराजे, ताल्लुकेदार, जमींदार कारिन्दे और दूसरी ओर किसान और मजदूर थे। भारतीय ग्रामीण जीवन का रूप प्राचीन काल से ही सहकारी जीवन का रहा है। भारतीय कृषि-व्यवस्था में विभिन्न

- -

१— 'अलग्योझा', मानसरोवर भाग १ पृ० २८

२— 'दो भाई' दे० मानसरोवर भाग ७ पृ० २१५-२२१

३— 'सवा सेर गेहूं' मानसरोवर भाग ४ पृ० १७८

४— 'गोदान' पृ० २८

वर्गों या जातियों के लोग पलते रहे हैं जो खेती के कामों में सहायता करते थे अथवा ग्रामीणों के अन्य कार्यों में सहायक होते थे । ऐसे लोगों का जीवन निर्वाह आज भी उसी ढंग से हो रहा है । इनमें पुरोहित, भाट, नाई, लोहार, बढ़ई तथा अन्य निम्न वर्ग के लोग हैं । उत्पादन का कुछ अंश इनको उपज के समय दे दिया जाता है । प्रेमचन्द ने 'गोदान' में चैत के महीने में खलिहान में उपस्थित ऐसे लोगों का उल्लेख करते हुए लिखा है - "नाई, बारी, बढ़ई, लोहार, पुरोहित, भाट, भिखारी सभी अपने अपने जेवर लेने के लिए जमा हो गये थे ।"[1] 'सुजान भगत' कहानी में भी भाटों और भिक्षुकों की खलिहान में उपस्थिति का चित्रण है ।[2]

प्रश्न उठता है क्या प्रेमचन्द ने तत्कालीन प्रचलित भूमि-व्यवस्था के सुधार के लिए कुछ प्रयत्न किया है ? क्या उन्होंने टूटते हुए परिवारों और उनके कारण वितरित भूमि तथा गिरती आर्थिक स्थिति को रोकने का कोई साधन खोजा है ? इसके उत्तर में हमें यह कहना है कि प्रेमचन्द का सम्पूर्ण साहित्य जमींदारों के शोषक और किसानों के शोषित रूप में चित्रित किया गया है । किसानों से सहानुभूति रखने वाले उनके प्रमुख पात्रों का उल्लेख हम इसके पूर्व कर चुके हैं । उनके उपन्यास 'प्रेमाश्रम' की रचना ही इसी व्यवस्था के विरुद्ध, किसानों में एकता पैदा करने और उनकी आर्थिक स्थिति सुधार के लिए की गई है । किसानों के हितैषी प्रेमशंकर जानते हैं कि "भूमि का क्रमशः अत्यन्त अल्प भागों में विभाजित हो जाना और उसके लगान की अपरिमित वृद्धि"[3] ही उनकी दयनीय स्थिति का कारण है । वे यह भी जानते हैं कि "परिश्रमी तो इनसे अधिक कोई संसार में न होगा । मितव्ययिता में, आत्म संयम में, गृहप्रबन्ध में वे निपुण हैं । उनकी दरिद्रता का उत्तरदायित्व उन पर नहीं, बल्कि परिस्थितियों पर है जिनके आधीन उनका जीवन व्यतीत होता है और वह परिस्थितियां क्या हैं ? आपस की फूट, स्वार्थपरता और एक ऐसी संस्था का विकास जो उनके पात्रों की बेड़ी बनी हुई है ।"[4] अपनी कहानियां 'अलग्योझा' और 'दो भाई' में वे टूटे परिवार को एक करते हैं । 'प्रेमाश्रम' में वे जमींदारी

- -

१-- 'गोदान' पृ० २४८

२-- 'सुजान भगत' मानसरोवर भाग ५ पृ० १६२

३-- 'प्रेमाश्रम' पृ० २०३

४-- 'प्रेमाश्रम' पृ० २०३

अत्याचार का विरोध करते हैं तथा 'कर्मभूमि' में लगान आन्दोलन करवाते हैं ।[१]

ग्रामीण समुदाय

प्रस्तुत अध्याय के प्रारम्भ में ही प्रसिद्ध समाजशास्त्री जिलेट के विचारों को देखा जा चुका है, जिनके अनुसार ग्रामीण समुदायों का अध्ययन तथा उनका उचित ढंग से निर्माण ग्रामीण समाजशास्त्र के प्रथम तथा दूसरे प्रमुख कर्तव्य हैं । प्रेमचन्द-साहित्य में ग्रामीण समुदायों के अध्ययन के पूर्व हमें ग्रामीण समुदाय के स्वरूप पर विचार कर लेना चाहिए । डा० आर० एन० शर्मा ने ग्रामीण समुदाय को परिभाषित करते हुए कहा है कि "ग्रामीण समुदाय एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में रहने वाले मनुष्यों के स्थाई समूह को कहा जा सकता है जिसके सदस्यों में सामुदायिकता का भाव तथा ऐसे सांस्कृतिक सामाजिक एवं आर्थिक सम्बन्ध विकसित हो गए हों जो कि उन्हें दूसरे समुदायों से अलग करता हो ।"[२] डा० शर्मा की ग्रामीण समुदाय की परिभाषा के अनुसार एक देश में अनेक ग्रामीण समुदाय हो सकते हैं । अमेरिका, अफ्रीका तथा रूस ऐसे देशों में विभिन्न प्रकार के ग्रामीण समुदायों का स्वरूप सरलता से देखा जा सकता है । भारतीय गांवों के सम्बन्ध में मोटे रूप में तो उनमें अन्तर दिखाई दे सकता है परन्तु सूक्ष्म दृष्टि डालने पर यह स्पष्ट हो जायगा कि भारतीय गांवों का सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक स्वरूप एक सा है । जहां तक ग्रामीणों के स्वभाव और सादे जीवन का प्रश्न है उसमें भी भेद नहीं है । राजनीतिक मतवाद या प्रान्तीयता का नारा भले ही कभी-कभी कुछ स्वार्थी नेता वर्ग की पुकार पर बुलन्द हो जाय, परन्तु ग्रामीण अंचलों में वह स्थाई नहीं रह पाता है । प्रेमचन्द कथा-साहित्य का प्रमुख भाग उत्तरी-भारत के जीवन से सम्बद्ध है परन्तु उसका विस्तार क्षेत्र पूर्व में बंगाल, दक्षिण में मद्रास तथा पश्चिम में दिल्ली और पंजाब तक है ।

- -

१— इस सम्बन्ध में अगले अध्याय में विस्तृत रूप से विचार किया जायगा ।

२— "A village community can therefore be defined as a group of persons permanently residing in a definite geographical area and whose members ha ve developed community consciousness and cultural, social and economic relations which distinguish them from other communities."

डा० आर० एन० शर्मा: "इण्डियन रूरल सोशियोलॉजी", १९५७ (कानपुर) पृ० २५

निबंधकार और संपादक की हैसियत से प्रेमचन्द सम्पूर्ण भारत के हैं । अत: प्रेमचन्द द्वारा ग्रामीण जीवन और ग्रामीण समुदाय का जो चित्रण हुआ है उसे सम्पूर्ण भारत के गांवों का चित्रण माना जाना चाहिए । साहित्य मात्र प्रतीक होता है जो विभिन्न अवस्थाओं की ओर संकेत करता है । समाजशास्त्र के अन्तर्गत भी समाजशास्त्री एक क्षेत्र विशेष का अध्ययन करता है परन्तु उसके आधार पर विस्तृत भूखण्ड के सम्बन्ध में अनुमान लगाया जाता है । ग्रामों के अध्ययन के सम्बन्ध में इस तरह के उदाहरण श्री एम० एन० श्रीनिवास का `मैसूर के गांवों का सामाजिक स्वरूप' (सोशल सिस्टम ऑव मैसूर विलेज) टी० सिया का `मलाबार के गांवों का आर्थिक अध्ययन' (इकोनामिक स्टडी ऑव ए मलाबार विलेज) तथा ई० के० मिलर का `उत्तरी केरल के गांव का ढांचा' (विलेज स्ट्रक्चर इन नार्थ केरल) आदि हैं । इस तरह के और भी बहुत से उदाहरण हैं । इन अध्ययनों का सम्बन्ध क्षेत्र विशेष तक ही सीमित नहीं है बल्कि उसके आधार पर दूसरे स्थानों के सम्बन्ध में भी निष्कर्ष निकाला जाता है । इसी प्रकार प्रेमचन्द-साहित्य में ग्रामीण समुदाय से संबन्धित अध्ययन को क्षेत्र विशेष तक सीमित न करके सम्पूर्ण भारत के ग्रामीण समुदाय से उसका सम्बन्ध माना जाना चाहिए ।

भारतीय ग्रामीण समुदाय की अपनी प्रमुख विशेषताएं बिरादरी का महत्व, संयुक्त परिवार, प्राचीन संस्कृति के प्रति आस्था, धर्म में विश्वास और धर्म भीरुता, सामूहिक भाव, सहयोग आदि रही हैं । प्रेमचन्द-साहित्य में ग्रामीण समुदाय में ऐसी विशेषतायें स्थान-स्थान पर विभिन्न संदर्भों में प्राप्त होती हैं ।

<u>बिरादरी का अस्तित्व</u> : सामूहिकता और सहानुभूति का ग्रामीण समुदाय में महत्वपूर्ण स्थान है । पंचायतों के निर्णयों को स्वीकार कर लेना, यहां तक बिरादरी की पंचायतों को भी हानि उठाते हुए मान लेना ग्रामीणों का प्रमुख गुण है । `गोदान' का होरी ग्रामीण समुदाय की इस मनोवृत्ति का अनोखा उदाहरण है । होरी ने झुनिया को शरण दी है । उसका लड़का गोबर उसके ऊपर झुनिया का भार छोड़कर शहर भाग गया है । गांव के लोग झिंगुरीसिंह, दातादीन और पटेश्वरी होरी पर दबाव डालते हैं कि वह झुनिया को घर से निकाल दे । होरी का निर्णय है कि झुनिया राजी से जाना चाहे तो अपने पिता के घर जा सकती है । गोबर ने बांह पकड़कर झुनिया के साथ धर्म निभाया है । होरी "बिरादरी के भय से

हत्यारे का काम नहीं कर सकता ।"[१] दयालु होरी झुनिया को घर से निकालने के लिए तैयार है । उसके अनुसार "पंच में परमेश्वर रहते हैं ।"[२] धनिया द्वारा विरोध किये जाने पर होरी हाथ जोड़कर कहता है - "हम सब बिरादरी के चाकर हैं, उसके बाहर नहीं जा सकते, वह जो डांड लगाती है उसे सिर झुकाकर मंजूर कर नक्कू बनकर जीने से तो गले में फांसी लगा लेना अच्छा है । आज मर जांय तो बिरादरी ही तो इस मिट्टी को पार लगायेगी । बिरादरी ही तारेगी तो तरेंगे ।"[३] धनिया के अनुसार "यह पंच नहीं हैं, राक्षस हैं, पक्के राक्षस ।"[४] होरी अपने बाल-बच्चों के लिए चिंतित है । बाल-बच्चे क्या खायेंगे इसकी चिन्ता उसके प्राण सोखे जा रही थी परन्तु बिरादरी द्वारा दिए गए दण्ड को पूरा करने के लिए वह अपने खलिहान का अनाज अपने सिर पर ढो-ढोकर झिंगुरी सिंह की चौपाल में ढेर कर रहा है क्योंकि "बिरादरी का भय पिशाच की भांति सिर पर सवार अंकुश दिये जा रहा था । बिरादरी से पृथक जीवन की वह कोई कल्पना ही न कर सकता था । शादी-ब्याह, मूड़न-छेदन, जन्म-मरण सब कुछ बिरादरी के हाथ में है । बिरादरी उसके जीवन में वृक्ष की भांति जड़ जमाये हुए थी और उसकी नसें उसके रोम-रोम में बिंधी हुई थीं ।"[५] होरी खलिहान का अनाज दे डालता है । अपना घर अस्सी रुपये में झिंगुरी सिंह के यहां गिरों रख देता है परन्तु वह पंचों के फैसले को नहीं टाल सकता । बिरादरी का भय 'खून सफेद' कहानी में सादो को उसके पिता जादव राय, माता देवकी और परिवार से विलग रहने के लिए विवश करता है । सादो बचपन में पादरी के साथ चला जाता है । शिक्षित होने पर युवावस्था में वह घर आता है । वह तैयार है कि "बिरादरी जो प्रायश्चित बतलायेगी, मैं उसे करूंगा ।"[६] बिरादरी का निर्णय है कि "लड़का इतने दिनों के बाद घर आया है, हमारे सिर आंखों पर रहे । बस जरा खाने-पीने और छूत-छात का बचाव बना रहना चाहिए ।"[७]

- -

१-- 'गोदान' पृ० १२६

२-- 'गोदान' पृ० १३१

३-- 'गोदान' पृ० १३१

४-- 'गोदान' पृ० १३२

५-- 'गोदान' पृ० १३२

६-- 'सफेद खून' मानसरोवर भाग ८, पृ० ११

७-- 'सफेद खून' मानसरोवर भाग ८, पृ० १४

साधो उसे अपमान समझता है और वह वापस चला जाता है ।

प्रेमचन्द ने 'सफेद खून' कहानी में बिरादरी की इस चाहर दीवारी के विरुद्ध शिक्षित युवक साधोराय से विद्रोह कराया है । अपने पिता द्वारा बिरादरी की बात मानने के लिए दबाव डाले जाने पर साधोराय स्पष्ट कहता है "क्या मान लूं ? यही कि अपनों में गैर बनकर रहूं, अपमान सहूं, मिट्टी का घड़ा भी मेरे छूने से अशुद्ध हो जाय । न यह मेरा किया न होगा, मैं इतना निर्लज्ज नहीं हूं ।"[१] इस विद्रोह से बिरादरी के जाल से बचत नहीं है । मां द्वारा मनाये जाने पर वह बिरादरी के अगले कदम की ओर संकेत करके कहता है - "लेकिन बिरादरी ने मेरे कारण यदि तुम्हें जाति च्युत कर दिया तो मुझसे न सहा जायगा ।"[२] साधो गंवारों के कोरे अभियान के सामने झुकना नहीं चाहता, परन्तु उन्हें झुका भी नहीं सकता । उसे घर छोड़कर जाना पड़ता है । 'बहिष्कार' कहानी में ज्ञानचन्द को आर्थिक कठिनाई का सामना इसलिए करना पड़ता है क्योंकि उसकी पत्नी गोविन्दी के माता-पिता का दोष सोमदत्त ने ईर्ष्या के कारण खोल दिया है । इस कहानी का अंत ज्ञान चन्द्र की हत्या और गोविन्दी की मृत्यु से होता है ।"[३] ग्रामीण समुदाय की जटिलता का बोध इस कहानी से स्पष्ट होता है । 'कर्मभूमि' में काशी को बिरादरी की चिंता है । अमरकान्त के नाच से उठ जाने पर मुन्नी नाचना छोड़कर चली जाती है । काशी अमरकान्त से कहता है - "तुम चलकर कह दो तो साइत चली जाय । कौन रोज-रोज यह दिन आता है । बिरादरी वाली बात है लोग कहेंगे, हमारे यहां काम आ पड़ा, तो मुंह छिपाने लगे ।"[४] ग्रामीण समुदाय में शिक्षा और जागृति के प्रचार के बाद भी बिरादरी का अंकुश बना हुआ है । कुछ अंशों में यह अंकुश रूढ़िवादी और अनुपयोगी है परन्तु सामाजिक मर्यादा की रक्षा और अनैतिक कार्यों के रोक में यह सहायक भी है । बिरादरी और सामूहिकता का अस्तित्व प्रेमचन्द-साहित्य में इन संदर्भों में स्पष्ट हुआ है ।

- -

१-- 'सफेद खून' मानसरोवर भाग ८, पृ० १४

२-- 'सफेदखून' मानसरोवर भाग ८, पृ० १४

३-- 'बहिष्कार' मानसरोवर भाग ५, पृ० ९६-११०

४-- 'कर्मभूमि', पृ० १६४

ग्रामीण परिवार : ग्रामीण समुदाय के अन्तर्गत ग्रामीण समाजशास्त्रियों की रुचि ग्रामीण परिवारों के अध्ययन के प्रति विशेष रूप से रही है। विभिन्न सामाजिक विज्ञानों के अन्तर्गत परिवारों को महत्व दिया जाता रहा है फिर भी ग्रामीण समाजशास्त्रियों के खोज विषय ग्रामीण परिवार रहे हैं।[१] इस शोध-प्रबन्ध में आगे चलकर प्रेमचन्द-साहित्य में परिवार का स्वतंत्र रूप से अध्ययन किया जायगा परन्तु ग्रामीण जीवन के ग्रामीण समाजशास्त्र के संदर्भ में ग्रामीण परिवार पर संक्षेप में प्रकाश डालना आवश्यक हो गया है। प्राचीन काल से भारतवर्ष में संयुक्त परिवार प्रणाली का प्रचलन भारतीय परिवार की विशेष विशेषता रही है। आधुनिक शहरी जीवन में परिवारों की संयुक्तता को भारी आघात हुआ है। वहां पर परिवारों के विघटन की स्थिति अधिक प्रबल है। भारतीय गांवों में संयुक्त परिवार प्रणाली के विघटन को एकदम से नकारा नहीं जा सकता है परन्तु वहां पर संयुक्त परिवारों की प्रधानता आज भी बनी हुई है। प्रेमचन्द-साहित्य में 'कर्मभूमि' के गूदड़ चौधरी का परिवार संयुक्त परिवार के रूप में चित्रित किया गया है। चौधरी के लड़के प्रयाग, काशी, तेजा और दुरजन चौधरी के साथ ही रहते हैं।[२] लड़के ही नहीं, उनकी बहुएं और मुन्नी भी साथ है। 'कर्मभूमि' उपन्यास के पूर्व के ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित उपन्यास 'प्रेमाश्रम' में प्रेमचन्द ने गांव जीवन में पारिवारिक विघटन की ओर संकेत नहीं किया है। 'गोदान' उपन्यास में अवश्य होरी का संयुक्त परिवार टूटता हुआ दिखाया गया है। इसी प्रकार 'सवा सेर गेहूं' कहानी में भी शंकर और मंगल दो भाइयों का परिवार विघटित होता है। इस विघटन के कारण गांव के

- -

१-- "As one of the most primary of groups and structures, rural sociologists have shown enormous interest in the rural, family, its structure, function and value orientation. Although the family unit is given great importance in social Sciences generally, family interaction, family structure and other relationships bearing upon the family system, is central to many rural sociological researches

जे० रोजन एण्ड चार्ल्स पी० लूमिस: 'रूरल सोशियोलॉजी' के० ईश्वरन राठौर (सं०) 'कन्टेम्पोरेरी सोशियोलॉजी' १९६५ (न्यूयार्क), पृ० २६३

२-- 'कर्मभूमि' पृ० १७७

किसान होरी और शंकर को मजदूर बनना पड़ता है। प्रेमचन्द गांव जीवन में संयुक्त परिवार प्रणाली को विघटन से बचाने के लिए प्रयत्नशील दिखाई देते हैं। 'बड़े घर की बेटी' तथा 'शंखनाद' कहानी में वे परिवार को टूटते-टूटते बचा लेते हैं। 'बड़े घर की बेटी' कहानी में छोटा भाई लाल बिहारी घर छोड़ने के लिए तैयार है परन्तु अलग रहने के लिए नहीं। भाभी आनन्दी उसे क्षमा कर देती है। परिवार टूटने से बच जाता है।"[1] 'शंखनाद' कहानी के पारिवारिक कलह जो अलगाव का कारण बन सकता था, गुमान द्वारा कर्मपथ में प्रवेश करने का निर्णय इस विघटन को बचा लेता है।[2] 'वैर का अंत' कहानी में विश्वेश्वरराय की मृत्यु के बाद भतीजा जागेश्वरराय अपने पिता रामेश्वरराय और स्त्री की इच्छा के विरुद्ध भी विश्वेश्वरराय के लड़कों के लालन-पोषण का निर्णय करता है।[3] 'गोदान' का होरी भी अलगाव के बाद पुनिया के खेत की रखवाली करता है तथा अपने भाई हीरा के परिवार का पालन-पोषण करने के लिए प्रयत्नशील है। प्रेमचन्द ग्रामीण जीवन की संयुक्त परिवार प्रणाली को बनाए रखना चाहते थे यद्यपि उसके विघटन की स्थिति से वे परिचित थे। भारतीय गांवों के वर्तमान अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकला है कि गांवों में लम्बे संयुक्त परिवारों की संख्या बहुत थोड़ी रह गई है। गांव के लोग छोटी-छोटी पारिवारिक इकाइयों में विघटित हो रहे हैं। उत्तरी भारत में यह स्थिति विशेष रूप से पाई जाती है। कुछ विशिष्ट अवसरों पर अस्थाई रूप से सब लोग एकत्र हो जाते हैं वैसे व्यवहारिक कार्यों एवं आर्थिक रूप से उनमें स्वतंत्रता पाई जाती है।[4] प्रेमचन्द को ग्रामीण जीवन में इस पारिवारिक

- -

१-- 'बड़े घर की बेटी' दे० मानसरोवर भाग ७

२-- 'शंखनाद' दे० मानसरोवर भाग ७

३-- 'वैर का अंत' दे० मानसरोवर भाग ७

४-- "Recent studies of Indian villages demonstrate the dominance of the elementary family and the survival of a very few large joint families, which typically are identified with the upper strata of society. It is characteristic to note that in some of the North Indian Villages where, even if a linear group shares a home in common, for all practical purposes, they live as members

(शेष अगले पृष्ठ पर)

स्थिति का बोध हो गया था इसी कारण उन्होंने विघटन के तथ्य को छिपाने का प्रयास नहीं किया, परन्तु उसका उल्लेख करके, विघटन को रोकने का प्रयत्न अवश्य किया है।

पुरातनता के प्रति मोह : लौकिक तत्व : ग्रामीणों को पुरातनता से मोह और प्राचीन संस्कृति के प्रति आस्था होती है। वे कुछ नया ग्रहण करने में झिझकते हैं। इधर नए युग ने गांवों में नयापन उत्पन्न कर दिया है परन्तु पुराने लोग अब भी पुराने के प्रति आस्थावान हैं। बर्नर ने १९२७ ई० में प्रकाशित अपनी पुस्तक में ग्रामीणों की इस प्रवृत्ति का उल्लेख करते हुए कहा है कि गांव के कुछ लोग एक विशेष तरह का आर्थिक दृष्टिकोण रखते हैं। ऐसे लोगों के जीवन का अपना अलग ढंग होता है। वे संसार में मौके की खोज नहीं करते बल्कि शान्ति और सफाई चाहते हैं यही कारण है कि उनको नवजवानों की सहानुभूति नहीं मिल पाती है।[१] 'गोदान' में होरी और गोबर की यही स्थिति है। होरी कर्ज ले लेकर अपना काम चलाता जाता है। उसके बैल-बछिया सब हो गए हैं परन्तु समय आने पर वह कर्ज लेने से नहीं चूकता। बिना रसीद लिए वह लगान दे देता है। जमींदार उससे पुनः लगान मांगते हैं। होरी के शब्दों में "मैंने पाई-पाई लगान चुका दिया। वह कहते हैं, तुम्हारे ऊपर दो साल की बाकी है। अभी उस दिन मैंने ऊख बेची पचास रुपये वहीं उनको दे दिये, और आज वह दो साल का बाकी निकालते हैं।"[२] होरी के इस

- -

of the independent elementary family. They have their own hearths and independent ways of earning and expenditure, although such occasions, as births, marriages, deaths, bitigations and so on may unite them temporarily."

नेल्स अन्डर्सन ऐण्ड के० ईश्वरन: 'अरबन सोशियॉलाजी' १९६५ (न्यूयार्क), पृ० ३०

१-- "The older people have, therefore, a peculiar economic interest in presserving the status quo in the village. In addition, there is the faster of age. These people have lived their lives. They now ask of the world, not opportunity but peace and quiet. Hence they are out of sympathy with youth."

बर्नर: 'विलेज कम्युनिटीज' १९२७ (न्यूयार्क), पृ० २४

२-- 'गोदान' पृ० २२६

तरह के नासमझ कार्य से गोबर को रोष है। वह चौपाल में आकर होरी को लताड़ता हुआ कहता है - "तुम तो बच्चों से भी गये बीते हो जो बिल्ली की म्याऊं सुनकर चिल्ला उठते हैं। कहां-कहां तुम्हारी रक्षा करता फिरूंगा। मैं तुम्हें सत्तर रुपये दिये जाता हूं। दातादीन ले तो भरपाई लिखा देना। इसके ऊपर तुमने एक पैसा भी दिया तो फिर मुझसे एक पैसा भी न पाओगे। मैं परदेस में इसलिए नहीं पड़ा हूं कि तुम अपने को लुटवाते रहो और मैं कमाकर मरता रहूं।"[1]

आर्थिक ही नहीं सांस्कृतिक दृष्टि से भी ग्रामीण प्राचीनता को छोड़ना नहीं चाहते हैं। डा० शर्मा के अनुसार गांव समाजशास्त्रीय दृष्टि से इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि वे समाज की प्राचीन संस्कृति को सुरक्षित रखते हैं। भारतीय गांवों के सम्बन्ध में उनकी धारणा है कि ग्रामीण प्राकृतिक शक्तियों के उपासक होते हैं और इन शक्तियों से सहायता पाने के लिए कभी-कभी वे जादू और मंत्र का भी सहारा लेते हैं।[2] प्रेमचन्द-साहित्य में हमें ग्रामीण जीवन के इन महत्वपूर्ण तथ्यों के भी उदाहरण प्राप्त होते हैं।

भारतीय गांव अपनी पुरानी परम्पराओं और रीति-रिवाजों को आज भी अपनाए हुए हैं। उनमें प्राचीन संस्कृति का स्वरूप इन्हीं परम्पराओं और रीति-रिवाजों के मध्य दिग्दर्शित होता है। भारतीय गांवों में होली दशहरे और दीपावली ऐसे बड़े त्योहारों के अलावा नाग-पंचमी और सतु-संक्रान्ति ऐसे छोटे-मोटे त्योहार भी मनाए जाते हैं। प्रेमचन्द ने होली, दीपावली आदि बड़े त्योहारों की चर्चा की है उनके वर्णन से नागपंचमी और मेष की संक्रान्ति भी नहीं छूटी। सावन में नागपंचमी

- -

१-- 'गोदान', पृ० २२७

२-- "From the sociological view point also the villages are important because they preserve the ancient culture of society. India is an agricultural country. The life of the villagers depends considerably upon natural forces due to their occupation, which is agriculture, and thus they worship natural forces like the sun, rain etc. They are some times observed resorting to magic in order to gain the assistance of these forces."

डा० आर० एन० शर्मा: 'इण्डियन रूरल सोशियोलोजी', १९६० (कानपुर) पृ० ३३

के दिन गांवों में दंगल होते हैं। गांव के नवजवान कुश्ती के लिए एक स्थान पर इकट्ठे होते हैं और स्त्रियां नाग देवता की पूजा करती है। इसका चित्र प्रस्तुत करते हुए प्रेमचन्द ने लिखा है - "नागपंचमी आयी। साठे के जिन्दा दिल नौजवानों ने रंग-बिरंगे जांघिये बनवाये। अखाड़े में ढोल की मर्दाना सदायें गूंजने लगीं। आस पास के पहलवान इकट्ठे हुए और अखाड़े पर तम्बोलियों ने अपनी दूकानें सजायीं क्योंकि आज कुश्ती और दोस्ताना मुकाबले का दिन है। औरतों ने गोबर से अपने आंगन लीपे और गाती बजाती कटोरों में दूध-चावल लिए नाग पूजने चलीं।"[१] सावन में इसी नागपंचमी के दिन स्त्रियां गुड़ियों की विदाई देती हैं और लड़के गुड़िया पीटते हैं। इस ग्रामीण परम्परा का उल्लेख करते हुए प्रेमचन्द ने लिखा है - "आज गुड़ियों की विदाई है। गुड़ियां अपनी ससुराल जायेंगी। कुंआरी लड़कियां हाथ-पैर में मेंहदी रचाये गुड़ियों को गहने कपड़े से सजाये उन्हें विदा करने आयी हैं उन्हें पानी में बहाती हैं और चहककर सावन के गीत गाती हैं। मगर सुख-चैन के आंचल से निकलते ही इन लाड़-प्यार से पली हुई गुड़ियों पर चारों तरफ से छड़ियों और लकड़ियों की बौछार होने लगती है।"[२] चैत की संक्रान्ति का उल्लेख करते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं - "चैत का महीना था और संक्रान्ति का पर्व। आज के दिन नये अन्न का सत्तू खाया और दान दिया जाता है घरों में आग नहीं जलती।"[३] गांवों में होली धूम-धाम से मनाई जाती है इस दिन भांग छानी जाती है। रंग और गुलाल के साथ मुंह पोतने के लिए कालिख का भी प्रयोग किया जाता है। 'गोदान' में होली की तैयारी का चित्र प्रस्तुत करते हुए प्रेमचन्द कहते हैं - "होली का प्रोग्राम बनने लगा। खूब भंग घुटे, दुधिया भी, नमकीन भी और रंगों के साथ कालिख भी बने और मुखियों के मुंह पर कालिख ही पोती जाय। होली में कोई बोल ही क्या सकता है। फिर स्वांग निकले और पंचों की भद उड़ाई जाय।"[४] होली सौहार्द का त्यौहार माना जाता है लोग हिल-मिल कर होली खेलते हैं रंग और कालिख को प्रायः लोग बुरा नहीं मानते। स्वांग भरने की भी प्रथा है। 'स्वांग' कहानी में होली के दिन होली

- -

१-- 'अंधेर' गुप्तधन भाग १, पृ० १३४

२-- 'नेकी' गुप्तधन भाग १, पृ० १६०

३-- 'विध्वंस' मानसरोवर भाग ८, पृ० १८०

४-- 'गोदान', पृ० २१५

जलने के बाद ससुराल आए हुए गजेन्द्र को डाकुओं का रूप धारण करके डरवाया जाता है। उसकी पत्नी श्याम दुलारी को बनावटी डाकू ले जाना चाहते हैं। भयभीत गजेन्द्र के हाथ-पांव बांधकर आंगन तक उठा लाया जाता है। श्याम दुलारी डाकुओं के साथ चलने को तैयार हो जाती है। इसके बाद रहस्य खुलता है।[१]

गांवों में लोकगीत अब भी सुरक्षित हैं जिनके माध्यम से ग्रामीण जीवन की अभिव्यक्ति सम्भव है। `गोदान` का व्यथित होरी कोयल की मर्मस्पर्शी रसीली लय सुनकर गा उठता है -

"हिया जरत रहत दिन रैन
आम की डरिया कोयल बोले, तनिक न आवत चैन।"[२]

लोकगीतों में क्षेत्र विशेष, गांव विशेष के गौरव की अभिव्यक्ति होती है। ग्रामीण जन लोकगीतों के माध्यम से अपने अन्त:करण की बात सीधे रूप से कह देते हैं। लोकगीत ग्रामीण संस्कृति का एक तरह से साहित्यिक पक्ष है। साठे और पाठे दो गांवों की प्रतिद्वन्द्विता लोकगीत में इस प्रकार व्यक्त की गई है। पाठे के चरवाहे यह गीत गाते हैं -

"साठे वाले कायर सगरे पाठे वाले हैं सरदार
और साठे के धोबी गाते हैं -
साठे वाले साठ हाथ के जिनके हाथ सदा तलवार।
उन लोगन के जनम नसाये जिन पाठे मान लीन अवतार।"[३]

गांव के लोकगीतों में कभी-कभी अन्तर्कथायें छिपी होती हैं इस तरह के एक गीत का उदाहरण प्रेमचन्द की कहानी `सिर्फ एक आवाज` में मिलता है। गांव की स्त्रियां चन्द्रग्रहण का स्नान करने जा रही हैं वे मार्ग में यह गीत गा रही हैं -

"चांद सुरज दूनो लोक के मालिक
एक दिना उनहूं पर बनती
हम जानी हमहीं पर बनती।"[४]

- -

१-- "स्वांग", गुप्तधन भाग २, पृ० १३७
२-- "गोदान", पृ० २३०
३-- "अंधेर", गुप्तधन भाग १, पृ० १३६
४-- "सिर्फ एक आवाज", गुप्तधन भाग १, पृ० १४२

शहर जीवन में जहां आज के प्रचार के युग में सिनेमा के दिन प्रतिदिन नए गीतों और वाद्य-यंत्रों की नई-नई धुनें सुनाई देती हैं वहीं गांव जीवन में इनका थोड़ा बहुत प्रचार होने पर भी लोकगीतों की परम्परा सुरक्षित है।

लोकगीतों की परम्परा के अलावा ग्रामीण जीवन में लोकनृत्य भी सुरक्षित हैं। 'वरदान' उपन्यास में विरजन कमलाचरण के नाम पत्र में गांव में धोबियों के नाच की चर्चा करते हुए लिखती है - "कल सायंकाल यहां एक बड़ा चित्ताकर्षक प्रहसन देखने में आया। यह धोबियों का नाच था। पन्द्रह बीस मनुष्यों का एक समुदाय था। उसमें एक नवयुवक श्वेत पेशवाज पहिने, कमर में असंख्य घंटियां बांधे, पांव में घुंघरू पहिने, सिर पर लाल टोपी रखे नाच रहा था। जब पुरुष नाचता था तो मृदंग बजने लगती थी।"[१] इसी प्रकार प्रेमचन्द ने 'कर्मभूमि' में चमारों के लोकनृत्य की चर्चा भी की है। "पयाग और एक युवती मिलकर नाच रहे हैं। अब दूसरे जोड़े की बारी आयी है। चौड़ी छाती वाला गठीला युवक सोने की मुहर पहने और कछनी काढ़े हुए है। उसका साथ देने वाली मुन्नी घेरदार लहंगा पहने गुलाबी ओढ़नी ओढ़े और पांव में पैजनियां बांधे हुए है। दोनों कभी हाथ में हाथ मिलाकर, कभी कमर में हाथ रखकर, कभी कूल्हों को ताल में मटकाकर नाचने में उन्मत्त हो रहे हैं। सभी मुग्ध नेत्रों से इन कलाविदों की कला देख रहे हैं। ---- दोनों हाथ में हाथ मिलाये, थिरकते हुए रंगभूमि के उस सिरे तक चले जाते हैं और क्या मजाल कि एक गति भी बेताल हो।"[२] उपर्युक्त उल्लेखों के माध्यम से ग्रामीण समुदाय में लोकनृत्यों के अस्तित्व का बोध होता है जो समाजशास्त्री की अध्ययन सामग्री है।

<u>धर्म और धार्मिकता</u> : धर्म में आस्था और धर्म भीरुता ग्रामीण समुदाय की एक दूसरी विशेषता है। विवाह, गौना, मुंडन आदि में जहां धार्मिक अनुष्ठानों का आयोजन होता है वहीं जैसा कि हम उल्लेख कर चुके हैं प्राकृतिक शक्तियों से सहायता के लिए भी पूजा और अनुष्ठान का सहारा लिया जाता है। ग्रामीण जीवन के संदर्भ में प्रेमचन्द जी ने 'सफेद खून' कहानी में इस तथ्य की ओर संकेत किया है। "अकालग्रस्त किसानों ने बहुतेरे जप-तप किये, ईंट और पत्थर, देवी-देवताओं के नाम से पुजाये, बलिदान किये, पानी की अभिलाषा में रक्त के पनाले बह गये लेकिन इन्द्रदेव किसी

- -

१— 'वरदान', पृ० [illegible]

२— 'कर्मभूमि', पृ० [illegible]

तरह न पसीजे ।"[१] प्रेमचन्द जी का यह कथन भले ही ग्रामीणों के अंधविश्वास के प्रति व्यंग हो परन्तु उनकी धार्मिक आस्था और इस तरह की प्राकृतिक उपासना के स्वरूप को तो स्पष्ट करता ही है । चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, अमावस्या, पूर्णमासी तथा अन्य धार्मिक पर्वों पर नदियों में स्नान करने की प्रथा भारतवर्ष में प्रचलित है । गरीब, अपाहिज, असहाय, वृद्ध सब लोग स्नान के लिए जाते हुए ग्रामीणों के दृश्य का चित्र प्रस्तुत करते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं - "दोपहर होते-होते ठाकुर और ठकुराइन गांव से चले तो सैकड़ों आदमी उनके साथ थे और पक्की सड़क पर पहुंचे तो यात्रियों का ऐसा तांता लगा हुआ था कि जैसे कोई बाजार है । ऐसे-ऐसे बूढ़े लाठियां टेकते या डोलियों पर सवार चले जाते थे जिन्हें तकलीफ देने की यमराज ने भी कोई जरूरत न समझी थी । अंधे दूसरों की लकड़ी के सहारे कदम बढ़ाये आते थे । कुछ आदमियों ने अपनी बूढ़ी माताओं को पीठ पर लाद लिया था । किसी के सर पर पोटली, किसी के कंधे पर लोटा-डोर, किसी के कंधे पर कांवर । कितने ही आदमियों ने पैरों पर चिथड़े लपेट लिये थे, जूते कहां से लायें । मगर धार्मिक उत्साह का यह वरदान था कि मन किसी का मैला न था । सबके चेहरे खिले हुए, हंसते-हंसते बातें करते चले आ रहे थे ।"[२]

गांव के अंधे और अपाहिज लोग भी धर्म कमाने की लालसा से कष्ट झेलते हुए भी प्रसन्न हैं । धर्म के प्रति यही आस्था और विश्वास संकट में उनके सहायक होते हैं । देवी-देवताओं के प्रति आस्था और विश्वास सरल ग्रामीणों के अन्तर्मन में बैठ गया है । 'मंदिर' कहानी की गरीब सुखिया का पुत्र जियावन बीमार है ।" सुखिया का चिंता व्यथित चंचल मन कोठे-कोठे दौड़ रहा था । किस देवी की शरण जाय, किस देवी की मनौती करे, इसी सोच में पड़े-पड़े उसे एक झपकी आ गयी ।"[३] उसके अचेतन मस्तिष्क में देवता के प्रति आस्था बनी है । यही कारण है कि स्वप्न में उसके मृत पति यह कहकर कि "तेरा बालक अच्छा हो जायगा । कल ठाकुर जी की पूजा कर दे, वही तेरे सहायक होंगे ।"[४] सुखिया पूजा का निर्णय लेती है । गरीब सुखिया को सारे गांव में मांगने पर दो चार आने पैसे भी नहीं मिलते । तब वह हाथों के चांदी के कड़े गिरो

- -

१— "सफेद खून", मानसरोवर भाग ८, पृ० ११

२— "सिर्फ एक आवाज", गुप्तधन भाग १, पृ० १३२

३— "मंदिर", मानसरोवर भाग ५, पृ० ६

४— "मंदिर", मानसरोवर भाग ५, पृ० ६

रखकर पूजा का सामान जुटाती है। परन्तु जाति की चमारिन इस सुखिया को मंदिर में स्थान कहां, पूजा की स्वीकृति कहां? कहानी का अन्त सुखिया और उसके लाड़ले पुत्र के अंत से होता है। वर्तमान हिन्दू समाज की नीच धारणा का जहां इस कहानी में पर्दाफाश हुआ है वहीं सरल ग्रामीण महिला सुखिया की धार्मिक आस्था एवं देव-पूजा में विश्वास भी उभर कर सामने आया है। यह आस्था और विश्वास सुखिया का नहीं है बल्कि ग्रामीणों की आस्था और विश्वास है।

'अंधेर' कहानी में गोपाल रात्रि को बदमाशों द्वारा पीटा जाता है। रपट न लिखवाने के अपराध में पुलिस उसे पकड़ना चाहती है उसकी पत्नी गौरा मुखिया के माध्यम से रुपये देकर उसकी रक्षा करती है। गौरा को विश्वास है "पितरों ने, दीवान हरदौल ने, नीम तले वाली देवी ने, तालाब के किनारे वाली सती ने गोपाल की रक्षा की, यह उन्हीं का प्रताप था। देवी की पूजा होनी जरूरी थी। सत्य नारायण की कथा भी लाजिमी हो गयी थी।"[1] गौरा जैसी सरल गांव की स्त्री को यह कैसे, विश्वास होता कि यह रुपये की माया थी जिसके लिए अभियोग बनाने का जाल रचा गया था। गौरा देवी की पूजा करती है और उसके यहां सत्य नारायण की कथा भी होती है।

ग्रामीण पुरुषों में धर्म भीरुता का सच्चा उदाहरण 'गोदान' का होरी है। भोला होरी के बैल भादों के महीने में कर्ज के बदले खोलने आया है। उसकी शर्त है कि होरी झुनिया को घर से निकाल दे या बैल दे दे। भोला बैल ले जाते हुए गांव के लोगों द्वारा रोका जाता है तो होरी कहता है - "मैंने कहा, मैं बहू को तो न निकालूंगा, न मेरे पास रुपये हैं। अगर तुम्हारा धरम कहे तो बैल खोल लो। बस, मैंने इनके धरम पर छोड़ दिया और इन्होंने बैल खोल लिये।"[2] धनिया झुनिया को रोकना चाहती है। गोबर उसे शहर ले जाना चाहता है। होरी धनिया को समझाता हुआ कहता है - "मां बाप का धरम है लड़के को पाल-पोस कर बड़ा कर देना। वह हम कर चुके। ——— मां बाप का धरम छोकड़ों आना लड़कों के साथ है। लड़कों का मां-बाप के साथ एक आना भी धरम नहीं है। जो जाता है उसे असीस देकर बिदा कर दे। हमारा भगवान मालिक है। जो कुछ भोगना बदा है भोगेंगे

- -

१— 'अंधेर' गुप्तधन भाग १, पृष्ठ [illegible]

२— "गोदान", पृष्ठ [illegible]

चालीस साल सैंतालीस साल इसी तरह रोते-धोते कट गये। दस-पांच साल है, वह भी ऐसे ही कट जायेंगे।"[1] ग्रामीण पिता होरी को पुत्र से कुछ नहीं चाहिए वह तो ईश्वर के भरोसे है। उसे कुछ चाहिए नहीं केवल भगवान के नाम पर दिन बिताना है।

सामूहिकता-मेल-मिलाप : गांव के निवासी पर दुख कातर होते हैं। बुरे समय और अच्छे समयों में वे एक हो जाते हैं। अतिथि के लिए उनके यहां स्थान होता है। प्रेमचन्द-साहित्य में हमें ग्रामीण जीवन में ऐसे उदाहरण ही मिलेंगे। 'प्रेमाश्रम' के किसान विपत्ति में संगठित होते हुए दिखाई देते हैं। 'कायाकल्प' में गांव के निवासी गांव आने पर चक्रधर का स्वागत करते हैं। 'कर्मभूमि' में अमरकान्त को सलोनी के यहां आश्रय मिलता है और लखनऊ जाते समय 'गोदान' के गोबर को मार्ग में बोदई के गांव में आतिथ्य मिलता है। एक साथ उत्सव या प्रसन्नता में सहयोग से काम करने का उदाहरण देते हुए प्रेमचन्द ने 'अंधेर' कहानी में गोपाल के यहां सत्य नारायण की कथा के समय का चित्र प्रस्तुत करते हुए लिखा है - "मालिन फूल के हार, केले की शाखें और बन्दनवारें लायी। कुम्हार नये-नये दिये और हंडियां दे गया। बारी के हरे ढाक के पत्तल और दोने रख गया। कहार ने आकर मटकों में पानी भरा। बढ़ई ने आकर गोपाल और गौरा के लिए दो नई-नई पीढ़ियां बनायीं। नाइन ने आंगन लीपा और चौक बनाई ---- आपस के कामों की व्यवस्था कुछ न कुछ अपने निश्चित दायरे पर चलने लगी।"[2] प्रेमचन्द के अनुसार आपसी मेल, सहयोग और भाई चारे की यही व्यवस्था संस्कृति है जिसने देहात की जिन्दगी को आडम्बर की ओर से उदासीन बना रखा है।"[3] प्रश्न है कि क्या इस व्यवस्था में हार्दिक सौहार्द अब भी अवशेष है। प्रेमचन्द ने इस तथ्य की ओर भी संकेत किया है कि बाह्य रूप में यह व्यवस्था तो बनी हुई है परन्तु भाव रूप में नहीं रही। वे स्पष्ट करते हैं - "लेकिन अफसोस है कि अब ऊंच नीच की बेमतलब और बेहूदा कैदों ने इन आपसी कर्तव्यों को सौहार्द सहयोग के पद से हटाकर इन पर अपमान और नीचता का दाग लगा दिया है।"[4] जमाना जुलाई १९१३ में प्रकाशित इस कहानी की यह उक्ति आज भी

- -

१-- 'गोदान', पृ० ३३०
२-- 'अंधेर', गुप्तधन भाग१, पृ० १३०
३-- 'अंधेर', गुप्तधन भाग १, पृ० १३०
४-- 'अंधेर', गुप्तधन भाग १, पृ० १३०

५७ वर्षों बाद तथा भारतीय आजादी के २३ वर्षों बाद ग्रामीण जीवन में सत्य है। शिक्षा राजनीतिक जागृति का ऊंच-नीच की जातीय भावना पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकी।

<u>पंचायत-व्यवस्था</u>: ग्रामीण समुदाय के सम्बन्ध में हमें ग्राम-जीवन की पंचायत व्यवस्था पर भी विचार कर लेना चाहिए। समाज शास्त्र के अन्तर्गत गांव प्रशासन का अध्ययन उसके स्वरूप तथा समस्याओं के सुलझाने में सहायक के रूप में होता है।[1] भारतवर्ष में ग्रामीण जीवन में वैदिक काल में भी ग्राम का प्रमुख `ग्रामिणी` कहा जाता था। उसका सम्बन्ध प्रशासन से भी था। महाभारत काल में भी `ग्रामिणी` गांव का प्रमुख था। दस गांवों के प्रमुख को `दश ग्रामिणी`, बीस गांवों के प्रमुख को `विंशतिक`, सौ ग्रामों के प्रमुख को `शत ग्रामिणी` और एक हजार गांवों के व्यवस्थापक को `अधिपति` कहा जाता था। `मनुस्मृति` में भी `ग्रामिणी`, `दशी`, `विन्सी`, `शतेश` को अधिकारी के रूप में उल्लेख किया गया है। ग्रामिणी गांव के लोगों की सहायता से गांव के मामलों का निपटारा करता था। ग्रामों में सभाओं और पंचों की व्यवस्था हिन्दू तथा मुसलमान राजाओं के समय तक बनी रही। अंग्रेजों के प्रशासन काल में इस व्यवस्था को आघात पहुंचा क्योंकि गांव के जमींदार और ठेकेदार गांव के मामलों में दखल देने लगे। डा० तारा चन्द ने १८ वीं शताब्दी से इस व्यवस्था में विघान का उल्लेख किया है।[2] अपनी जीवित अवस्था में यह व्यवस्था

- -

१-- "We may study rural government by the sociological method, seeking to as certain what an analysis of the different forms of association and their characteristic behaviour patterns will contribute to new insights concerning the problems involved. The sociological approach deals with the forms of rural government considered as groups and institutions, with the nature of rural political movements and parties, and with the problems of centralization in terms of intergroup relationships.
ड्वाइट सैण्डर्सन, रूरल सोशियोलॉजी ऐण्ड रूरल सोशल आर्गनाइजेशन, १९४२ (न्यूयार्क), पृ० ४४०

२-- "The traditions of the village Panchayat - as distinguished from the cas te Panchayat - were obscure, if not altogether

(शेष अगले पृष्ठ पर)

गांव में प्रचलित रही। महात्मा गांधी ने इसकी उपयोगिता को समझकर इस व्यवस्था को स्थापित करने पर बल दिया। अब पुन: ग्राम पंचायतें, ग्राम सभायें तथा पंचायत अदालतें गांवों में बनाई गई हैं परन्तु समस्या सुलझाने के स्थान पर वे कलह और दलबन्दी का कारण बनती जा रही हैं।

प्रेमचन्द-साहित्य में गांव जीवन में ग्राम-पंचायतों का उल्लेख है। उनके साहित्य में इस व्यवस्था की रक्षा का प्रयत्न भी है। अदालतों के फैसलों की तरह यहां पर कानून के सहारे निर्णय न होकर सत्य को देखकर निर्णय होते हैं। 'पंच परमेश्वर' कहानी में पंचायत-व्यवस्था के अन्तर्गत सत्यता और ईमानदारी के निर्णय का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। जुम्मन शेख और अलगू चौधरी में गाढ़ी मित्रता थी। चौधरी ने जुम्मन और उसकी खाला के जायदाद के झगड़े में मित्रता का मोह छोड़कर "खालाजान को माहवार खर्च दिए जायें"[1] का समर्थन किया। इस फैसले ने अलगू और जुम्मन की दोस्ती की जड़ हिला दी। उसके बाद अलगू चौधरी और समझू साहु के बीच पंचायत की नौबत एक बैल की कीमत को लेकर आती है। जुम्मन इस पंचायत के सरपंच हैं वे भी शत्रुता पर ध्यान न देकर उचित निर्णय देते हैं कि समझू "बैल का पूरा दाम दें।"[2] ग्रामीणों की यह आस्था" कि पंच की जबान से खुदा बोलता है"[3] सच्चे न्याय की प्रेरणा देती है। जायदाद, लेन-देन के मामलों से लेकर पारिवारिक अनमेल तथा सम्बन्धियों के कलह सामूहिक

- -

extinguished, in the north during the Middle. Ages. On the other hand, both in the Deccan and the far south village Panchayats continued to exist till the end of the eighteenth century, although they had lost their pristine vigour by that time. Their principal function was judicial. Most civil cases and petty criminal cases came before them for adjudication.

डा० ताराचन्द: "हिस्ट्री ऑव द फ्रीडम मूवमेन्ट इन इण्डिया" १९६१ (कलकत्ता, दिल्ली), पृ० ११६-१७

१— "पंच परमेश्वर" मानसरोवर भाग ७, पृ० १९८

२— "पंच परमेश्वर" मानसरोवर भाग ७, पृ० १५३

३— "पंच परमेश्वर" मानसरोवर भाग ७, पृ० १५३

निर्णयों आदि के लिए भी पंचायतों का सहारा लिया जाता है। प्रेमचन्द की 'आधार' कहानी में अनूपा का भाई उसे विदा कराने आया है। ससुराल के लोग विदा नहीं करना चाहते। इस मसले को लेकर "गांव के आदमी जमा हो गये। पंचायत होने लगी। यह निश्चय हुआ कि अनूपा पर छोड़ दिया जाय।"[१] सामूहिक निर्णयों के लिए पंचायत का उल्लेख 'प्रेमाश्रम' में हुआ है। ज्ञानशंकर करिन्दे गौस खां ने बरावर में गांव के मवेशी जाने से रोक लगा दी है और बिलासी का अपमान भी किया जा चुका है। इस मसले पर विचार करने के लिए "कादिर के द्वार पर पंचायत सी बैठी हुई थी।"[२] पंचायत में मनोहर नहीं आता क्योंकि पंचायत का फैसला खां साहब को कुछ दे दिलाकर मामला शांत करने का है। इस समय तक स्थिति यह थी कि पंचायतों का मूल्य जाता रहा और जमींदार, करिन्दों तथा सरकार की दृष्टि में उसका कुछ भी मूल्य नहीं रहा। प्रेमचन्द पंचायत-व्यवस्था को पुन: कायम करना चाहते हैं। यही कारण है कि 'रंगभूमि' में विनय के माध्यम से वह गांव में पंचायत द्वारा मामलों के निपटाने का यत्न करते हैं। जयपुर रियासत के ग्रामीण "ज़रा-ज़रा सी बात पर अदालतों के द्वार नहीं खटखटाने जाते, पंचायतों में समझौता कर लेते हैं।"[३] 'कर्मभूमि' का अमरकान्त भी गांव की पंचायतों में सहायक होता है। उसके कार्यों से "उसका सम्मान बढ़ रहा है। आस-पास के गांवों में भी जब कोई पंचायत होती है, तो उसे अवश्य बुलाया जाता है।"[४] इस प्रकार प्रेमचन्द गांवों में पंचायत-व्यवस्था की पुनर्व्यवस्था के लिए प्रयत्नशील दिखाई देते हैं।

<u>परिवर्तनशील स्थिति</u> : प्रेमचन्द-साहित्य में ग्राम तथा ग्रामीण जीवन के समाजशास्त्रीय अध्ययन के अन्तर्गत इस अंश में हम ग्रामीण समुदाय की परिवर्तनशील स्थिति पर विचार करेंगे। परिवर्तन प्रकृति का नियम है। मानव समुदाय में परिवर्तन स्वाभाविक है। यद्यपि ग्रामीण समुदाय शहरी समुदाय की अपेक्षा कम परिवर्तनशील है परन्तु परिवर्तन की स्थिति वहां नकारी नहीं जा सकती है भले ही उसकी गति

- -

१— 'आधार', मानसरोवर भाग ३, पृ० ८४

२— 'प्रेमाश्रम', पृ० २००

३— 'रंगभूमि', पृ० [illegible]

४— 'कर्मभूमि', पृ० [illegible]

धीमी हो। परिवर्तन के इस वास्तविक तथ्य को भारतवर्ष में किसी भी भाग में किसी ग्रामीण समुदाय में देखा जा सकता है।[१] समाजशास्त्र के अन्तर्गत परिवर्तन की स्थिति पर विचार करना अनिवार्य भी है क्योंकि इससे होने वाले परिवर्तन के आधार पर अच्छे या बुरे परिणाम का चिन्तन किया जा सकता है। साहित्यकार भी जीवन और समाज के परिवर्तन पर अपनी सजग दृष्टि रखता है और भविष्य की संभावनाओं पर विचार करता है।

प्रश्न यह है कि क्या प्रेमचन्द के समय गांव-जीवन में परिवर्तन की स्थिति थी ? और यदि थी तो क्या प्रेमचन्द ने उस परिवर्तन को समझने का प्रयास किया है ? साथ ही यह भी देखना है कि क्या उन्होंने परिवर्तन की इन सम्भावनाओं और परिणामों पर भी चिन्तन किया है ? क्या कुछ आवश्यक परिवर्तनों के लिए प्रयास भी किया है ? जैसा कि देखा जा चुका है कि प्रेमचन्द ने गिरती हुई ग्रामीणों की आर्थिक अवस्था, उनके टूटते हुए परिवारों के कारण उत्पन्न दयनीय स्थिति पिछड़ेपन आदि बातों पर विचार किया है वहीं उन्होंने इन परिस्थितियों से ग्रामीणों को बचाने का प्रयत्न भी किया है। ग्रामीण अंचलों में प्रेमचन्द के समय शिक्षा और आधुनिक युग की जागृति का प्रभाव पड़ने लगा था। ग्रामीणों में भी कुछ लोग चतुरता सीखने लग गए थे। 'बलिदान' कहानी में उन्होंने ग्रामीण जीवन में हुए परिवर्तन की अर्द्धावस्था का चित्रण करते हुए लिखा है - "गाँव बेला के मंगरू ठाकुर जब से कान्सटेबिल हो गये हैं उनका नाम मंगलसिंह हो गया है। अब उन्हें कोई मंगरू कहने का साहस नहीं कर सकता कल्लू अहीर ने जब से हल्के के थानेदार साहब से मित्रता कर ली है और गांव का मुखिया हो गया है, उसका

- -

१-- "Thus, change in the human community is natural. The communities of the villages are less dynamic than the urban communities, but this should not be taken to mean that the farmer have absolutely no mobility. The village communities, too, are changeable even though the rate of change within them is very slow. This fact can be verified by looking at the history of rural community in any area of India."

डा० आर० एन० श्री? 'रूरल इण्डिया एण्ड सोशियॉलॉजी', १९६० (कानपुर), पृ० ५८

नाम कालीदीन हो गया है।"[1] गांव के नवयुवक शहरों में शिक्षा ग्रहण करने जाने लगे थे। 'गोदान' के झिंगुरी, पटेश्वरी और नोखेराम तीनों के लड़के शहर में अंग्रेजी पढ़ते हैं। उन्होंने शहर में जाकर कुछ सीखा नहीं है केवल ढिठाई और छिछोरापन सीख कर आए हैं। तीनों की शादियां हो चुकी थीं परन्तु गांव की लड़कियां ताकने में नहीं हिचकते कारण है वे "शहरी हो गये, गांव का भाई-चारा क्या समझें।"[2] शहर का प्रभाव गांव में पड़ने लगा है। गांवों में भी वही बातें आ रही हैं जो शहरों में है। गांव का पुराना सामाजिक परिवेश टूटने लगा है। 'रंगभूमि' का पांडेपुर का मिठुआ अब मिठुआ नहीं रहा। वह ग्रामीण परिवेश से ऊपर उठ चुका है। वहां का आदर अब उसके चरित्र की वस्तु नहीं है। स्वार्थ के कंधे चढ़कर वह सोचता और बोलता है। सूरदास के दुखी होने की बिना चिंता किए वह स्पष्ट शब्दों में कहता है - जीते जी मेरा बुरा चेता, मरने के बाद कांटे बोना चाहते हो। तुम्हारा मुंह देखना पाप है।"[3] 'गोदान' का गोबर भी अपने पिता होरी को फटकार बताता है कि "मैं परदेस में इसलिए नहीं पड़ा हूं कि तुम अपने को लुटवाते रहो और मैं कमाकर भरता रहूं।"[4] मर्यादावादी साहित्यकार उस सत्य की उपेक्षा नहीं कर सके जो यथार्थ होकर घटित हो रहा है।

१९१९-२० ई० के बाद राष्ट्रीय आंदोलन प्रखर हो उठा था। गांवों में भी उसकी ज्योति पहुंची थी। 'प्रेमाश्रम' के किसान एक होकर जमींदार और जमींदार की आड़ से सरकार से लड़ने के लिए तैयार हैं। 'रंगभूमि' में विनय कुमार के प्रयास से गांव का प्रत्येक व्यक्ति अब केवल अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए भी है, वह अब अपने को प्रतिद्वन्द्वियों से घिरा हुआ नहीं, मित्रों और सहयोगियों से घिरा हुआ समझता है। सामूहिक जीवन का पुनरुद्धार होने लगा है।[5] 'कर्मभूमि' का अमरकान्त गांव में जागृति पैदा करता है, उन्हें संगठित करता है और ग्रामीणों को अन्याय के विरुद्ध लड़ने के लिए प्रेरित करता है। 'गोदान' का गोबर होरी की तरह बचना

- -

१— 'बलिदान', मानसरोवर भाग ८, पृ० ६३

२— 'गोदान', पृ० २८८

३— 'रंगभूमि', पृ० ९०

४— 'गोदान', पृ० [illegible]

५— 'रंगभूमि', पृ० [illegible]

नहीं बल्कि जोखिराम को डांटता हुआ कहता है 'अच्छी बात है, आप बेदखली दायर कीजिए । मैं अदालत में तुमसे गंगाजली उठाकर रुपये दूंगा, इसी गांव से एक सौ सहादतें दिलाकर साबित कर दूंगा कि तुम रसीद नहीं देते । सीधे-सादे किसान हैं, कुछ बोलते नहीं, तो तुमने समझ लिया है कि सब काठ के उल्लू हैं ।'[1] इस प्रकार स्पष्ट है प्रेमचन्द चाहते थे कि गांव के लोग सामूहिकता को वरण करें, अन्याय को सिर झुकाकर सहन न करें बल्कि संगठित होकर उसका विरोध करें, साथ ही वह अपने सद्गुणों को छोड़ें नहीं बल्कि उन्हें अपनाये रहें ।

प्रस्तुत अध्याय के पूर्वार्द्ध में प्रेमचन्द-साहित्य में चित्रित ग्रामीण जीवन तथा ग्रामीण समुदाय से सम्बन्धित अंशों का अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है । इस अध्याय के उत्तरार्द्ध में उनके साहित्य में चित्रित नगर जीवन का समाजशास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया जायगा । अगले अध्याय में प्रेमचन्द-साहित्य में चित्रित युग के सामाजिक बोध का अध्ययन किया जायेगा ।

- -

१— 'गोदान', पृ० २६८

तृतीय अध्याय -

द्वितीय प्रकरण - शहरी जीवन

-:o:-

नगरीकरण : नगर-जीवन और शहरी समाजशास्त्र

नगरीकरण की प्रवृत्ति : प्रेमचन्द-साहित्य में शहर जीवन से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों पर समाजशास्त्रीय दृष्टि डालने के पूर्व हमें आधुनिक युग में नगरीकरण की प्रवृत्ति, नगर-जीवन के महत्व तथा शहरी समाजशास्त्र पर विचार कर लेना चाहिए। नगरों के उद्भव के लिए किसी एक कारण की ओर संकेत नहीं किया जा सकता है। प्राचीन काल में भी नगरों का अस्तित्व था। इतिहास इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि प्रारम्भ में नगरों का उद्भव धार्मिक तथा राजनीतिक कारणों से हुआ है। विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में जिन नगरों की ओर संकेत किया गया है वे या तो तीर्थ स्थान थे अथवा राजनीति के स्थल। भारतवर्ष में भी जिन नगरों का उल्लेख मिलता है उनके भी उद्भव का कारण धार्मिक अथवा राजनीतिक था। सिंधुघाटी की सभ्यता के नगर हड़प्पा और मोहनजोदड़ो का भी उद्भव प्राचीन नगर-राज्य स्पार्टा, एथेंस तथा रोम की तरह राजनीतिक सुरक्षा की दृष्टि से हुआ था। उत्तर वैदिक काल के बाद जिन नगरों का विकास हुआ वे धर्म, शिक्षा और राजनीति के स्थल थे। प्रश्न उठता है कि क्या प्राचीन नगरों या नगर-राज्यों का स्वरूप आज के नगरों से भिन्न था? क्या वहां का जीवन आज के नगर-जीवन की भांति ही व्यस्त, विषमताओं और कार्य-व्यापार से पूर्ण था? इन प्रश्नों के उत्तर के लिए हमें लेविस मम्फोर्ड की पुस्तक 'शहरों की सभ्यता' (द कल्चर ऑफ सिटीज़) की भूमिका में शहर के उत्पत्ति के सम्बन्ध में उनके विचारों को देखना होगा। वे शहरों की उत्पत्ति का सम्बन्ध पृथ्वी की देन से मानते हैं। जिनका निर्माण लोगों ने सुरक्षा तथा स्थाई आश्रय के लिए किया था। इस आश्रय या सुरक्षा में मनुष्य के साथ उसकी पशु सम्पत्ति तथा उसके साधन भी सम्मिलित थे।[१]

- -

१--- "Cities are a product of the earth. They reflect the peasant's cunning in dominating the earth; technically they but carry further his skill in turning the soil to productive uses, in enfolding his cattle for safety, in regulating the waters that moisten his fields, in providing storage bins and barns for his crops. Cities are emblems of that settled life which began with

(शेष अगले पृष्ठ पर)

नगरों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में मम्फोर्ड का मत तथ्यसंगत लगता है क्योंकि जिन नगर-राज्यों या नगरों के अस्तित्व का पता प्राचीन सभ्यताओं से चलता है उनमें कृषि, व्यापार तथा भव्य भवनों का होना पाया जाता है। नगरों की स्थिति आज से भिन्न थी। नगरों ने अपनी उत्पत्ति के साथ-ही-साथ प्रकृति के क्रिया-कलापों से आश्चर्य चकित मनुष्य को जो कि उसकी शक्ति के प्रति आस्थावान हो उठा था, अपनी आस्था और विश्वास को प्रकट करने के लिए साधन दिए। जिसके कारण वह मिस्र के पिरामिड ऐसे विशाल धार्मिक स्थान निर्मित कर सका तथा मोहनजोदड़ो और हड़प्पा नगरों में जलाशय तथा उनके आस-पास यज्ञकुण्डों का निर्माण कर सका। इसी प्रकार अपनी राजनीतिक शक्ति को दृढ़ करने तथा उसकी रक्षा के लिए मनुष्य ने सैन्य तथा शासन व्यवस्था के लिए नगरों का आश्रय ग्रहण किया। अपनी सामूहिकता के कारण नगर शिक्षा और संस्कृति के केन्द्र भी बने।

नगरों का आधुनिक उद्योग तथा व्यापार प्रधान स्वरूप पश्चिम में पहले प्रारम्भ हुआ। नेल्स अन्डर्सन तथा के० ईश्वरन के अनुसार पूर्व में केवल जापान को छोड़कर शहरीकरण की प्रवृत्ति गैर पश्चिमी देशों की अपेक्षा पश्चिमी देशों में तेज रही है। सामान्य रूप से पूर्वी देशों में शहरीकरण की प्रवृत्ति पिछले दशकों तक धीमी रही है। एशिया के नगर वर्षों तक धर्म-शिक्षा तथा प्रशासन के केन्द्र रहे हैं। औद्योगीकरण ने अब उन्हें भी प्रभावित कर लिया है।[१]

- -

permanent agriculture; a life conducted with the aid of permanent shelters, permanent utilities like orchards, vineyards, and irrigation works and permanent buildings for protection and storage."

लेविस मम्फोर्ड: 'द कल्चर ऑव सिटीज़', १९३८ (न्यूयार्क), पृ० ३

१-- "In the west the growth and influence of urbanism is more pervading than in non-western countries, with the single exception of Japan. In general the urbnization process in and around Eastern cities moved slowly until recent decades. Cities in Asia

(शेष अगले पृष्ठ पर)

आधुनिक युग में नगरों के आविर्भाव की अधिकता का कारण मनुष्य की भौतिक वादी दृष्टि है। सत्यव्रत सिद्धालंकार ने शहरों की अति बाढ़ के चार कारण - अतिरिक्त सम्पदा पर अधिकार, उद्योगीकरण, व्यापारीकरण तथा जीवन के उच्च स्तर की लालसा मात्र बताये हैं।[१] अतिरिक्त सम्पदा पर अधिकार का तात्पर्य आधुनिक युग में वैज्ञानिक साधनों के कारण अन्वेषणों और साधनों की सुगमता के कारण खनिज पदार्थों की प्राप्ति से है। नई-नई खोजों तथा वैज्ञानिक साधनों ने शहरीकरण की तीव्रता में सहायता की है। उद्योगों की वृद्धि के कारण भी यही वैज्ञानिक साधन हैं। औद्योगीकरण के कारण शहरों में श्रमिकों का दबाव बढ़ा है। उद्योग ही शहरों के सीमा निर्धारक बनते जा रहे हैं। डेल्बर्ट सी० मिलर तथा विलियम एच० फार्म के अनुसार 'नगर कारखानों के लिए मजदूरों के केन्द्र बन गए हैं। शहरों की सीमा कारखानों के द्वारा निर्धारित होती है। इन्होंने न केवल शहरों के पुराने ढांचे को ही प्रभावित किया है बल्कि औद्योगिक उत्थान ने नए शहरों के निर्माण और विकास में भी सहायता की है। इसके साथ ही अनेक प्रकार के व्यापारिक क्रियाकलापों में भी वृद्धि हुई है।'[२]

- -

for years countimued as centres of religion, education and administration, resembling very little the contemporary cities of the west. The old quite balance is being disturbed by the ushering in of industrialism as these cities come under the economic influence of the industrially advanced countries, and they too become industrial."
नेल्स अन्डर्सन एण्ड केo ईश्मन: 'अर्बन सोशियोलाजी' १९६५ (दिल्ली, न्यूयार्क), पृ० १

१-- विद्यामार्तण्ड प्रो० सत्यव्रत सिद्धालंकार: 'समाजशास्त्र के मूल तत्व', नवीन संस्करण (नई दिल्ली), पृ० २१९-२१८

२-- "The city is the great labour centre for the factory. The Location of the factory has often determined the location of the city, it always has affected the growth of the city. Urban life is an old pattern but the rise of large cities paralleled industrial growth, the entire country side became caught up in the lure of the city. More and more the sons and daughters of

(शेष अगले पृष्ठ पर)

उद्योगीकरण ने व्यापार के क्षेत्र को अत्यंत विस्तृत बना दिया है। प्राचीन काल से लेकर आज तक नगर व्यापार के स्थल रहे हैं। परन्तु आधुनिक युग में व्यापार सम्बन्धी उनकी महत्ता बढ़ गई है। व्यापारीकरण (कामर्शियलाइजेशन) ने शहरों की संख्या की वृद्धि में अभूत पूर्व सहयोग दिया है। व्यापार की इच्छा से केवल शहरों के आस-पास के क्षेत्रीय लोग ही नहीं प्रान्तीय, अन्तर्प्रान्तीय, अन्तर्देशीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारी शहरों में आते हैं। इस व्यापारिक औद्योगिक गतिशीलता से शहरों में जिन कार्यों में वृद्धि हुई उसमें बैंकिंग, यातायात, प्रकाशन, गृह-निर्माण, प्रचार कार्य, लेखन, शिक्षा चिकित्सा तथा फुटकर व्यापार आदि प्रमुख हैं। नेल्स अन्डर्सन तथा के० ईश्वरन ने आधुनिक युग में शहरों के सांस्कृतिक तथा सामाजिक स्वरूपों के महत्व को स्वीकार किया है। उनके अनुसार 'नगरीकरण मुख्य रूप से दो या तीन शताब्दियों की सामाजिक उत्पत्ति है। यह अपने अधिक रूप में व्यापारिक तथा औद्योगिक उत्थान का सांस्कृतिक पक्ष है। अपने पूर्व औद्योगिक युग की तुलना में यह आज भिन्न है। हम सोच सकते हैं कि यह आज अधिक ज्ञान से युक्त, कपट, छल तथा मिलावट से पूर्ण, प्राविधिक रूप से निर्मित तथा स्वरूप में अधिक पूर्ण है। आज का शहरी मनुष्य अधिक सज्ञान है और संसार के विषय में अपनी कुछ ही पीढ़ियों के पहले के मनुष्यों से अधिक जानकारी रखता है।[१]

- -

rural families migrated to the city. The New urban dweller become both producer and consumer, and the city come regarded him at part of both labour and the market. The range of his activities broadened to serve a growing number of business pursuits."
डेल्बर्ट सी० मिलर, विलियम एच० फार्म: 'इन्डस्ट्रियल सोशियोलॉजी', १९५१, (न्यूयार्क), पृ० ८१

१— "The urbanism we associate with towns and cities of today is mainly a social product of two or three centuries. It is in large part the cultural side of modern commercial and industrial development. Compared with the urbanism of the pre-industrial period, it is diversely unique. We may think of urbanism today

(शेष अगले पृष्ठ पर)

नगर-जीवन : शहरी जीवन में जहां अनेक प्रकार की त्रुटियां हैं वहीं उसमें कुछ विशेषताएं भी हैं। शहरों ने आधुनिक जीवन की जागृति, ज्ञान, राजनीतिक सूझ-बूझ, आर्थिक प्रगति तथा सामाजिक जागृति में महत्वपूर्ण योग दिया है। शहरों की सामाजिक महत्ता के सम्बन्ध में शहर जीवन के विशेषज्ञ लेविस मम्फोर्ड के विचार दर्शनीय हैं। उनके अनुसार शहरों का सामाजिक विचारों तथा सामाजिक सह योग के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान है।[१]

निश्चित रूप से आधुनिक युग में शहरों की स्थिति मनुष्य जीवन में महत्वपूर्ण हो गई है। राजनीतिक, विचारक, शिक्षा-शास्त्री, दार्शनिक, वैज्ञानिक, समाज सुधारक, उद्योगपति, व्यापारी, मज़दूर समाज के विभिन्न स्तरों और वर्गों के लोग शहर जीवन के अभिन्न अंग बन गए हैं। प्राय: इन लोगों का कार्य क्षेत्र नगर जीवन हो गया है। नगर की इस महत्वपूर्ण स्थिति के कारण समाजशास्त्रीय विवेचन के अन्तर्गत शहरी समाजशास्त्र (अरबन सोशियोलॉजी) जैसी महत्वपूर्ण शाखा को जन्म मिला। शहरी समाजशास्त्र के क्षेत्र विस्तार अथवा शहरी समाजशास्त्री

- -

as more informed and sophisticated more technically oriented, more global in its perspective. The modern urbanized man is more aware of and has more knowledge about the wide world than was possible for his ancestors, even a few generations ago."
नेल्स अन्डर्सन एण्ड के ईश्वरन: "अरबन सोशियोलॉजी", १९६५ (नई दिल्ली), पृ० ४

१— "Ane even on the social side of existence, the towns has begun during the early part of the nineteenth century to make a great contribution,....If the physical organization of the new urban areas was entirely inadequate, one must remember, neverthe-less, that within the interstices of these towns. New organs for social Co-operation and Social thought were defining themselves, the trade union, the Scientific society, the consumers' Co-operative Society, the public library, means whereby the military-capitalistic regime could be eventually transformed into a social common wealth."
लेविस मम्फोर्ड: "द कल्चर ऑफ सिटीज़", १९३८ (न्यूयार्क), पृ० २२२

की अध्ययन परिधि को निर्धारित करने के पूर्व हमें शहर की सीमाओं पर विचार कर लेना चाहिए ।

प्राचीन काल में विभिन्न कालों में शहर की सीमा दीवालों से बंधी हुई थी । किसी भी देश के बड़े से बड़े नगरों की सीमा परिखा या दीवाल से निर्धारित की जाती थी । यह परिखा या दीवाल शहर और गांव का विभाजन कर देती थी । परन्तु आधुनिक युग में शहर की सीमा को दीवाल से नहीं बांधा जा सकता है । आज दीवालों का स्थान सड़कों ने ले लिया है । आज के औद्योगिक युग में शहर और गांव की सीमा निर्धारित करना एक समस्या है । अत: शहर और गांव की सीमा भवनों अथवा दीवालों से न निर्धारित कर जीवन के तरीकों से निर्धारित होनी चाहिए । नेल्स अन्डर्सन तथा के० ईश्वरन ने अपने पुस्तक के प्रारम्भ में ही इस ओर संकेत किया है ।[१]

अमेरिका में शहरीकरण की प्रवृत्ति संसार के समस्त देशों की अपेक्षा सबसे अधिक है । वहां पर शहर जीवन ने जनता को इतना अधिक आकर्षित किया है कि समाजशास्त्री मेल जे० रेविट्ज़ इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि वास्तव में शहरी समाजशास्त्र की बात करना विचित्र होगा जबकि पूरा देश शहर में बदल जाएगा और कुछ जीवित बचे हुए गांव उजाड़ औद्योगिक अंचलों में अथवा किसी ह्रास की पहुंचशाला की अतिशयोक्तियों में अथवा किसी टेलीविजन के कार्यक्रमों में पाये जा सकेंगे ।[२]

- -

१-- "The urbanism of which we speak is not confined to urban places, It must be recognized as a way of life that tends to radiate from cities outward. This means that villages also come under the influence of cities. Thus, while cities grow in size, urbanism the way of life in cities, spreads outward."

नेल्स अन्डर्सन एण्ड के० ईश्वरन: "अरबन सोशियोलोजी" १९६५, पृ० १ (नई दिल्ली, मद्रास) इस संबंध में इसी पुस्तक के पृ० २६ और १४० भी दृष्टव्य हैं ।

२-- "Actually it is quaint to speak of urban sociology in a day when virtually the entire country has been urbanized and the few surviving vestiges of ruralism can be found only in isolated

(शेष अगले पृष्ठ पर)

यद्यपि भारतवर्ष में नगरीकरण की प्रवृत्ति इतनी बलवती नहीं है फिर भी हमारे लिए यह आवश्यक है कि शहरीकरण के अध्ययन में हमें पश्चिमी देशों के नगरीकरण को ध्यान में रखना चाहिए। वाई० बी० डमले ने स्पष्ट किया है कि भारतवर्ष में नगरीकरण के स्वभाव के अध्ययन में सतर्क विवेचन की आवश्यकता है। उनके अनुसार पश्चिमी समाज का शहरीकरण तथा उद्योगीकरण भारतीय संदर्भ में उचित और अनुरूप है।[१]

शहरी-समाजशास्त्र : शहर आधुनिक जीवन को अधिक मात्रा में प्रभावित कर रहे हैं। शहर का परिस्थिति शास्त्र (इकोलॉजी) बढ़ती हुई जनसंख्या, औद्योगिक व्यवस्था और उसकी समस्यायें, शिक्षा, उद्योग तथा व्यापार प्रधान संस्कृति, शहरी समुदाय आदि शहर समाजशास्त्र के अध्ययन के क्षेत्र हैं। शहर का मात्र परिचय पा लेना ही समाजशास्त्रीय व्याख्या नहीं है। इस संदर्भ में नेल्स अन्डर्सन तथा के० ईश्वरन ने अपनी धारणा प्रकट करते हुए कहा है "केवल मात्र शहर के विषय में ज्ञान प्राप्त कर लेना ही शहरी समाजशास्त्र का क्षेत्र नहीं है क्योंकि शहर केवल अकेला नहीं है। ग्रामीण क्षेत्र तथा शहर के आस-पास की भूमि तथा मूर्ति के साधनों के विषय में भी जानना आवश्यक है। शहरी समाजशास्त्री आज मिश्रित बड़े समाज (ग्रामीण तथा शहरी) जो यदि पूर्ण रूपेण शहरी नहीं है, और शहरी हो रहा हो, वे

- -

geographic pockets or in the exaggerations of the dude ranch or the television program."
मेल्स के० रेविट्स: "अरबन सोशियोलॉजी", दे० जोसेफ एस० राउसेक (सं०), "कन्टेम्पोरेरी सोशियोलॉजी", १९५८ (न्यूयार्क), पृ० ३२३

१-- "However, I want to say that the nature of urbanization in India needs to be carefully analysed before one can say what is broad type of urbanization and industrialization in a Western society is also applicable and relevant in the Indian contex."
वाई० बी० डमले: "फार एड यूबारी ऑफ इण्डियन सोशियोलॉजी" दे० टी० के० एन० उन्नायन, योगेन्द्रसिंह, इन्द्रदेव (सं०): "सोशियोलॉजी फार इण्डिया", १९७० (नई दिल्ली) पृ० ५९

परिचय प्राप्त करता है।"[१]

इस प्रकार हम देखते हैं शहरी-समाजशास्त्र का क्षेत्र शहर जीवन के विभिन्न पहलुओं से तो है ही इसके अलावा उन पक्षों से भी है जो शहर से सम्बन्धित हैं, शहर जीवन से प्रभावित हैं अथवा शहर जीवन को प्रभावित करते हैं। इनके अन्तर्गत शहरों के आस-पास का ग्रामीण जीवन भी है जो नगरीकरण का रूप ग्रहण करते जा रहा है, वे मजदूर भी हैं जो शहर में काम खोजने के लिए आते हैं या मजदूरी करते हैं, वे व्यापारी भी हैं जो शहर व्यापारिक कारोबार के लिए आते हैं, वे उद्योगपति हैं जो शहरों के आस-पास कल-कारखाने लगवाते हैं, वे कल-कारखाने और उनमें काम करने वाले लोग भी हैं जो शहरों के आस-पास रहते हैं तथा वे ग्रामीण भी हैं जो शहरों में शिक्षा-दीक्षा या अन्य कार्यों के लिए आते हैं। इस प्रकार शहरी समाजशास्त्र के अन्तर्गत आने वाले शहर के अनेक अन्तर्पक्ष तथा बहिर्पक्ष हैं।

समाजशास्त्री मेल जे० रेविट्ज ने अपने लेख शहरी समाजशास्त्र (अरबन सोशियोलॉजी) में समाजशास्त्र के अन्तर्गत शहर-जीवन के अध्ययन के विविध पक्षों की ओर संकेत किया है। जिसमें उन्होंने समाजशास्त्री और शहरी आयोजक (अरबन प्लानर) में अन्तर बताते हुए कहा है कि पहले का सम्बन्ध मनुष्य समाज के सम्पूर्ण पक्षों से है जबकि दूसरे का सम्बन्ध भौतिक पक्ष अर्थात सड़क मकान, पार्क आदि के औचित्य पर विचार करने से है। शहर और गांव के सम्बन्धों की ओर संकेत करते हुए उन्होंने कुछ विशेष बातों को छोड़कर शहर-जीवन के अध्ययन के लिए सामान्य समाजशास्त्र के विषयों को लागू करने पर बल दिया है। उन्होंने शहर के अध्ययन में जनसंख्या शहर के नवीनीकरण, शहर की भूमि के उचित प्रयोग, पुराने शहरों तथा मध्यकालीन शहरों की समस्याओं, शहरों में नवोदित क्षेत्रों की

- -

१-- "This is the study field of urban sociology, not merely to gain knowledge about the city, because the city does not stand alone. Knowledge must be gained about the country, hinterland of the city and source of supply. The urban sociologist today recognizes that the complex larger society (city and country) if not already urban, is becoming urbanized."
नेल्स अन्डरसन एण्ड के० ईश्वरन: 'अरबन सोशियोलॉजी', १९६२ (नई दिल्ली, न्यूयार्क) पृ० २

समस्याओं, समुदाय तथा शहरी जीवन अर्थात व्यवस्था , सुधार, प्रशासन आदि में नागरिकों के सहयोग और नियंत्रण के अध्ययन पर बल दिया है ।[1]

जीवन्त साहित्य वही होता है जो जीवन को अपने साथ लेकर चलता है। साहित्यकार सामाजिक जीवन के जिस पक्ष का चित्रण करता है वह उस जीवन की समस्याओं को तो ग्रहण करता ही है साथ ही वह उन परिस्थितियों, दशाओं और कारणों की ओर भी संकेत करता चलता है जिनके कारण वह समस्याएं उत्पन्न हुई हैं। प्रेमचन्द-साहित्य में शहर जीवन का जो स्वरूप उभर कर आया है उसका समाज-शास्त्रीय दृष्टि से अच्छा अध्ययन सम्भव है। प्रेमचन्द-साहित्य में शहर जीवन से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों में समाजशास्त्रीय दृष्टि से अध्ययन करने के लिए महत्वपूर्ण पक्ष नगरीकरण, परिस्थितिशास्त्र और प्रेमचन्द के नगर, औद्योगीकरण, शहरी संस्कृति, शहरी समुदाय, विविध वर्ग, आदि के साथ शैक्षिक तथा प्रशासनिक स्थिति आदि हैं।

नगरीकरण और प्रेमचन्द

प्रेमचन्द आधुनिक युग में बढ़ते हुए नगरों और उनके नगरीकरण की स्थिति से परिचित थे। आधुनिक युग में नगरों के बढ़ते हुए अस्तित्व और जीवन के क्षेत्र में उनकी महत्वपूर्ण स्थिति से भी अनभिज्ञ नहीं थे। बीसवीं शताब्दी में भारतवर्ष में औद्योगिक विकास के नगरों के निर्माण में अभूतपूर्व प्रगति हुई है। इन नगरों में जनसंख्या का दबाव भारी हुआ है। डा० आर० सी० सक्सेना के अनुसार वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भ से बम्बई और कलकत्ता ऐसे नगरों की जनसंख्या में दुहरी और तिहरी वृद्धि हुई है और दूसरे मद्रास, मथुरा, नागपुर, कानपुर भी जनसंख्या की दृष्टि से बढ़े हुए हैं। इसी प्रकार से अनेक नये नगरों का भी प्रादुर्भाव हुआ है।[2] भारतवर्ष की ८२ प्रतिशत जनसंख्या गांवों में रहती है जिनमें से ७२ प्रतिशत लोग कृषि पर निर्भर हैं। परन्तु शहरों की तरफ स्थानान्तरण की प्रवृत्ति दिन-पर-दिन

- -

१-- मैक्स ऐ० रफिटूब: 'अरबन सोशियोलॉजी', दे० जोसेफ एस० राउसेक 'कन्टेम्पोररी सोशियोलॉजी', १९५८, (न्यूयार्क), पृ० ३२९-३३८

२-- डा० आर० सी० सक्सेना: 'लेबर प्राब्लेम्स एण्ड सोशल वेलफेयर', १९६०, (मेरठ), पृ० ३

तेज होती जा रही है । १६०१ से लेकर १६५१ तक विभिन्न नगरों की बढ़ी हुई जनसंख्या का प्रतिशत पूना ३७० प्रतिशत, हैदराबाद-सिकन्दराबाद २४२ प्रतिशत, बड़ौदा २१३ प्रतिशत, गोरखपुर २०६ प्रतिशत, हुबली २१६ प्रतिशत, लखनऊ १६४ प्रतिशत, सूरत १८७ प्रतिशत, जमशेदपुर ३८२६ प्रतिशत तथा कानपुर ३७० प्रतिशत है ।[1] भारतवर्ष में नगरों की जनसंख्या की वृद्धि का कारण नगरों में कारीगरों और मजदूरों की वृद्धि है ।

प्रेमचन्द शहरों के प्रति उद्योग-धन्धों की तलाश के लिए मजदूरों के आकर्षण को जानते थे । वह यह जानते थे कि कल-कारखानों में काम का आकर्षण किसानों को मजदूर बनने के लिए विवश करता है । प्रेमाश्रम में उन्होंने राय कमलानन्द के शब्दों में इस ओर संकेत किया है । राय कमलानन्द कम्पनी के एजेण्ट से उद्योगों के बाढ़ के प्रति अपना विरोध प्रकट करते हुए कहते हैं - "निस्संदेह आप कई हजार कुलियों को लगा देंगे, पर यह मजूर अधिकांश किसान होंगे और मैं किसानों को कुली बनाने का कट्टर विरोधी हूं ।"[2] राय कमलानन्द के शब्दों में जहां एक ओर किसानों को मजदूर बनाने का विरोध किया गया है वहां इस तथ्य की ओर भी संकेत है कि उद्योगों की बाढ़ में किसान अपना पेशा छोड़कर उद्योग-धन्धों में काम खोजने की लालसा मन में लिए हुए हैं । `गबन` उपन्यास में प्रेमचन्द ने उन मजदूरों का उल्लेख किया है जो मजदूरी की टोह में दूर देश जाते हैं । ये मजदूर प्रयाग के आस-पास वाले हैं जो पूरब मजदूरी की खोज में जा रहे थे । "तीसरा दर्जा था, अधिकांश मजदूर बैठे थे, जो मजूरी की टोह में पूरब जा रहे थे ।"[3] निश्चित रूप से मजूरी की टोह में जाने वाले पूरब दिशा के मजदूर बिहार अथवा बंगाल की खानों या उद्योगों में काम की खोज में जाने वाले मजदूर थे । `गोदान` उपन्यास के गोबर ने सुन रखा है कि `शहर में बेल्दारों को पांच छः आने रोज मिलते हैं ।`[4] यही स्थिति उसे शहर जाने के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित करती है । उसकी

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

१— नेल्स एन्डर्सन एण्ड के० ईश्वरन: `अरबन सोशियोलॉजी`, १६६५ (नई दिल्ली, न्यूयार्क) पृ० ४२-४३

२— `प्रेमाश्रम`, पृ० ८६

३— `गबन`, पृ० ३४

४— `गोदान`, पृ० १३०

योजना है "दिन-भर मजूरी की, रात को कहीं चौकीदारी कर लेगा । दो आने भी रात के काम के लिए मिल जांय, तो चांदी है । जब वह लौटेगा, तो सबके लिए साड़ियां लायेगा । झुनिया के लिए हाथ का कंगन जरूर बनवायेगा और दादा के लिए एक मुंड़ासा लायगा ।"[१] गोबर की ऐसी ही अनेक इच्छाएं हैं जिनके कारण झुनिया की ओर से निश्चिंत होकर उसने तड़के लखनऊ की सड़क पकड़ ली ।[२] गांव से शहर आने के अनेक कारण हो सकते हैं परन्तु सबसे बड़ा कारण जो मनोवैज्ञानिक है वह अधिक धन कमाने की इच्छा है । यह समाजशास्त्रीय अध्ययन का महत्वपूर्ण पक्ष है । गोबर की तरह हजारों ग्रामीण अपनी आकांक्षा के वशीभूत होकर शहरों की ओर प्रस्थान करते हैं । 'गोदान' में ही अन्य अनेक व्यक्तियों के शहर जाने की सूचना दी गई है । गोबर जब कोदई के गांव से चलता है उस समय "गांव के और कई आदमी मजूरी की टोह में शहर जा रहे थे ।"[३]

शहर के आस-पास के गांव जहां पर नगरीकरण का प्रसार होता जाता है नगरीकरण की सीमा में आ जाते हैं । इस दृष्टि से 'रंगभूमि' के पांडेपुर गांव का नगरीकरण जॉन सेवक के सिगरेट के कारखाने से प्रारम्भ हो जाता है । जॉन सेवक पांडेपुर में कपड़े के गोदाम के स्थान पर सिगरेट का कारखाना खोलना चाहता है ।[४] सूरदास के द्वारा विरोध किए जाने पर भी पांडेपुर में कारखाना खुल जाता है । यद्यपि प्रेमचन्द उद्योग-सभ्यता से कृषि सभ्यता को श्रेष्ठ मानते थे परन्तु युग के यथार्थ के कारण उन्हें कारखाने के स्थापन में जॉन सेवक को सफल दिखाना पड़ता है । पांडेपुर अब शहर का अभिन्न अंग बन गया है क्योंकि शहर के सारे लक्षण वहां मिलने लगे हैं । फैक्टरी करीब-करीब तैयार हो चुकी है मजदूर मिस्त्री आदि बहुत बड़ी संख्या में आकर बस गए हैं । पांडेपुर की बस्ती के लोगों ने अपने मकान किराए पर लाभ की दृष्टि से उठाना प्रारम्भ कर दिए हैं ।[५] यही नहीं मजदूरों की संख्या इतनी बढ़ती जा रही है कि "कुलियों के बाल-बच्चों को वहां जगह दी जायगी तो

- -

१— 'गोदान', पृ० १३८

२— 'गोदान', पृ० १३८

३— 'गोदान', पृ० १३८

४— 'रंगभूमि', पृ० ५

५— 'रंगभूमि', पृ० २४७

एक शहर आबाद हो जायगा ।"[1]

पांडेपुर का नगरीकरण लगभग पूरा हो चुका है क्योंकि "मिल के आस-पास पक्के मकान बने चुके थे । सड़क के दोनों किनारों पर और निकट के खेतों में मजदूरों ने झोपड़ियां डाल ली थीं । एक मील तक सड़क के दोनों ओर झोपड़ियों की श्रेणियां ही नजर आती थी । यहां बड़ी चहल-पहल रहती थी । दूकानदारों ने भी अपने अपने छप्पर डाल लिए थे । पान, मिठाई, नाज, गुड़, घी, साग, भाजी और मादक वस्तुओं की दूकानें खुल गई थीं ---- मिल के परदेशी मजदूर जिन्हें न बिरादरी का भय था, न सम्बन्धियों का लिहाज दिन-भर तो मिल में काम करते, रात को ताड़ी-शराब पीते । जुआ नित्य होता था । ऐसे स्थानों में कुलटाएं भी आ पहुंचती हैं । यहां भी एक छोटा सा चकला आबाद हो गया था । पांडेपुर का पुराना बाजार सर्द होता जाता था । दस ग्यारह बजे रात तक यहां बड़ी बहार रहती थी । कोई चाट खा रहा है, कोई तमोली की दुकान के सामने खड़ा है, कोई वेश्याओं से विनोद कर रहा है । अश्लील हास-परिहास उन्मादस्पद नेत्र-कटाक्ष और कुवासना पूर्ण हाव-भाव का अविरल प्रवाह होता रहता था ।"[2]

शहर की दूकानों की चहल-पहल, असामाजिकता, बंधन-हीनता, मद और मस्ती इस औद्योगिक क्षेत्र में फैल चुकी है । अब उसके शहर होने में संदेह नहीं है । हम देख चुके हैं कि नगरीकरण तथा शहरी-समाजशास्त्र के अन्तर्गत ऐसे क्षेत्र भी आ जाते हैं जिनमें शहर का प्रभाव हो अथवा वे वहां शहरी हो गये हों । इस दृष्टि से पांडेपुर के नगरीकरण में संदेह नहीं रहा । यूनेस्को के संरक्षण में नए लोहे के कारखानों वाले शहरों के लिए जाने वाले सर्वे की १९५६ की प्रकाशित रिपोर्ट में जमशेदपुर के सम्बन्ध में कहा गया था कि सम्पूर्ण औद्योगिक क्षेत्र गांव और शहर मिलाकर सम्पूर्ण भाग को एक शहरी क्षेत्र माना जाना चाहिए क्योंकि प्रगतिशील उद्योगीकरण ने फैक्टरी के आस-पास की भूमि को असनकालीय व्यवस्था में बदल

- -

१-- "रंगभूमि", पृ० २६६

२-- "रंगभूमि", पृ० ४३६

दिया है।[१] इसी प्रकार से स्थानान्तरण ने बिहार राज्य के छोटे से स्थान हजारीबाग को इस क्षेत्र में कोयलों की खानों के अन्वेषण के कारण सौ वर्षों के अन्दर शहर के रूप में बदल दिया है। बिहार के इस शहर की भांति बंगाल में दुर्गापुर भी ऐसी ही स्थानान्तरण व्यवस्था के कारण नये ढंग से विकसित और विशेषीकृत शहर के रूप में बदल गया है।[२] स्पष्ट है पांडपुर का शहरीकरण भारतवर्ष में उद्योगों के कारण विकसित होने वाले तथा विस्तृत होने वाले शहरों का प्रतीक है।

यदि हम भारतीय संदर्भ में नगरीकरण पर विचार करें तो हमें अनेक ऐसे कारण और स्थितियां दिखाई देंगी जिनके आधार पर लोगों ने गांव की अपेक्षा शहरों में रहना पसंद किया है। सामंती तथा जमींदारी व्यवस्था का एक ऐसा कारण था जिसके कारण नगरीकरण में सहायता मिली है। जमींदार और

- -

१-- "In the entire area around the Asansol industrial complex villages as well as towns might well be considered one unified urban area as rapid industrialisation turns the hinterland of such large factory into dormitory settlements for its workers."

`रिपोर्ट ऑव द प्रिलिमिनरी इनक्वायरी आन द ग्रोथ ऑव स्टील टाउन्स इन इंडिया' देसाबत गुप्ता: `कन्टेम्पोरेरी सोशल प्राब्लेम्स इन इण्डिया', १९६४ (कलकत्ता), पृ० १४ से उद्धृत

२-- "From a small place in Hazaribagh district of the State of Bihar, giridih gradually grew into a township in the last hundred years with the discovery of coal mines in the region ..... And for this town in Bihar also we note the same pattern of migrations as observed for the newly established and specialized town of Durgapur in West Bengal."

राम कृष्ण मुकर्जी: "द सोशियोलॉजिस्ट ऐण्ड सोशल चेन्ज इन इण्डिया टुडे", १९६५ (नई दिल्ली), पृ० ९०

सामन्त शहरों में रहना पसंद करते थे। कारण स्पष्ट है वे लोग अपने को शासन का अभिन्न अंग समझते थे। प्रेमचन्द के सामन्त-वर्ग के प्रमुख पात्र प्राय: शहर निवासी हैं यद्यपि उनके ठाट-बाट, साज-सज्जा और सुख-साधन ग्रामीण जनता के खून पसीने की कमाई पर निर्भर है। ऐसे सामन्त वर्ग के प्रतिनिधियों में से `सेवासदन` के अनिरुद्धसिंह, `प्रेमाश्रम` के लाला जटाशंकर, प्रभाशंकर, ज्ञानशंकर, मायाशंकर, राम कमलानन्द तथा गायत्री आदि `रंगभूमि` के कुंवर भरतसिंह, राजा जगदीश, महेन्द्रकुमार सिंह हैं। `कायाकल्प` के ठाकुर विशालसिंह राजा विशालसिंह होने पर शहर बनारस के निवासी बन जाते हैं। इसी प्रकार `गोदान` के राय अमरपाल सिंह कहने को तो `सेमरी` में रहते हैं परन्तु केवल उत्सव और राम लीला के लिए उनका अधिकतर समय शहर में बीतता है। उनके नौकर-चाकर, कारिन्दा-मुनीम आदि भी शहरों में रहते हैं जैसा कि `कायाकल्प` में ठाकुर हरिसेवक और मुंशी वज्रधर हैं। इस प्रकार से भारतवर्ष में लगभग प्रत्येक नगर में सामन्त वर्ग अर्थात राजे-महाराजे, जमींदार तथा ताल्लुकेदार के प्रतिनिधि मिलेंगे।

जमींदारों के अत्याचार अथवा उनकी धन-लिप्सा ने भी परतंत्र भारत में लोगों को गांव छोड़कर भागने के लिए विवश किया था। ऐसे लोगों का कुछ प्रतिशत शहरों में शरण लेता रहा है। दूसरे देशों में न सही भारतवर्ष में नगरों में बसने वाले ऐसे लोग भी हैं जिनकी देखा-देखी और भी गांवों के लोग शहरों में बसने के लिए चल देते हैं। पांडेपुर उजड़ जाने के बाद स्वभाव से ईमानदार बजरंगी को गांव से प्रेम है परन्तु जमींदारों का नजराना एक ऐसा कारण है जिसकी वजह से वह शहर में रहने का इच्छुक है। वह कहता है - घर नहीं, पत्थर मिला। शहर में रहूं तो, इतना किराया कहां से लाऊं, चारा-चारा कहां मिले। इतनी जगह कहां मिली जाती है, हां, औरों की भांति दूध में पानी मिलाने लगूं, तो गुजर हो सकती है, लेकिन यह करम उम्र-भर नहीं किया, तो अब क्या करूंगा। दिहात में रहता हूं, तो घर बनवाना पड़ता है, जमींदार को अगर नजराना न दो तो जमीन न मिले। एक एक बिस्वे के दो-दो सौ मांगते हैं घर बनवाने को अलग हजार रुपये चाहिए ---- मैं तो सोचता हूं, जानवरों को बेच डालूं और यहीं कुलकी घर में मजूरी करूं। सब झगड़ा मिट जाय।[1] शहर के सामने भी यही

- -

१-- `रंगभूमि`, पृ० ३१६

समस्या है । उसकी भी यही धारणा है - "यही तो मैं भी सोच रहा हूं, बना बनाया मकान रहने को मिल जायगा, पड़े रहेंगे । कहीं घर बैठे-बैठे खाने को तो मिलेगा नहीं । दिन-भर खोंचा लिये न फिरें, कहीं मजूरी की ।"[१]

व्यावसायिक कारण भी लोगों को शहर की ओर आकर्षित करते हैं । 'रंगभूमि' का नायक राम पंडा शहर से दूर नहीं रह सकता । उसका शहर का नजदीकी गांव मिल के लिए ले लिया गया है, अत: अब वह यात्रियों की सुविधा के लिए शहर में रहना चाहता है ।[२] इसी प्रकार 'सेवासदन' के पद्मसिंह गांव के निवासी हैं परन्तु वकालत के लिए शहर आ बसे हैं । 'गबन' का देवीदीन खटिक भी रहने वाला तो बिहार का है, पर चालीस साल से कलकत्ते में रोजगार कर रहा है ।[३] शहरों के प्रति आकर्षण और वहां आ बसने के जो सम्भव कारण या स्थितियां हैं प्रेमचन्द-साहित्य में उनका आभास मिलता है ।

परिस्थितिशास्त्र और प्रेमचन्द के नगर

जैसा कि देखा जा चुका है कि परिस्थिति शास्त्र (इकोलॉजी) भौगोलिक अध्ययन से सम्बन्धित है परन्तु इसकी अन्तर्प्रकृति भूगोल से भिन्न है, उसकी अपेक्षा अधिक अणुवीक्षणीय है और उसका सम्बन्ध स्थानों के उपयोग से है । गांव-जीवन के अध्ययन के समय मानव परिस्थिति शास्त्र पर विचार किया जा चुका है । यहां विस्तार से उसमें दृष्टि डालने की आवश्यकता नहीं है । शहरों के सम्बन्ध में मानव परिस्थितिशास्त्र इस बात का अध्ययन करता है कि मनुष्य स्वभावत: शहर जीवन में किन स्थानों में रहना चाहता है, वह अपना उद्योग या व्यापार कहां पर करना चाहता है । उसके पीछे कौन-कौन से कारण कार्य करते हैं ?[४] यह कारण सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक तथा धार्मिक हो सकते हैं । शहरों के सम्बन्ध में स्थान-निर्धारण का सबसे महत्वपूर्ण कारण आर्थिक होता है । प्राय:

- -

१— 'रंगभूमि', पृ० ५२६

२— 'रंगभूमि', पृ० ५२७

३— 'गबन', पृ० १२६

४— नेल्स एण्डरसन एण्ड के० ईश्वरन: 'अरबन सोशियोलॉजी', १९६५ (नई दिल्ली, न्यूएशिया) के० अध्याय 'ह्यूमन इकोलॉजी एण्ड अरबन स्पेस', पृ० ६८-७५

शहरों में धनी लोग रहते हैं। शहर का मध्य भाग व्यवसाय का केन्द्र होता है। शहरों के न्यायालय, शिक्षालय तथा बाजार प्राय: मध्य भाग में होते हैं। शहरों के आस-पास गरीबों के मुहल्ले अथवा गांव होते हैं जिन पर शहर की चमक और रौनक का प्रभाव कम होता है। शहर के इस भौगोलिक स्वरूप का बोध हमें प्रेमचन्द की कृति `रंगभूमि` में मिल जाता है। प्रेमचन्द का यह उपन्यास इन्हीं वाक्यों "शहर अमीरों के रहने और क्रय-विक्रय का स्थान है। उसके बाहर की भूमि उनके मनोरंजन और विनोद की जगह है। इसके मध्य भाग में उनके लड़कों की पाठशालाएं और उनके मुकदमेबाजी के अखाड़े होते हैं, जहां न्याय के बहाने गरीबों का गला घोंटा जाता है। शहर के आस-पास गरीबों की बस्तियां होती हैं। बनारस में पांडेपुर ऐसी ही बस्ती है। वहां पर न शहरी दीपकों की ज्योति पहुंचती है, न शहरी छिड़काव के छींटे, न शहरी जल-स्रोतों का प्रवाह।"[1] से प्रारम्भ होता है। प्रेमचन्द के कथानकों से सम्बन्धित नगर बनारस, इलाहाबाद (प्रयाग), लखनऊ, दिल्ली, मुरादाबाद, कलकत्ता, बम्बई आदि हैं।"[2] उनके ऊपर के कथन में नगर के सामान्य गठन की ओर संकेत किया गया है। बनारस नाम आ जाने से नगरों के सामान्य स्वरूप के प्रति जो ध्वनि निकलती है उसके सम्बन्ध में अन्तर नहीं पड़ता है।

मानव परिस्थितिशास्त्रियों (ह्यूमन इकोलॉजिस्ट्स) और भौगोलिकों ने शहरों में औद्योगिक स्थापनों तथा दूसरी आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन किया है। इस सम्बन्ध में उनकी दृष्टि आर्थिक स्थितियों पर अधिक केन्द्रित रही है। उद्योगों के सम्बन्ध में उनके स्थान-निर्धारण, विभिन्न कार्यों के लिए उपयुक्त स्थान (भूमि) तथा स्थिति पर विशेष ध्यान रखा जाता है।[3] प्रेमचन्द उद्योगों के सम्बन्ध में

- -

१-- `रंगभूमि`, पृ० १

२-- प्रतिज्ञा, वरदान, सेवासदन तथा कर्मभूमि के कथानक बनारस, गोदान का लखनऊ, गबन का प्रयाग तथा कलकत्ता, कायाकल्प का बनारस तथा प्रयाग से सम्बन्धित है। कुछ कहानियों में मुरादाबाद, दिल्ली और बम्बई के कथानक हैं।

३-- "Human ecologists and geographers have investigated the location of industrial and other activities in cities. Their explanations are generally economic in nature. They hold that since industry is dominant in economic power it decides directly

(शेष अगले पृष्ठ पर)

उद्योगपतियों के आर्थिक लाभ के दृष्टिकोण को समझते थे । प्राय: उद्योगों के लिए अधिक भूमि की आवश्यकता होती है । शहर के बाहर की भूमि ही इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हो सकती है । उद्योगों के विस्तार के लिए भविष्य में भूमि की आवश्यकता का भी ध्यान रखना आवश्यक होता है । 'रंगभूमि' का उद्योगपति जॉन सेवक बनारस शहर के बाहर पांडेपुर की जमीन अपने सिगरेट के कारखाने के लिए चुनता है । प्रेमचन्द ने इस चुनाव की सूचना देते हुए कहा है - "गोदाम के पीछे की ओर एक विस्तृत मैदान था । जॉन सेवक वह जमीन लेकर यहां सिगरेट बनाने का एक कारखाना खोलना चाहते थे । ----- जॉन सेवक के साथ प्रभु सेवक और उनकी माता भी जमीन देखने चलीं । पिता और पुत्र ने मिल कर जमीन का विस्तार नापा । कहां कारखाना होगा, कहां गोदाम, कहां दफ्तर, कहां मैनेजर का बंगला, कहां श्रम-जीवियों के कमरे, कहां कोयला रखने की जगह और कहां से पानी आयेगा, इन विषयों पर दोनों आदमियों में देर तक बातें होती रहीं ।"[१] उद्योगपति सदैव अपने उद्योग के लिए स्थान-चयन तथा स्थान की पर्याप्तता पर विशेष ध्यान रखता है । जॉन सेवक इस सम्बन्ध में सतर्क है । प्रेमचन्द ने कुशल परिस्थितिशास्त्री की भांति उद्योगपतियों की स्थान-चयन की सतर्कता को जॉन सेवक के माध्यम से देखा है । जॉन सेवक को कारखाने के विस्तार के लिए भूमि की आवश्यकता है जिसके लिए उसे पांडेपुर गांव को उजाड़ने में भी झिझक नहीं है ।

'गोदान' में खन्ना की चीनी मिल लखनऊ में स्थापित होती है क्योंकि उत्तर प्रदेश का यह भाग ईख का उपजाऊ भाग है । अन्य प्रकार खन्ना राय अमरपाल को हिस्सेदार बनाना चाहता है वह राय साहब से पूछता है - "आपके इलाके में ऊख होती है ? रायसाहब का उत्तर है - बड़ी कसरत से ।"[२] तब खन्ना कहता है -

- -

or indirectly what land will be utilized for what purposes. Where industry itself locates is determined by forces responsible for its economic survival."
डेलबर्ट सी० मिलर, विलियम एच० फार्म: 'इन्डस्ट्रियल सोशियोलॉजी', १९५१, (न्यूयार्क), पृ० ७१३-२४

१-- 'रंगभूमि', पृ० ४

२-- 'गोदान', पृ० ६४

"तो फिर क्यों न हमारी मिल में शामिल हो जाइए।" राय साहब के इलाके से ईख एकत्र करके मिल तक पहुंचवाने का उत्तरदायित्व भिंगुरीसिंह ने ले रखा है। प्रेमचन्द ने इस सम्बन्ध में संकेत करते हुए कहा है - "भिंगुरीसिंह ने मिल के मैनेजर से पहले ही सब कुछ कह सुन रखा था। उनके प्यादे गाड़ियों पर ऊख लदवाकर नाव पर पहुंचा रहे थे। नदी गांव से आध मील पर थी। एक गाड़ी दिन-भर में सात-आठ चक्कर कर लेती थी। इस सुविधा का इंतजाम करके भिंगुरीसिंह ने सारे इलाके को एहसान से दबा दिया था।"[१] खन्ना के मिल के लिए ईख की पूर्ति के लिए राय साहब अमरपाल सिंह के इलाके के अलावा अनेक इलाके होंगे। उस मिल के लिए ईख की कमी नहीं है। खन्ना ने पहले मिल से प्रोत्साहित होकर हाल में यह दूसरा मिल खोल दिया था।"[२] मिस्टर जॉन सेवक भी "पटने में एक तम्बाकू की मिल खोलने का आयोजन कर रहे हैं, क्योंकि बिहार प्रान्त में तम्बाकू कसरत से होती है।"[३] शहर के विकास और उसकी उद्योगिकता में क्षेत्र का प्रभाव अवश्यम्भावी है। बम्बई तथा अहमदाबाद शहर की प्रगति क्षेत्रीय प्रभाव के कारण हुई है। कपास के उद्योगों की प्रमुखता के कारण ये नगर पुराने नगर मद्रास की अपेक्षा बड़े हो गए। कारण स्पष्ट है इन नगरों का जिस क्षेत्र से सम्बन्ध है वे कपास की उपज के लिए महत्वपूर्ण हैं। प्रेमचन्द की 'डामुल का कैदी' कहानी में जिस कारखाने को कथानक का आधार बनाया गया है वह कपास का ही कारखाना है। सेठ खूबचन्द की मिल में स्वदेशी वस्त्र तैयार होते हैं। इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय बात यह है कि यह कारखाना कपास के उद्योग के नगर बम्बई में है।[४] प्रेमचन्द ने उद्योगों के सम्बन्ध में क्षेत्रीय प्रभाव का ध्यान रखा है। परम्परावादी परिस्थिति शास्त्रीय सिद्धांत के अनुसार उद्योगपति अपने उद्योग के लिए आवश्यक साधनों का उद्योग स्थापन में विशेष ध्यान रखता है। जहां कच्चे माल तथा अन्य साधन सुलभ हैं वहीं पर उद्योगों की प्रतिस्थापना की जाती है।[५]

- -

१-- 'गोदान', पृ० १७८

२-- 'गोदान', पृ० २०१

३-- 'रंगभूमि', पृ० ११२

४-- 'डामुल का कैदी', मानसरोवर भाग २ दृष्टव्य है।

५-- "According to traditional ecological theory, enterprises locate close to the resources they need. They move to areas that

(शेष अगले पृष्ठ पर)

शहरों में छोटे-छोटे गहने कपड़े तथा अन्य व्यक्तिगत सेवा सम्बन्धी शहर के घने और भीड़-भाड़ वाले स्थानों में होते हैं।[१] प्रेमचन्द-साहित्य में इस सम्बन्ध में विस्तार से तो नहीं कहा गया है, परन्तु इन उद्योगों के सम्बन्ध में उनके शहर के मध्य में होने का संकेत मिलता है। 'कर्मभूमि' में अमरकान्त सकीना के लिए साड़ी लेने गोवर्धनसराय से चौक आता है[२] और 'गबन' में गंगू सर्राफ की दूकान शहर के भीड़-भाड़ वाले क्षेत्र सर्राफे में है।[३]

समाजशास्त्र के अन्तर्गत परिस्थितिशास्त्र शहरी निवास के सम्बन्ध में शहर के विभिन्न भागों की आवास दशा पर विचार करता है। शहर में निवास की स्थिति को प्रभावित करने वाला सबसे महत्वपूर्ण पक्ष आर्थिक होता है। प्राय: धनी लोग शहर के खुले भाग में रहते हैं और गरीब शहर की दुर्गन्धपूर्ण गलियों में। प्रेमचन्द-साहित्य में यह विभेद उभर कर सामने आया है। 'रंगभूमि' में कहा गया है कि "कितने ही ऐसे बंगले हैं जिनका घेरा दस बीघे से अधिक है।[४] जॉन सेवक का 'सिगरामऊ' के बंगले तथा राजा महेन्द्रकुमार के बंगले का घेरा क्रमश: ५ बीघे तथा १५ बीघे है।[५] 'कर्मभूमि' का संघर्ष तो बंगलों और मैली कुचैली गलियों में रहने वाले लोगों का संघर्ष है। सामाजिकता, व्यापारिक सुविधा तथा स्थान प्रेम आदि के कारण कुछ धनी लोग शहरों के मध्य भाग में भी निवास करते हैं। ऐसे

- -

are strategically located in reference to raw materials, transportation facilities, markets and labour supply."
डेलबर्ट सी० मिलर, विलियम एच० फार्म: 'इन्डस्ट्रियल सोशियोलॉजी', १९५१ (न्यूयार्क), पृ० ७२४

१-- "Light industries, as jewelry manufacturing, clothing and personal services, try to locate close to the geographic and population traffic centre of the city."
डेलबर्ट सी० मिलर, विलियम एच० फार्म: 'इन्डस्ट्रियल सोशियोलॉजी', १९५१ (न्यूयार्क), पृ० ७२४

२-- 'कर्मभूमि', पृ० ४०

३-- 'गबन', पृ० ५६

४-- 'रंगभूमि', पृ० [illegible]

५-- 'रंगभूमि', पृ० [illegible]

लोगों में `रंगभूमि` के कुंवर भरतसिंह, `कर्मभूमि` के लाला समरकान्त और धनीराम हैं। प्रेमचन्द-साहित्य में मैली कुचैली दुर्गन्धपूर्ण बस्तियों के चित्र भी प्रस्तुत किए गए हैं। इनमें `वरदान` उपन्यास के इलाहाबाद नगर के कटरा तथा कीटगंज की दुर्गन्धपूर्ण गलियों वाला भाग जहां प्रतापचन्द नीची जाति के लोगों की सहायता के लिए जाता है।[१] `कर्मभूमि` में पठानिन का मौहल्ला गोवर्धनसराय [२] तथा शहर का वह तंग गली वाला प्रकाशहीन भाग जो सुखदा को मकान आंदोलन के लिए प्रेरणा देता है[३] और `गोदान` में गोबर के रहने की जगह आदि है।[४]

इनके अलावा शहर के ऐसे भी भागों की विवेचना परिस्थितिशास्त्र करता है जो किन्हीं कारणों से अनैतिक कार्यों के लिए आबाद हुए हैं। इनमें दिल्ली शहर के समाजशास्त्रीय अध्ययन के मध्य ओपिनमेग ने वेश्यालयों की ओर संकेत किया है। उनके अनुसार ये स्थान ऐसी जगहों के निकट होते हैं जहां लोग आसानी से पहुंच सकते हैं। प्रेमचन्द ने `सेवासदन` के वेश्यालयों के शहर के मध्य भाग में स्थित होने का संकेत करते हुए लिखा है - "शराब की दुकानों को हम बस्ती से दूर रखने का यत्न करते हैं, जुआ से भी हम घृणा करते हैं, लेकिन वेश्याओं की दुकानों को हम सुसज्जित कोठों पर, चौक बाजारों में ठाठ से सजाते हैं।"[५] `रंगभूमि` में

- -

१-- `वरदान`, पृ० ८३

२-- `कर्मभूमि`, पृ० ४०

३-- `कर्मभूमि`, पृ० २१४

४-- `गोदान`, पृ० २००

५-- "No one in the city finds it difficult to locate these areas. They are not far away. They are found in the heart of the city. They can be reached in eight or ten minutes ride from the industrial, commercial and administrative centres. There is a well known road where engineering and building construction materials are sold during the day time. When the business of the day is over and the shops are closed for the night, the "painted lady" and pimps take a stand on the pavements and the back lanes and start their business."

ए० बोपिनमेग: "देहली, ए स्टडी इन अरबन सोशियोलाजी", १९५७ (बम्बई), पृ० १०६

कारखाने की स्थापना के बाद उसके पास "कुल्टायें आकर बस गई हैं वहां पर भी एक छोटा-मोटा चकला आबाद हो गया था।"[१]

इस प्रकार से हम देखते हैं कि प्रेमचन्द-साहित्य में नगरों के सम्बन्ध में परिस्थितिशास्त्रीय विवेचन के उपयुक्त स्थान भी मिलते हैं। शहरी समाजशास्त्र के अन्तर्गत नगर का परिस्थितिशास्त्रीय दृष्टि से अध्ययन आधुनिक युग में अनिवार्य माना जाता है जिसके अध्ययन के बिना नगर का अध्ययन अधूरा रह जाता है। प्रेमचन्द-साहित्य में नगरों के संदर्भ में इस दृष्टि से जो सम्भव प्रसंग अथवा अंश थे, उन पर विचार करने का प्रयास यहां पर किया गया है।

औद्योगीकरण और प्रेमचन्द

<u>औद्योगीकरण का सामान्य प्रभाव</u> : औद्योगीकरण ने आधुनिक जीवन में नगर-जीवन को बहुत अधिक प्रभावित किया है। नगरीकरण में उद्योगों का हाथ तो है ही इसके अलावा औद्योगीकरण नगर-जीवन के अन्य पक्षों को भी प्रभावित करता है। शहर-जीवन में उद्योगों के महत्वपूर्ण प्रभाव एवं स्थिति के कारण औद्योगीकरण और उसका प्रभाव शहरी समाजशास्त्रियों के अध्ययन का प्रमुख विषय बन गया है। औद्योगिक समाजशास्त्र समाजशास्त्र का एक प्रमुख अंग हो गया है। औद्योगिक-समाजशास्त्र के प्रमुख विचारक डेल्बर्ट सी० मिलर और विलियम एच० फार्म ने उद्योगों के सम्बन्ध में शहरी समाजशास्त्रियों के अध्ययन क्षेत्र की ओर संकेत करते हुए कहा है कि "शहरी समाजशास्त्रियों ने शहर के भौतिक, परिस्थितिशास्त्रीय तथा सामाजिक उत्थान में औद्योगिक प्रगति के प्रभाव का अध्ययन किया है। जैसा कि वे समुदाय के राजनीतिक और सामाजिक जीवन को नियंत्रित करना चाहते हैं अतः उन्होंने विशेष रूप से विभिन्न आर्थिक हित वाले वर्गों के संघर्ष का अध्ययन किया है। उन्होंने यह भी बताया है कि किस तरह यांत्रिक परिवर्तन और नई स्थितियों ने औद्योगिक नीति में समस्याएं उत्पन्न की हैं, जिन्हें पूरे शहर को सुलझाना है।"

- -

"Urban sociologists have studied the effect of industrial growth on the physical, ecological, and social development of the

(शेष अगले पृष्ठ पर)

औद्योगीकरण के कारण नगरों की जनसंख्या में भी वृद्धि हुई है। इस सम्बन्ध में नगरीकरण के अध्ययन के साथ विचार किया गया है। नगर-जीवन के अध्ययन में उद्योगों के महत्व एवं उसके प्रभाव का अध्ययन 'परिस्थितिशास्त्र और प्रेमचन्द के नगर' उपशीर्षक के अन्तर्गत किया जा चुका है। औद्योगीकरण से सम्बन्धित अन्य पक्षों पर यहां विचार किया जायगा। इसके पूर्व कि हम प्रेमचन्द साहित्य में औद्योगीकरण से सम्बन्धित प्रश्नों और समस्याओं पर विचार करें, हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम उद्योगों के कारण पूंजी संचय तथा मजदूर-वर्ग के सम्बन्ध तथा समाजशास्त्र में उसके अध्ययन के महत्व पर विचार कर लें।

औद्योगीकरण के कारण पूंजी का संचयन हुआ है। भारत में ही नहीं अन्य देशों में भी पूंजी और गैर पूंजी वाले उद्योगों में संघर्ष रहा है। अन्त में पूंजी वाले बड़े उद्योगों के सामने छोटे-मोटे उद्योग समाप्त होने लगे और छोटे उद्योगों के लोग बड़े उद्योगों में काम खोजने के लिए आतुर हो उठे। इसी प्रकार पूंजी वाले उद्योगों के आस-पास और भी दूसरे तरह के मजदूर, क्लर्क आदि एकत्र होने लगे। परन्तु इनमें सबसे बड़ा प्रतिशत मजदूरों या निम्न वर्ग के कर्मचारियों का रहा है। उद्योगों के आस-पास भीड़ के संकुलन ने अनेक प्रकार की समस्याएं उत्पन्न कीं। विश्व में साम्यवाद और समाजवाद के प्रचार से कम कमाऊ जनता में भी चेतना जगी। मिलों, कारखानों और भारी उद्योगों के मजदूरों में भी जागृति पैदा हुई। उधर पूंजीपतियों द्वारा शोषण क्रिया चलती रही, फलस्वरूप उद्योगों के आस-पास विभिन्न आर्थिक हितों वाले लोगों में वर्ग-संघर्ष उत्पन्न हुआ। इस वर्ग-संघर्ष से केवल उद्योगपति और मजदूर ही नहीं प्रभावित हुए बल्कि समुदाय भी प्रभावित हुआ। उद्योगों में काम करने वाले मजदूरों के सामने अनेक तरह की समस्याएं उठ खड़ी हुईं।

- -

city. They have been especially interested in the clashes of different economic interest group as they seek to control the political and social life of the community. They have described how technological change and shifts in industrial policy have produced problems which the entire city has to solve."

डेल्वर्ट सी० मिलर, विलियम एच० फार्म: "इन्डस्ट्रियल सोशियोलॉजी", १९५१ (न्यूयार्क), पृ० ३७

औद्योगिक परिवर्तन ने शहरी संस्कृति को भी प्रभावित किया और समाज के विभिन्न वर्ग अपने को व्यवस्थापकों और मजदूरों के खेमों में बांटने लगे। इस प्रकार से यह सम्पूर्ण विषय औद्योगिक समाजशास्त्र के अध्ययन के विषय बन गए। मिलर और फार्म ने स्पष्ट किया है कि शहरी समाजशास्त्र मजदूरों से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों तथा औद्योगिक परिवर्तनों से शहर-जीवन में परिवर्तन और प्रभाव का अध्ययन करता है। उनके अनुसार 'शहरी समाजशास्त्र इन बातों पर विचार करता है और समाधान खोजता है कि हड़तालें समुदाय को कैसे प्रभावित करती हैं ? कौन सी ऐसी समस्याएं हैं ? जिनका सामाना औद्योगिक मजदूर करता है औद्योगिक परिवर्तन ने शहरी संस्कृति को कैसे प्रभावित किया है ? कौन से ऐसे वर्ग हैं जो प्रबन्धकों और मजदूरों के पक्षधर होते हैं।[१]

<u>प्रेमचन्द-साहित्य: औद्योगिकरण</u> : प्रेमचन्द साहित्य में हमें औद्योगीकरण संबन्धी समस्या 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'गोदान' उपन्यासों एवं 'डामुल का कैदी' कहानी में मिलती है। 'प्रेमाश्रम' के पूर्व ही वह 'सेवासदन' में म्युनिसिपलिटी के सदस्यों में से मुंशी अबुलवफा को तेल और इत्र के कारखाने के मालिक के रूप में देख चुके हैं जिनकी बड़े बड़े शहरों में दुकानें हैं।[२] 'प्रेमाश्रम' में उन्होंने राय कमलानन्द के माध्यम से औद्योगीकरण का विरोध किया है। यह विरोध 'रंगभूमि' के कथानक का आधार बन गया है। 'रंगभूमि' का सूरदास औद्योगीकरण का विरोध सामाजिक कारणों से करता है। जबकि 'गोदान' में उठाई गई औद्योगिक समस्या आर्थिक हितों वाले वर्गों के संघर्ष की समस्या है। 'डामुल का कैदी' कहानी की समस्या भी अर्थसंघर्ष अर्थात पूंजीपति और मजदूरों के दो वर्गों की

- -

१-- "How does the strike effect the community ? What are the problems by the industrial workers ? How is the culture of the cities affected by industrial changes ? What groups align themselves with management and with labour ? These and similar questions have been asked and answered by urban sociology." डेल्बर्ट सी० मिलर, विलियम एच० फार्म: 'इन्डस्ट्रियल सोशियोलोजी', १९५१ (न्यूयार्क), पृ० २८-२८

२-- 'सेवासदन', पृ० २२१

समस्या है । औद्योगीकरण से सम्बन्धित इन संदर्भों के मध्य जो अनेक पक्ष समाजशास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से उपयोगी हो सकते हैं यहां उन पर प्रकाश डालने का प्रयास किया जायगा ।

शहर के भौतिक जीवन में औद्योगीकरण का स्पष्ट प्रमाण प्रेमचन्द-साहित्य में नहीं दिखाई देता परन्तु उनके साहित्य पर यदि ध्यान पूर्वक विचार किया जाय तो शहर जीवन में इस प्रभाव के दर्शन होते हैं । उद्योगीकरण ने शहरी-समाज में पूंजीपतियों और धनाधीशों को जन्म दिया है । प्रेमचन्द औद्योगीकरण के इस भौतिक प्रभाव से परिचित थे । राय कमलानन्द के माध्यम से उन्होंने इस प्रभाव को स्पष्ट किया है । राय साहब हिस्सा बेचने के लिए आए हुए कम्पनी के एजेन्ट से कहते हैं - "आपकी यह कम्पनी धनवानों को धनवान बनाएगी परन्तु जनता को इससे बहुत लाभ पहुंचने की सम्भावना नहीं है ।"[१] प्रेमचन्द जानते थे कि उद्योगों की बहुलता समाज में कुछ लोगों को धनवान अवश्य बना देगी परन्तु उससे जनता का कोई लाभ होने वाला नहीं है । भारतवर्ष में उद्योगों में प्रगति हुई है परन्तु समाजवादी नारे पर चलने वाली भारतीय सरकार की आर्थिक नीति से मजदूरों और उद्योगपतियों के बीच का अंतर गहरा हुआ है । औद्योगीकरण से जनता को कुछ भौतिक सुविधाएं भले मिल गई हैं परन्तु आर्थिक अन्तर पहले से अधिक हो गया है । अगर यह कहा जाय कि पूंजीपति जॉन सेवक और चन्द्र प्रकाश सन्ना औद्योगीकरण की देन है तो असंगत न होगा । कपड़े का व्यापारी जॉन सेवक पांडेपुर के सिगरेट के कारखाने का मालिक बनता है । उसकी इच्छा अधिक से अधिक धन कमाने की है । पुत्र और पुत्री को खो देने पर भी उसका भौतिकवाद उसे दम नहीं लेने देता । "उन्हें अब संतान में कोई अभिलाषा नहीं है, कोई इच्छा नहीं है, धन से नि:स्वार्थ प्रेम है -------- धन उनके लिए लक्ष्य का साधन नहीं, स्वयं लक्ष्य है ।"[२] सब कुछ खो देने पर भी उसकी धन कमाने की इच्छा समाप्त नहीं हुई है । वे अपने अन्तिम दिनों में भी "न दिन समझते हैं न रात ------ वह अब पटने में एक तम्बाकू मिल खोलने का आयोजन कर रहे हैं ।"[३] जॉन सेवक पर

- -

१-- 'प्रेमाश्रम', पृ० २५

२-- 'रंगभूमि', पृ० ५५१

३-- 'रंगभूमि', पृ० ५५१

भौतिकवाद का भूत सवार है। दूसरे महाशय 'गोदान' के चन्द्र प्रकाश खन्ना साधारण क्लर्क से बैंक के मैनेजर और फिर मिल मालिक बन गए हैं। खन्ना राय साहब अमरपाल सिंह को अपना अभिन्न मित्र, यहां तक कि बड़ा भाई कहने में हिचकते नहीं, परन्तु लेन-देन के मामले में शुद्ध रूप से व्यापारी हैं। खन्ना राय साहब से साफ शब्दों में अपनी भौतिकवादी व्यापारिक नीति स्पष्ट करते हुए कहते हैं "मैंने सदैव आपको अपना बड़ा भाई समझा है, और अब भी समझता हूं। कभी आप से कोई पर्दा नहीं रक्खा, लेकिन व्यापार एक दूसरा क्षेत्र है यहां कोई किसी का दोस्त नहीं, कोई किसी का भाई नहीं। ----- कल आप दफ्तर के वक्त आयें और लिखा पढ़ी कर लें। बस बिजनैस खत्म।"[1] उद्योगीकरण ने एक ऐसी भौतिकवादी सभ्यता को जन्म दिया है जिसे प्रेमचन्द 'महाजनी सभ्यता' कहते हैं। उन्होंने 'महाजनी सभ्यता' लेख में भौतिक प्रधान सभ्यता के विषय में अपना मत देते हुए कहा है - "इस सभ्यता का दूसरा सिद्धांत है Business is Business अर्थात व्यवसाय व्यवसाय है, उसमें भावुकता के लिए गुंजाइश नहीं है। पुराने जीवन-सिद्धांत में वह लठमार साफगोई नहीं है, जो निर्लज्जता कही जा सकती है और जो इस नवीन सिद्धांत की आत्मा है। जहां लेन-देन का सवाल है, रुपये-पैसे का मामला है, वहां न दोस्ती का गुजर है, न मुरौवत का, न इंसानियत का, बिजनैस में दोस्ती कैसी।"[2] उद्योगीकरण ने व्यवसाय को क्षिप्र-गति प्रदान की है और व्यापार प्रधान सभ्यता में दोस्ती और इंसानियत का स्थान कहां है? इस सभ्यता का प्रतीक उद्योगपति खन्ना दोस्ती और व्यापार को अलग-अलग रखना चाहता है। राय साहब द्वारा ऋण मांगे जाने पर वह स्पष्ट कह देता है - "बैंक ने एक तरह से लेन-देन का काम बन्द कर दिया है। मैं कोशिश करूंगा कि आपके साथ खास रियायत की जाय, लेकिन Business is Business यह आप जानते हैं। पर मेरा कमीशन क्या रहेगा?"[3] खन्ना अपने मित्र से भी कमीशन चाहता है। भौतिकवादी पूंजीवादी व्यवस्था का यही आचरण है। उद्योगों की स्थापना से शहर-जीवन सम्पन्न होता है। नगर का विस्तार होता है

- -

१-- 'गोदान', पृ० २३८

२-- 'अमृतराय (सं०), प्रेमचन्द स्मृति अंक, पृ० २५०

३-- 'गोदान', पृ० २३७

वह अनेक आर्थिक साधनों से युक्त हो जाता है। यातायात-व्यवसाय के साधन जुटने लगते हैं। प्रेमचन्द-साहित्य में उद्योगीकरण के कारण नगर-विस्तार की झलक 'रंगभूमि' में मिलती है परन्तु उद्योगों के कारण शहर की उन्नति एवं सम्पन्नता प्रेमचन्द नहीं देख पाते हैं।

औद्योगीकरण ने संयुक्त पूंजी वाले सामूहिक उद्योगों को जन्म दिया है। मशीनरी के इस युग में भारी उद्योगों के लिए बहुत अधिक पूंजी की आवश्यकता होती है। किसी एक व्यक्ति के पास इतना धन सदैव सम्भव नहीं है कि वह केवल अपने बल पर कोई बड़ा उद्योग कायम कर उद्योगों की प्रतिस्पर्धा में सफल हो सके। अत: प्राय: ऐसा होता है कि लोग सामूहिक रूप से मिलकर उद्योगों में पूंजी लगाते हैं तथा अपने उद्योगों को बड़े स्तर में विस्तृत करने का प्रयास करते हैं। इस औद्योगिक युग में व्यापार और उद्योगों को समूह व्यापार और सहयोगी अर्थ-व्यवस्था के आधार पर विकास मिला है। इसका प्रमुख कारण अनेक प्रकार के वैज्ञानिक अन्वेषण तथा पूंजीवादी व्यवस्था का प्रभाव है।[१] बड़े-बड़े उद्योगों के लिए कम्पनियां बनाई जाती हैं। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना भारत में उद्योगों की स्थापना और व्यापार के लिए की गई थी। बड़े-बड़े उद्योग हिस्सों के आधार पर चलते हैं। प्रेमचन्द-साहित्य में हमें 'प्रेमाश्रम' में सर्वप्रथम हिस्से वाले उद्योगों की ओर संकेत मिलता है। प्रेमचन्द ने लिखा है - "संध्या हो गयी थी। वह (ज्ञानशंकर) मन को दृढ़ किये हुए राय साहब के कमरे में गये, किन्तु देखा तो

- -

१-- "Under the twin stimulations of applied science (technology) and capitalistic enterprise the size of business grew. The advantage of large scale production was soon apparent for both technological and financial reasons. The ability to expand production on the basis of technical improvements grew faster than the ability to private individuals to finance plant expansion. Under these conditions, the corporative form of business enterprises was invented and diffused."

डेल्बर्ट सी० मिलर, विलियम एच० फार्म: 'इन्डस्ट्रियल सोशियोलॉजी', १९५१ (न्यूयार्क), पृ० १९४

वहां एक और महाशय विद्यमान थे । यह किसी कम्पनी का प्रतिनिधि था और राय साहब से उसके हिस्से लेने का अनुरोध कर रहा था । किन्तु राय साहब की बातों से ज्ञात होता था कि वह हिस्से लेने के लिए तैयार नहीं हैं ।"[१] कम्पनी का एजेन्ट 'प्रेमाश्रम' में राय कमलानन्द के हाथ कम्पनी के हिस्से बेचने में सफल नहीं होता परन्तु 'रंगभूमि' का जॉन सेवक कुंवर भरतसिंह के हाथ हिस्से बेचने में सफल हो जाता है । जॉन सेवक कुंवर भरतसिंह को समझाता हुआ कहता है - "मेरी कम्पनी के अधिकांश हिस्से बिक चुके हैं, पर अभी रुपये नहीं वसूल हुए । इस प्रांत में अभी सम्मिलित व्यवसाय करने का दस्तूर नहीं है, लोगों में विश्वास नहीं । इसलिए मैंने दस प्रतिशत सैकड़े वसूल करके काम शुरू कर देने का निश्चय किया है । साल दो साल में जब आशातीत सफलता होगी और वार्षिक लाभ होने लगेगा तो पूंजी आप ही आप दौड़ी आयेगी ।"[२] जॉन सेवक कुंवर साहब को लाभ की आशा दिलाकर प्रस्ताव रख देता है "तो फिर मैं आप से कहूंगा कि हिस्से लेने में विलम्ब न करें । सुवा मे आशा, तो आपको निराशा न होगी ।" कुंवर साहब ५०० हिस्से लेने का वादा करते हुए बोले - "कल पहली किस्त के दस हजार रुपये बैंक द्वारा आपके पास भेज दूंगा ।"[३] 'गोदान' का चन्द्र प्रकाश खन्ना भी राय अमरपाल से कहता है - "तो फिर क्यों न हमारी शुगर मिल में शामिल हो जाइए । हिस्से धड़ाधड़ बिक रहे हैं । आप ज्यादा नहीं एक हजार हिस्से खरीद लें ।"[४] राय साहब हिस्से नहीं ले पाते क्योंकि वह सामन्तवादी व्यवस्था के अवशेष मात्र हैं । उनके पास हिस्से लेने के लिए पूंजी नहीं है । ऊपर इंगित किए अंशों से औद्योगीकरण के मध्य संयुक्त पूंजी व्यवस्था और सामूहिक व्यापार का जो चित्र प्रस्तुत होता है वह औद्योगीकरण के अध्ययन में समाजशास्त्र का महत्वपूर्ण पक्ष है ।

<u>औद्योगिक संबंध</u> : संयुक्त पूंजी व्यवस्था ने पूंजीवादी व्यवस्था को अधिक शक्ति-शाली बना दिया है । पूंजीपति का उद्देश्य मात्र धन कमाना होता है । उद्योगों के व्यवस्थापक उत्तम व्यापार उसी को मानते हैं जिसमें अधिक से अधिक लाभ हो ।

- -

१— 'प्रेमाश्रम', पृ० ८४
२— 'रंगभूमि', पृ० ४६
३— 'रंगभूमि', पृ० [illegible]
४— 'गोदान', पृ० [illegible]

व्यापार के सम्बन्ध में दूसरी धारणा कम लागत की होती है। वही संगठन उत्तम माना जाता है जो लागत को अधिक से अधिक कम कर सके। लागत की कमी के लिए अनेक उपाय किए जाते हैं। ऐसा इसलिए किया जाता है क्योंकि लागत से लाभ का सम्बन्ध है। कम लागत और अधिक लाभ व्यापारी या उद्योगपति का ध्येय होता है। लागत की यह कटौती मजदूरों की मजदूरी में भी हो सकती है। प्रेमचन्द-साहित्य में उद्योगपतियों और मजदूरों के बीच संघर्ष का एक मात्र कारण उद्योगपतियों की अधिक धन कमाने की प्रवृत्ति और लागत अर्थात मजदूरी में कटौती है। मजदूरों और उद्योगपतियों के बीच संघर्ष की स्थिति दो स्थानों `गोदान` उपन्यास और `डामुल का कैदी` कहानी में आती है। दोनों का कारण मजदूरों की मजदूरी में कटौती है। उद्योगपति सेठ खूबचन्द के सम्बन्ध में प्रेमचन्द लिखते हैं - "सेठ जी के जीवन का मुख्यतः काम धन कमाना था, और उसके साधनों की रक्षा करना उनका मुख्य कर्तव्य। उनके सारे व्यवहार इसी सिद्धांत के आधीन थे।"[1] यही सेठ जी स्वदेशी मिल के मालिक है जो देश के बहुत बड़े मिलों में है। स्वदेशी आंदोलन के समय स्वदेशी के नाम पर उन्होंने खूब धन कमाया परन्तु कपास का भाव गिरते ही `सेठ जी ने मजूरी घटाने की सूचना दे दी है —— जब उन्हें आधी मजूरी पर नये आदमी मिल सकते हैं, तब वह क्यों पुराने आदमियों को रखें वास्तव में यह चाल पुराने आदमियों को भगाने के लिए चली थी।"[2] सेठ जी से और मजदूरों के प्रतिनिधियों से समझौता नहीं हो सका क्योंकि "सेठ जी जौ भर भी न दबना चाहते थे।"[3] और अन्त में मजदूरों ने यही निश्चय किया कि हड़ताल कर दी जाय।" `गोदान` में संघर्ष का कारण भी अधिक लाभ और लागत में कटौती का सिद्धांत है। प्रेमचन्द इस सम्बन्ध में सूचना देते हुए कहते हैं - "इधर गोबर के कारखाने में भी आये दिन एक न एक हंगामा उठता रहता था। अब की बजट में शक्कर पर ड्यूटी लगी थी। मिल के मालिकों को मजूरी घटाने का अच्छा बहाना मिल गया। ड्यूटी से अगर पांच की हानि थी, तो मजूरी घटा देने से दस का लाभ था। इधर महीने से इस मिल में भी यही मसला छिड़ा हुआ

- -

१—`डामुल का कैदी`, मानसरोवर भाग २, पृ० २३८

२—`डामुल का कैदी`, मानसरोवर भाग २, पृ० २३९

३—`डामुल का कैदी`, मानसरोवर भाग २, पृ० २३९

४—`डामुल का कैदी`, मानसरोवर भाग २, पृ० २३९

था । मजदूरों का संघ हड़ताल करने को तैयार बैठा हुआ था । इधर मजूरी घटी और उधर हड़ताल हुई ।"[1] तनाव का वातावरण है । मजदूरी घटाये जाने की संभावना से मजदूरों में उत्तेजना है और मिल-मालिक समय की तलाश में है क्योंकि हड़ताल हो जाने से ही उनका हित था । आदमियों की कमी तो है नहीं, बेकारी बढ़ी हुई है इसके आधे वेतन पर ऐसे ही आदमी आसानी से मिल सकते हैं । माल की तैयारी में एकदम आधी बचत हो जायगी । आंदोलन की सूचना देते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं - "एकाएक एक दिन जब मजदूर लोग शाम को छुट्टी पाकर चलने लगे, तो डाइरेक्टरों का ऐलान हुआ उसी वक्त हड़ताल करनी पड़ी --- ।"[2]

इन संघर्षों में सरकार मजदूरों के साथ न होकर उद्योगपतियों के साथ है । परतन्त्र भारत में मजदूरों की स्थिति पर सरकार को चिन्ता करने की आवश्यकता भी नहीं थी । मजूरी घटाए जाने पर सरकार द्वारा हस्तक्षेप की सूचना कहीं नहीं मिलती । यह अवश्य है कि 'गोदान' में मजूरी घटाने की सूचना के साथ ही पुलिस मिल में उपस्थित हो गई है और 'डामुल का कैदी' कहानी में मिल के द्वार पर कांस्टेबलों का पहरा है ।[3] भारतवर्ष उद्योग प्रधान देश इंगलिस्ड के आधीन था । उस समय सरकार से उद्योगपतियों के विरुद्ध मजदूरों की सहायता की आशा करना निर्मूल है । आज के स्वतंत्र भारत में भी लगभग उद्योगों के प्रति ऐसा ही सरकारी रवैया है ।

उद्योगपतियों और मजदूरों के संघर्ष में पूंजीपति और मिल के हिस्सेदार सदैव मिल में अधिकारियों का साथ देते हैं । उनकी हित भावना उद्योगपतियों का साथ देने में ही है । विभिन्न वर्गों के संघर्ष में एक उद्देश्य और हित रखने वाले वर्ग एक ओर हो जाते हैं । धन की कामना रखने वाले पूंजीपतियों एवं हिस्सेदारों का उद्योगपतियों का साथ देना स्वाभाविक है । 'डामुल का कैदी' कहानी में प्रेमचन्द ने इस तथ्य का उद्घाटन युवक नेता गोपीनाथ के शब्दों में किया है । गोपीनाथ मजदूरों से कहता है "धनवानों का पेट कभी नहीं भरता । हम निर्बल हैं, निस्सहाय हैं हमारी कौन सुनेगा ? व्यापार मंडल उनकी ओर है, सरकार उनकी ओर है मिल के हिस्सेदार उनकी ओर हैं, हमारा कौन है ? हमारा उद्धार तो

- -

१— 'गोदान', पृ० २४८

२— 'गोदान', पृ० २५५

३— 'डामुल का कैदी', मानसरोवर भाग २, पृ० २११

तो भगवान ही करेंगे ।"[1] गोपी नाथ के इन शब्दों में समाज के उन वर्गों का संकेत मिल जाता है जो संघर्ष में उद्योगपतियों के पक्षधर होते हैं ।

उद्योगों के आविर्भाव ने मजदूर संगठन को जन्म दिया है । सामाजिक एवं आर्थिक न्याय की मांग के लिए इन संगठनों का निर्माण हुआ है । `रंगभूमि` के मजदूर, जहां संगठन विहीन होकर जैसे-जैसे पांडेपुर के आस-पास जिंदगी काट रहे हैं वहीं `गोदान` के मजदूरों में संगठनात्मक स्थिति का आभास मिलता है । मिर्जा खुर्शेद मजदूर संघ के सभापति और पंडित ओंकार नाथ `बिजली-सम्पादक` मंत्री हैं । मजदूरों में गोबर हड़तालियों में सबसे आगे हैं । `बिजली का कार्यालय मजदूर संघ का दफ्तर है जहां हड़ताल की स्कीमें बनाई जाती हैं । संघर्ष में मिर्जा खुर्शेद हृदय से मजदूरों के साथ हैं । संघर्ष में चोट खाने वालों में मिर्जा साहब और गोबर दोनों हैं । `डामुल का कैदी` कहानी में मजदूरों के नेता के रूप में पहले गोपी नाथ और इसके बाद सेठ खूब चन्द के पुत्र कृष्ण चन्द को दिखाया गया है । `गोदान` के आंदोलनकारियों को समाज के शुभचिंतक प्रो० मेहता की भी सहानुभूति प्राप्त है । वे खन्ना से कठोर शब्दों में कहते हैं - "क्या जरूरी था कि ड्यूटी लग जाने से मजूरों का वेतन घटा दिया जाय ? आपको सरकार से शिकायत करनी चाहिए थी । अगर सरकार ने नहीं सुना तो उसका दण्ड मजूरों को क्यों दिया जाय ?"[2] वे खन्ना की किसी भी दलील को नहीं सुनना चाहते । उनकी प्रेरणा से ही खन्ना मिल के डाइरेक्टरों की मीटिंग बुलाने का फैसला करता है । इसी बीच आगजनी की घटना घट जाती है । खन्ना की पत्नी गोविंदी भी मजदूरों के पक्ष में है ।[3] उसकी सहानुभूति हार्दिक है । व्यवहारिक रूप में वह कुछ भी करने में असमर्थ है ।

इस सम्बन्ध में समाचार पत्रों, संपादकों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है पूंजीवादी विचारधारा वाले व्यक्तियों द्वारा चलाए जाने वाले समाचार पत्र उद्योगपतियों के साथ होते हैं और जनहित की कामना रखने वाले समाचार पत्र मजदूरों का ध्यान अधिक देते हैं । प्रचार और प्रसार के इस युग में समाचार पत्रों का विशेष महत्व होता है । इस सम्बन्ध में प्रेमचन्द बहुत अधिक तो प्रकाश नहीं डाल सके,

- -

१-- `डामुल का कैदी`, मानसरोवर भाग २, पृ० २९७
२-- `गोदान`, पृ० २६१
३-- `गोदान`, पृ० २६१

परन्तु `गोदान` में उन्होंने `बिजली` नामक समाचार पत्र का उल्लेख किया है जो मजदूरों का पक्षपाती है। सम्भवत: उसकी पक्षधरता का उद्देश्य भी पैसा पैदा करना है। उसके संपादक पंडित ओंकार नाथ मजदूरों के नेता भी हैं और संघर्ष के समय मैदान से भाग खड़े होते हैं।[1] समाचार पत्र `बिजली` के सम्बन्ध में प्रेमचन्द ने कहा है ------ मजदूर `बिजली` की प्रतियां जेब में लिये फिरते और जरा भी अवकाश पाते, तो दो तीन मजदूर मिलकर उसे पढ़ने लगते। पत्र की बिक्री खूब बढ़ रही थी। मजदूरों के नेता `बिजली` कार्यालय में आधी रात तक बैठे हड़ताल की स्कीमें बनाया करते और प्रात: काल जब पत्र में यह समाचार मोटे-मोटे अक्षरों में छपता, तो जनता टूट पड़ती और पत्र की कापियां दूने तिगुने दाम पर बिक जातीं।"[2] `बिजली` नामक पत्र की हड़ताल और संघर्ष के मध्य उल्लेख ऐसे संघर्षों में समाचार पत्रों के महत्व को दर्शाता है। इससे अधिक इस पत्र का महत्व आंदोलन में कुछ भी नहीं दिखाई देता। पत्र का संपादक ही जब आंदोलन का साथ नहीं दे पाता तब उसका पत्र क्या सहायता दे सकता ?

मजदूर आंदोलनों और हड़तालों के समय दंगे-फसाद का भय रहता है। यह दंगा आपस में मजदूरों के दो दलों के बीच अथवा मिल मालिक और मजदूरों के मध्य हो सकता है। इस प्रकार की घटनाओं की चर्चा हमें संघर्ष की दोनों अवस्थाओं में मिलती है। यह स्पष्ट किया जा चुका है कि `गोदान` और `डामुल का कैदी` दोनों स्थानों पर मजूरी घटाए जाने के पीछे नए मजदूरों के मिल जाने की संभावना और उनको कम वेतन पर काम में लगा लेने की इच्छा है। `गोदान` में मजदूरों के दो दलों के बीच संघर्ष दिखाया गया है। हड़ताली मजदूरों को आशा थी कि सौ-सौ पचास-पचास आदमी रोज भर्ती के लिए आयेंगे। उन्हें समझा बुझाकर या धमका कर भगा देंगे।"[3] परन्तु वहां नए मजदूरों का टिड्डी दल मिल के द्वार पर खड़ा था। इनकी भर्ती हो जाना हड़ताल की असफलता थी। ऐसी स्थिति में -"बल प्रयोग के सिवा और कोई उपाय न था। नया दल भी लड़ने मरने पर तैयार था। इनमें अधिकांश ऐसे भुक्खड़ थे, जो इस अवसर को किसी तरह

- -

१-- `गोदान`, पृ० २५८

२-- `गोदान`, पृ० २५१

३-- `गोदान`, पृ० २५१

भी न छोड़ना चाहते थे ----- दोनों दलों में फौजदारी हो गयी।"[1] 'डामुल का कैदी' कहानी में संघर्ष मिल मालिक खूबचन्द एवं सरकारी सिपाही तथा मजदूरों के बीच है। सेठ जी सिपाहियों को मजदूरों को मारकर बाहर निकालने को कहते हैं। सिपाहियों की मार से मजदूर भागने लगते हैं। गोपीनाथ और अन्य दो गिरफ्तार कर लिए जाते हैं। परन्तु इनका गिरफ्तार होना था कि एक हजार आदमियों का दल रेला मार कर मिल से निकल आया और कैदियों की तरफ लपका।"[2] सिपाही मैदान छोड़कर भाग गए। मजदूर सेठ जी की ओर बढ़ते हैं। युवक गोपीनाथ सेठ जी की तरफ अकेला बढ़ता है परन्तु सेठ जी गोली चला देते हैं। गोपीनाथ भी घायल होता है। उत्तेजित भीड़ रुई की गांठों पर आग लगाना चाहती है परन्तु घायल गोपीनाथ उन्हें रोक देता है। गोपीनाथ के चरित्र को उच्चता प्रदान करने के लिए प्रेमचन्द ने उसके द्वारा आदर्श की स्थापना कराई है परन्तु वहीं 'गोदान' में आंदोलनकारी मजदूर खन्ना की मिल में आग लगा देते हैं।[3] यहां की आग इतनी भीषण है कि "अग्नि की उन्मत्त लहरें एक पर एक, दांत पीसती थीं, जीभ लपलपाती थी जैसे आकाश को भी निगल जायेगी --- फायर ब्रिगेड के छींटे उस अग्नि सागर में जाकर जैसे बुझ जाते थे। ईंटें जल रही थीं, लोहे के गार्डर जल रहे थे और पिघली हुई शक्कर के परनाले चारों तरफ बह रहे थे। और तो और जमीन से भी ज्वाला निकल रही थी।"[4] इस तरह की आगजनी और मारपीट की घटनायें औद्योगिक क्षेत्रों में प्रायः होती रहती है। लूटमार की घटनायें भी हो जाया करती हैं। गोपीनाथ की अर्थी लेकर जाने वाले विद्रोही मजदूरों ने खूबचन्द की "कोठी के दफ्तर में घुस कर लेन-देन के बही-खातों को जलाना और तिजोरियों को तोड़ना शुरू कर दिया। मुनीम और अन्य कर्मचारी तथा चौकीदार सब के सब अपनी अपनी जान लेकर भागे।"[5] आतंकित मजदूर जब विध्वंसकारी हो जाता है उस समय प्रबन्धकों के ऊपर आक्रमण करना और उनकी

- -

१-- 'गोदान', पृ० २८४

२-- 'डामुल का कैदी', मानसरोवर भाग २, पृ० २४१

३-- 'गोदान', पृ० २६३

४-- 'गोदान', पृ० २६३

५-- 'डामुल का कैदी', मानसरोवर भाग २, पृ० २४६

सम्पत्ति को नष्ट भ्रष्ट करना उसके लिए विवेक का विषय नहीं रह जाता है। औद्योगिक क्षेत्रों में हड़तालों के समय उपद्रव की आशंका से चारों तरफ सनसनी छाई रहती है। शहर की जनता भयभीत रहती है। साधारण काम-काज भी कभी-कभी बन्द हो जाता है। औद्योगिक क्षेत्रों में एक मिल की हड़ताल आस-पास की दूसरी मिलों के मजदूरों को प्रभावित करती है। बम्बई नगर के औद्योगिक क्षेत्र से ली गई 'डामुल का कैदी' कहानी में इन पक्षों की ओर संकेत मिलता है। गोपीनाथ की हत्या का समाचार सारे शहर में बिजली की तरह फैल जाता है। कई मिलों में हड़ताल हो गयी। नगर में सनसनी फैल गई। किसी भीषण उपद्रव के भय से लोगों ने दूकानें बन्द कर दीं।[1] 'गोदान' में मजदूर आंदोलनों को सफलता नहीं मिली। पुराने मजदूर अब नई मजदूरी पर काम करने के लिए तैयार थे। खन्ना भी उन्हें बहाल करना चाहते थे। क्योंकि वे पुराने काम के अभ्यस्त थे। प्रेमचन्द इससे अधिक इसका हल नहीं निकाल सके। 'डामुल का कैदी' कहानी में सेठ खूबचन्द का हृदय परिवर्तन मजदूर नेता के रूप में अपने पुत्र के बलिदान से हो जाता है वह मजदूरों की विजय स्वीकार कर लेते हैं।[2] इन आंदोलनों की सफलता और असफलता की परीक्षण हम अगले अध्याय में करेंगे। यहां पर हमने उन पहलुओं पर विचार किया है जो शहरी समाजशास्त्र के अन्तर्गत आ सकते थे। यदि हम इन उद्योगों के आस-पास रहने और काम करने वाले मजदूरों की दशा और उनकी समस्याओं पर विचार कर ले तो शहरी समाजशास्त्र के अन्तर्गत औद्योगीकरण से सम्बन्धित प्रेमचन्द-साहित्य में सम्भव पक्षों का अध्ययन पूरा हो जायगा।

<u>मजदूरों से सम्बन्धित अन्य पक्ष</u> : मजदूर घर-बार छोड़कर इन कारखानों के आस-पास आकर बसता है। कारखानों में काम मिल जाने पर भी उसे जिस अनिश्चितता का सामना करना पड़ता है इस पर हम विचार कर चुके हैं। 'डामुल का कैदी' और 'गोदान' में मजदूर-आंदोलन का आधार मजदूरी घटाया जाना है। पूंजीपति सदैव से शोषण करता आया है। इसी शोषण के विरुद्ध मजदूर संगठित हुए और

- -

१— 'डामुल का कैदी', मानसरोवर भाग २, पृ० २३६

२— 'डामुल का कैदी', मानसरोवर भाग २, पृ० २४०

हड़तालें, तालाबन्दी और आंदोलनों के विभिन्न रूप सामने आए। इसके अलावा मजदूर के सामने जो दूसरी समस्या होती है वह है रहने की समस्या। उद्योगों के आस-पास आवास की कमी होती है कोठरियों में मजदूर चार-चार आठ-आठ यहां तक कि दस-दस की संख्या में रहते हैं। प्रेमचन्द ने मजदूरों की भीड़ और झोपड़ियों में निवास का चित्र 'रंगभूमि' में प्रस्तुत किया है। "सड़क के दोनों किनारों पर और निकट के खेतों में मजदूरों ने झोपड़ियां डाल ली थी। एक मील तक सड़क के दोनों ओर झोपड़ियों की श्रेणियां ही नजर आती थी।"[१] जब कल-कारखाने अपनी प्रारम्भिक अवस्था में होते हैं उस समय रहने की समस्या और भी जटिल होती है। औद्योगिकता जहां पुराने शहरों में ही विकसित हुई है, वहां पर मजदूरों को पहले पुराने घरों को किराए के बैरकों में बदल कर रखा जाता है। इन घरों के प्रत्येक कमरे में पूरा परिवार रहता है। एक ही कमरे में विभिन्न अवस्थाओं के प्राणी गुजारा करते हैं।[२] प्रेमचन्द ने भी पांडेपुर के कारखाने की प्रारम्भिक अवस्था में ऐसी स्थिति की ओर संकेत किया है। उन्होंने लिखा है - "पहले तो मजदूर मिस्त्री आदि प्राय: मिल के बरामदों में ही रहते थे, वहीं पेड़ों के नीचे खाना पकाते और सोते, लेकिन जब उनकी संख्या बहुत बढ़ गयी, तो मोहल्ले में मकान ले लेकर रहने लगे। पांडेपुर छोटी सी बस्ती तो थी ही, वहां इतने मकान कहां थे, नतीजा यह हुआ कि मोहल्लेवाले किराये की लालच से पड़ोसियों

- -

१— 'रंगभूमि', पृ० ४३८

२— In the industrial towns that grew up on older foundations, the workers were first accommodated by turning old one family hourses into rent barracks. In these made-over houses, each separate room now would enclose a whole family from publin and Glasgow to Bombay, the standard of one room per family long held. Bed over crowding with three to eight people of different ages steeping on the same pallet, often aggravated room over-crowding in sush human

लेविस मम्फोर्ड: 'द कल्चर ऑफ सिटीज़', १९३८ (न्यूयार्क), पृ० १४३

अपने अपने घरों में ठहराने लगे। कोई पर्दे की दीवार खिंचवा लेता था, कोई खुद फोपड़ा बनाकर उसमें रहने लगता।"[१]

इस प्रकार पांडेपुर के निवासी किराए की लालच से स्वत: कठिनाई उठाने के लिए तैयार हैं। यहां तक कि लोग मकान को किराए में उठाकर बाहर रहने की व्यवस्था कर रहे हैं। पांडेपुर के निवासियों में - "भैरो ने लकड़ी की दूकान खोल ली थी। वह अपनी मां के साथ वहीं रहने लगा, अपना घर किराये पर दे दिया। ठाकुरदीन ने अपनी दूकान के सामने एक टट्टी लगाकर गुजर करना शुरू किया, उसके घर में एक ओवरसियर आ डटे। जगधर सबसे लोभी था, उसने सारा मकान उठा दिया और एक फूस के छप्पर में निर्वाह करने लगा।"[२] यही स्थिति बजरंगी, नायकराय तथा अन्य लोगों की भी है। मजदूरों की आवास की यह दशाएं और परिस्थितियां समाजशास्त्र के अध्ययन-विषय हैं। मजदूरों के संदर्भ में चरित्र का भी प्रश्न है। कारखानों के आस-पास मजदूरों की भीड़-भाड़ इकट्ठी हो जाती है। ये मजदूर गांव या गैर शहरी इलाकों से काम के लिए आते हैं। प्राय: इनके परिवार गांव में ही रह जाते हैं। थोड़ी आय, आने जाने का व्यय, सुविधा भार, रहने की अव्यवस्था तथा अन्य आकस्मिक खर्चों के कारण मजदूर अपने परिवारों को लाने में अनुत्साहित होते हैं। पुरुषों की संख्या की अधिकता के कारण वेश्यावृत्ति को बढ़ावा मिलता है। उद्योगों के आस-पास भीड़-भाड़ के कारण अन्य अनेक प्रकार के अपराध भी होने लगते हैं। कैलाशदत्त गुप्त ने इस विषय में लिखा है "कि कतराता हुआ पारिवारिक जीवन, खराब आवास व्यवस्था, एक प्रकार की साधन हीनता और स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों की अधिक संख्या औद्योगिक स्थानों में स्वयं प्रमाणित वेश्यावृत्ति, जुआ, छोटी-मोटी बातों के फंसने, अपराध, बाल अपराध तथा और अनेक प्रकार के अपराधों को जन्म देता है।"[३]

- -

१— 'रंगभूमि', पृ० ३६४

२— 'रंगभूमि', पृ० ३६४

३— "Truncated family life, bad housing conditions, a kind of shiftlessness and as excess of males over females, in the wake of industrialisation, postulate prostitution, gambling, dope addiction and dope peddling, crime, delinquency and many other rices." कैलाशदत्त गुप्त: 'कन्टेम्पोरेरी प्राब्लेम्स इन इण्डिया', १९६४ (कलकत्ता) पृ० १६

प्रेमचन्द कल-कारखानों के आस-पास ऐसे अपराधों से परिचित थे। सूरदास के कारखानेके विरोध का मूल कारण इन्हीं अपराधों से गांव के लोगों की रक्षा है। वह स्पष्ट रूप से राजा महेन्द्र कुमार से कहता है - "सरकार बहुत ठीक कहते हैं, मुहल्ले की रौनक जरूर बढ़ जायगी, रोजगारी लोगों को फायदा भी खूब होगा। लेकिन जहां यह रौनक बढ़ेगी, वहां ताड़ी-शराब का भी तो परचार बढ़ जायगा, कसबियां भी तो आकर बस जायगी, परदेसी आदमी हमारी बहू-बेटियों को घूरेंगे, कितना अधरम होगा। दिहात के किसान अपना काम छोड़कर मजूरी की लालच से दौड़ेंगे, यहां बुरी-बुरी आदतें सीखेंगे ----- यही रौनक शहरों में है, वही रौनक यहां हो जायगी। भगवान न करे, यहां वह रौनक हो।"[१] सूरदास के विरोध के बावजूद भी यह रौनक हो जाती है और "मिल के परदेसी मजूर, जिन्हें न बिरादरी का भय था, न सम्बन्धियों का लिहाज, दिन-भर तो मिल में काम करते, रात को ताड़ी-शराब पीते। जुआ नित्य होता था। ऐसे स्थानों में कुलटायें भी आ पहुंचती हैं। यहां भी एक छोटा-मोटा चकला आबाद हो गया था"[१] 'गोदान' में गांव की स्वच्छन्दवायु में पले गोबर को देह में "मिल के तूफानी शोर और कोलाहल के कारण एक बोझ सा लदा रहता।" सभी श्रमिकों की यही दशा थी। सभी ताड़ी या शराब में अपनी दैहिक थकान और मानसिक अवसाद को डुबाया करते थे।"[३] पांडेपुर के किशोर मिठुआ, घीसू और विद्याधर तीनों नवयुवक अपराध के अवगुणों में फंसे जा रहे हैं। ये बनकर बाजार में सैर करने जाते और जुआ खेलते। वहां पर अश्लील हास-परिहास, लज्जास्पद नेत्र कटाक्ष और कुवासना-पूर्ण हाव-भाव का अविरल प्रवाह होता रहता था।"[४] यहां अब भय संकोच का नाम नहीं। घीसू की चोरी की आदत भी पड़ गई है। औद्योगीकरण ने मजदूरों के चरित्र को तो प्रभावित किया ही है। इसके साथ ही वहां पर जो सांस्कृतिक परिवर्तन हो रहा है उससे पांडेपुर और आस-पास के लोग भी प्रभावित होने लगे हैं। अवसरवादी शहर संस्कृति ने गांव के बड़े शिक्षित

- -

१-- 'रंगभूमि', पृ० ७७

२-- 'गोदान', पृ० ३३१

३-- 'गोदान', पृ० २७६

४-- 'गोदान', पृ० ३३६

और अशिक्षित नवयुवकों को बिगाड़ रहा है। जो अवगुण गांव के लोगों में सम्भव हो सकते हैं मजदूरों में उनका होना स्वाभाविक है क्योंकि गांव के लोगों के परिचित लोग हैं परन्तु बाहर से आए हुए लोगों को तो निरी स्वच्छंदता है उनके सामने और भी किसी तरह का बंधन नहीं है। मजदूरों के चरित्र सम्बन्धी प्रश्न भी समाजशास्त्र के अध्ययन का महत्वपूर्ण पहलू है क्योंकि इससे उनका, उनके परिवार का सामाजिक जीवन ही नहीं आर्थिक जीवन भी प्रभावित होता है। वेश्यावृत्ति, जुआ, शराब-खोरी आदि दुष्कर्म उनको सबै से तबाह कर देते हैं। जिस महत्वाकांक्षा से वे शहर आते हैं वह भी पूरी नहीं हो पाती वे कुछ लेकर नहीं बल्कि खोकर वापस जाते हैं।

प्रेमचन्द-साहित्य में औद्योगीकरण से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों के विवेचन के पश्चात यह कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द-साहित्य में औद्योगीकरण से सम्बन्धित जिन पक्षों का स्वरूप चित्रित हुआ वह शहरी समाजशास्त्र के अध्ययन के महत्वपूर्ण विषय हैं। प्रसिद्ध औद्योगिक समाजशास्त्री मिलर और फार्म ने औद्योगिक समाजशास्त्र के अन्तर्गत जिन पक्षों के अध्ययन की ओर संकेत किया है उन सम्पूर्ण बातों का प्रेमचन्द-साहित्य में औद्योगिक चित्रण के संदर्भ में पाया जाना प्रेमचन्द-साहित्य की समाजशास्त्रीय व्याख्या की अनिवार्यता को और भी अधिक पुष्ट कर देता है।

शहरी समुदाय

समुदायों का अध्ययन समाजशास्त्री अपने प्रारम्भिक अवस्था से करता आया है। प्रस्तुत अध्याय के पूर्वार्द्ध में हम प्रेमचन्द-साहित्य में ग्राम जीवन का अध्ययन करते समय ग्रामीण समुदाय का अध्ययन कर चुके हैं। प्रेमचन्द-साहित्य में शहर जीवन के निरूपण के साथ शहर के विभिन्न पक्षों में प्रकाश पड़ा है। यहां पर हम उनके साहित्य में शहरी समुदाय से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों का अध्ययन करेंगे।

नगर-समुदाय विभिन्नताओं से भरा-पूरा होता है। अत्यधिक जनसंख्या और जीविका की खोज नगर-समुदाय को विशृंखलता की ओर ले जाती है। यद्यपि देखने में नगरों में बहुत बड़ी संख्या में लोग रहते हैं परन्तु आंतरिक दृष्टि से उनमें अब रहना, वह सम्बन्ध वह लगाव तथा वह भातृ-भाव नहीं रहता जो ग्रामीण समुदाय में पाया जाता है। नगर में व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति के लिए व्यक्ति

प्रयत्नशील रहते हैं। पारिवारिक विघटन नगर की प्रमुख विशेषता है। नगर समुदाय जागृति तथा नई चेतनाओं का नेतृत्व करता है।

शहर समुदाय में विभिन्न तरह के वर्ग का उदय राजनीतिक, तथा आर्थिक कारणों से हो जाना स्वाभाविक होता है। विभिन्न वर्गों के लोग अपने स्वार्थों की रक्षा के लिए समितियां तथा संस्थाओं की रचना करते रहते हैं। सांस्कृतिक परिवर्तन और नई संस्कृति की स्वीकृति नगर समुदाय में सरलता से सम्भव है। नगर-जीवन में प्रशासनिक दृष्टि से अपना स्थानीय प्रशासन होता है। इन्हीं संदर्भों में हम प्रेमचन्द-साहित्य में नागरिक समुदाय पर दृष्टि डालेंगे।

प्रेमचन्द-साहित्य में चित्रित नगर जीवन विभिन्नताओं से पूर्ण है। भौतिक स्पर्धा के कारण जीवन में कठिनाई और सरलता ऐसे प्रश्न को उठाते हुए प्रेमचन्द ने 'गृहदाह' कहानी में लिखा है - "बड़े शहर में जीविका का प्रश्न कठिन भी है और सरल भी है। सरल है उनके लिए, जो हाथ से काम कर सकते हैं कठिन है उनके लिए जो कलम से काम करते हैं।"[1] स्पष्ट है उद्यम अथवा व्यवसाय करने वाला व्यक्ति उनकी दृष्टि में आसानी से जी सकता है और बाबू बनने का लालायित व्यक्ति कठिनाई उठाता है। प्रेमचन्द ने 'रंगभूमि' के जॉन सेवक तथा 'गोदान' के खन्ना को अपने परिश्रम से बढ़ते देखा है। परन्तु इस वृद्धि में दूसरे की चिन्ता नहीं है। त्याग को कहीं स्थान नहीं है, दूसरे को सहयोग देने की कहीं भावना नहीं है। प्रेमचन्द-साहित्य में अपना स्वार्थ साधने वाले अनेक पात्र नगर समुदाय में खोजे जा सकते हैं। 'प्रेमाश्रम' के ज्ञानशंकर, राय साहब कमलानन्द 'कर्मभूमि' के समरकान्त, धनीराम तथा मनीराम और 'गोदान' के श्याम बिहारी तंखा तथा मालती (प्रारम्भिक रूप में) इस संदर्भ में उदाहरण स्वरूप लिए जा सकते हैं। जॉन सेवक और खन्ना का उल्लेख हम कर चुके हैं। यही कारण है कि प्रेमचन्द ने यह धारणा बना ली है कि "शहर में मनुष्य बहुत होते हैं पर मनुष्यता विरले ही में होती है।"[2]

<u>वैयक्तिकता - पारिवारिक विघटन</u>: वैयक्तिकता नगर-जीवन की मुख्य देन है। व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए यहां का प्राणी सामूहिक अहित भी करने में नहीं हिचकता है। वैयक्तिक स्वार्थ की प्रवृत्ति के कारण भारतीय नगर-जीवन में

- -
१-- 'गृहदाह', मानसरोवर भाग ३, पृ० १८१
२-- 'गृहदाह', मानसरोवर भाग ३, पृ० १८८

भारतीय संयुक्त परिवार प्रणाली को गहरा धक्का लगा है। नगर-जीवन में पारिवारिक विघटन दिन-प्रतिदिन तीव्रतर होता जा रहा है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री रामकृष्ण मुकर्जी ने इस तथ्य को प्रकाश में लाते हुए कहा कि गैर पारिवारिक शाखायें शहरों में गांव की अपेक्षा या तो पारिवारिक एकाग्रता को छोड़कर शहरी जीवन के तरीके को स्वीकार कर लिया है अथवा अधिकतर उनका मानसिक गठन लम्बे पारिवारिक संगठन की अपेक्षा एकाकी परिवारों के पक्ष में है और जो लोग लम्बे पारिवारिक संगठनों में रह रहे हैं उनकी भी झुकान एकाकी परिवारों के निर्माण की ओर हो रही है।[१] प्रेमचन्द ने "प्रेमाश्रम" में शहर जीवन के परिवार के विघटित स्वरूप को लाला प्रभाशंकर और ज्ञानशंकर के परिवार के रूप में देखा है। प्रभाशंकर पारिवारिक बंटवारा नहीं चाहते। क्योंकि उनके अनुसार "इससे बड़ा अनर्थ और क्या होगा? घर का पर्दा खुल जायगा, सम्बन्धियों में घर-घर चर्चा होगी। हा दुर्भाग्य! घर में दो चूल्हे जलेंगे। जो बात कभी न हुई थी, वह अब होगी। मेरे और मेरे प्रिय भाई के बीच पुत्र के बीच केवल पड़ोसी का नाता रह जायगा।"[२] परन्तु ज्ञानशंकर की स्वार्थ वृत्ति को यह स्वीकार नहीं है कि वह इस लम्बे परिवार में रहकर पारिवारिक मर्यादा का पालन करता रहे। ज्ञानशंकर के उद्योग से यह परिवार

- -

१— "Concurrently, as against those in villages, we should expect that the non familial units in urban areas would have either lost their family moorings in a drastic conformity with the assumed urban way of life or, more probably, their mental make up would be distinctly in favour of the nuclear rather than of the extended family organisation. And, lastly, out of those living under the extended family organisation, the tendency should be discerned in cities and towns to form nuclear family units which such a tendency should be lacking in rural areas." रामकृष्ण मुकर्जी: "द सोशियोलोजिस्ट एण्ड सोशल चेन्ज इन इण्डिया टुडे", १९६५ (न्यू देहली), पृ० २८

२— "प्रेमाश्रम", पृ० ३३

विघटित हो जाता है । `कर्मभूमि` में समरकान्त और अमरकान्त पिता पुत्र में एकता नहीं है । पुत्र को पिता से अलग मकान लेकर रहना पड़ता है । प्रेमचन्द ने वास्तविकता को समझकर शहर जीवन में जिन प्रमुख परिवारों का चित्रण किया है वे प्राय: आणविक अथवा एकाकी परिवार है । इनमें `वरदान` का मुंशी शालिग्राम, सुवामा और प्रतापचन्द का परिवार `सेवासदन` में सुमन और गजाधर `प्रेमाश्रम` में प्रभाशंकर, ज्ञानशंकर (जो टूट चुका है)। `कर्मभूमि` में लाला समरकान्त, `रंगभूमि` में जान सेवक, महाराज भरतसिंह, राजा महेन्द्रकुमार तथा `गोदान` में चन्द्रप्रकाश खन्ना के परिवार प्रमुख हैं । प्रेमचन्द जी की अन्तर्दृष्टि ने शहर की पारिवारिक स्थिति को पहचाना था । इसी कारण उनके साहित्य में शहरी कथानकों के अन्तर्गत चित्रित होने वाले परिवारों में आणविक और एकाकी परिवारों को प्रमुखता मिली है ।

<u>नवीनता के प्रति आग्रह</u> : शहर समुदाय नवीनता को ग्रामीण समुदाय की अपेक्षा सरलता से शीघ्र स्वीकार कर लेता है । स्वीकृति की सरलता के कारण ही जागृति और सुधार के प्रयत्न शहरों में आसानी से सफल हो जाते हैं । राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक तथा सामाजिक सुधारों के प्रयत्न प्राय: शहरों से ही आरम्भ होते हैं । भारतवर्ष के नगर आधुनिक जीवन की जन-जागृति के केन्द्र हैं । वे प्रमुख रूप से राष्ट्रीय आंदोलन के केन्द्र रहे हैं । शैक्षणिक तथा सामाजिक सुधारों का प्रयत्न भी यहीं से प्रारम्भ हुआ है । शहरों तथा शहरी समुदाय की इस महत्वपूर्ण स्थिति का विश्लेषण प्रेमचन्द-साहित्य में प्राप्त होता है । उनके साहित्य में जन-आंदोलनों की चर्चा भी मिली है या तो वे आंदोलन नगरों में हुए हैं अथवा नगर-जीवन के लोग उन आंदोलनों का नेतृत्व कर रहे हैं । इन आंदोलन में `कायाकल्प` का बेगार के विरुद्ध मजदूरों का आंदोलन, `कर्मभूमि` में मंदिर-प्रवेश, म्युनिसिपैलिटी के विरुद्ध आंदोलन तथा लगान बन्दी का आंदोलन उल्लेखनीय है । इसके अलावा गांवों में जागृति फैलाने वाले लोगों में `प्रेमाश्रम` के प्रेमशंकर, `कायाकल्प` के चक्रधर, `रंगभूमि` के विनय कुमार तथा `कर्मभूमि` के अमरकान्त, आत्मानन्द और सकीना शहर के रहने वाले हैं । इन चरित्रों के माध्यम से स्पष्ट है कि प्रेमचन्द ने शहरों में जागृति के पहलू को स्वीकार करते हुए उनके माध्यम से गांव के लोगों में चेतना भरी है । सुधार सम्बन्धी प्रयत्न भी शहरी परिवेश में किए गए हैं । `निर्मला` में दहेज प्रथा की त्रुटियों को दिखाया गया है । `प्रतिज्ञा`

था । `रंगभूमि` में दो संस्कृतियों का अद्भुत मेल कराकर प्रेमचन्द ने स्वदेशी और विदेशी संस्कृति की शहर जीवन में अस्तित्व का परिचय तो दिया ही है इसके साथ ही उन्होंने एक दूसरे के प्रभाव का स्वरूप भी स्पष्ट किया है। जॉन सेवक का परिवार पश्चिमी सभ्यता का प्रतीक है जबकि भरतसिंह का परिवार भारतीय संस्कृति का । मिसेज सेवक "योरोपीय सभ्यता की भक्त थी और आहार-व्यवहार में उसी का अनुसरण करती थी । खान-पान, वेश-भूषा, रहन-सहन सब अंग्रेजी थी ।[1] जान सेवक के अनुसार "हमारा धर्म, हमारी रीति-नीति, हमारा आहार-व्यवहार अंग्रेजों के अनुकूल है ।"[2] रानी जान्हवी हिन्दू संस्कृति की कट्टर भक्त है उनके अनुसार - "प्रत्येक हिन्दू जानता है कि मसीह बौद्धकाल में यहां आये थे, यहीं उनकी शिक्षा हुई थी और जो ज्ञान उन्होंने यहां प्राप्त किया, उसी का पश्चिम में प्रचार किया ।[3] रानी का यह तर्क भौतिक अधिक है परन्तु उनकी भारतीय संस्कृति के प्रति आस्था को दर्शाया है। सांस्कृतिक प्रभाव का चित्र सोफिया के इस कथन से स्पष्ट है - "हिन्दू-धर्म की उदार छाया में किसके लिए शरण नहीं ----- जहां महावीर के भक्तों के लिए स्थान है, बुद्धदेव के भक्तों के लिए स्थान है, वहां क्या ईसू के भक्तों के लिए स्थान नहीं है ।"[4] सोफिया के इस कथन में जहां हिन्दू उदारवादी नीति का परिचय मिलता है वहीं उसके प्रति आकर्षण भी । यदि सोफिया हिन्दू-संस्कृति के प्रति आकर्षित है तो `गोदान` की मालती पश्चिमी सभ्यता की ओर आकर्षित है। प्रेमचन्द के अनुसार "आप नवयुग की साक्षात प्रतिमा हैं ।"[5] इसी उपन्यास की गोविंदी भारतीय संस्कृति की साक्षात् स्वरूप है। `कर्मभूमि` में अमरकान्त

- -

their interaction with one another."

टी० के० उनायन, इन्द्रदेव, योगेन्द्र सिंह: `सोशियोलॉजी ऑव कल्चर इन इण्डिया`, १९६५ (न्यू देहली), पृ० ४०२

१-- `रंगभूमि`, पृ० १०४

२-- `रंगभूमि`, पृ० १४०

३-- `रंगभूमि`, पृ० १४८

४-- `रंगभूमि`, पृ० १४१

५-- `गोदान`, पृ० ६०

और सलीम दो विभिन्न सभ्यताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। सांस्कृतिक विभिन्नता शहर-जीवन की एक विशेषता है। प्रेमचन्द-साहित्य के शहर समुदाय में दो संस्कृतियां पाश्चात्य तथा भारतीय, ईसाई तथा हिन्दू संस्कृतियां उपलब्ध हैं। उपलब्ध ही नहीं जहां उनमें टकराव और अन्तर्विरोध है वहीं मिलाप भी है।

नगर-जीवन में धर्म मात्र दिखावा होता है। धार्मिक आस्था की नींव भौतिकवाद के नीचे दब जाती है। कम से कम वर्तमान युग में तो धर्म की यही स्थिति है। प्रेमचन्द ने `सेवासदन` में धर्म और धार्मिकों की स्थिति को अच्छी तरह परख लिया है। राम नवमी के दिन भोलीबाई का मंदिर में मुजरा है और उसकी मधुर ध्वनि में तन्मय होने वाले "एक से एक बड़े आदमी बैठे हुए थे, कोई वैष्णव तिलक लगाये, कोई भस्म रमाये, कोई गले में कंठी माला डाले और राम-नाम की चादर ओढ़े कोई गेरुए वस्त्र पहिने"[१] वहां पर विराजमान हैं। `रंगभूमि` के व्यापारी जॉन सेवक की दृष्टि में "धर्म-धर्म है व्यापार-व्यापार, परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं, संसार में जीवित रहने के लिए किसी व्यापार की जरूरत है, धर्म की नहीं।"[२] समरकान्त के लिए लाभ कमाना चोरी का माल खरीदना अधर्म नहीं है। उनका धर्म राम-नाम जपना, एकादशी का व्रत रखना, गंगा स्नान करना तथा देवताओं पर जल चढ़ाना है। उनके अनुसार "धर्म और चीज है, रोजगार और चीज।"[३] `गबन` उपन्यास के कलकत्ते के सेठ करोड़ीमल का धर्म गरीबों को हंटर मारना, मजदूरों के साथ निर्दयता का व्यवहार करना है। देवीदीन के अनुसार "इसके तीन सौ बड़े-बड़े धर्मशाले हैं मुदा है पाखण्डी"[४] इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि शहर जीवन में धर्म का स्थान पाखण्ड, धोखाधड़ी और झूठ ने ले लिया है। वहां मात्र धर्म दिखावा मात्र है उसके वास्तविक स्वरूप के कहीं दर्शन नहीं।

आजकल साहित्य और संगीत भी शहरों की ओर दौड़ लगा चुके हैं। ग्रामीण जीवन में लोकगीतों तथा लोकनृत्य के अक्षुण्ण अस्तित्व को हम ग्रामीण

- -

१-- `सेवासदन`, पृ० २१
२-- `रंगभूमि`, पृ० ७२
३-- `कर्मभूमि`, पृ० ६४
४-- `गबन`, पृ० १६१

समुदाय के अध्ययन के अन्तर्गत देख चुके हैं प्रेमचन्द-साहित्य में साहित्य और संगीत सम्बन्धी चर्चाएं शहर जीवन में ही की गई हैं। `वरदान` की विरजन, `रंगभूमि` में प्रभु सेवक, शहर जीवन के पात्र हैं। विरजन कवि और लेखिका है - `प्रेम की मतवाली` कविता की रचना कर चुकी है। उसके लेख प्रयाग की `कमला` नामक पत्रिका में छपते हैं। इसी उपन्यास के प्राणनाथ `स्वामी बालाजी` और `भारत महिला` नामक सुन्दर लेख लिखते हुए दर्शाए गए हैं। प्रभु सेवक हर वक्त रचना-विचार में निमग्न रहता।[1] `कायाकल्प` के यशोदानन्दन तथा मुंशी वज्रधर संगीत प्रेमी के रूप में दिखाए गए हैं। `सेवासदन` के अनिरुद्धसिंह भारतीय संगीत के शुभचिंतक हैं जबकि `प्रेमाश्रम` के राय कमलानन्द की सभा में इटली, फ्रांस, इंगलिस्तान तथा जर्मनी से संगीतज्ञों को निमंत्रित किया गया है साथ ही ढाका, काश्मीर, ग्वालियर तथा जयपुर के संगीतज्ञों को भी बुलाया गया है।[2] साहित्य और संगीत की चर्चा प्रेमचन्द द्वारा शहर जीवन में ही किया जाना शहर जीवन में शहर संस्कृति में उसके अस्तित्व को स्वीकार करना है जो आधुनिक युग के संदर्भ में सत्य है।

<u>सामाजिक वर्ग</u> : शहर समुदाय में वर्गों की विविधता अनिवार्य है। अधिक जनसंख्या, भौतिक प्रतिस्पर्धा तथा कार्यों की अधिकता ने शहर-जीवन में अनेक वर्गों को जन्म दिया है। भारतीय नगरों में ऐसे वर्गों में उच्च वर्ग में पूंजीपति, मध्यवर्ग में व्यवसायी, सामन्त वर्ग के राजे-महाराजे, ताल्लुकेदार, जमींदार, मध्यवर्ग के व्यवसायी, मध्यवर्गीय वकील, अध्यापक, डाक्टर, सम्पादक आदि, निम्न मध्य वर्ग के क्लर्क तथा अध्यापक एवं निम्न वर्ग के मजदूर और जरायमी आदि हैं। प्रेमचन्द-साहित्य में नगर-जीवन में इनका प्रतिनिधित्व मिलता है। जॉन सेवक और चन्द्र प्रकाश सन्ना पूंजीपति और उद्योगपतियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। सामन्तवर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले महाराजा मधुसिंह, महाराजा जसवन्तनगर, राजा विशाल सिंह, राजा महेन्द्र कुमार, रानी गायत्री, राय कमलानन्द, सूर्य प्रताप सिंह, अनिरुद्धसिंह, दिग्विजय सिंह, अमरपाल सिंह, प्रभाशंकर और ज्ञानशंकर हैं। इसी प्रकार मध्यवर्ग के व्यवसायियों के प्रतिनिधि

- -

१-- `रंगभूमि`, पृ० ४०
२-- `प्रेमाश्रम`, पृ० ३०१

समरकान्त, धनीराम तथा मनीराम हैं। मध्य वर्ग के वकीलों, डाक्टरों, अध्यापकों तथा सम्पादकों के प्रतिनिधियों के रूप में ईश्वरीलाली, प्रियनाथ चोपड़ा, शान्तिकुमार और ओंकार नाथ हैं। निम्न मध्य वर्ग के प्रतिनिधि स्वरूप गोबर का उल्लेख किया जा सकता है। शहरों में वर्गों की बहुलता का जो स्वरूप प्रेमचन्द-साहित्य में उभर कर आया है वह शहर समुदाय के वर्ग सम्बन्धी वास्तविक स्वरूप का प्रतीक है।

संस्थाएं-समितियां : शहर समुदाय में लोग अपने अधिकारों पर बल देने का प्रयत्न करते हैं। राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक समस्याओं पर अपने विभिन्न विचार रखते हैं। उन विचारों के कार्यान्वय के लिए उन्हें माध्यम की आवश्यकता होती है। कभी-कभी अत्याचार और शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने वाले व्यक्ति भी संगठित होते हैं। इसके अलावा सुधार के प्रयत्न भी होते हैं। इन्हीं कारणों से शहर समुदाय में समितियों तथा संस्थाओं की स्थापना होती रहती है। यह संस्थाएं और समितियां बनती बिगड़ती रहती हैं। नेल्स अन्डर्सन और के० ईश्वरन के अनुसार यह अच्छी तरह से जानी हुई बात है कि नगर के सब लोग द्वितियक समितियों (सेकेन्डरी एसोसिएसनों) में भाग नहीं लेते हैं। जो भाग लेते हैं वे सब सभाओं में भाग नहीं लेते। बहुत से ऐसे लोग भी होते हैं जो उनके क्रिया कलापों से कतराते रहते हैं।[1]

प्रेमचन्द-साहित्य में शहर समुदाय में अनेक संस्थाओं और समितियों का होना प्रदर्शित किया गया है। ऐसी संस्थाओं और समितियों में 'कर्मभूमि' की 'भारत सभा' तथा प्रतापचन्द की 'मित्र-सभा', 'सेवासदन' के 'विधवा-आश्रम' एवं 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम' के ताल्लुकेदार एसोसिएसन, रानी गायत्री का 'सनातन धर्म मण्डल' राय कमलानन्द की 'संगीत-सभा': मौलवी ईजाद हुसैन के

- -

१-- "It is well known that not all urban people join secondary Organizations, and not all of those who join, attend organization meetings. Many avoid the obligation that membership entails, paying membership dues, conforming to organization rules or giving time for organization activities.
नेल्स अन्डर्सन ऐण्ड के० ईश्वरन: 'अरबन सोशियोलाजी' १९६५ (न्यूयार्क), पृ० ८८

'अंजुमन इत्तहाद' तथा 'इत्तहादी यतीमखाना' 'रंगभूमि' के । 'सेवासमिति' तथा 'सेवकदल', 'कर्मभूमि' का डा० शान्तिकुमार का 'सेवाश्रम' तथा 'नौजवान सभा', 'गोदान' की मालती की 'वीमेन्स लीग' तथा 'आगा पीछा' कहानी का 'महिला मण्डल' आदि हैं। ताल्लुकेदार एसोसिएसन के स्वागत कार्य-कारिणी समिति के प्रधान राय कमलानन्द को एसोसिएसन की चिंता नहीं है। उत्सव के दिन वह शिकार खेलने चले जाते हैं। प्रेमशंकर द्वारा पूछने पर वह कहते हैं - "मुझे अभी तक कुछ खबर नहीं और मैं ही स्वागत कार्य-कारिणी का प्रधान हूं। मेरे मुख्तार साहब ने सब प्रबन्ध कर दिया होगा।"[१] इससे स्पष्ट है इन संस्थाओं और समितियों के लोगों में से बहुत कम लोग काम में रुचि लेते हैं।' 'रंगभूमि' के कुंवर भरतसिंह 'सेवासमिति' और 'सेवकदल' के संरक्षक हैं। परन्तु कभी उसके क्रिया कलाप में सक्रिय रूप से कार्यरत नहीं दिखाई देते।

ताल्लुकेदार एसोसिएसन भले ही गवर्नर को आमंत्रित करने की क्षमता रखता हो परन्तु प्रेमचन्द द्वारा उल्लिखित अन्य संस्थाओं में जो परोपकार की भावना से निर्मित हुई हैं, यह शक्ति नहीं है कि वह अपना कार्य सुचारु रूप से चला सकें। 'सेवासदन' का विधवाश्रम आर्थिक कठिनाई का शिकार है। 'कर्मभूमि' के 'सेवाश्रम' को रेणुका के सहायता की आवश्यकता पड़ती है। नेल्स अन्डर्सन और के० ईश्वरन् ने ठीक ही कहा है कि शक्तिहीन संस्थाओं में वही होंगे जिनका उद्देश्य कल्याणकारी है और जिनके सदस्य व्यक्तिगत लाभ की चिन्ता नहीं करते बल्कि वे शिक्षा, स्वास्थ्य, संस्कृति, नैतिकता तथा कला आदि के कल्याण के कार्यों में लगे रहते हैं।[२] प्रेमचन्द शहर जीवन की संस्थाओं एवं समितियों की उपर्युक्त स्थिति को जानते थे। यही कारण है कि उन्होंने ऐसी संस्थाओं को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर

- -

१-- 'प्रेमाश्रम', पृ० १२०

२-- "Among the weaker organizations will be those with welfare or service objectives whose members are not so concerned about personal gain, rather they look to the public interest in matters of education, health, culture, morals, the arts and so on."
नेल्स अन्डर्सन ऐण्ड के० ईश्वरन्: "अरबन सोशियोलोजी" १९६५ (न्यूयार्क), पृ० ७८

नहीं दिखाया है।

होटल-थियेटर-सिनेमा का जीवन : शहर-समुदाय में होटल, थियेटर और सिनेमा का महत्वपूर्ण स्थान है। अगर यह कहा जाय कि आधुनिक युग में ये शहर-जीवन के आवश्यक अंग हैं तो अत्युक्ति न होगी। 'कानूनी कुमार' कहानी के होटल के मालिक आचार्य के शब्दों में - 'होटल पश्चिमी गौरव का मुख्य अंग है, पश्चिमी सभ्यता का प्राण है। अगर आप भारत को उन्नति के शिखर पर देखना चाहते हैं, तो होटल जीवन का प्रचार कीजिए।'[1] पाश्चात्य सभ्यता के केन्द्र नगर जीवन में होटल के मालिक द्वारा यह उक्ति इस जीवन में होटल के महत्व और अस्तित्व का उद्घोष करती है। 'गबन' की जालपा के इस कथन 'होटल वाले बदमाश तो न होंगे ?'[2] में होटलों में स्त्रियों के साथ होने वाले दुर्व्यवहार, बलात्कार तथा अन्य दूसरे प्रकार के कुकर्मों का संकेत है। क्लब जिन्दगी का परिचय देते हुए प्रेमचन्द शांति कहानी में कहते हैं वहां की विचित्र जिन्दगी थी। वह पूरा स्वांग था, भद्दा और बेजोड़। लोग अंग्रेजी के चुने हुए शब्दों का प्रयोग करते थे। जिसमें कोई सार न होता था, नकली हंसी हंसते थे, जिसका कोई असर न होता था। स्त्रियों की वह फूहड़ निर्लज्जता और पुरुषों की वह भाव शून्य स्त्री पूजा मुझे भी न भाती थी।'[3] क्लबों की जिंदगी पसंद करने वाले और प्रेमचन्द की दृष्टि में इस जीवन के सम्बन्ध में भेद हो सकता है परन्तु शहर जीवन में क्लबों के अस्तित्व तथा प्रेमचन्द द्वारा इस ओर संकेत में संदेह नहीं है। 'गोदान' के खन्ना 'प्रेमाश्रम' के ज्वालासिंह तथा 'दो कब्रें' कहानी के रमेन्द्र और सुलोचना क्लब जीवन के अभ्यस्त हैं। ज्वालासिंह में बाद में परिवर्तन हो जाता है। थियेटर जीवन का प्रभाव प्रेमचन्द ने 'धर्म संकट' कहानी में विवाहित युवती कामिनी के चरित्र में दिखाया है। विवाहित कामिनी का अवैध सम्बन्ध नवयुवक रूपचन्द से हो जाता है। यह होना ही था क्योंकि थियेटर जीवन की "प्रणय की नित्य नई मनोहर शिक्षा और प्रेम के आनन्द मय आलाप-विलाप का हृदय पर कुछ न कुछ असर होना चाहिए था,

- -

१— 'कानूनी कुमार', मानसरोवर भाग २, पृ० २६३

२— 'गबन', पृ० २११

३— 'शांति', मानसरोवर भाग ७, पृ० ८२

सो भी चढ़ती जवानी पर यह असर हुआ[1] आज के युग में अनेक नवयुवक और नवयुवतियां सिनेमा के प्रभाव से पथ विचलित होते देखे जा सकते हैं।

<u>नगर-प्रशासन</u> : नगर-समुदाय के अध्ययन से सम्बन्धित जो अंतिम पक्ष शेष है वह नगर का स्थानीय प्रशासन। नगरों में प्रशासन के सम्पूर्ण विभागों के उच्च पदाधिकारी रहते हैं। इनमें गवर्नर, कमिश्नर, कलक्टर, पुलिस कप्तान, डिप्टी-कलेक्टर, जेलर, इंजीनियर आदि होते हैं। प्रेमचन्द-साहित्य में इन पदाधिकारियों में गवर्नर के रूप में 'विश्वास' कहानी के बम्बई के गवर्नर मिस्टर जौहरी, एजेण्ट के रूप में मि० क्लार्क कलक्टर के रूप में मि क्लार्क और 'कायाकल्प' के मि० जिम, 'कर्मभूमि' के मि० गजनवी, पुलिस कप्तान के रूप में 'कायाकल्प' के मि० जिम, डिप्टी कलेक्टर के रूप में 'प्रेमाश्रम' के ज्वालासिंह 'कायाकल्प' के गुरुसेवकसिंह, 'कर्मभूमि' के सलीम और मि० घोष तथा इंजीनियर के रूप में 'सज्जनता का दण्ड' कहानी के शिवदानसिंह हैं। इन अधिकारियों का नगर प्रत्यक्ष से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्ध अवश्य होता है परन्तु उचित यही होगा कि हम केवल स्थानीय प्रशासन पर ही दृष्टि डालें। भारत में नगर-जीवन में स्थानीय व्यवस्था के लिए नगर पालिकायें, या नगर महापालिकाओं की व्यवस्था है। इनका कार्य नगर-जीवन की सामाजिक व्यवस्था, स्वास्थ्य संरक्षण तथा सड़कों, रोशनी, पानी आदि का प्रबन्ध है। प्रेमचन्द-साहित्य में म्यूनिसिपैलटियों से सम्बन्धित चित्रण 'सेवासदन', 'रंगभूमि' और 'कर्मभूमि' में है। 'सेवासदन' में वेश्या-समस्या जैसे महत्वपूर्ण सामाजिक प्रश्न पर म्यूनिसिपैल्टिी के सदस्यों के बीच एक प्रस्ताव पर विचार किया है। जबकि 'कर्मभूमि' में स्वास्थ्य के प्रश्न को लेकर गरीबों के रहने के लिए अच्छे मकानों के लिए म्यूनिसिपैल्टिी से संघर्ष है। 'रंगभूमि' में स्थानीय प्रशासन का नगर सीमा के अन्तर्गत भूमि नियंत्रण तथा उसके प्रयोग के औचित्य का प्रश्न है। इस उपन्यास में राजा महेन्द्र कुमार चेयरमैन म्यूनिसिपैल्टिी अंग्रेज अधिकारियों के हाथ की कठपुतली है और उनके संकेत से सूरदास की भूमि का निर्णय करते हैं। म्यूनिसिपैल्टिी के इस संदर्भ के माध्यम प्रेमचन्द-साहित्य में म्यूनिसिपैल्टिी की तत्काल स्थिति और क्रिया-कलाप का बोध होता है। समाज-शास्त्र के अन्तर्गत नगर-प्रशासन के अध्ययन का यही महत्वपूर्ण विषय है।

१— 'नई बीबी', मानसरोवर भाग ८, पृ० ३८

प्रस्तुत अध्याय में प्रेमचन्द-साहित्य में चित्रित ग्राम तथा नगर जीवन पर समाजशास्त्रीय दृष्टि डालने का प्रयास किया गया है। गांव और शहर जीवन की स्थिति उसका प्रेमचन्द-साहित्य में दिग्दर्शन यही मुख्य आकार रहा है। इस अध्ययन के मध्य जहां ग्राम और शहर की विशेषताओं और उनमें समाजशास्त्रीय अध्ययन के पक्षों का विवेचन हो सका है वहीं गांव और नगर जीवन में सम्पर्क और विभेद का भी अध्ययन सम्भव हो सका है। इस अध्ययन में गांव और शहर की सामान्य बातों के संदर्भ में प्रेमचन्द के युग के गांवों और शहरों की दशा का भी बोध हो सका है। साहित्य पर युग की परिधि के संदर्भ में भी विचार किया जाना चाहिए। प्रेमचन्द-साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन की पूर्णता के लिए उनके साहित्य का अध्ययन उनके युग के संदर्भ में किया जाना अनिवार्य है। इस अध्ययन के लिए एक स्वतंत्र अध्याय की आवश्यकता है। अगले अध्याय में हम उनके साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन उनके साहित्य में युग के सामाजिक बोध के संदर्भ में करेंगे।

चतुर्थ अध्याय -

प्रेमचन्द-साहित्य : युग का सामाजिक बोध

प्रेम चन्द - साहित्य: युग का सामाजिक बोध

साहित्य युग का प्रतिबिम्ब होता है और वह युग को प्रतिबिम्बित करता है। विद्वान साहित्य-समालोचक डा० वार्ष्णेय के शब्दों में "प्रत्येक देश के साहित्य में उस देश का जीवन प्रतिबिम्बित होता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक साहित्यकार का व्यक्तित्व, भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालों को अपनी भुजाओं में समेटे रहता है। किसी देश के समूचे साहित्य में भी उसी प्रकार उस देश के जीवन की अखण्ड धारा प्रवाहित होती हुई मिलती है, उसका उत्कर्षापकर्ष प्रत्यक्षत: दृष्टिगोचर होता है।"[१] स्वत: प्रेमचन्द के शब्दों में "साहित्य अपने काल का प्रतिबिम्ब होता है। जो भाव और विचार लोगों के हृदय को स्पंदित करते हैं, वही साहित्य पर भी अपनी छाया डालते हैं।"[२] प्रेमचन्द-साहित्य अपने मूल रूप में दोनों कथनों का अनोखा उदाहरण है। प्रेमचन्द-साहित्य अपने युग का सच्चा इतिहास है, जिसमें युग का यथार्थ राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, धार्मिक तथा सामाजिक यथार्थ - मुखर होकर प्रस्फुटित हुआ है। भारतीय जन-जीवन उनके साहित्य का आधार शिला है। प्रेमचन्द-साहित्य की इसी विशेषता की प्रशंसा करते हुए डा० राम विलास शर्मा कहते हैं - "प्रेमचन्द उन लेखकों में हैं, जिनकी रचनाओं से बाहर के साहित्य-प्रेमी हिन्दुस्तान को पहचानते हैं। उन्होंने हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय सम्मान को बढ़ाया है, हमारे देश को अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में गौरव दिया है। प्रेमचन्द पर सारा हिन्दुस्तान गर्व करता है, दुनिया की शांति-प्रेमी जनता गर्व करती है, सोवियत-संघ के आलोचक मुक्त कंठ से उनका महत्व घोषित करते हैं, हम हिन्दी-भाषी प्रदेश के लोग उन पर खास तौर से गर्व करते हैं, क्योंकि वह सबसे पहले हमारे थे, जिन विशेषताओं को उन्होंने अपने कथा-साहित्य में झलकाया है, वे हमारी जनता की जातीय विशेषतायें थीं।"[३]

१- डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय : "पश्चिमी आलोचना शास्त्र, १९६३ (लखनऊ) पृ० २०३।

२- प्रेमचन्द : कुछ विचार, १९६५ (इलाहाबाद) पृ० ८।

३- डा० रामविलास शर्मा : "प्रेमचन्द और उनका युग", १९६७ (दिल्ली) पृ० ७

प्रेमचन्द का साहित्य अपने युग का महानतम साहित्य है। उनका साहित्य ऐसा साहित्य है जिसमें जीवन के यथार्थ से प्रेरणा प्राप्त की गई है। उनका समग्र साहित्य जीवन की अनुभूतियों से प्रेरित है। प्रेमचन्द जी की यह धारणा - "हम जीवन में जो कुछ देखते हैं, या जो कुछ हम पर गुजरती है वही अनुभव और चोटें कल्पना में पहुंचकर साहित्य सृजन की प्रेरणा करती है।"[१] प्रेमचन्द-साहित्य में साकार हो उठी है। प्रेमचन्द ने जो कुछ भी अपने युगीन जीवन में देखा, और अनुभव किया था वही उनके साहित्य का प्राण बन गया। युग के राष्ट्रीय जीवन में जो कुछ घटित हुआ, समाज में जो विसंगतियां दिखाई दी वह उनके साहित्य में उभर उठा। इस संदर्भ में डा० शर्मा का मत है "प्रेमचन्द का साहित्य अपने जमाने के हिन्दुस्तान और उसके स्वाधीनता आंदोलन का प्रतिबिम्ब है। उसमें उस जमाने के सामाजिक जीवन और स्वाधीनता-आंदोलन की असंगतियां भी झलकती हैं।"[२] यही वह तथ्य और उनके साहित्य के प्रबल पक्ष हैं जिनके कारण प्रेमचन्द-साहित्य में सामाजिक-युग बोध के अध्ययन की आवश्यकता का अनुभव किया गया है। यहां पर यह स्पष्टीकरण आवश्यक है कि राष्ट्रीय जीवन भी सामाजिक जीवन का एक अंग है क्योंकि समाज से ही राष्ट्र निर्मित हुआ है।[3] अत: राष्ट्रीय जीवन में जो कुछ भी घटित होता है वह भी सामाजिक अध्ययन अर्थात् समाजशास्त्रीय अध्ययन की सीमा से परे नहीं है। प्रेमचन्द-साहित्य में युग के सामाजिक बोध के अध्ययन के पूर्व शोध के विषय को दृष्टि में रखने के कारण हमारे लिए यह आवश्यक हो जाता है कि

१- प्रेमचन्द : कुछ विचार, १९६५ (इलाहाबाद) पृ० ६।

२- डा० रामविलास शर्मा: 'प्रेमचन्द और उनका युग', १९६७, (दिल्ली) पृ० ७।

3- "On the argument which has been followed a nation is simultaneously, and coextensively, two things is one. It is a social substance, or society, constituted of and by a sum of voluntary associations, which have formed by voluntary and spontaneous combination - and which desire to act and to realize their purposes as far as possible by themselves. That is one of the nation. The other side is that it is a political, or, as it is perhaps better called, a legal substance; a single compulsory association including all, and competent, in all cases where it sees fit, to make and enforce rules for all."

अर्नेस्ट बारकर: 'प्रिंसिपल्स ऑफ सोशल ऐण्ड पोलिटिकल थ्योरी', १९५१ (आक्सफोर्ड), पृ० ४।

हम यह भी विचार कर लें कि युग के जिन पक्षों का अध्ययन हम करने जा रहे हैं वे समाज शास्त्र के अध्ययन के अन्तर्गत आते हैं या नहीं और यदि वे समाजशास्त्र के अध्ययन की सीमा में है तो समाजशास्त्र उनके भिन्न पक्षों पर विशेष बल देता है ।

अध्ययन का समाजशास्त्रीय आधार

साहित्य, समाज के अध्ययन और विभिन्न कालों के सामाजिक बोध का प्रमुख साधन रहा है । भारतीय इतिहास ग्रंथों के अभाव में भारतवर्ष का प्राचीन धार्मिक साहित्य ही इतिहास निर्माण और तत्कालीन सामाजिक अवस्थाओं के ज्ञान का मुख्य स्रोत रहा है । यही धार्मिक साहित्य प्राचीन भारतीय समाज के विभिन्न राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक - पक्षों के बोध का आधार रहा है । इस प्रकार साहित्य की महत्ता केवल साहित्यिक मूल्यों के रूप में ही नहीं, बल्कि सामाजिक व्याख्याता के रूप में भी है । प्रेमचन्द-साहित्य तो मूल रूप से सामाजिक साहित्य है अत: उसके अन्तर्गत तत्कालीन सामाजिक स्वरूप प्रतिबिम्बित होना अनिवार्य है जिसे हम दूसरे शब्दों में युग का सामाजिक बोध कह सकते हैं । प्रेमचन्द-साहित्य में सामाजिक युगबोध के अन्तर्गत जिन पक्षों के अध्ययन की संभावना है वे हैं तत्कालीन समाज के राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, धार्मिक तथा सामाजिक पक्ष । प्रश्न यह उठता है कि क्या समाजशास्त्र इन पक्षों के अध्ययन की स्वतंत्रता प्रदान करता है ? इस प्रश्न के सम्बन्ध में हमें यह कहना है कि समाजशास्त्र का विस्तार क्षेत्र इतना व्यापक है कि उसके अन्तर्गत मानव-जीवन अथवा मानव-समाज के किसी भी पक्ष का अध्ययन किया जा सकता है । विषय को उठाने के पूर्व संक्षेप में हमारे लिए ऊपर उल्लिखित समाज के विभिन्न पक्षों पर समाजशास्त्रीय अध्ययन की प्रक्रिया पर विचार लेना उपयुक्त होगा ।

मानव-समाज का राजनीतिक जीवन अत्यंत प्राचीन काल से अध्ययन का विषय रहा है । राजनीतिक दर्शनशास्त्र की आधार शिला अरस्तू और प्लेटो के समय से ही निर्मित हो चुकी थी । आधुनिक युग में मानव-समाज के अध्ययन की सामान्य विधियों में 'पोलिटिको-जुरिस्टिक अप्रोच' का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । ऐतिहासिक रूप से भी सामान्य दार्शनिक सिद्धान्तों में राजनीति शास्त्र का

मनुष्य-समाज के अध्ययन में महत्वपूर्ण स्थान था जो कि आधुनिक युग में अधिक वैज्ञानिक हो गया है।[१] समाज-शास्त्रियों ने भी इस पक्ष की महत्ता को स्वीकार करते हुए उसे समाजशास्त्र का महत्वपूर्ण अंग स्वीकार कर लिया है। मनुष्य के राजनीतिक जीवन के अध्ययन के लिए समाजशास्त्र के अन्तर्गत राजनीतिक - समाज-शास्त्र (पौलिटिकल सोशिऑलोजी) का उद्भव हुआ। मानव-जीवन में राजनीति की महत्ता को स्पष्ट करते हुए जगतप्रसिद्ध इतिहासकार और समाजशास्त्री डा० टाड ने कहा है कि धर्म, आर्थिक संगठन, शिक्षा तथा समाज के अन्य अस्थिर या प्रगतिशील कार्यतत्व राजनीतिक स्वरूपों पर निर्भर रहते हैं अथवा दूसरे शब्दों में शिक्षा, कानून, दर्शन, अर्थशास्त्र तथा नीतिशास्त्र, सामाजिक गठन के संदर्भ में शासक वर्ग की वर्तमान आवश्यकताओं और प्रवृत्तियों के आधार पर निर्मित स्वरूप हैं।[२] स्पष्ट है कि मानव-जीवन की प्रत्येक अवस्था और प्रत्येक पक्ष को प्रभावित करने वाली राजनीति और राजनीतिक जीवन की उपेक्षा समाज शास्त्र द्वारा संभव नहीं हो सकती।

१- Perhaps in none of the general approaches to the study of human society has the modern movement shown more radical development than in the politico-juristic. .... Historically, the approach of political science is rich in analogy, in general philosophical theories, and in utopias which posit the perfect state of government and society. In the recent development of contemporary social science and research the approach of political science and jurisprudence has again become increasingly comprehensive, but in a far different way, in that it draws heavily upon and contributes to the approaches of social psychology, anthropology, human geography, economic and socialogy and in that it becomes more scientific."

डा० हावर्ड डब्लू० ओडम एण्ड डा० कैथरीन जोचर: 'एन इन्ट्रोडक्शन टू सोशल रिसर्च, १९२९ (न्यूयार्क) पृ० १५६।

2. "It is frequently asserted that religion, classes, economic organization, education, and other dyanamic social agencies depend upon political forms. Or, in other words, that education, law, philosophy, economics, and ethics are only the formulation of current needs and tendencies of the ruling classes in terms of social structure."

डा० आर्थर जेम्स टाड। थ्योरीज ऑफ सोशल प्रोग्रेस, १९१८, (न्यूयार्क), पृ० ३३६

डा० हेज़ ने स्पष्ट कहा है कि समाजशास्त्र के सिद्धांत अन्य सामाजिक क्रियाओं के स्वरूपों की भांति राजनीति में भी लागू होते हैं ।[१] राजनीतिक समाजशास्त्र का विस्तार क्षेत्र राजनीतिक जीवन के सम्पूर्ण पक्षों तक फैला हुआ है । उनमें राजनीतिक परिस्थिति शास्त्र (पौलिटिकल स्योलाजी) राजनीतिक दल (पौलिटिकल पार्टीज), विभिन्न राजनीतिक सिद्धांत (आइडियलाजीज) आदि के साथ आंदोलनों का अध्ययन (स्टडी आव रिवोल्यूशन्स) तथा अन्तर्राष्ट्रीय एकता सम्बन्धी प्रयास (द क्वस्ट फार इन्ट्रीगेशन) आदि आ जाते हैं ।[२] आंदोलनों के सम्बन्ध में यहां पर यह स्पष्ट कर देना अनिवार्य है कि सैद्धांतिक समाजशास्त्र आंदोलनों के संदर्भ में मुख्य रूप से आंदोलनों के स्वरूप, प्रक्रिया तथा कार्यों के प्रतिमानों तक ही सीमित है ।[३] यह भी उल्लेखनीय है कि राजनीतिक समाजशास्त्र विभिन्न देशों की स्थितियों के आधार पर स्वरूप धारण करता है क्योंकि वह सामाजिक वास्तविकता का सहायक अंग अथवा उसकी प्रतिमूर्ति होता है ।[४] स्पष्ट है कि समाज शास्त्र राजनीतिक जीवन का अध्ययन युग और परिस्थितियों के अनुरूप ही करता है ।

१- "The principles of sociology are applicable to politics as to all other forms of social activity."

डा० ई०सी० हेज : `इन्ट्रोडक्सन टू द स्टडी ऑव सोशिऑलॉजी ` १६२५ (न्यूयार्क लन्दन) पृ० ६३७

२- फौलिक्सग्रास । `पौलिटिकल सोशिऑलॉजी`, दे० टाइसम : `कन्टेम्पोरेरी सोशिऑलॉजी ` १६५८, (न्यूयार्क), पृ० २०१-२१७ ।

३- "Theoretical sociological interest in revolutions was mainly centered on the study of revolutionary types, processes, and patterns of action."

फौलिक्सग्राम । `पौलिटिकल सोशिऑलॉजी `, दे० टाइसक । `कन्टेम्पोरेरी सोशिऑलॉजी `, १६५८, (न्यूयार्क), पृ० २०१-२१७

४- "The sociology of politics had a counterpart in a social reality."
`फौलिक्स ग्रास ` दे० टाइसेक । `कन्टेम्पोरेरी सोशिऑलॉजी`, १६५८ (न्यूयार्क), पृ० २०१ ।

राजनीतिक जीवन की भाँति मानव का आर्थिक जीवन भी अध्ययन का विषय रहा है। भारतवर्ष के प्राचीनतम ग्रंथ वेदों से उस समय के समाज के अर्थ-तंत्र का पता चलता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से चन्द्रगुप्त के समय में समाज की आर्थिक व्यवस्था का बोध होता है। सुकरात, अरस्तू तथा प्लेटो की रचनाओं में भी तत्कालीन समाज की अर्थ-व्यवस्था के संकेत मिलते हैं। मानव-जीवन की आर्थिक-व्यवस्था के अध्ययन के लिए अर्थशास्त्र ऐसे विषय को जन्म मिला। एडमस्मिथ, मार्शल, पीगू आदि विद्वानों ने अर्थशास्त्र को परिभाषित किया और मानव जीवन की आर्थिक क्रियाओं के अध्ययन, आर्थिक सुव्यवस्था तथा आर्थिक विभाजन के लिए अर्थशास्त्र के सिद्धांत प्रदान किये। जनसंख्या के विस्तार, साधनों की कमी, वैज्ञानिक प्रगति तथा ज्ञान की वृद्धि ने मानव-समाज के सामने यदि आर्थिक विषमता, आर्थिक कठिनाईं, अर्थसंकुलता आदि समस्याएं दीं तो वही आर्थिक विचारधारा के आधार पर मानव-समाज के मूल्यांकन का सिद्धांत भी प्रदान किया है। अर्थ का महत्व मानव-जीवन में उसके जंगली अवस्था में भी था और आज के युग में भी है। आज के युग में आर्थिक विचारधारा ने मानव-समाज के अध्ययन के लिए आर्थिक मूल्यांकन (एकोनामिक एप्रोच) का सिद्धांत प्रदान किया है। इसके अन्तर्गत राजनीतिक अर्थविद्या (पौलिटिको-एकोनामिक), सामाजिक कल्याण तथा सामाजिक समस्याओं के सम्बन्ध में आर्थिक मूल्यांकन, समाज का सामान्य आर्थिक विवेचन, आर्थिक मूल्यांकन की दार्शनिक पृष्ठभूमि, आर्थिक सिद्धांतों, अर्थ सम्बन्धी खोज की समस्याओं तथा चुनी हुई आर्थिक समस्याओं का अध्ययन किया जाता है।[१] मानव-समाज के अध्ययन का आर्थिक ~~अथवा~~ मूल्यांकन अन्य सामाजिक विज्ञानों के शुरुआत के साथ ही प्रारम्भ हो गया था।[२] समाजशास्त्र समाज के

१- डा० बौडम ऐण्ड डा० बीचर : 'ऐन इन्ट्रोडक्शन टू सोशल रिसर्च' १६२८ (न्यूयार्क) का दे० अध्याय 'टाइप्स ऑव अप्रोच, द इकोनामिक', दे० पृ० १७६-१६२

२- "The economic approach to the study of society illustrates unusually well the specialized beginnings of a social science, following certain logical and traditional influences of philosophy and the physical sciences, developing into broader application and social speculations and back again into specialized techniques and into more interrelationships with other social sciences."
डा० बौडम ऐण्ड बीचर : 'ऐन इन्ट्रोडक्शन टू सोशल रिसर्च', १६२८ (न्यूयार्क), पृ० १७६

अधिक सम्बन्धित है इसी कारण उसका काम आर्थिक-व्यवस्था और अर्थविभाग के कारण समाज में होने वाले प्रभाव का आकलन करना है। समाजशास्त्र के अन्तर्गत आर्थिक पक्ष के अध्ययन के लिए विभिन्न पक्ष मिल जायेंगे। समाजशास्त्र के सामान्य सिद्धान्तों के अलावा समाज के आर्थिक पक्ष का अध्ययन करने वाले समाजशास्त्र के अन्य भाग आर्थिक संगठन का समाज शास्त्र (द सोशियॉलाजी आव इकोनामिक आर्गनाइजेशन्) पेशों का समाजशास्त्र (सोशियॉलाजी आव प्रोफेसन्स), औद्योगिक समाजशास्त्र (इन्डस्ट्रियल सोशियॉलाजी) आदि के साथ ग्रामीण तथा शहरी समाजशास्त्र भी हैं। अर्थ-व्यवस्था और आर्थिक स्थिति का अध्ययन करते समय समाजशास्त्र इस पहलू के जिन पक्षों पर बल देता है वे हैं आर्थिक संगठन और अर्थ-व्यवस्था। शासन-तंत्र (ब्यूरोक्रेसी) अर्थव्यवस्था को कैसे प्रभावित करता है इसका भी ध्यान रखना अनिवार्य है।[१] इसके अलावा उद्योग, मजदूर तथा समाज के अन्य वर्ग जो अर्थ-व्यवस्था से प्रभावित है अथवा सम्बन्धित है, समाज शास्त्र के अध्ययन के विषय हैं। समाजशास्त्र सामाजिक हित से अधिक सम्बद्ध है इस कारण वह अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत अर्थ-विभाजन या आर्थिक बंटवारे के परिणाम के प्रति अधिक सक्रिय रहता है। डा० हेज़ के अनुसार 'धन के वितरण के कारणों का जो उसे प्रभावित करते हैं अर्थशास्त्र द्वारा अध्ययन किया जाता है। परन्तु धन के वितरण से सामाजिक प्रभावों का अध्ययन करना समाजशास्त्र का काम है।[२]

इसी प्रकार समाज के सांस्कृतिक, शैक्षणिक, धार्मिक तथा सामाजिक पक्षों और उनकी परिस्थितियों तथा प्रभावों का अध्ययन भी समाजशास्त्र के अध्ययन

१- एस०अर्नैग्रिग्स्बी ऐण्ड लिओनार्ड एल० लिन्डर्न। 'द सोशियॉलॉजी ऑव इकोनामिक आर्गनाइजेशन', दे० राउसैक। कन्टेम्पोरैरी सोशियॉलॉजी', १९५८ (न्यूयार्क) पृ० ५०७-५१०

२- "The cause that effect the distribution of wealth are studied by economics. But the social effects that flow from the distribution of wealth it is a task of sociology to trace."

डा० ईसी० हेज। 'इन्ट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑव सोशियॉलोजी', १९२५ (न्यूयार्क-लन्दन), पृ० ६५।

के विषय हैं। सांस्कृतिक पहलू के अध्ययन के लिए सांस्कृतिक समाजशास्त्र (सोशियॉलाजी ऑव कल्चर) का जन्म हुआ है। टी० के० एन० उनायन, इन्द्रदेव और योगेन्द्रसिंह ऐसे भारतीय समाजशास्त्रियों के अनुसार "सांस्कृतिक समाज शास्त्र संस्कृति के निर्धारक तत्वों के मध्य आपसी सम्बन्ध, सांस्कृतिक प्रकरण और ढांचा, इसकी भावात्मक एकता की प्रक्रिया तथा सामाजिक ढाँचे के भेदों के सम्बन्ध में परिवर्तन, सामाजिक स्वरूप और इसके अनुकूलन और परिवर्तन के धरातल पर प्रकाश डालेगा।[१] सांस्कृतिक समाजशास्त्र का मुख्य आधार यह तथ्य है कि केवल सांस्कृतिक विभेद और सांस्कृतिक समस्यायें ही सांस्कृतिक विचारधारा और उसके स्वरूप का बोध नहीं करा सकतीं बल्कि उनको इसको समझने के लिए सामाजिक संदर्भों की आवश्यकता होती है। सांस्कृतिक समाजशास्त्र इन्हीं सामाजिक संदर्भों के आधार पर संस्कृति की व्याख्या करता है। शिक्षा जगत की परिस्थितियों तथा समस्याओं के अध्ययन के लिए शैक्षिक समाज शास्त्र (एजूकेशनल सोशियॉलाजी) का आविर्भाव हुआ। इसी प्रकार धार्मिक अवस्था के तथा धार्मिक समस्याओं के अध्ययन के लिए समाजशास्त्र के अन्तर्गत धार्मिक समाजशास्त्र (द सोशियॉलाजी ऑव रिलीजन) का प्रादुर्भाव हुआ।

शिक्षा शास्त्र के अन्तर्गत शिक्षा का अर्थ जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया है। शिक्षा के क्षेत्र में परिवार, विद्यालय तथा समाज आदि का महत्वपूर्ण स्थान है और ये शिक्षा के संस्थान माने जाते हैं। प्रारम्भ में समाजशास्त्र के अन्तर्गत शिक्षा का तात्पर्य शिक्षा के इसी विस्तृत रूप अथवा जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया से था परन्तु अब उसका सम्बन्ध संस्था में दी गई शिक्षा से ही हो गया है।[२]

१- "Sociology of culture would thus focus upon the relationships between the compoments of culture, culture themes and structure, its process of integration and change in relation to types of social structure, social form, its level of adjustment and cange."

टी०के०एन० उनायन, इन्द्रदेव, योगेन्द्रसिंह (ए): टुवर्ड्स ए सोशियॉलॉजी ऑव कल्चर इन इण्डिया, १९६५, (न्यू देहली) पृ० ७।

२- "Historically, it has meant the conscious training of the young for the later adoption of adult roles. By modern convention, however, education has come to mean formal training by specialists within the formal organization of the school."

प्रो० अर्नोल्ड डब्लू० ग्रीन : "सोशियॉलॉजी ऐन एनॉलिसिस ऑव लाइफ" इन माडर्न सोसाइटी, १९६०, (न्यूयार्क लन्दन) पृ० ५८३

फिलिप एम० स्मिथ भी स्वीकार करते हैं कि शैक्षिक समाजशास्त्र की आधुनिक परिभाषाओं ने विद्यालय को शिक्षा के मुख्य साधन के रूप में स्वीकार कर लिया है।[१] शैक्षिक समाजशास्त्र शिक्षा के क्षेत्र में शैक्षणिक मान्यताओं, पाठ्यक्रमों की उपयोगिता, शिक्षक प्रशिक्षण तथा शिक्षा की प्रगति के लिए प्रयत्नशील रहता है।[२] यह शिक्षा संबंधी शोध के कार्यों से भी सम्बन्धित है। निश्चित है यह कार्य तभी संभव हो सकता है जब कि शैक्षिक समाजशास्त्री को युगीन शिक्षा के गुणों और अवगुणों का बोध हो तथा वह उन परिस्थितियों से परिचित हो जिनके कारण इन तथ्यों का समावेश हुआ है।

समाजशास्त्र के अन्तर्गत धर्म का तात्पर्य सामाजिक विश्वासों की पद्धति से है जिसका आधार ज्ञान नहीं बल्कि आस्था है। प्रो० आर्नाल्ड के शब्दों में "धर्म की सार्वभौमिकता का आधार विश्वासों के स्वरूप और अभ्यास नहीं है बल्कि सामाजिक कार्य है जिनको धर्म सार्वभौमिक रूप से पूरा करता है। समाजशास्त्रीय ढंग से परिभाषित धर्म विश्वासों की एक पद्धति तथा ज्ञान की अपेक्षा आस्था से प्रेरित अभ्यासों और कर्मों का चिन्ह है जो कि मनुष्य को अज्ञान और नियंत्रण से परे अदृश्य आलौकिक शक्ति से सम्बद्ध करता है।"[३] धार्मिक समाजशास्त्र का अविर्भाव बीसवीं

१- "Current definition of Educational Sociology seen in complete agreement in at least one respect: the school is the focal point around which most of the child's significant learning experiences revolve. Since the school is the chief formal educational agency in the lives of citizens of a democracy, the school is expected to assume a position of leadership in regard to training our youth for effective living in a changing social order."

फिलिप एम० स्मिथ : 'एजूकेशनल सोशियोलॉजी', दे० टाडसेक: कन्टेम्पोरेरी सोशियोलॉजी, १९५८, (न्यूयार्क) पृ० ३८३

२- फिलिप एम०स्मिथ : एजूकेशनल सोशियोलॉजी, दे० राडसेक : कन्टेम्पोरेरी सोशियोलॉजी, १९५८ (न्यूयार्क) पृ० ३८३-४०५।

"The universality of religion is not based upon the forms of belief and practice, but upon the social functions which religion universality fulfills. Sociologically defined, a religion is a system of beliefs and symbolic practices and objects, governed by faith rather than by knowledge, which relates man to an unseen supernatural realm beyond the known and beyond the controllable."

प्रो० आर्नाल्ड डब्लू० ग्रीन : सोशियोलॉजी, एनैन ऐन एनालिसिस ऑव लाइफ इन माडर्न सोसाइटी, १९६०, (न्यूयार्क-लन्दन), पृ० ४३२

शताब्दी में अमेरिका में हुआ है । इसके अन्तर्गत धर्म में परिवर्तित युग का प्रभाव ग्रामीण तथा शहरी धर्म, धार्मिक मतवाद, नीतिशास्त्र तथा धर्मशास्त्र के यह अन्तर्रेखा, समाज की धार्मिक मनोवृत्ति, धर्म के आधार पर सामाजिक वर्ग, आदि का अध्ययन होता है । जहां तक समाज के सामाजिक पक्ष तथा उसकी स्थिति का सम्बन्ध है, समाज शास्त्र समाज की व्याख्या करने वाला शास्त्र है, उसका आधार ही समाज है और उसका उद्देश्य और लक्ष्य दोनों सामाजिक विवेचन है । अत: इस सम्बन्ध में उदाहरण और व्याख्या की आवश्यक्ता नहीं है ।

निष्कर्षत: हमारा अभीप्सित यह कहता है कि समाज शास्त्र अपने विविध स्वरूपों में समाज की विभिन्न दशाओं, विभिन्न पहलुओं तथा विभिन्न पक्षों का अध्ययन करता है । राजनीतिक संगठन, आर्थिक संगठन, सांस्कृतिक संगठन तथा धार्मिक संगठन समाज शास्त्र के अन्तर्गत महासमितियां (ग्रेट एसोसिएशन) के रूप में भी पाये जाते हैं और समाजशास्त्र उनके विविध पक्षों का अध्ययन करता है । भारतीय समाजशास्त्री भी इन राजनीति, अर्थ, संस्कृति तथा धर्म को समाज के महानतम संगठन अथवा महासमितियां मानते हैं तथा समाजशास्त्र के अन्तर्गत इनके विविध पक्षों के अध्ययन पर बल देते हैं ।[2] इस प्रकार से स्पष्ट है कि प्रेमचन्द-साहित्य में इन पक्षों के अध्ययन के सम्बन्ध में समाजशास्त्रीय अध्ययन की, स्वतंत्रता का जो प्रश्न उठाया गया था उसका समाधान उपर्युक्त विवेचन से आप-से-आप हो गया है । अब यह कहने की आवश्यकता नहीं रही कि समाजशास्त्र प्रेमचन्द - साहित्य में उपर्युक्त विवेचित विविध पक्षों के अध्ययन की स्वतंत्रता प्रदान करता है ।

राजनैतिक जीवन

साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफिल सजाना और मनोरंजन का सामान जुटाना नहीं है ..... वह देश भक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सचाई भी

१- लेस्टर एल० हन्ट: 'द सोशियॉलॉजी ऑव रिलीजन', दे० राउसेक : कन्टेम्पोररी सोशियॉलॉजी, १९५२, (न्यूयार्क), पृ० ५३६-५५६

२- कमल सत्यव्रत विद्यालंकार : 'समाजशास्त्र के मूल तत्व', नवीन संस्करण, (देहरादून), दे० अध्याय २१, २२,२३,२४ तथा २५ पृ० ४७७ से ५३२

नहीं, बल्कि उसके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सचाई है। --- यदि साहित्य ने अमीरों के याचक बनने को जीवन का सहारा बना लिया हो, और उन आंदोलनों हलचलों और क्रांतियों से बेखबर हो जो समाज में हो रही है, - अपनी ही दुनिया बना कर उसमें रोता और हंसता हो, तो इस दुनिया में उसके लिए जगह न होने में कोई अन्याय नहीं है।[1] स्पष्ट है प्रेमचन्द युग की राजनैतिक गतिविधियों से साहित्य को मुखापेक्षी बनने के न तो पक्ष में थे और न ही ऐसे साहित्य को वह संसार में स्थान पाने योग्य ही मानते थे। यह बात उनके कथन से ही नहीं उनके साहित्य के संदर्भ में भी सत्य सिद्ध होती है।

राजनैतिक परिवेश और प्रेमचन्द

प्रेमचन्द का साहित्यिक जीवन १९०१ से प्रारम्भ होता है। १९०४ ई० तक कांग्रेस सुधारवादी प्रस्ताव पास करती रही। २० जुलाई १९०५ के बंग-भंग की घोषणा से सारे देश में तूफान मच गया। इस समय दो दल प्रखर रूप से सामने आए। उनमें से एक उग्र राष्ट्रवादी कांग्रेस तथा दूसरा आतंकवादी दल था। १९०५ की कांग्रेस विषय समिति की बैठक में युवक दल बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय तथा विपिन चन्द्र पाल के पक्ष की विजय हुई। बहिष्कार, स्वदेशी तथा राष्ट्रीय शिक्षा का आंदोलन प्रखर किया गया। राष्ट्रीय नेता तिलक, अरविन्द, बरीन्द्र घोष तथा लाला लाजपतराय आदि राष्ट्रीय नेताओं द्वारा बहिष्कार आंदोलन संगठित किया गया।[2] इस आन्दोलन में ब्रिटिश व्यापार को पर्याप्त मात्रा में धक्का लगा। इस समय तक प्रेमचन्द को साहित्य में आए चार पांच साल हो चुके थे। इसी बीच उन्होंने जून १९०५ के 'जमाना' में 'देशी चीजों का प्रचार कैसे बढ़ सकता है' तथा १६ नवम्बर के 'आवाजे़ खल्क' में 'स्वदेशी आंदोलन' लेख लिखकर अपनी राजनीतिक जागरूकता तथा स्वदेश-प्रेम का परिचय दिया। पहले लेख में उन्होंने लिखा था -

---

१- प्रेमचन्द : 'कुछ विचार', पृ० २०

२- ए०आर० देसाई : 'सोशल बैकग्राउन्ड ऑव इण्डियन नेशनलिज्म', १९५९ (बम्बई) दे० पृ० ११०

"बम्बई कलकते जैसे शहरों में स्वदेशी आंदोलन बड़े जोरों के साथ किया जा रहा है। मगर हमको उससे कई गुना ज्यादा खुशी इस बात पर होती है कि हमारे सोये हुए सूबे में भी इस तरह की कमजोर आवाजें कभी-कभी सुनाई दे जाती हैं।"[1] दूसरे लेख में उन्होंने लिखा था "हिन्दुस्तान के लगभग सभी प्रतिष्ठित पत्रों और पत्रिकाओं ने इस देश भक्तिपूर्ण आंदोलन का समर्थन किया है और जो पहले थोड़ा झिझक रहे थे उनका भी अब विश्वास पक्का होता जाता है।"[2]

इसी बीच प्रेमचन्द ने 'वरदान' (प्रतापचन्द १९०६-७) उपन्यास की रचना राष्ट्रीय धरातल पर की। 'वरदान' के नायक प्रतापचन्द के जन्म के साथ ही प्रेमचन्द ने देशोपकार को जोड़ने का प्रयत्न किया है। माता सुवामा विंध्याचल वासिनी देवी से २० वर्ष के तप का वरदान मांगती है कि मुझे ऐसा पुत्र प्राप्त हो "जो अपने देश का उपकार करे"[3] प्रतापचन्द आगे चलकर बाला जी के रूप में जनसेवक के रूप में चित्रित किए गए हैं। इसी बीच प्रेमचन्द ने सोज़ेवतन संग्रह की कहानियाँ लिखीं। इस संग्रह को क्रान्ति से ओत-प्रोत माना गया। प्रेमचन्द के शब्दों में "मैंने १९०७ में गल्प लिखना शुरू किया। सबसे पहले १९०८ में मेरा 'सोज़े वतन' जो पांच कहानियों का संग्रह है - जमाना प्रेस से निकला था, पर उसे हमीरपुर के कलक्टर ने मुझसे लेकर जलवा डाला। उसके ख्याल में यह विद्रोहात्मक था।"[4] ८ जून १९०८ को 'न्यूज पेपर ऐक्ट' पास हो चुका था जिसके आधार पर ऐसी समस्त विषय सामग्री के प्रकाशन पर रोक लगा दी गई थी जिसमें उत्तेजना की गुंजाइश हो। इसी आधार पर 'वन्दे मातरम्' 'संध्या', 'युगान्तर', तथा 'नवशक्ति' आदि पत्रों का प्रकाशन बन्द हो गया था।

१- 'जमाना' जून १९०५ दे० वि० पु० भाग १ पृ० २०

२- 'आवाजे खल्क' १६ नवम्बर १९०५ दे० वि०पु० भाग २ पृ० २१।

३- 'वरदान' पृ० ६

४- ३ जून १९३३ के पत्र बनारसी दास को दे० चिट्ठी पत्री भाग २ पृ० ७९

इस समय एक विचित्र राजनीतिक स्थिति उत्पन्न हो रही थी वह थी हिन्दू-मुस्लिम विभाजन की व्यवस्था । सर सैयद अहमद खां ने पहले ही इस फूट की जड़ बो दी थी । नेहरू के अनुसार सैयद साहब का विश्वास था कि राज्याधिकारियों के मेल से ही मुसलमानों का भला संभव है ।[1] जब कि लाला लाजपतराय के अनुसार सर सैयद द्वारा स्थापित मुस्लिम कालेज अपने चरित्र रूप में हिन्दू विरोधी तथा सरकार समर्थक था ।[2] इधर अंग्रेजी ने मुसलमानों की पक्षधरता प्रारम्भ कर दी थी । लार्ड मिण्टो ने १९०६ में मुस्लिम नेता मौलम मोहम्मद अली से स्पष्ट कह दिया था कि जिस प्रशासन से मैं सम्बद्ध हूं उसमें मुस्लिम समुदाय के राजनैतिक अधिकारों और स्वार्थों की रक्षा की जायगी ।[3] १९०७ की लार्ड मिण्टो द्वारा भेजी गई भारतसचिव मार्ले के पास सुधार सम्बन्धी संस्तुति १९०९ ई० में कानून के रूप में परिवर्तित हो गई । इसे मार्ले-मिण्टो सुधार के नाम से भी जाना जाता है । इसके अनुसार भारतीयों को प्रत्यक्ष मताधिकार तो दिया गया परन्तु मुसलमानों से भिन्न कर दिया गया । इससे राजनीतिक क्षेत्र में हिन्दू-मुस्लिम फूट की संभावना बढ़ गई दोनों सम्प्रदाय राजनीतिक दृष्टि से अलग अलग हो गए । प्रेमचन्द अलगाव की इस संभावना से चिंतित थे । उन्होंने खान बहादुर शम्सुल उलमा मौलाना मौलवी जमाउल्ला साहब पहलवी की पुस्तक `आइने कैसरी` के उस अंश की आलोचना करते हुए, जिसमें उन्होंने कांग्रेस की आलोचना की थी और उन्होंने कांग्रेस वालों को स्कूली बच्चा कहा था, लिखा था" ``निहायत ब अफसोस है कि मुसलमान कौम के रहनुमा अभी तक ज़माने और उसके रंग-ढंग पर ज़रा भी नज़र न डालकर आंखें मूंदे सर सैयद अहमद के बतलाए हुए रास्ते पर चले जा रहे हैं ।`[4] प्रेमचन्द के `सेवासदन ` में म्युनिसिपैल्टी

१- दे जवाहर लाल नेहरू ` द डिस्कवरी ऑव इण्डिया `१९६७ (बम्बई कलकत्ता आदि) पृ० ३६५ ।

२- दे०बी०सी० जोशी :`लाजपत राय राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज़, १९६६ (न्यू देहली) पृ० १५३

३- "I am entirely in accord with you.... I can only say that the Mohammedan community may rest assured that their political rights and interests as a community will be safeguarded by any administrative reorganisation with which I am concerned."

लार्ड मिण्टो दे० प्यारे लाल `महात्मा गांधी : लास्ट फ़ेज़`, प्रथम भाग, १९५८ (अहमदाबाद) पृ० ७५

४- `ज़माना` अप्रैल १९०५ दे० विविध प्रसंग, भाग१, पृ० ४०

के सदस्यों के मध्य १६०६ के बाद के हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक और साम्प्रदायिकता से युक्त राजनीतिक भावना के दर्शन होते हैं। म्युनिसिपैलिटी ब के १८ सदस्यों में से ८ मुसलमान और १० हिन्दू सदस्यों में "हिन्दुओं के विरोधी दल के नेता सेठ बलभद्रदास थे और मुसलमानों में हाजी हाशिम।"[१] वेश्या-सुधार सम्बन्धी प्रस्ताव में न तो मुसलमान सदस्य आपस में ह एक हैं और न हिन्दू परन्तु दोनों सम्प्रदायों के सदस्यों की सभाएं अलग-अलग होती हैं।

१६०७ ई० में सूरत में कांग्रेस के गरम और नरम दल में विभाजन हो गया। यद्यपि १६०५ ई० में ही विभाजन की संभावना स्पष्ट हो चुकी थी परन्तु व्यवहार रूप में १६०७ ई० में यह काम सूरत अधिवेशन में पूरा हो गया। १६०७ ई० से १६१७ ई० तक कांग्रेस में प्रस्ताव पास होते रहे। इसी बीच प्रथम विश्वयुद्ध के समय अंग्रेजों ने अपनी कुशलता से भारतीयों से सहायता प्राप्त कर ली और युद्ध के बाद उनके आश्वासन मात्र आश्वासन रह गए। १६१७ ई० में मांटेग्यू ने यह घोषणा की थी कि भारत में स्वायत-शासन-संस्थाओं (सेल्फ गवर्निंग इन्स्टीट्यूट) का धीरे-धीरे विकास किया जायगा। इस घोषणा में यह भी कहा गया था कि ऐसा अवसर दिया जायगा जिससे स्वराज्य की मात्रा आगे बढ़ेगी। कलकत्ता कांग्रेस ने इस घोषणा का स्वागत किया।[२] परन्तु इसी बीच १६१६ ई० में हुए समझौते के बाद नरम और गरम दल में पुन: फूट पड़ गयी। मोती लाल नेहरू ने इस

१- `सेवासदन` पृ० १२५

२- "The Indian National Congress, which met at Calcutta in December 1917, expressed its "grateful satisfaction with the pronouncement, made by his Majesty's Secretary of State on behalf of the Imperial Government, that its object was the establishment of Responsible Government of India, the full measure to be attained within a time to be fixed in the Status itself at an early date."

डी० ग्रैहम पोल : `इण्डिया इन ट्रान्जिशन`, १६३२, (लन्दन), पृ० २५।

घोषणा को मुलावा मात्र बताया । उन्होंने १२ अगस्त १९१८ को यूनाइटेड प्राविन्सेस लेजिस्लेटिव कौंसिल में घोषणा की कि ऐसा लगता है कि सरकार किसी तरह जनता को कुछ देने जा रही है परंतु तमाम शर्तों और रुकावटों से ऐसा लगता है कि यह एक देने और लेने का प्रश्न है ।[१] प्रेमचन्द ने माटेंग्यू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट को पसंद नहीं किया । उन्हें उदारवादियों द्वारा इसका समर्थन भी बुरा लगा । उन्होंने मुंशी दया नारायण निगम के नाम लिखे गए अपने २१ दिसम्बर १९१९ के पत्र में लिखा था "मैंने अभी तक करेण्ट पालिटिक्स पर कुछ नहीं लिखा । मुझे ज़माना की पालिसी पर नजर डालते हुए कुछ लिखना मुनासिब नहीं मालूम होता । मैं पीस डिक्लेरेशन का तो आमदन् (जानबूझकर) ज़िक्र न करूंगा लेकिन रिफ़ार्म स्कीम का ज़िक्र न करना गैरमुमकिन है । और स्कीम या ऐक्ट के मुताल्लिक़ मैं मिस्टर चिन्तामणि वगैरहुम से मुवाफ़िक़ (सहमत) नहीं हूं । मेरे ख्याल में मीतदिल (उदारपंथी) पार्टी इस वक्त ज़रूरत से ज़्यादा मग़रूर और नाज़ा (घमंड से फूली हुई) है हालांकि इसलाहों (सुधार) में अगर कोई खूबी है तो सिर्फ यह कि ताअलीमयाफ़्ता जमाअत को कुछ आसानियां ज़्यादा मिल जायेंगी और जिस तरह यह जमाअत वकील बनकर रिआया का खून पी रही है उसी तरह आइन्दा यह हाकिम होकर रिआया का गला काटेगी ।

१- "Let us examine generally what was the announcement of the 20th August. The announcement was that at first a substantial step shall be taken. He gave me the idea, and that would give any one the idea, that something, however little, was going to be actually parted with the Government in favour of the people. But when we come to examine what it is that has been given, we find that it is hedged in with so many limitations and reservations, so many checks and counterchecks, that it becomes a question of giving with one hand and taking away with the other".

अ मोती लाल नेहरू : "द वाइस ऑफ फ्रीडम", १९६१ (एशिया पब्लिशिंग हाउस), पृ० ८६

इसके सिवा और कोई रज्दीद (नया) अख्तियार नहीं दिया गया । जो अख्तियार दिये गये हैं उनमें भी इतनी शर्तें लगा दी गई हैं कि उनका देना न देना बराबर हो गया है ।[१] मोती लाल नेहरू और प्रेमचन्द के विचारों में स्पष्ट मेल दिखाई देता है ।

१६१६ ई० भारतीय इतिहास का अविस्मरणीय साल रहेगा । इस वर्ष १६ जुलाई सन् १६१८ ई० में प्रकाशित रौलट कमीशन की रिपोर्ट जिसके अनुसार किसी भी व्यक्ति को बिना अभियोग सुने एक जुडिशल बोर्ड के आदेश पर नजरबन्द किया जा सकता था, मार्च १६१६ में कानून बना दिया गया । गांधी ने घोषणा की कि वे इसके विरोध में सत्याग्रह करेंगे । लोगों को नया अस्त्र मिला । सारे भारतवर्ष में रौलट एक्ट का विरोध किया गया । इसकी घोषणा का प्रतिफल निश्चित रूप से आंदोलन था । सरकार ने उत्तरदायी भारतवासियों की चेतावनियों को अनसुनी कर दी जिसके कारण विस्तृत रूप से आंदोलन छिड़ गया ।[२] इसी बीच १३ अप्रैल को अमृतसर में जलियांवाला बाग का नृशंस हत्याकांड हुआ । ब्रिटिश अफसर जनरल डायर ने निहत्थे स्त्री-पुरुष और बच्चों की २० हजार की भीड़ में तब तक गोली चलवाई जब तक कि बारूद और गोलियां समाप्त न हो गई ।[३] इस नृशंस हत्याकांड पर एक विदेशी की प्रतिक्रिया थी कि 'भारतीयों को विश्वास दिलाना कठिन था कि ब्रिटिशशासन एक सभ्य शासन है । जब कि इसके अधिकारी प्रशासन

१- मुंशी दयानारायण निगम को लिखे गये दिसम्बर २१, १६१६ के पत्र से - दे० चिट्ठी पत्री भाग १, पृ० ६३

२- "The Introduction and enactment of such legislation, immediately after the Armistice, but before the nervous strain of the War years had relaxed, was almost certainly bound to lead of trouble. The Government of India took no heed of the grave warnings which responsible Indians had given, and after the enactment indignation spread and an agitation developed on a wide scale."

डी०ग्रैहम पोल : 'इण्डिया इन ट्रान्जिशन', १६३२ (लन्दन), पृ० ४० ।

३- पट्टाभि सीतारमैया: 'कांग्रेस का संक्षिप्त इतिहास', १६५८ (नई दिल्ली), पृ० ६५

को बनाये रखने के लिए ऐसे कार्यों को न्यायसंगत मान लें।"[१] इस घटना से देश का संपूर्ण वातावरण क्षुब्ध हो उठा। उधर मुसलमानों के खलीफा टर्की के सुल्तान को मित्र राष्ट्रों ने अपदस्थ कर दिया जिसके कारण मुसलमानों में असंतोष फैला। बम्बई में खिलाफत कमेटी ने गांधी जी की सलाह पर अंग्रेजों के साथ असहयोग का निर्णय किया। ३० जून १९२० को इलाहाबाद में हिन्दू-मुस्लिम सभा में असहयोग का सामूहिक फैसला किया गया। १ अगस्त को महात्मा गांधी और अलीबन्धु देश के दौरे पर निकले। इस प्रकार कांग्रेस का असहयोग और मुसलमानों का खिलाफत आंदोलन एक साथ चला। सुभाषचन्द्र बोस ने मुसलमानों की ब्रिटिश विरोधी भावना का उल्लेख करते हुए लिखा है कि यद्यपि माटेग्यू ने राष्ट्रीय शक्तियों को विभाजित करने का प्रयास किया परंतु वह असफल रहे।[२] गांधी जी के नेतृत्व में असहयोग आन्दोलन जोरों से प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार से रौलट एक्ट, जालियांवाला बाग की घटना, मुसलमानों के असंतोष और खिलाफत के फैसले तथा कांग्रेस के असहयोग के निर्णय से देश में उत्तेजक वातावरण बन गया। असहयोग आंदोलन १९२२

१- "It is surprising that this sent a shock of horror throughout India? It was difficult to make Indians believe that the British administration was a civilized one, when one of its officers could seek to justify such action as necessary to the maintenance of that administration."

डा० ग्रैहम पोल : "इण्डिया इन ट्रान्जिशन", १९३२ (लन्दन) पृ० ९४।

२- About the middle of 1920, anti-British feeling was stronger among the Moslems than among the rest of the Indian population. Mr. Montagu had been able to divide the nationalist forces but he had failed to win over any section of the Moslems, though he had left no stone unturned in his efforts to placate them and had ultimately to resign from the Cabinet for ventilating their grievances. 62.

सुभाष चन्द्र बोस: "द इण्डियन स्ट्रगल", १९४८ (कलकत्ता), पृ० ६२

तक चलता रहा । चौरी-चौरा की दुर्घटना से गांधी जी ने आंदोलन को वापस ले लिया जिसके कारण उग्रवादी नेताओं में असंतोष फैला ।

इसी बीच प्रेमचन्द का `प्रेमाश्रम ` उपन्यास लिखा गया । प्रेमचन्द जी `प्रेमाश्रम ` में गांधी जी के प्रभाव को स्वत: स्वीकार करते हैं । उन्होंने शिवरानी देवी से कहा था - "मैंने उन्हें अपना कर ही तो `प्रेमाश्रम ` लिखा जो सन् १९२२ में छपा ।"[१] `प्रेमाश्रम` में तत्कालीन राजनीतिकी जो छाया उभर कर आई है वह है सरकारी नौकरों, वकीलों, डाक्टरों तथा विद्यार्थियों का आंदोलन में सहयोग । गांधी जी ने देश के विभिन्न वर्गों वकीलों, सरकारी नौकरों, विद्यार्थियों, व्यवसायियों आदि से अपील की थी कि वे आन्दोलन में भाग लें ।[२] `प्रेमाश्रम` का प्रेमशंकर विद्यार्थी है जो पढ़ाई छोड़कर अमेरिका चला गया है । ईर्फान अली बैरिस्टर, प्रियनाथ चोपड़ा डाक्टर तथा ज्वालासिंह सरकारी अधिकारी हैं जो अपना कार्य छोड़कर राजनीति में सक्रिय होते हैं । १९१९ के विधान के द्वारा जिस विभाजक स्वरूप को राजनीति में प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया था वह `प्रेमाश्रम ` में प्रकट हो गया है । प्रेमचन्द लिखते हैं - "इधर स्थानीय राज्य-सभा के सदस्यों का चुनाव होने लगा । ज्ञानशंकर इस सामान्य पद के पुराने अभिलाषी थे । --- उन्होंने गोरखपुर के किसानों की ओर से खड़ा होने का निश्चय किया । --- डाक्टर ईर्फान अली बनारस महाविद्यालय की तरफ से खड़े हुए । बाबू प्रियनाथ ने बनारस म्युनिसिपैलिटी का दामन पकड़ा । ज्वालासिंह इटावे के रईस थे, उन्होंने इटावे के कृषकों का आश्रय लिया । सैयद हुसैन को भी जोश आ गया । वह मुस्लिम स्वत्व की रक्षा के लिए उठ खड़े हुए । प्रेमशंकर इस क्षेत्र में न आना चाहते थे, पर भवानीसिंह, बलराज और कादिर खां ने बनारस के कृषकों पर उनका मंत्र चलाना शुरू किया ।"[३] १९१९ के विधान ने जिसे विभिन्न वर्गों को अलग-अलग मताधिकार दिया था उसकी स्पष्ट छाया इस विवरण में है ।

१- हंसराज रहबर : `प्रेमचन्द: जीवन और कृतित्व` १९५२ (दिल्ली), पृ० १६५

२- ए०आर० देसाई : `सोशल बैकग्राउन्ड ऑव इण्डियन नेशनालिज्म ` १९५९ (बम्बई) पृ० ३२०-२१

३- `प्रेमाश्रम ` पृ० ४०६

१६२२ में असहयोग आंदोलन की वापसी से पुन: हिन्दू-मुस्लिम तनाव की स्थिति उत्पन्न हो गई। नेहरू जी ने इसे स्वीकार किया है कि यह आंदोलन वापस न होता तो साम्प्रदायिकता का हिंसक स्वरूप सामने न आता।[1] इस समय १६२२ से लेकर १६२७ तक सारे भारत में साम्प्रदायिक दंगों का बोलबाला रहा। इलाहाबाद, नागपुर, दिल्ली, लखनऊ, आदि नगरों में १६२३ में दंगों का भीषण स्वरूप दिखाई दिया इसके बाद १६२५-२६ और २७ में बिहार, बंगाल और पंजाब में भी भीषण दंगे हुए। प्रेमचन्द ने अपने `कायाकल्प` उपन्यास में हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक भावना के चित्रण के साथ उसका समाधान खोजने का प्रयास किया है। राजनैतिक स्तर पर वे `रंगभूमि` में इसका समाधान खोजते हैं। विनय के साथ एक दूसरे युवक ने भी प्राणों की बाजी लगाई है। इस संबंध में रानी जान्हवी भीड़ को संबोधित करके कहती हैं - "यह युवक, जिसने विनय पर अपने प्राण समर्पित कर दिये विनय से बढ़कर है। क्या कहा ? मुसलमान है। कर्तव्य के क्षेत्र में हिन्दू और मुसलमान का भेद नहीं, दोनों एक ही नाव में बैठे हुए हैं, डूबेंगे, तो दोनों डूबेंगे, बचेंगे, तो दोनों बचेंगे। मैं इस वीर भावना का यही मजार बनाऊंगी।"[2]

७ वर्षों की शांति के बाद १६३० में पुन: असहयोग आंदोलन प्रारम्भ होता है। इस समय के लिखे गए `कर्मभूमि` उपन्यास में इस आंदोलन का पूरा स्वरूप उभर कर सामने आया है। इसी बीच उनका `समरयात्रा` नाम की कहानी संग्रह रचा गया जिसमें इस आंदोलन की स्पष्ट छाप है। `कायाकल्प` और `रंगभूमि` उपन्यासों में इसी आंदोलन की तैयारी और राष्ट्रीय जागृति का प्रयास है।

राजनैतिक परिवेश के अन्तर्गत हमें तत्कालीन राजनैतिक विचार धाराओं पर भी विचार कर लेना चाहिए। १६०६ के अधिवेशन के अनुसार कुछ क्षेत्रों में जनता को चुनाव का अधिकार मिल गया था। १६१६ में चुने हुए सदस्यों की संख्या में वृद्धि हो गई थी। सदस्यों के मनोनयन की भी व्यवस्था थी। सरकारी सभाओं में जाने

१- जवाहर लाल नेहरू : "मेन ऑटोबायोग्रैफी" १६६२ (बम्बई, न्यू देहली आदि), पृष्ठ २०६

२- `रंगभूमि` पृ० ५०२

के जमींदार, राजे महाराजे ताल्लुकेदार तथा धनीमानी रईस अपने स्वार्थोंकी पूर्ति के लिये अथवा ख़िताब पदवी और सरकार की वाहवाही पाने के लिए प्रयत्नशील रहते थे जो अपने को सुधारवादी (माडरेट) कहते थे और जबानी सुधारों में विश्वास करते थे। प्रेमचन्द-साहित्य में ऐसे लोगों में 'सेवासदन' के श्यामचरण, 'प्रेमाश्रम' के राय कमलानन्द और 'गोदान' के राय अमरपाल सिंह हैं। डा० श्यामाचरण नामजद सदस्य हैं। यहबहुत बड़े रईस हैं। म्युनिसिपैलिटी में समाज सुधार संबन्धी वेश्या समस्या पर जब तक सरकार उनके द्वारा पूछे गए कौंसिल के प्रश्न का उत्तर न दे दे विचार देने में असमर्थ हैं और कौंसिल में उनकी स्थिति यह है '- "उत्तर मिले या न मिले प्रश्न तो हो जायेंगे। इसके सिवा और हम कर ही क्या सकते हैं?"[1] दूसरे कौंसलर राय कमलानन्द हैं जो किसानों का प्रतिनिधित्व करके कौंसिल में दो बार चुन कर आ चुके हैं परन्तु 'रायसाहब कभी भी सरकार के विरुद्ध एक भी प्रस्ताव न लाये।[2] गोदान के राय अमरपाल सिंह तो चुनाव के समय राष्ट्रहित की घोषणा करते हैं - परन्तु मौका पाते ही राजा साहब और फिर होममेम्बर हो जाते हैं। सरकार की चापलूसी करने वाले ये राजे महाराजे और रईस जनता का क्या हित कर सकते थे।"[3] लाला लाजपतराय ने तो इनके सम्बन्ध में कहा है कि एक भारतीय नौकरशाही का जमींदारों और पूंजीपतियों तथा मध्यवर्ग के लोगों द्वारा निर्मित व्यवस्थापिका जनता की इच्छाओं की पूर्ति नहीं कर सकती।"[4] १२ जून १९३३ को प्रेमचन्द ने कांग्रेस वर्ग को चुनाव लड़ने के लिए सचेत करते हुए इस वर्ग के लिए कहा था - "सरकार के पिट्ठू, खुशामदी, अमनसभाई कुछ थोड़े से दिखाऊ नाम के राजा या नवाब कौंसिलों में आ जायेंगे, उन्हीं में से जो ज्यादा बहक होंगे, वह मिनिस्टर चुन लिए जायेंगे और

१- 'सेवासदन', पृ० १३२
२- 'प्रेमाश्रम', पृ० २७०
३- 'गोदान', पृ० ३१९
४- "An Indian bureaucracy or an Indian legislature composed of the landlord, the capitalist and the middle classes, can not altogether brush aside the wishes of the people as the present administration does."

बी०डी० जोशी: 'लाला लाजपतराय' १९६६ (नई दिल्ली) पृ० १३२

और गवर्नमेन्ट जिस तरह चाहेगी शासन करेगी"[1] । निश्चित है प्रेमचन्द इस विचारधारा के लोगों की स्वार्थपूर्ण नीतियों से परिचित थे ।

गरम और नरम दल के रूप में कांग्रेस का विभाजन १६०५-०७ के बीच हो गया था । १६२२ में गांधी जी द्वारा असहयोग आंदोलन वापस लिए जाने पर यह पुन: प्रखर हो उठा था । चितरंजनदास, सुभाषचन्द्र बोस तथा लाला लाजपतराय ऐसे उग्र विचारधारा के लोग इस आंदोलन वापसी से सहमत नहीं थे । मोतीलाल और जवाहरलाल भी आंदोलन वापसी से असंतुष्ट थे । लाला लाजपतराय ने तो गांधी जी के नेतृत्व को चुनौती दे दी थी । उन्होंने लाहौर जेल से फरवरी १६२२ में कांग्रेस कार्य-समिति के मेम्बरों के नाम लम्बे पत्र में गांधी जी की आलोचना की थी । पत्र के अंतिम भाग में महात्मा गांधी जी के गुणों की प्रशंसा करते हुए भी उन्होंने उनके नेतृत्व से आस्था समाप्त हो जाने की बात कही थी ।[2]

वैचारिक मतभेद के फलस्वरूप ही देशबन्धु चितरंजन दास और मोती लाल नेहरू के नेतृत्व में "स्वराज्य पार्टी" का गठन हुआ था । १२ फरवरी को बारदोली, में असहयोग आंदोलन वापस लेने का निर्णय कांग्रेस कार्यकारिणी द्वारा किया गया था तभी से देशबन्धु ने कौंसिल प्रवेश का स्वर मुखर किया । जुलाई १६२२ में अलीपुर (कलकत्ता) जेल से छूटने पर उन्होंने प्रवेश प्रचार भी प्रारम्भ कर दिया । ऐसा प्रतीत होता है प्रेमचन्द स्वराज्य पार्टी के कौंसिल प्रवेश से सहमत थे क्योंकि इसी वर्ष प्रकाशित होने वाले उनके उपन्यास "प्रेमाश्रम" के अंतिम पृष्ठों में राजसभा के चुनाव में सार्वजनिक राष्ट्रीय धरातल पर काम करने वाले पात्र ज्वाला सिंह, प्रेमशंकर, ईफान अली तथा डा० प्रियनाथ चोपड़ा भाग लेते हैं और विजयी होते हैं । इसी प्रकार प्रेमचन्द युग की राजनीतिक परिस्थितियों के प्रति जागरूक दिखाई देते हैं ।

१- १२ जून १६३३ ई० के दै० वि०प्र० भाग २ पृ० १७५ ।

२- "To Mahatmaji, I want to say one word. Please forgive me if I have misjudged you, but a sense of duty has compelled me to disgeorge my mind. It has done me good. My love and respect for you in unabated but my faith in your political leadership has received a rude shock. I hope I am mistaken but any way, accept me as I am impulsive, sinful, angry may be hasty but certainly not dishonest."
बी०सी०जोशी: "लाला लाजपतराय राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज" १६६६ (नई दिल्ली) पृ० ६६ ।

ब्रिटिश प्रशासन : विभाजन-शोषण तथा उत्पीड़न की नीति

अंग्रेज व्यापारी बनकर भारतवर्ष धन कमाने के लिए आए थे। उन्होंने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना इसी उद्देश्य से की थी। भारतीय राजनीति के बिखराव और भारतीय नरेशों तथा नवाबों की आए दिन की आपसी भिड़न्त ने अंग्रेजों को राजनीतिक हस्तक्षेप तथा राजनीतिक सत्ता के लिए प्रेरित किया और वे राजनीति के मैदान में कूद पड़े। उनकी सफलता ने उन्हें दो लाभ प्रदान किए प्रथम तो राजनीतिक सत्ता और प्रशासन और दूसरा सत्ता के सहारे शोषण से अधिकतम लाभ। अंग्रेज नरेशों और नवाबों को आपस में भिड़ाते रहे और धीरे-धीरे अपनी सत्ता का विस्तार करते रहे तथा संघर्ष का व्यय दुगने-तिगुने रूप में इन्हीं राजाओं और नवाबों से वसूलते रहे। आगे चलकर अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए वे राज्यों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने लगे। अंग्रेजों की इस नीति के विरुद्ध नरेशों और नवाबों में असंतोष फैला जिसके परिणामस्वरूप १८५७ ई० का विप्लव हुआ। १८५८ ई० के बाद भारतवर्ष का अंग्रेज प्रशासन सीधे ब्रिटिश पार्लियामेन्ट के हाथ में चला गया। ब्रिटेन की सरकार समय-समय पर भारतीय हित के घोषणा पत्र करती रही परन्तु व्यवहार रूप में उसका शोषक और उत्पीड़क रूप अधिक भयंकर और आतंकवादी बनता गया।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों तक देशी राजाओं और नवाबों का या तो अन्त हो चुका था वे अंग्रेजी प्रशासन के समक्ष घुटने टेक चुके थे और अंग्रेजों के दरबार में मस्तक टेकने लगे थे। नरेशों और नवाबों के दरबार में अंग्रेजी की हित-साधना के लिए एजेन्ट की नियुक्ति कर दी गई थी। अंग्रेजों ने अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए विभाजन की नीति का सहारा लिया। जिन लोगों ने एकता के विरुद्ध आवाज बुलन्द की उन्हें अनेक तरह की सुविधायें प्रदान की गईं और जिन्होंने एकता का प्रयास किया उन्हें विशेष रूप से सरकार का कोप भाजन बनना पड़ा। यहां तक कि राजनैतिक मामलों में केवल उन मुसलमानों को प्रतिनिधित्व

दिया गया जो साम्प्रदायिक थे।[१] लाला लाजपतराय ने तो १६२४ में यहां तक कहा था कि भारतवर्ष में अंग्रेज प्रशासन हिन्दु-मुस्लिम समस्या के रूप में आया। अब केवल वह हिन्दू-मुस्लिम समस्या नहीं रही बल्कि यह हिन्दू-मुस्लिम-क्रिश्चियन-सिक्ख, बौद्ध एवं जैनों की समस्या बन रही है।[२] इस प्रकार से स्पष्ट है कि ब्रिटिश प्रशासन ने आपस में वर्गों में, व्यक्तियों में, धर्मों में फूट डाल कर शासन चलाने का कुचक्र रचा था। प्रेमचन्द अंग्रेजों की इस विभाजक नीति और उसकी सफलता से भली भांति परिचित थे। उन्होंने 'मर्यादा' में 'विभाजक रेखा' लिखकर स्पष्ट किया है कि देश में दो तरह के लोग हैं पहले सहयोगी और दूसरे असहयोगी। असहयोगी सरकार का विरोध कर रहे हैं और आजादी चाहते हैं तथा सहयोगी सरकार के मददगार हैं। सहयोगी अपने स्वार्थ के लिए पागल हैं। प्रेमचन्द इस तथ्य को संक्षेप में स्पष्ट करते हुए कहते हैं - "यदि सहयोगी दल भी कांग्रेस में रहता और कांग्रेस पर अपना प्रभाव डालने का प्रयत्न करता रहता तो हमको उससे कोई शिकायत नहीं थी। लेकिन उसने नौकरशाही पर अवलम्बित रहना ज्यादा सुलभ समझा और कांग्रेस का शत्रु हो गया। यहीं उसकी विश्रृंखलता है जिसने दो परस्पर विरोधी दलों को आमने सामने खड़ा कर दिया है। नौकरशाही को तीतर लड़ाने का आनन्द उठाने

१- The British Power missed no opportunity to encourage the fissiparous trend and to turn it into a vested interest. It conferred titles, positions, jobs with big emoluments and other concessions and perquisites, which it was within its power to give to those who advocated and encouraged disunity while all those who worked for union between the various religious groups were not only ignored but were made targets of special governmental displeasure. In the matter of consultation and representation in political discussions only the communalist Muslim section was given official recognition while numerous other influential Muslim organisations including the nationalist Muslims were not recognised.. ..78.
   प्यारेलाल 'महात्मा गांधी : लास्ट फ़ेज', पू० भाग, १६५८, (अहमदाबाद) पृ० ७८

२- वी०सी०जोशी: 'लाजपतराय राइटिंग्स एण्ड स्पीचेस, १६६६(न्यूदेल्ही) पृ० १५६

दिया । राष्ट्र के साथ रहकर हानि उठाना, कष्ट फेलना भी एक गौरव की बात है राष्ट्र से परांग मुख होकर आनन्द और भोग करना भी लज्जास्पद है । स्वार्थ की उपासना करने में यह महत्व नहीं है जो राष्ट्र के लिए मुसीबतें फेलने में है । यही विभाजक ब रेखा है, जो दोनों दलों को पृथक करती है ।"[1] यही नहीं ऐसा लोगों का मुखौटा खोलते हुए एक दूसरे स्थान में उन्होंने कहा है - "कुछ लोग स्वाराज्य आंदोलन से इसलिए घबड़ा रहे हैं कि इससे उनके हितों की हत्या हो जायगी । और इस भय के कारण या तो दूर से संग्राम का तमाशा देख रहे हैं - या जिन्हें अपनी प्रभुता ज्यादा प्यारी है वे परोक्ष या अपरोक्ष रूप से सरकार का साथ देने पर आमादा हैं । इनमें अधिकांश हमारे जमींदार, सरकारी नौकर, बड़े बड़े व्यापारी और रूपये वाले लोग शामिल हैं । --- उन्हें ब्रिटिश सरकार के बने रास्ते में अपनी कुशल नजर आती है ।"[2] प्रेमचन्द के उपन्यासों और कहानियों में ऐसे अनेक पात्र हैं जो अंग्रेजों के पक्षपाती हैं अथवा उपाधि और प्रतिष्ठा की लालच में उनके साथ हैं । यह कहना गलत न होगा कि ऐसे लोग अंग्रेजों की विभाजन-नीति के शिकार हैं ।

जैसा कि प्रारम्भ में कहा गया है कि अंग्रेजों का सबसे बड़ा उद्देश्य प्रशासन के साथ अधिकतम आर्थिक लाभ था । अंग्रेजों ने अपने इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए प्रत्येक संभव साधन का प्रयोग किया हर हथकण्डे का सहारा लिया । ब्रिटिश सेना का व्यय भार भारतीयों के ऊपर था जब कि उसका प्रयोग ब्रिटिश शासन के हितों के लिए होता था ।[3] जनता का धन सेना, पुलिस तथा सामान्य प्रशासन के लिए प्रयोग किया जाता

१- मर्यादा बैसाख १६७६ लेख "विभाजक रेखा" दे० वि० पु० भाग २ पृ० ४०-४१ ।

२- हंस अप्रैल १६३० ई० दे० वि० पु० भाग २ पृ० ४१-४२ ।

३- "The fact is that India is the chief training ground for the British Army. If the British Army were removed from India, the cost which has always been borne entirely by India, would fall on the British tax payer; or, alternatively, our Army would have to be reduced."

डी०ग्रेहम पोल : "इण्डिया इन ट्रान्जीशन", १६३२ (लन्दन), पृ० २३४ ।

था । जनता की आर्थिक आवश्यकताओं पर विचार नहीं किया जाता था और ब्रिटिश स्वार्थ की पूर्ति का वह साधन था ।[1] सच तो यह है कि अंग्रेजों ने भारतीयों को आर्थिक रूप से अपंगु बना देने का हर संभव प्रयास किया । भारतीय म उद्योग अंग्रेजों के हाथ में हस्तान्तरित हो गए थे । मुख्य सरकारी स्थानों पर ब्रिटिश नागरिकों ने अधिकार जमा रखा था । पृथ्वी के पुत्र किसानों को आए दिन नए करों का सामना करना पड़ता था । मजदूरों की स्थिति और भी दयनीय होती जा रही थी ।[2] ब्रिटिश हुकूमत का दारोमदार भारतवर्ष क में राजनैतिक और आर्थिक सत्ता स्थापित करता था ।[3] प्रेमचन्द अंग्रेजों की इस राजनैतिक, आर्थिक शोषण से भलीभांति परिचित थे । उन्होंने २४ अप्रैल १६३३ के जागरण में लिखा था - "यदि भारत को आर्थिक स्वराज्य नहीं मिल रहा है, तो केवल इसी कारण कि ब्रिटेनभी भी अपने भरसक, भारत के हित के सामने अपने हित का हवन नहीं कर सकता । इसलिए

१- "Their public finance dealt with military expenditure, police, civil administration, interest on debt. The economic needs of the citizens were not looked after, and were sacrificed to British interests."

जवाहर लाल नेहरू : "ऐन आटोबॉयोग्रैफी" १६६२ (बम्बई, न्यूदेल्ही आदि) पृ० ४३५ ।

२- "The industrial bourgeoirie found in the absolute control of India by Britain as abstacle to carry through its programme of unfettered industrial development. The educated classes found in the monopoly of key posts in the State machinery by the British an obstacle to their just ambition to secure jobs. The sons of the soils the peasantry, found in the new land and revenue systems introduced by Britain the basic curse of their progressive impoverishment. The proletariat found in the British rule a foreign undemocratic agency preventing it from developing class struggles for improving their conditions of life and labour and finally for ending the wage system itself under which they were exploited."

एआर० देसाई : "सोशल बैकग्राउन्ड ऑफ इण्डियन नेशनलिज्म" १६५६ (बम्बई) पृ० २८३

३- जवाहरलाल नेहरू : "ऐन आटोबॉयोग्रैफी" १६६२ (बम्बई, न्यूदेल्ही आदि) पृ० ४३५

भारत को राजनैतिक स्वराज्य नहीं दिया जा रहा है, कि संभव है कि आर्थिक शक्ति भी प्राप्त हो जाय और यह दुधारू गाय ब्रिटेन के हाथ से निकल जाय।"[1] भारत क्यों इतना गरीब है? इस प्रश्न पर विचार करते हुए प्रेमचन्द ने मई १९३२ के हंस में लिखा था - "पुलिस, फौज और प्रबन्ध में बड़ी-बड़ी रकमें खर्च की गई हैं। सहयोग, कृषि, आरोग्य आदि विभागों की कोई परवा नहीं की जाती। यों समझो कि उन्हें बेकार समझा जाता है।"[2]

जैसे जैसे भारतीय स्वतंत्रता या आंदोलन जोर पकड़ता गया सरकार का दमनचक्र दिन-प्रतिदिन तेज होता गया। पंडित जवाहर लाल नेहरू ने ब्रिटिश प्रशासन का मूल्यांकन करते हुए कहा है "भारतवर्ष एक आदर्श पुलिस राज्य था और पुलिस की मनोवृत्ति सरकार के प्रत्येक भाग में व्याप्त थी। सम्पूर्ण विरोध दबा दिया गया था। गुप्तचरों की फौज भूमि को घेरे रहती थी।"[3] सरकार की इस बर्बर नीति का बोध प्रेमचन्द के 'दमन' 'डंडा' तथा 'दमन की सीमा' आदि लेखों से होता है।[4] प्रेमचन्द ने अप्रैल १९३० के हंस में 'सरकार की दमन-नीति' पर टिप्पणी करते हुए लिखा था - "शान्ति स्थापित करने के दो साधन हैं। एक तो मानवी है दूसरा दानवी। एक मशीनगन है, दूसरा देश की वास्तविक दशा को समझना और उसके अनुकूल व्यवहार करना। सरकार ने अपने स्वभावानुसार मशीनगन से काम लेना ही उचित समझा। इसका परिणाम क्या होगा सरकार को उसकी चिन्ता नहीं है। पुलिस और सेना उसके पास है। देश में जितने स्वाधीनता के उपासक हैं, वह अब बड़ी आसानी से तोप

१- 'जागरण' २४ अप्रैल १९३३ दे० वि०प्र० भाग २, पृ० १९७

२- 'हंस' मई १९३३ दे० वि० प्र० भाग २ १०९६

३- "India was the ideal police state, and the police mentality prevaded all spheres of Government, outwardly all non-conformity was suppressed, and a xx vast army of spies and secret agents covered the land."
जवाहर लाल नेहरू : 'ऐन आटोबायोग्रैफी' १९४२ (बम्बई न्यूकेली आदि) पृ०३९९

४- ये लेख क्रमशः हंस २२ मई १९३०, हंस, ३० जून १९३० तथा हंस अप्रैल १९३२ में प्रकाशित हुए थे।

का शिकार बनाए जा सकते हैं।"[१] 'रंगभूमि' के प्रभुसेवक के अनुसार 'सरकार यहाँ न्याय करने नहीं आयी है राज्य करने आयी है।"[२] क्लार्क के अनुसार "अंग्रेज-जाति भारत को अनन्तकाल तक अपने साम्राज्य का अंग बनाए रखना चाहती है। कंजरवेटिव हो या लिबरल, रेडिकल हो या लेबर, नेशनीलज्म हो या सोशलिस्ट इस विषय में सभी एक ही आदर्श का पालन करते हैं। ---- वास्तव में नीति कोई है ही नहीं, केवल उद्देश्य है और यह कि क्योंकि हमारा आधिपत्य उत्तरोत्तर सुदृढ़ हो।"[३] और सुदृढ़ता के लिए सरकार केपास पुलिस, फौज, न्यायालय और क्रूर-से-क्रूर अधिकारी हैं। पुलिस और फौज का प्रयोग प्रेमचन्द ने 'कायाकल्प' के मजदूर आंदोलन को दबाने में शासन की शक्ति, रंगभूमि के पांडेपुर गांव की जनता पर गोली वर्षा की घटना, 'कर्मभूमि' में मंदिर-प्रवेश, लगान आंदोलन और आवास-संघर्ष के दौरान पुलिस द्वारा शक्ति प्रयोग का दृश्य को चित्रण करके प्रेमचन्द ने पुलिस और फौज की बर्बरता का सबूत दिया है। पुलिस के हथकण्डों और जाली मुकदमे का चित्रण 'गबन' उपन्यास में चित्रित हुआ है। न्यायालय की स्थिति गुरुसेवक के शब्दों में "जुर्म साबित होना न होना दोनों बराबर है और मुझे मुलजिमों को सजा करनी पड़ेगी। अगर बरी कर दूं, तो सरकार अपील करके उन्हें फिर सजा दिला देगी।"[४] अंग्रेज प्रशासित रियासतों के अदालतों की स्थिति वरिपाल के शब्दों में - "यहां के न्यायालयों में न्याय की आशा रखना चिड़िया से पूछ निकालना है।"[५] इसी रियासत में "अपराधियों के भाग्य निर्णय के लिए अलग न्यायालय खोल दिया गया था। उसमें भेजे हुए प्रजा-द्रोहियों को छांट छांटकर नियुक्त किया गया था। यह अदालत किसी को छोड़ना न जानती थी।"[६] इसके बाद जेल जीवन की कहानी यातना से भरी हुई

१- 'हंस', अप्रैल १९३० "मशीनगन और शान्ति, दे०वि०पृ० भाग २ पृ० ५२
२- 'रंगभूमि' पृ० ३६५
३- 'रंगभूमि' पृ० ३८६
४- 'कायाकल्प' पृ० १५५
५- 'रंगभूमि' पृ० १६०
६- 'रंगभूमि' पृ० ३०६

"भोजन ऐसा मिलता था, जिसे शायद कुत्ते भी सूंघ कर छोड़ देते, वस्त्र ऐसे जिन्हें कोई भिखारी भी पैरों से ठुकरा देता, और परिश्रम इतना करना पड़ता था जितना बैल भी न कर सके।"[1] और जेल में कोठरियों की ऐसी स्थिति है -"एक भी खिड़की नहीं, एक भी जंगला नहीं, उस पर मच्छरों का निरन्तर गान कानों के परदे फाड़े डालता।"[2]

ऐसी स्थिति होने पर कोई भी व्यक्ति कैदियों से सहानुभूति नहीं दिखा सकता था। १९३३ में अन्डमन के कैदियों की दुर्दशा और अमानवीय व्यवहार पर रवीन्द्र नाथ टैगोर, सी०एफ० एन्डूज आदि प्रसिद्ध व्यक्तियों द्वारा अपील की गई थी जिसके परिणाम स्वरूप सरकार ने असंतोष व्यक्त किया था इसके बाद से बंगाल में इस तरह की सहानुभूति प्रदर्शन को अपराध करार दे दिया गया था।[3] घटना यह थी कि कुछ कैदियों ने अपने वहां के दुर्व्यवहार के विरुद्ध में भूख हड़ताल की थी और उनमें से दो की मृत्यु हो गई थी।[4] प्रेमचन्द ने भी इसी घटना के सम्बन्ध में ५ जून १९३३ के जागरण में 'अण्डमान के कैदी' नामक घटना तथा वहां के दुर्व्यवहार के लिए सरकार से जांच की मांग की थी।[5] इसके बाद ही १२ जून १९३३ के जागरण में तीन कैदियों की महावीर सिंह, मणिकृष्णदास और मोहितमोहन मित्रा की संदिग्ध मृत्यु की जांच की मांग करते हुए भारतीय कैदियों को वापस भारत बुलाने की जोरदार मांग की थी।[6] 'कर्मभूमि' उपन्यास में प्रेमचन्द ने काले खां से सम्बन्धित जेल की घटना का चित्रण किया है। काले खां नमाज पढ़ने जाता है इसके कारण वह

१- 'कायाकल्प' पृ० १३४

२- 'कायाकल्प' पृ० ११७

३- जवाहर लाल नेहरू :"ऐन आटोबॉयोग्रैफी" १९६२ (बम्बई, न्यू देहली आदि) पृ० ३८४-८५

४- वही, पृ० ३८४

५- ५ जून १९३३ 'जागरण' दे०वि०पु० भाग २ पृ० १७०

६- ५ जून १९३३ 'जागरण' दे०वि०पु० भाग २ पृ० १७०-७१।

वह जेलर का कोपभाजन बनता है और जेल की मार पड़ती है ।[१] उसकी मृत्यु हो जाती है ।[२] डा० राजेन्द्र प्रसाद ने भी बिहार की जेलों में चक्की और कोल्हू के काम की प्रथा का उल्लेख करते हुए अज्ञान से सम्बन्धित एक संघर्ष का उल्लेख किया है जिसमें कैदियों को कठिन सजाएं दी गई थीं ।[४ ३] स्पष्ट है प्रेमचन्द युग के प्रशासन से भलीभांति परिचित थे । और उनका महत्वपूर्ण घटनाओं के चित्रण के माध्यम से साहित्य को सामाजिक इतिहास के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है ।

सामान्य बर्बर अधिकारियों के रूप में प्रेमचन्द ने `कायाकल्प` के जिला क्लक्टर मिस्टर जिम जिला कप्तान मिस्टर सिम, `रंगभूमि` के मिस्टर क्लार्क तथा `कर्मभूमि` के सलीम के उत्तराधिकारी मिस्टर घोष को देखा था । जिम तथा सिम बेगार में पकड़े हुए मजदूरों को पेट की मांग के बदले गोली प्रदान करते हुए दिखाए गए हैं ।[४] क्लार्क प्रेमिका सोफिया के अपहरण के कारण जयपुर की रियासत में आतंक जमाए हुए है । `इलाके-के-इलाके उजड़वा देते, गांव-के-गांव तबाह करवा देते, यहां तक कि स्त्रियों पर भी अत्याचार होता था ।"[५] मिस्टर

१- `कर्मभूमि` पृ० ३५६

२- `कर्मभूमि` पृ० ३५६

३- "Working at the chakki (corn grinder) and indigenous kolhu (oil expeller) became a matter of routine. Failure to fulfil a certain quota was severely dealt with. There were many crude forms of severe punishment to which prisoners were subjected. On occasions, whipping was also resorted to. Once the large number of Muslims among the prisoners clashed with the jail authorities on the question of azan. When the prisoners did not heed the authorities' demand to stop azan, they were subjected to very severe punishment."

डा० राजेन्द्र प्रसाद : आटोबॉयोग्रैफी १९५७,(बम्बई) पृ० १७०

४- `कायाकल्प` पृ० १०४-१११

५- `रंगभूमि` पृ० ३०६

घोष किसानों पर गोली चलवाते हैं यहां तक कि उसके सिपाही गांव की अहीरिन के साथ बलात्कार करने की योजना बनाने में नहीं हिचकते ।[१] गोरों द्वारा मुन्नी के बलात्कार की घटना का उल्लेख वे `कर्मभूमि` में प्रारम्भ में ही कर चुके हैं । यह थी अंग्रेजी हुकूमत के अधिकारियों की हिंसक और अनैतिक दमनात्मक मनोवृत्ति । सबसे बड़ी बात तो यह है कि हिन्दुस्तानी अधिकारी ज्वालासिंह, गुरुसेवक, सेनापति सलीम और गजनवी भी पीछे नहीं है । ज्वालासिंह बलराज की जायज शिकायत सुनने के लिए तैयार नहीं बल्कि बलराज को डांट बताते हैं । `वह अपने अफसरों के इशारे के गुलाम हैं और उन्हीं की इच्छानुसार अपने कर्तव्य का निर्णय किया करते थे ।`[२] गुरुसेवक न्यायाधीश है । कानून की मंशा चाहे कुछ हो, कड़ी से कड़ी सजा देना उनका काम है । विधाताओं को उन पर जितना विश्वास है किसी और हाकिम पर नहीं ।`[३] `रंगभूमि` के इलाके के उत्तराधिकारी मिस्टर सेनापति वर्तमान जिलाधीश रईसों से मेल रखते हैं ।`[४] वे गांव के लोगों की सहायता न करके जॉनसेवक के सहायक हैं । `सलीम`, अभी जगह पर गये नहीं, अफसरी बू आ गई है । `[५] गजनवी समझदार हिन्दुस्तानी अफसर है । उसके अनुसार हमारा काम केवल अफसरों की आज्ञा मानना है । उन्होंने लगान वसूल करने की आज्ञा दी है, हमें लगान वसूल करना चाहिए । प्रजा को कष्ट है तो हो, हमें इससे प्रयोजन नहीं है । `[६] यह थी हिन्दुस्तानियों अधिकारियों की स्थिति जो अंग्रेजों की नीति के सच्चे संचालक और पोषक थे । नेहरू के अनुसार `बेचारे अफसर अपने बड़ों के चापलूस और छोटे के प्रति निर्दयी थे । उनकी दी गई ट्रेनिंग और बेकारी का भय ही उनसे अनर्थ करवाता था ।`[७]

१- `कर्मभूमि` पृ० ३६६
२- `प्रेमाश्रम` पृ० ४२
३- `कायाकल्प` पृ० १५३
४- `रंगभूमि` पृ० ३७५
५- `कर्मभूमि` पृ० २३७
६- `कर्मभूमि` पृ० ३६१
७- जवाहर लाल नेहरू : `मेरी आटोबायोग्रैफी` १९६२ (बम्बई देहली, आदि) पृ० ४३१ ।

लाला लाजपतराय के अनुसार उनकी स्थिति अत्यंत अस्वाभाविक और दुर्भाग्यपूर्ण थी ।[1]

भारतीय अधिकारी अंग्रेजों के गुलाम थे ही अत: जनता पर उनके द्वारा किया जाने वाला अत्याचार भी ब्रिटिश अफसरशाही से कम भयानक, अमानवीय तथा लज्जाजनक नहीं था । अपने प्रभुओं को प्रसन्न करने के लिए कुछ भी करने को तैयार थे । हुकूमत के ये गुलाम अधिकारी ब्रिटिश प्रशासन की प्रत्येक नीति के सफल संचालन और प्रयोगकर्ता थे । कुल मिलाकर ब्रिटिश सरकार की नीति आतंक जमा कर जनता को अधिक से अधिक उत्पीड़ित करके आपस में वर्गों जातियों और व्यक्तियों की भिड़न्त कराकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना अर्थात राजनैतिक और आर्थिक शोषण करना था । क्लार्क के शब्दों में 'अंग्रेजी शासन के उद्देश्य का वर्णन प्रेमचन्द ने किया है । क्लार्क कहता है -'हम यहां शासन करने के लिए आते हैं अपने मनोभावों और व्यक्तिगत विचारों का पालन करने के लिए नहीं । जब जहाज से उतरते ही हम अपने व्यक्तित्व को मिटा देते हैं, हमारा न्याय, हमारी सहृदयता, हमारी सदिच्छा, सबका एक ही अभीष्ट है । हमारा प्रथम और अंतिम उद्देश्य शासन करना है ।'[2] ऐसी स्थिति में अंग्रेजी प्रशासन से न्याय और मानवता की आशा कैसे की जा सकती थी ।

राष्ट्रीय जागृति और रचनात्मक कार्य

१८५७ ई० का स्वतंत्रता संग्राम मात्र नवाबों और राजों के असंतोष का प्रतिफल ही नहीं था बल्कि उसके साथ जनता का असंतोष भी सम्बद्ध था । धार्मिक सुधार आंदोलनों के कारण जनता में जागृति उत्पन्न होने लगी थी । ए०आर० देसाई के अनुसार राष्ट्रीयता धर्म के रूप में धर्म से आवृत प्रच्छन्न रूप में व्यक्त की गई थी ।[3]

१- बी०सी०जोशी :'लाला लाजपतराय राइटिंग्स ऐण्ड स्पीचेज' १९६६ (न्यू देहली) पृ० १३३ ।

२- 'रंगभूमि' पृ० ५६५

३- "Thus the Nationalist movement, aiming at political freedom from the British rule and at the establishment of an Indian society and state on a democratic basis and on the basis also of the modern capitalist economy, became a function of an all embracing religious movement. Nationalism was expressed in religious terms and clothed in religio-mystical forms."

ए०आर०देसाई : 'सोशल बैकग्राउन्ड ऑव इण्डियन नेशनालिज्म' १९५९ (बम्बई) पृ० ३०३

राजाराम मोहन राय के ब्रह्म समाज ने जनता में जागृति उत्पन्न की केशवचन्द सेन के आने से ब्रह्म समाज का दृष्टिकोण विस्तृत हो गया । प्रार्थना समाज, आर्य समाज, थियोसोफिकल सोसाइटी आदि का राष्ट्रीय जागरण में महत्वपूर्ण योग रहा है । राष्ट्रीय जागृति में राम मोहन राय, केशवचन्द सेन, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, रामकृष्ण परमहंस ऐसे महापुरुषों का योगदान अविस्मरणीय रहेगा । अनेक मुस्लिम धार्मिक नेताओं ने भी जनता को शिक्षित करने और उसे जागृत करने में सहायता प्रदान की थी । १६२० का खिलाफत आंदोलन मुसलमान धार्मिक नेताओं की देन है । इन हिन्दू मुस्लिम धार्मिक आंदोलनों में अपनी धार्मिक सीमाओं अथवा संकीर्णताओं के होने पर भी उनका राष्ट्रीय जागरण में महत्वपूर्ण योग रहा है ।[१]

राष्ट्रीय जागरण का दूसरा महत्वपूर्ण कारण शिक्षा का प्रचार था । मध्य वर्ग के शिक्षित भारतीयों ने अमेरिका के स्वतंत्रता युद्ध, इटली की राष्ट्रीय स्वतंत्रता तथा पेरिस के स्वतंत्रता संघर्ष को पढ़ा था । इसके साथ थामसपेनी, स्पेंसर, बर्क, मिल, वाल्टायर तथा अन्य महत्वपूर्ण लेखकों की राष्ट्रीय स्वतंत्रता सम्बन्धी रचनाओं का अध्ययन किया था । ऐसे ही शिक्षित व्यक्तियों ने राष्ट्र के राष्ट्रीय आंदोलन को सैद्धान्तिक तथा राजनैतिक नेतृत्व प्रदान किया ।[२] धार्मिक-शैक्षिक जागृति राष्ट्रीयता की आधारशिला बनी । प्रेमचन्द की प्रारम्भिक राष्ट्रीयता का आधार धार्मिक शैक्षिक जागृति है जो उनके उपन्यास `वरदान में प्रकट हुई है । जैसा कि हम देख चुके हैं `वरदान ` के प्रेमचन्द के राष्ट्रीय पात्र प्रतापचन्द का जन्म ही देश के उपकार के लिए हुआ है । प्रतिभा सम्पन्न शिक्षित अविवाहित प्रतापचन्द सन्यास ग्रहण करके बालाजी के रूप में देश की सेवा करते हैं । उनकी `भारत सभा ` जनता के मध्य रचनात्मक कार्य करती है । राष्ट्रीय जागरण के साथ जो महत्वपूर्ण

१- दे० जवाहरलाल नेहरू : `डिस्कवरी ऑव इण्डिया,` १६६७ (एशिया पब्लिशिंग हाउस) का अंश रिफार्म ऐण्ड अदर ग्रुपमेन्ट्स एमंग्स हिन्दूस ऐण्ड मुस्लिम्स` पृ० ३५४-३७०

२- ए०आर० देसाई : `सोशल बैकग्राउन्ड ऑव इण्डियन नेशनालिज्म ` १६५६ (बम्बई) पृ० २६१

कार्य संस्थाओं और व्यक्तियों द्वारा किया गया था वह था समाज में रचनात्मक कार्य। विभिन्न धार्मिक - सामाजिक संस्थाओं तथा सुधारक व्यक्तियों ने समाज के दलित पिछड़े हुए लोगों के पिछड़ेपन और हीन भावना को दूर करने का प्रयास किया था। प्रेमचन्द ने अपने साहित्य के प्रथम चरणों में ही ऐसे रचनात्मक कार्यों की महत्ता को समझने का प्रयास किया था। `वरदान ` की विरजन के कमलाचरण के नाम लिखे गए पत्रों में ग्रामीण जीवन में व्याप्त अंधविश्वास, कुप्रथाओं, और उनके पिछड़ेपन के प्रति चिंता और सुधार की आकांक्षा परिलक्षित होती है।[१]

उपन्यास `सेवासदन ` में वेश्या ऐसी समाज की समस्या को दूर करने के लिए प्रेमचन्द प्रयत्नशील है। राष्ट्रीय धरातल पर जागरण का प्रश्न `सेवासदन ` में राष्ट्र भाषा के स रूप में उठाया गया है। सेवासदन के अनिरुद्ध सिंह राष्ट्रीय धरातल पर एक सार्वदेशिक भाषा की खोज करना चाहते हैं। वे अंग्रेजी का विरोध करके राष्ट्रीय भावना का परिचय देते हैं। उनके शब्दों में -"अगर देश के भिन्न भिन्न प्रांतों में विद्वज्जन परस्पर अपनी ही भाषा में संभाषण करते तो अब तक कभी एक सार्वदेशिक भाषा बन गई होती। यहां तो लोगों को अंग्रेजी जैसी समुन्नत भाषा मिल गई, सब उसी के हाथों बिक गये। मेरी समझ में नहीं आता कि अंग्रेजी भाषा बोलने और लिखने में लोग क्यों अपना गौरव समझते हैं ? मैंने भी अंग्रेजी पढ़ी है। दो साल विलायत रह आया हूं और आप के कितने ही अंग्रेजी के धुरन्धर पंडितों से अच्छी अंग्रेजी बोल और लिख सकता हूं पर मुझे उससे ऐसी घृणा होती है जैसे अंग्रेज के उतारे कपड़े पहनने से।"[२] अपनी देश की भाषा राष्ट्रीय संस्था कांग्रेस के प्रस्ताव भी अंग्रेजी में पारित हुआ करते थे। भाषा के सम्बन्ध में प्रेमचन्द का यह राष्ट्र चिन्तन और सार्वदेशिक भाषा का सुझाव यदि राष्ट्र स्वीकार कर लेता तो राष्ट्र भाषा की समस्या कभी सुलझ गई होती।

१६०५-६ तथा ७ में चलने वाले स्वदेशी, बहिष्कार तथा स्वराज्य आंदोलन का प्रेमचन्द द्वारा समर्थन हम राजनीतिक परिवेश और प्रेमचन्द पर दृष्टि डालते समय उनके

१- `वरदान ` पृ० ६८-८२, दै० अध्याय १७ `कमलाचरण के नाम विरजन के पत्र `
२- `सेवासदन ` पृ० १८०

`देशी चीजों का प्रचार ` कैसे बढ़ सकता है तथा `स्वदेशी आंदोलन ` लेखों में देख चुके हैं। १९१८-१९ में भारतीय राजनीति में महात्मा गांधी व्यवहार के रूप में प्रकट हुए। इस समय तक मध्य वर्ग अंधकार में भ्रमित और असहाय अवस्था में पड़ा हुआ अपने कर्तव्य का निर्धारण नहीं कर पा रहा था। महात्मा गांधी ने इसी समय आकर पूरे देश को जगा दिया। गांधी के आगमन से मध्य वर्ग के किसान, मजदूर जागृत हो उठे। कांग्रेस संगठन गतिशील बना।[१] गांधी के विचारों के प्रबल विरोधी सुभाषचन्द्र बोस ने भी गांधी के कांग्रेस संगठन और देश जागरण में योगदान को स्वीकार किया है।[२] १९१८-२२ के मध्य प्रेमचन्द के उपन्यास `प्रेमाश्रम ` में भारतीय किसान कादिर के नेतृत्व में संगठित होकर ब्रिटिश शासन-तंत्र तथा उसके हिमायती सामन्त वर्गीय जमींदार के विरुद्ध संघर्ष करता है। यह युग राजनीतिक दृष्टि से व्यवहारिक रूप से राष्ट्रीय जागरण का युग था। `प्रेमाश्रम में केवल किसान ही नहीं बल्कि सरकारी अधिकारी ज्वालासिंह, डाक्टर प्रियनाथ चोपड़ा, बैरिस्टर इरफानअली तथा विद्यार्थी और जमींदार प्रेमशंकर भी राष्ट्रीय धरातल पर कार्यरत होते हुए दिखाई देते हैं।

इस समय तक राष्ट्र के चतुर्मुखी विकास की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा था। १९१९ में ३४ वें राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में पंडित मोती लाल नेहरू ने

१- जवाहर लाल नेहरू : "डिस्कवरी ऑव इण्डिया", १९६० (बम्बई कलकत्ता आदि), पृ० ३७७

२- "The Indian National Congress of today is largely his creation. The Congress Constitution is his handiwork. From a talking body he has converted the Congress into a living and fighting organisation. It has its ramification in every town and village in India, and the entire nation has been trained to listen to one voice. Nobility of character and capacity to suffer have been made the essential tests of leadership, and the Congress is today the largest and the most representative" political organisation in the country."

सुभाष चन्द्र बोस: "इण्डियन स्ट्रगल ` १९४८, (कलकत्ता), पृ० ४०८

ऐसे देश के निर्माण की माँग की थी यहाँ पर सब स्वतंत्र हों, सबको विकास के अवसर मिलें, जाति प्रथा समाप्त हो, वर्ग या समुदाय के नाम पर सुविधाएं न रहें, जहां पर शिक्षा सबके लिए खुली हो, जहाँ पर किसान और मजदूर दबाए न जायं, ।[१] इसी अमृतसर कांग्रेस में चतुर्मुखी विकास के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया गया था जिसमें किसान की मालगुजारी, मजदूरों की हीनावस्था आदि से सम्बन्धित प्रस्ताव भी थे ।[२]

यद्यपि १६२२ में गांधी जी द्वारा आन्दोलन वापस लिए जाने पर मोती लाल नेहरू और देशबन्धु चितरंजनदास ने अलग स्वराज्य पार्टी बना ली थी । परन्तु रचनात्मक कार्यों के लिए वह भी सहमत थे । दोनों व्यक्तियों ने संयुक्त वक्तव्य में रचनात्मक कार्यों का समर्थन किया था ।[3] इस अलगाव से गांधी जी अव्यवस्थित थे । इसी बीच देशबन्धु

१- "We must aim at an India where all are free and have the fullest opportunities of development; where women have ceased to be in bondage, and rigorous of the caste system have disappeared; where there are no privileged classes or communities; where education is free and open to all; where the capitalist and the landlord do not apperess the labourer and the ryot; where labour is respected and well paid, and poverty, the nightmare of the present generation, is a thing of the past."

मोती लाल नेहरू : "द वाइस ऑव फ्रीडम", १६६१ (एशिया पब्लिशिंग हाउस), पृ० ४०

२- पट्टाभि सीतारमैया : "कांग्रेस का संक्षिप्त इतिहास, १६५८ (नई दिल्ली), पृ० १०३

३- "In dead in the matter of constructive work, the Mutual support of both inside and outside activity must in our opinion give strength to the very sanction upon which we rely."

मोतीलाल नेहरू : "द वाइस ऑव फ्रीडम", १६६१ (एशिया पब्लिशिंग हाउस), पृ० ५२२ ।

और मोती लाल जी के मध्य उनका समझौता हुआ था जिसके अनुसार कताई, खादी के प्रचार, हिन्दू मुस्लिम एकता और अस्पृश्यता निवारण सम्बन्धी निर्देशों का पालन समस्त कांग्रेस के सदस्यों को मानना आवश्यक था ।[१] राष्ट्रीय शिक्षा पर बल दिया गया और अनेक राष्ट्रीय विद्यालय खोले गए । प्रेमचन्द ने भी १९२२ ई० के मध्य में लिखा था - "इस वक्त हमें अपनी बिखरी हुई शक्तियों को समेट कर उनका सदुपयोग करना है । खद्दर बुनना, और उसका प्रचार करना, कांग्रेस के मेम्बर बनाना और धन एकत्र करना, कपास की खेती को प्रोत्साहन देना, राष्ट्रीय शिक्षालयों को सुव्यवस्थित करना और उनके संचालन के लिए कोष जमा करना, समस्त भारत को स्वराज्य के घोर नाद से गुंजा देना, यह हमारे कार्यक्रम का संक्षिप्त स्वरूप है ।"[२] प्रेमचन्द भी इन रचनात्मक कार्यों में सहमत दिखाई देते हैं और उपाय खोजने में संलग्न है ।[३] 'कर्मभूमि' का उनका आदर्श पात्र अमरकान्त अपनी कोठरी में सूत कातता है और उसी से फीस की व्यवस्था करना चाहता है ।[४] म्युनिसिपल बोर्ड का मेम्बर अमर गर्मी की तपती धूप में खद्दर बेचता हुआ दिखाई देता है ।[५] अस्पृश्यता-निवारण के लिए

१- "Gandhiji was very much upset over the developments and to achieve unity entered into a compromise with Deshbandhu Das and Motilal Nehru. Under the compromise the Congress was to postpone the non-co-operation programme, except the boycott of foreign cloth, and each group in the Congress could carry out its own programme. The directives regarding spinning, propagation of Khadi, promotion of Hindu-Muslim unity and eradication of untouchability were to be obeyed by all Congressmen".

डा० राजेन्द्र प्रसाद', आटोबायोग्रेफी ' १९५७, (बम्बई) पृ० २२७

२- 'मर्यादा' वैशाख १९७६ वि०दे० विविध प्रसंग भाग २ पृ० ३६

३- दे० इसी प्रबंध का अध्याय ५ में 'साम्प्रदायिकता की समस्या '

४- 'कर्मभूमि ' पृ० १२

५- 'कर्मभूमि ' पृ० १२१-१२२

प्रेमचन्द `कर्मभूमि ` में मंदिर-प्रवेश का संघर्ष करते हैं।[१]

गांधी ने यह घोषणा की थी कि "मैं ऐसे भारत के लिए कार्य करूंगा जिसमें गरीब अनुभव करें कि यह उनका देश है, जिसके निर्माण में उनके लिए स्थान हो, जिस देश की जनता में उच्च और निम्न वर्ग का भाव न हो, जिसमें विभिन्न समुदायों के लोग सद्भावना से रहें, जहां पर अस्पृश्यता, मद्यसेवन के लिए स्थान न हो और स्त्रियों को पुरुषों के बराबर स्थान मिले। यही मेरे स्वप्नों का भारत है।"[२] प्रेमचन्द ने भी ऐसे ही भारत का निर्माण करना चाहा था। उनके पात्र गरीब किसानों और मजदूरों के लिए संघर्ष रत दिखाई देते हैं। `कायाकल्प ` का चक्रधर मजूरों में जागृति उत्पन्न करता है। `कायाकल्प ` में बेगार के विरुद्ध आंदोलन चक्रधर की प्रेरणा का प्रतिफल है। चक्रधर गांवों में जाकर किसानों के बीच-कार्य करता है। `रंगभूमि ` का विनय भी जयपुर की रियासत में जाकर गांव के लोगों के बीच कार्य करता है। वहां के लोगों को शिक्षा देता है तथा मद्यपान और मुर्दा-मांस भक्षण ऐसी कुप्रथाओं को दूर करता है। `प्रेमाश्रम ` में प्रेमशंकर किसानों की सहायता करता हुआ दिखाई देता है। `कर्मभूमि ` की महिलाएं सुखदा, मुन्नी, नैना, रेणुका पुरुषों की बराबरी में आकर राष्ट्रीय संघर्ष का नेतृत्व करती है।

१- दे० इसी प्रबंध का अध्याय ५ में `अस्पृश्यता और अछूतों की अन्य समस्याएं `

"I shall work for an India in which the poorest shall feel that it is their country, in whose making they have an effective voice, an India in which there shall be no high class and low class of people, an India in which all communities shall live in perfect harmony. ... There can be no room in such an India for the curse of untouchability or the curse of intoxicating drinks and drugs .... Women will enjoy the same rights as men. ... This is the India of my dreams."

महात्मा गांधी, दे० जवाहरलाल नेहरू : `दी डिस्कवरी ऑव इण्डिया` १९६० (बम्बई कलकत्ता आदि) पृ० ३८५।

प्रेमचन्द के अन्तस्तल में आजादी के लिए छटपटाहट थी । वे चाहते थे कि हमारे देश के लोग सहनशील और शक्तिवान बनें । वह देश की संस्थाओं से चाहते थे कि वे अधिक-से-अधिक कार्य करके राष्ट्रीय आंदोलन के लिए `भूमि तैयार करें ` । उन्होंने १६२२ के बाद स्वतंत्रता आंदोलन के मार्ग में रुकावटों पर विचार करते हुए लिखा था - `स्वराज्य की मंजिल आसान नहीं है । उसे तय करते करते शायद सफ़र की सारी तकलीफों और यातनाओं के आदी हो जायेंगे । --- हमारी सेवा समितियां धीरे धीरे अपने कर्तव्यों को समझती जा रही हैं । हमारे राष्ट्र सेवकों की संस्थाएं जान और माल की रक्षा की व्यवस्था कर रही हैं । यह जोश रोज़ ब रोज बढ़ रहा है । इसके बजाय कि हम आने वाले कर्तव्यों के बोध के कारण स्वराज्य से घबराने लगें, हमारा कर्तव्य है कि हम मर्दों की तरह परिस्थिति का सामना करें । `[१] प्रेमचन्द सम्पादक के रूप में ही इस विचारधारा तक सीमित नहीं रह गए साहित्यकार के रूप में उन्होंने `रंगभूमि ` में कुंवर भरतसिंह और डा० गुंगुली की `सेवासमिति ` का गठन किया है । सेवा-समिति का काम मेलों आदि में सुव्यवस्था और लोगों की सहायता करना है ।[२] परंतु उसका असली स्वरूप राष्ट्र संगठन और राष्ट्र-सेवा है । समिति के सदस्यों का गीत है -

`शान्ति-समर में कभी भूलकर धैर्य नहीं खोना होगा,
वज्र प्रहार भले सिर पर हो, नहीं किंतु रोना होगा ।

< < < <

होगी निश्चय जीत धर्म की यही भाव भरना होगा
मातृभूमि के लिए जगत में जीना और मरना होगा ।[३]

१- `जमाना ` दिसम्बर १६२२ दे० वि० पृ० भाग २ पृ० २५

२- `रंगभूमि ` पृ० ३१

३- `रंगभूमि` पृ० ३० ।

सेवा समिति के सेवक दल के सदस्य विनय और प्रभुसेवक राष्ट्रीय कार्यकर्ता हैं। इस संस्था की विस्तार क्षेत्र बनारस से लेकर राजस्थान और पंजाब तक है। राजस्थान में विनय और इन्द्रदत्त कार्य करते हैं जब कि पंजाब के लिए उपन्यास के अंत में इन्दु और रानी जान्हवी प्रस्थान करती हैं। निश्चित रूप से जमाना दिसम्बर १६२२ की भावना को व्यवहार रूप में प्रेमचन्द ने `रंगभूमि ` में पूरा किया है।

अंत में एक महत्वपूर्ण बात जो हमें कहनी है वह यह कि १६०५ के बाद भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन द्वारा की गई सहायता मध्य वर्ग की सामाजिक सहायता है। इसके पहले यह आंदोलन उच्च वर्ग के बुद्धिजीवियों और व्यापारियों का आंदोलन था। मध्य वर्ग और निम्न वर्ग की सक्रिय सहायता १६०५ के बाद इस आंदोलन को प्राप्त हुई।[१] इसके बाद ही यह आंदोलन प्रभावशाली बन सका। प्रेमचन्द-साहित्य में इस मध्यवर्गीय जागृति और आंदोलन में सक्रिय सहयोग का स्पष्ट चित्र मिलता है। राष्ट्रीय कार्यकर्ता `वरदान ` के प्रतापचन्द, ` `प्रेमाश्रम ` के प्रेमशंकर, ज्वालासिंह, `कायाकल्प ` के चक्रधर `कर्मभूमि ` के अमरकान्त मध्यवर्गीय शिक्षित पात्र हैं। नारी पात्रों में सुखदा, नैना, मध्यवर्गीय नारी तथा मुन्नी निम्नमध्यवर्गीय नारी पात्र हैं। कहानियों में भी राष्ट्रीय आंदोलन के पात्रों में बहुलता मध्यवर्ग अथवा निम्न मध्य वर्ग के लोगों की है। इस प्रकार हम देखते हैं कि राष्ट्रीय जागरण और रचनात्मक कार्यों की वह समस्त प्रवृत्तियां और विचारें जो उस समय के राजनैतिक जीवन में थी प्रेमचन्द साहित्य में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। जागरूक साहित्य के यही शुभ लक्षण हैं।

१- "In fact, the social support to the new nationalism came from the middle classes. The social basis of the Indian nationalist movement, which was hitherto restricted to the upper class intellectuals and sections of the commercial bourgeoisie, was extended to the lower middle classes from 1905 onwards."

एआरदेसाई : `सोशल बैक्ग्राउन्ड ऑफ इण्डियन नेशनलिज्म`, १६५६ (बम्बई) पृ० ३०२।

राष्ट्रीय आंदोलन : विविध स्वरूप

प्रेमचन्द स्वराज्य की परिभाषा करते हुए लिखते हैं - अपने देश का पूरा-पूरा इन्तजाम जब प्रजा के हाथों में हो तो उसे स्वराज्य कहते हैं ।"[१] आगे उन्होंने लिखा है कि जिस देश में लगान और करों के बीच जनता दबी हो, अधिकारी मनमानी करते हों, जनता पर अत्याचार होते हों, अधिकारी सुधार के लिए नहीं बल्कि भोगविलास के लिए राज्य करते हैं " वही देश पराधीन कहलाता है और हमारा भारत इसी प्रकार के देशों में है जहां कर्मचारी लोग प्रजा का नमक खाकर अपने को प्रजा का सेवक नहीं, उसका स्वामी समझते हैं ।"[२] अत्याचार, दमन, शोषण, अनर्थ और उद्योगपति से बचने के लिए "इसका एक मात्र साधन है "स्वराज्य" और भारत में प्रत्येक प्राणी का धर्म है कि वह यथायोग्य इस सद्कार्य में अपने नेताओं की मदद करे ।"[३] इस विचार धारा के प्रेमचन्द को राष्ट्रीय आंदोलन और स्वराज्य में रुचि होना स्वाभाविक था । बनारसी दास चतुर्वेदी के नाम ३ जून १९३२ के पत्र में लिखा था - "मेरी आकांक्षाएं कुछ नहीं हैं । इस समय तो सबसे बड़ी आकांक्षा यही है कि स्वराज्य-संग्राम में विजयी हों । धन या यश की लालसा मुझे नहीं रही । खाने भर को मिलता जाता म है । मोटर और बंगले की मुझे हविस नहीं है । हां यह जरूर चाहता हूं कि दो चार ऊंची कोटि की पुस्तकें लिखूं पर उनका उद्देश्य भी स्वराज्य-विजय ही है । - - साहित्य और स्वदेश के लिए कुछ न कुछ करते रहना चाहता हूं ।"[४] ऐसी आकांक्षा रखने वाले प्रेमचन्द के साहित्य में राष्ट्रीय आंदोलन के प्रति सहानुभूति और उसका चित्रण आवश्यक था ।

१९०८ में तिलक ने बम्बई हाईकोर्ट में कहा था "स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और वह हमें मिलेगा (स्वराज्य इज माई बर्थराइट ऐण्ड आई विल हैव इट)।[५]

१- "स्वराज्य के फायदे" दे० वि० पु० भाग २ पृ० २००
२- "स्वराज्य के फायदे" दे० वि० पु० भाग २ पृ० २०१
३- "स्वराज्य के फायदे" दे० वि० पु० भाग२ पृ० २०१
४- दे० चिट्ठी पत्री भाग २ पृ० ७७
५- ए० आर० देसाई : "सोशल बैकग्राउण्ड ऑव इण्डियन नेशनलिज्म" १९५९ (बम्बई) पृ० ३११ ।

१९४८ में ही प्रकाशित सोज़ेवतन में प्रेमचन्द ने लिखा था - 'खून का वह आखिरी क़तरा जो वतन की हिफ़ाजत में गिरे दुनिया की सबसे अनमोल चीज है।'[1]

१९०७ से १९१८ तक का समय विशेष रूप से आंदोलित नहीं था परंतु १९१९ में रौलट ऐक्ट के विरोध में गांधी जी के सत्याग्रह के निर्णय तथा १३ अप्रैल १९१९ को जलियांवाला बाग में भीषण नर-हत्याकाण्ड में संपूर्ण देश में हलचल पैदा कर दी और प्रथम बार संपूर्ण देश की जनता प्रशासकों के विरुद्ध अहिंसात्मक आंदोलन के लिए एक होकर उठ खड़ी हुई। सुभाष चन्द्र बोस के अनुसार १९१९ का भारतीय राजनैतिक आकाश गर्जना और प्रकाश से पूर्ण था। वर्ष के अंत में राजनैतिक बादल कुछ हल्के हुए परन्तु अमृतसर की मांगों की असफलता के बाद १९२० के अंत में राजनैतिक आकाश पुन: अंधकारपूर्ण हो गया। इस तूफान के संचालक महात्मा गांधी थे।[2] महात्मा गांधी ने किसानों को लगान क न अदा करने का कार्य-क्रम प्रदान किया, विद्यार्थियों को विद्यालय छोड़ने, उन्होंने वकीलों को अदालतों को खाली छोड़ देने का आह्वान दिया तथा स्त्रियों को शराब की दुकानों, विदेशी वस्त्रों की दुकानों में धरना देने को आमंत्रित किया जैसा कि उन्होंने किया और अदालतों से सजा लाई।[3] इसी

१- 'सोजेवतन' प्रेमचन्द : दे०पृ० १४ तथा गुप्तधन भाग १ पृ० ६।

२- "Throughout the year 1919, lightening and thunder had raged in the political sky of India - but towards the end of the year the clouds lifted and the Amritsar Congress seemed to herald an era of peace and quiet. But the promise of Amritsar was not fulfilled. Once again the clouds began to to gather and towards the end of 1920 the sky was dark and threatening. With the new year came whirlwind and storm. And the man who was detained to ride the whirlwind and direct the storm was Mahatma Gandhi".
सुभाषचन्द्र बोस : इण्डियन स्ट्रगल १९४८, (कलकत्ता), पृ० ७२-७३।

३- "He provided the peasantry with the programme of the non-payment of land tax of the government thereby threatening to paralyse the financial basis of the letter. He exhorted the students to boycott the educational institutions, The source of supply of its administrative personnel. He called on the lawyers to desert the courts so that the
Contd...

समय लिखे गए प्रेमचन्द के उपन्यास `प्रेमाश्रम ` में लखनपुर के किसान कादिर मियां के नेतृत्व में जमींदार ज्ञानशंकर के विरुद्ध संघर्ष करते हुए दिखाई देते हैं । यद्यपि इस संघर्ष का सीधा सम्बन्ध राष्ट्रीय आंदोलन से नहीं है फिर भी राष्ट्रीय आंदोलन की तैयारी अवश्य जान पड़ती है ।

प्रेमचन्द के `प्रेमाश्रम ` के बाद के उपन्यासों `रंगभूमि ` और `कायाकल्प में आंदोलन का व्यवहारिक स्वरूप दिखाई देता है । १९२० से २२ तक चलने वाले आंदोलन को ऐसा लगता है प्रेमचन्द सफल आंदोलन नहीं मानते । उन्होंने दिसम्बर १९२२ के जमाना में `वर्तमान आंदोलन के रास्ते में रुकावटें ` लेख लिखकर यह स्पष्ट करने का प्रयास किया था कि यद्यपि लोगों में जागृति आ गई है परन्तु विद्यार्थियों, सरकारी नौकरों, वकीलों से जो आशाएं थी वह पूरी नहीं हुईं । आंदोलन के तेजी के साथ विरोधी शक्तियां ज्यादा संगठित और सजग हो रही हैं । उन्होंने अधिक संगठित होकर आपसी भेद - भाव मिटा कर संघर्ष के लिए तैयार होने के लिए कहा था ।[१] `कायाकल्प ` और `रंगभूमि ` में वे इस आंदोलन को अधिक संगठित करते हुए तथा आंदोलन को चलाते रहने की दो भूमिकाएं अदा करते हैं । `कायाकल्प ` में राजा विशालसिंह की रियासत के चमार बेगार प्रथा के विरोध में आंदोलन करते हैं । चक्रधर पर विशाल सिंह द्वारा कुन्दे के प्रहार और उनके बेहोश हो जाने पर "उनका जमीन पर गिरना था, कि पांच हजार आदमी बाड़े को तोड़कर, सशस्त्र सिपाहियों को चीरते, बाहर निकल आये और नरेशों के कैम्प की ओर चले ।"[२] राजा की मददगार अंग्रेजी सरकार है और उसके अधिकारी जिला

१- दे० विविध प्रसंग भाग २ पृ० २२-३४

२- `कायाकल्प ` पृ० १०६

पिछले पृष्ठ का शेष :-

Judicial machinery of the State would be deadlocked. He called on the women to picket liquor and foreign cloth shops which they did in their thousands and, in the process, courted imprisonment."

एआर० देसाई : `सोशल बैकग्राउन्ड ऑफ इण्डियन नेशनालिज्म ` १९५९ (बम्बई) पृ० ३२१

कलक्टर जिम और पुलिस कप्तान सिम हैं। प्रेमचन्द इस पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं - "किन्तु राजाओं की रक्षा अ उनका इकबाल करता है। अंग्रेजी कैम्प में १०-१२ आदमी अभी शिकार खेल कर लौटे थे। उन्होंने जो यह हंगामा सुना, तो बाहर निकल आये और जनता पर अन्धाधुन्ध बन्दूकें छोड़ने लगे।"[१] वास्तव में यह संघर्ष राजा के साथ सरकार के साथ भी संघर्ष है। जैसा कि प्रेमचन्द के पात्रों के कथनों से स्पष्ट है।

एक चमार बोला - साहब लोग गोली चला रहे हैं।

दूसरा = गोरों की फौज है, फौज।

तीसरा - चलो सबों को मर्थे ? मुर्गी के अंडे खा खाकर खूब मोटाए हुए हैं।

चौथा - यही सब तो राजाओं को बिगाड़े हुए हैं। दो शिकार भी मिल गये, तो मेहनत सफल हो जायगी।"[२]

'रंगभूमि' उपन्यास में सूरदास की लड़ाई मूलरूप में उद्योगपति जॉनसेवक से है। परन्तु जॉनसेवक के साथ राजा महेन्द्रकुमार और जिले के अधिकारी क्रमश: मिस्टर क्लार्क मिस्टर सेनापति तथा पुन: मिस्टर क्लार्क हैं। पूंजीपति जॉनसेवक, सामन्तवर्गीय राजा महेन्द्रकुमार तथा ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधि स्वरूप मिस्टर क्लार्क संघर्ष की मुख्य भूमिका में है। और पूंजीवाद, सामन्ती शक्ति तथा सरकार की सम्मिलित शक्ति के विरोध में संघर्ष कर रहा है अकेले शक्तिहीन, अपाहिज अंधा सूरदास। सूरदास के पास अहिंसा, त्याग और आत्मबल है। विरोधियों के पास शक्ति, दर्प औरहिंसा का सहारा है। सूरदास इस सम्मिलित शक्ति के विरोध में आजन्म लड़ता रहता है।

वास्तव में 'रंगभूमि' का संघर्ष अहिंसा और आत्मबलिदान के आधार पर खड़ा गया है। आहत सूरदास जॉनसेवक से कहता है - "हम और आप आमने सामने

१- 'कायाकल्प' पृ० १०६

२- 'कायाकल्प' पृ० १०७

खालियों में खेलें । आपने भरसक जोर लगाया, मैंने भी भरसक जोर लगाया, जिसको जीतना था, जीता, जिसको हारना था, हारा । खिलाड़ियों में बैर नहीं होता ।"[1] गांधीवादी सूरदास हारने पर भी संतुष्ट है । उसे इसी में संतोष है कि उसने संघर्ष तो किया है । दूसरी तरफ जॉनसेवक की रणनीति उसी के शब्दों में "मैंने नीति का कभी पालन नहीं किया । मैं संसार को क्रीड़ा क्षेत्र नहीं, संग्राम क्षेत्र समझता हूं और युद्ध में छल, कपट, गुप्त आघात सभी कुछ किया जाता है । धर्म-युद्ध के दिन अब नहीं रहे ।"[2] जॉनसेवक की लड़ाई के दांव पेंच वास्तव में सरकार के दांव पेंच हैं ।

प्रेमचन्द के समय का सबसे महत्वपूर्ण आंदोलन मार्च १६३० से अप्रैल १६३४ तक चलने वाला सविनय अवज्ञा आंदोलन था । १४ फरवरी सन् १६३० ई० को कांग्रेस कार्यकारिणी की साबरमती की बैठक ने गांधी जी को सरकार के विरुद्ध सविनय अवज्ञा करने का अधिकारप्रदान किया । महात्मा गांधी ने २७ फरवरी १६३० को यंग इण्डिया में संभावित अहिंसात्मक आंदोलन की घोषणा की जिसमें उन्होंने पूर्ण अनुशासन और अहिंसात्मक आंदोलन के तरीकों पर बल दिया ।[3] महात्मा गांधी ने अपनी घोषणा के अनुसार ११ मार्च को ७६ स्वयंसेवकों के साथ मार्च के लिए प्रस्थान किया जिसमें गांव के लोगों से आंदोलन में भाग लेने, खद्दर का उपयोग करने, विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार, मद्यपान बन्द करने, सरकार से असहयोग करने, उनकी न्याय-पंचायत स्थापित करने तथा कर न देने की सलाह दी ।[4] १६ मई को इलाहाबाद में कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन को चलाए जाने का निर्णय किया और वकीलों, विद्यार्थियों, डाक्टरों, मजदूरों, किसानों , व्यवसायियों तथा सरकारी कर्मचारियों से आंदोलन में सहयोग देने के लिए कहा गया तथा साथ ही बहिष्कार, मद्यनिषेध, नमक, कानून भंग करने तथा कर न देने के लिए कहा गया ।[5]

१- "रंगभूमि" पृ० ५१२

२- "रंगभूमि" पृ० ५१२

३- सुभाष चन्द्र बोस: "द इण्डियन स्ट्रगल", १६४८ (कलकत्ता) पृ० २५२

४- डी० ग्रैहम पोल : "इण्डिया इन ट्रान्जीशन", १६३२ (लन्दन) पृ० १५६

५- डी० ग्रैहम पोल : "इण्डिया इनट्रान्जीशन", १६३२ (लन्दन) पृ० १६३ ।

इसी बीच प्रेमचन्द का `कर्मभूमि ` उपन्यास लिखा गया । इस उपन्यास की रचना का उद्देश्य राष्ट्रीय आंदोलन का चित्रण और उसकी सहायता ही जान पड़ता है । इस समय प्रेमचन्द का `समरयात्रा ` कहानी संग्रह क भी प्रकाशित हुआ था जिसमें तत्कालीन आंदोलन से सम्बन्धित ग्यारह कहानियां हैं । उस समय लिखी गईं `जेल `` पत्नी से पति `, `शराब की दूकान `, `जुलूस `, `समरयात्रा `, `मैकू `, `सुहाग की साड़ी `, `तथा आखिरी तोहफा ` कहानियों में तत्कालीन आंदोलन की छाया स्पष्ट होती है ।[१]

`कर्मभूमि ` उपन्यास में दो स्थानों पर आंदोलन की सृष्टि की गयी है । शहर में दो आंदोलन चलते हैं उनमें एक मंदिर प्रवेश के प्रश्न को लेकर डा० शान्ति कुमार और सुखदा के नेतृत्व में तथा दूसरा सुखदा, नैना, रेणुका, पठानिन आदि स्त्रियों के नेतृत्व में डा० शान्तिकुमार के सहयोग से आवास आंदोलन चलाया जाता है । गांव का लगान-बन्दी आंदोलन अमरकान्त, आत्मानन्द, मुन्नी तथा सकीना के नेतृत्व में चलाया जाता है जिसमें सरकारी अफसर सलीम भी अन्ततोगत्वा शामिल हो जाता है । `कर्मभूमि ` उपन्यास के आंदोलन की विशेषता यह है कि आंदोलन में भाग लेने वाले लोग विभिन्न क्षेत्रों से आते हैं । अमरकान्त अध्ययन छोड़कर राष्ट्रीय कार्य में संलग्न होता है । सलीम सरकारी नौकरी छोड़ता है । अमरकान्त ऐसा स्वार्थी व्यवसायी भी आंदोलन का समर्थक बन जाता है । स्त्रियों की सक्रियता इस आंदोलन की सबसे बड़ी विशेषता है । विदेशी लेखक ग्रैहम पोल ने भी स्त्रियों की इस सक्रियता की प्रशंसा की है ।[२]

१- प्रथम ६ कहानियां १९३० में प्रकाशित `समरयात्रा ` में प्रकाशित हुई थी । जेल, पत्नी से पति, शराब की दूकान, जुलूस, मैकू, समरयात्रा, सुहाग की साड़ी कहानियां मा०स० भाग ७ अनुभव मा० स०भाग १ । माता का हृदय, भाड़े का टट्टू, मा०सा० भाग ३, `दुस्साहस मा स० भाग ८ तथा प्रतिशोध , आखिरी तोहफा तथा कातिल गुप्तधन भाग २ में संगृहीत हैं ।

२- आगामी पृष्ठ पर देखिए ।

कहानियों में `सुहाग की साड़ी `, `पत्नी से पति ` तथा आखिरी तोहफा कहानियों में विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार से संबंधित कथा कही गयी है। `सुहाग की साड़ी ` में प्रेमचन्द लिखते हैं - "विदेशी कपड़ों की होलियां जलाई जा रहीं थीं। स्वयं सेवकों के जत्थे भिखारियों की भांति द्वारों पर खड़े होकर विलायती कपड़ों की भिक्षा मांगते थे और ऐसा कदाचित ही कोई द्वार था, जहां उन्हें निराश होना पड़ता हो। खद्दर और गाढ़े के दिन आ गए थे। नयनसुख, नयनदुख, मलमल, मनमल और तनजेब तनवेध हो गए।"[१] इस कहानी में पत्नी सुहाग की साड़ी के अलावा सारे वस्त्र देने को तैयार है परन्तु पति की प्रतिज्ञा भंग होती देखकर उसे भी अर्पित कर देती है। `पत्नी से पति ` कहानी की गोदावरी के अपने पति मिस्टर सेठ की इच्छा के विरुद्ध कांग्रेस का कार्य करती है। पति पत्नी के त्याग से प्रभावित होकर नौकरी से इस्तीफा दे देता है। `आखिरी तोहफा ` कहानी में एक स्त्री दुकान पर धरना देती हुई दिखाई गई है जिसके कारण अमरनाथ अपनी प्रेमिका मालती के लिए विलायती रेशमी साड़ी नहीं खरीद पाता। प्रेमिका के रुष्ट होने की वह चिंता नहीं करता। विलायती कपड़ों की दूकानों में धरना देने का कार्य महात्मा गांधी के आह्वान पर स्त्रियों ने अत्यन्त सफलतापूर्वक किया था।[२]

१- `सुहाग की साड़ी ` मा० स० भाग ७ पृ० २७०१-९१।

२- "The picketing of foreign cloth shops was entrusted to women by Gandhiji and they responded with great enthusiasm. No prospective buyer dared to come near a shop outside which a woman was picketing, and even the shopkeepers, faced with a delicate situation, behaved well."

डा० राजेन्द्र प्रसाद : `आटोबॉयोग्रैफी `, १९५७ (बम्बई), पृ० ३१३

गत पृष्ठ का शेष :-

२- "One of the most remarkable features of the Civil Disobedience Movement - and a great source of its strength - was the part played in it by women. Indian women previously had taken no part in political movements, but now they were in the forefront. To defy 'unjust' laws, to picket, to boycott were the expression of true patriotism for women no less than men. Neither prison nor lathi-blows seemed to hold any terrors for them.".

डी०ग्रैहम पोल : `इण्डिया इन ट्रान्जीशन `, १९३२ (लन्दन), पृ० १९३।

`मैकू ` तथा `शराब की दूकान ` कहानियों में मद्यनिषेध कार्यक्रम से सम्बन्धित आंदोलन का अंश से चित्रित हुआ है । `दुस्साहस ` कहानी में शहर के मुसलमानों के नेता मौलाना जामिद तथा हिन्दुओं के नेता स्वामी घनानन्द एक साथ शराब की दुकान पर धरना देते हुए दिखाए गए हैं जिसके फलस्वरूप अलगू, बेचन, रामबली, झिनकू आदि शराब न पीने की प्रतिज्ञा करते हैं । धुरन्धर पियक्कड़ मुंशी मैकूलाल भी शराब छोड़ देते हैं । `मैकू ` का मैकू गुण्डा है स्वयंसेवकों का धैर्य देख कर प्रभावित होता है और ठेकेदार की रक्षा के स्थान पर उसकी दूकान के मटके फोड़ता हुआ दिखाई देता है ।`शराब की दुकान` कहानी में मिसेज सक्सेना का धरना ठेकेदार को प्रभावित करता है और वह दुकान छोड़कर स्वराज्य आंदोलन का कार्यकर्ता बन जाता है ।

`समरयात्रा ` `जेल ` और `अनुभव ` कहानी में आंदोलन के विस्तार के दृश्य उपस्थित किए गए हैं । `समरयात्रा ` में गांव के पुरुष कोदई और स्त्री नोहरी ऐसे वृद्ध लोग भी आंदोलन में सक्रिय होने का निर्णय करते हैं जबकि `जेल ` कहानी की मृदुला पति, बच्चे पूरा परिवार खो चुकने के बाद भी आंदोलन में सक्रिय हैं । कहानी `जुलूस ` की मिट्ठनबाई के स्वदेश प्रेम के कारण उसके पति दरोगा बीरबल को अपनी नृशंसता त्यागनी पड़ती है ।

स्पष्ट है यह आंदोलन गांव और शहर दोनों स्थानों पर फैला हुआ था । डा० राजेन्द्र प्रसाद ने इस की सूचना देते हुए कहा है कि इलाहाबाद कार्यसमिति की बैठक में इस आंदोलन की प्रगति के बाद बिहार में भी यह कार्य प्रारम्भ किया गया जहां पर व्यवसायियों ने भी सहयोग दिया ।[१] इस आंदोलन की सबसे बड़ी

१- "Though the salt satyagrah had the priority, boycott of foreign cloth and propagation of prohibition were also carried on in towns and in the countryside. We learnt of the progress of these campaigns at the time of the working Committee meeting in Allahabad. We then took up the boycott of foreign cloth in Bihar also. Even traders cooperated with us with great enthusiasm"
डा० राजेन्द्र प्रसाद : `आटोबायोग्रेफी`, १९५७ (बम्बई), पृ० ३१२

विशेषता है स्त्रियों की सक्रियता `कर्मभूमि ` की सुखदा, रेणुका, नैना, मुन्नी, सकीना, पठानिन, जेल की मृदुला, जुलूस की मिट्ठनबाई, शराब की दुकान की `मिसेज सक्सेना ` समरयात्रा की नोहरी, पत्नी से पति की गोदावरी प्रेमचन्द साहित्य की वह नारियां जो इस सक्रियता की प्रबल प्रमाण हैं। नेहरू ने इस सक्रियता की प्रशंसा में लिखा है कि नारियां स्थानीय क्षेत्रों और प्रांतों की तानाशाह बन गई ह थीं।[१]

राष्ट्रीय आंदोलन का एक पक्ष नवयुवकों का आंदोलन था। देश के नवयुवकों का एक वर्ग आजादी के लिए छटपटा रहा था। सुभाषचन्द्र बोस ने इस संबंध में लिखा है कि विद्यार्थियों और नवयुवकों में स भी स्वतंत्रता का आंदोलन व्याप्त है। परन्तु उनमें स्थाई संगठन नहीं है।[२] प्रेमचन्द-साहित्य में राष्ट्रीय आंदोलन के कार्य-कर्ताओं में युवकों में अधिक सक्रियता है। प्रेमाश्रम `, में प्रेमशंकर और `कर्मभूमि ` के अमरकान्त विद्यार्थी जीवन से ही राष्ट्रीय कार्यों में संलग्न है। प्रेमशंकर की सक्रियता

१- "Many strange things happened in those days, but undoubtedly the most striking was the part of the women in the national struggle ...... the attitude of the women was more unyielding than that of the men. Often they became congress 'dictators' in provinces and in local areas."

जवाहर लाल नेहरू : `ऐन आटोबॉयोग्रैफी", १९४२ (बम्बई, नई दिल्ली आदि) पृ० २१४-२१५ ।

२- "There is an inddpendent movement among the students and also among the youth in India. From time to time, All-India Congresses of students and of youths are held - but there is no permanent All-India Committee to coordinate these activities."

सुभाष चन्द्र बोस : `द इण्डियन स्ट्रगल `, १९४८, (कलकत्ता), पृ० ५३

के कारण तो विदेश भागना पड़ता है । इनके अलावा युवक कार्यकर्ताओं में `रंगभूमि ` के विनय, प्रभुसेवक, इन्द्रदत्त, वीरबल तथा `कर्मभूमि ` के सलीम आदि हैं । प्रेमचन्द-साहित्य में युवक संगठन का चित्रण कहीं नहीं मिलता । यह युवकों के संगठनाभाव की वास्तविकता का बोध कराता है ।

राष्ट्रीय आंदोलन का एक पक्ष क्रांतिकारी आंदोलन भी है । क्रांतिकारी और आतंकवादी आंदोलन की शुरुआत बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक से ही हो चुकी थी ।

प्रेमचन्द-साहित्य में क्रांतिकारी-आतंकवादी के रूप में `रंगभूमि ` के वीरपालसिंह को चित्रित किया गया है । वीरपाल सिंह रियासत के महाराज से इसलिए असंतुष्ट हैं क्योंकि वह या तो अंग्रेजों के साथ शिकार करता है या उनकी जूतियां सीधा करता है । प्रजा जिये या मरे - उसकी बला से,[१] वीरपालसिंह का एक दल है जो सरकारी खजाना लूट कर रियासत के एजेन्ट क्लार्क तथा रियासत के महाराज के विरुद्ध सक्रिय है । यह दल सोफिया का अपहरण कर ले जाता है । युवक इन्द्रदत्त भी इस दल का सहयोगी है । क्रांति के समर्थन में वीरपाल का तर्क है - "व्याघ्र जैसे हिंसक पशु सेवा से वशीभूत हो सकते हैं पर स्वार्थ को कोई दैविक शक्ति परास्त नहीं कर सकती ।"[२] ह असहयोग आंदोलन के बंद होने पर क्रांतिकारी सक्रिय हो उठे थे । सुभाषचन्द्र बोस ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि देश में सीधी कार्यवाई पर विश्वास रखने वाला एक ऐसा दल है जो भाषण, प्रस्ताव और सभाओं पर विश्वास नहीं करता । केवल असहयोग आंदोलन की गुप्त अपराधों और कानून-व्यवस्था-भंग से देश को बचा सकता है ।[३] `रंगभूमि ` पहले असहयोग आंदोलन के वापस लिए जाने से बाद की

१- `रंगभूमि ` पृ० १८३

२- `रंगभूमि ` पृ० १८४

३- "Civil Disobedience alone can save the country from impending lawlessness and secret crime, since there is a party of violence in the country which will not listen to speeches, resolutions, or conferences, but believes only in direct action."

सुभाषचन्द्र बोस : `द इण्डियन स्ट्रगल `, १९४८ (कलकत्ता) पृ० २४७

की रचना है जिसमें क्रांतिकारी आंदोलन का संकेत है। 'गबन' में भी क्रांतिकारी आंदोलन का संकेत है। 'गबन' का कलकत्ते का मुकदमा क्रांतिकारियों का मुकदमा है। २० मार्च १६२६ को देश के विभिन्न भागों के मजदूर नेताओं को पकड़ कर मेरठ लाकर उन पर मुकदमा चलाया गया था जिसमें से ३१ लोगों को विभिन्न प्रकार की सजाएं दी गईं थीं। इसी बीच चिरगांव के क्रांतिकारियों के नेता को गिरफ्तार करके उसके साथियों सहित उसे फांसी दे दी गई थी।[१] 'गबन' की रचना ३०-३१ के आस-पास की है। उसमें क्रांतिकारियों को सजा दे दी जाती है परंतु बाद को उन्हें छोड़ दिया जाता है। मेरठ केस में भी सेसन से कई लोगों को काले पानी की सजा दी गई थी परन्तु १६३२ के हाईकोर्ट के फैसले के अनुसार दो छोड़कर कुछ लोगों की अधिक से अधिक सजा साढ़े चार साल ही दी गई थी। दो व्यक्तियों को ढाई वर्ष की सजा हुई थी। इस पर प्रेमचन्द ने लेख लिखकर अंग्रेजी न्याय की आलोचना की थी।[२] १६२२ में भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने एसेम्बली में बम फेंका था और इसी वर्ष लाजपतराय पर प्रहार करने वाले पुलिस अधिकारी को गोली मार दी गई थी।[३]

प्रेमचन्द की 'प्रतिशोध' कहानी में लखनऊ के प्रतिष्ठित बैरिस्टर मि० व्यास राजनीतिक मुकदमे की पैरवी करने लाहौर जाते हैं। वहां पर उनकी हत्या कर दी जाती है। क्योंकि मि० व्यास जिन लोगों को फंसाने के लिए पुलिस के दाहिने हाथ बने - 'इन बेचारों का बस इतना कसूर था कि वह हिंदुस्तान के सच्चे दोस्त थे, अपना सारा वक्त प्रजा की शिक्षा और सेवा में खर्च करते थे। खुद भूखे रहते थे, प्रजा पर पुलिस और हुक्काम की सख्तियां न होने देते थे, यही उनका गुनाह था।'[४] 'कातिल' कहानी का नवयुवक धर्मवीर क्रांतिकारी है उसके अनुसार

१- सुभाष चन्द्र बोस : 'द इण्डियन स्ट्रगल' १६४८ (कलकत्ता), पृ० ३७७

२- 'जागरण' १६ अगस्त १६३३ को मेरठ के मुकदमे का फैसला, दे० वि० पृ० भाग २ पृ० १६३-६४

३- जवाहर लाल नेहरू : 'ऐन आटोबायोग्रफी', १६६२ (बम्बई, नई दिल्ली आदि) पृ० १६२-१६३।

४- 'प्रतिशोध' दे० गुप्तधन भाग २ पृ० ५६।

मुझे उम्मीद नहीं कि पिकेटिंग और जुलूसों से हमें आजादी हासिल हो सके। यह तो अपनी कमजोरी और बेबसी का एलान है। --- असली चीज तो तभी मिलेगी जब हम उसकी कीमत देने को तैयार होंगे।'[१] इनका इन्हीं जैसे आदमियों का गैंग है जो लूट मार और डाके आदि पर विश्वास करता है। प्रेमचन्द ने इस कहानी में युवक धर्मवीर की मां के बलिदान द्वारा पुत्र को क्रांतिकारिता से रोकने का प्रयास किया है। परन्तु इस कहानी से क्रांतिकारी आंदोलन और क्रांति की राजनैतिक विचारधारा का बोध होता है।

ऊपर राजनैतिक जीवन से सम्बन्धित राजनैतिक परिवेश और प्रेमचन्द, अंग्रेजों की प्रशासनिक नीति, राष्ट्रीय जागरण और राष्ट्र के अन्तर्गत-रचना सम्बन्धी कार्य और राजनैतिक रूप से उनका समर्थन और सहयोग तथा राष्ट्रीय आंदोलन के सक्रिय पक्षों के अध्ययन को समाज-शास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि में दिखा कर ही किया है। अब हमें आर्थिक जीवन पर विचार करना है।

आर्थिक जीवन

किसी भी युग के सामाजिक जीवन के वास्तविक बोध के लिए समाज के आर्थिक जीवन का अध्ययन आवश्यक है। अर्थ जीवन का महत्वपूर्ण अंग रहा है। और आज भी है। आदिम युग में जंगली अवस्था में रहने वाले मानव की भी अपनी अर्थ-व्यवस्था थी। उसके फल-फूलों के प्रयास, शिकारी जीवन तथा भोजन की व्यवस्था की अन्य आर्थिक क्रियाएं अर्थशास्त्र के अध्ययन के विषय रही है। समाज शास्त्र भी समाज के आर्थिक-संगठन, आर्थिक क्रिया तथा समाज में तत्कालीन अर्थ-व्यवस्था के प्रभाव का अध्ययन करता है। प्रेमचन्द-साहित्य में सामाजिक युग-बोध की वास्तविक व्याख्या के लिए उस समय के अर्थ तंत्र और समाज में उसके प्रभाव का अध्ययन करना आवश्यक है। अर्थ -तंत्र के अन्तर्गत समाज की अर्थ-व्यवस्था अथवा आर्थिक ढांचे का अध्ययन होगा। समाज में प्रेमचन्द के समय के आर्थिक ढांचे के प्रभाव के

१- 'कातिल' के गुप्तधन भाग २ पृ० ९५।

अन्तर्गत समाज में उत्पन्न विभिन्न वर्गों का अध्ययन उनकी आर्थिक स्थिति तथा उसके परिणाम स्वरूप समाज में होने वाली आर्थिक प्रतिक्रिया अर्थात् अर्थ संघर्ष या आर्थिक जागरण का अध्ययन किया जायगा ।

समाज का आर्थिक ढांचा

भारतीय समाज की अर्थ-व्यवस्था मुख्य रूप से ग्राम-जीवन पर आधारित थी । भारतवर्ष में सिंधु घाटी की सभ्यता के अन्तर्गत नगर-सभ्यता और नागरीय-अर्थ-व्यवस्था के दर्शन अति प्राचीन काल में होते हैं । परंतु इस सभ्यता के विनाश के बाद वैदिक काल अथवा उसके बाद ब्रिटिश प्रशासन के पूर्व तक अर्थ-व्यवस्था के आधार भारतीय गांव ही थे । भारतवर्ष में शताब्दियों तक आत्म निर्भर गांव आर्थिक इकाई के रूप में बने रहे । राजनीतिक विप्लवों तथा विनाशकारी युद्धों के बावजूद भी कुछ थोड़े बहुत सुधारों के साथ यह व्यवस्था ब्रिटिश प्रशासन की स्थापना तक बनी रही । अन्तर्राज्यों के हिंसक संघर्षों, विदेशी आक्रमणों तथा राजवंशीय परिवर्तनों के मध्य भी यह दुर्जेय बनी रही । राजधानियां बनीं और बिगड़ी परन्तु आत्मनिर्भर गांव बने रहे ।[१] अ प्राचीन काल में तो गांव भारतीय अर्थव्यवस्था के प्राण थे । मध्यकाल में भी भारतीय गांव आर्थिक व्यवस्था के धुरी थे । कृषि, उद्योग और व्यवसाय इन्हीं के ऊपर आधारित थे । इस सम्बन्ध में भारत मध्य यूरोप से भिन्न था । जहां पर कृषि का सम्बन्ध गांव से तथा उद्योग और व्यवसाय

---

१. "The self-sufficient village as the basic economic unit had existed for centuries in India and, except for some minor modifications, had survived till the advent of the British rule, in spite of all political convulsions, religious upheavals and devastating wars. It stood impregnable in face of all foreign invasions, dynastic changes, all violent territorial shifting in inter-State struggle. Kingdoms rose and collapsed but the self-sufficient village survived."

ए०आर० देसाई : "सोशल बैकग्राउन्ड ऑब इण्डियन नेशनालिज्म" १९५९ (बम्बई) पृ० ७ ।

का सम्बन्ध नगरों से था । मध्य काल में भारतवर्ष में नगरों का अस्तित्व राजनीतिक स्थलों और धार्मिक केन्द्रों के रूप में था उनमें से बहुत थोड़े ऐसे थे जिनकी संख्या का अपना स्वतंत्र उद्योग और व्यवसाय था ।[१]

आधुनिक युग में जब इंगलैण्ड, फ्रांस, इटली और जर्मनी आदि यूरोप के देशों में जागीरदारी और रैयतबारी अर्थ-व्यवस्था (फिडूडल इकोनामी) के स्थान पर पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था पनप रही थी उस समय भारतवर्ष में ब्रिटेन के व्यापारी पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था को जन्म देने का स्वप्न देख रहे थे । भारतवर्ष में प्रगतिशील व्यवसायी (मरचेन्ट क्लास) बढ़ पाता और जागीरदारों और रैयतबारों (फिडूडल क्लासेस) के हाथों से राजनैतिक शक्ति ग्रहण करने के लिए आर्थिक और सामाजिक शक्ति जुटा पाता कि इसके पूर्व ही सशक्त और आर्थिक रूप से अधिक सुदृढ़ विदेशी व्यापारिक संगठनों ने भारतवर्ष को आर्थिक और राजनैतिक संघर्ष का केन्द्र बना दिया ।[२] इस संघर्ष में ब्रिटेन को सफलता मिली जिसके साथ ही भारतीय पूंजी, उद्योग और राजनीति में इसका एकाधिकार हो गया । ब्रिटिशप्रशासन की साम्राज्यवादी और पूंजीवादी व्यवसायिक नीति ने भारतीय अर्थ-व्यवस्था को जड़ से हिला दिया । जिसका परिणाम हुआ कि सहयोगी जीवन पर आधारित ग्रामीण समुदाय विनष्ट हो गया और उसके स्थान पर पश्चिमी विचारों पर आधारित वैयक्तिक सम्पत्ति और साख, प्रतियोगिता और बाजारू अर्थ व्यवस्था ऐसे नए आर्थिक सम्बन्धों को जन्म मिला ।[३] । इस नई अर्थ-व्यवस्था के सामाजिक

१- "The village was the hub of the economic machine. Agriculture, industry and trade all revolved round it. In this respect India was different from medieval Europe, where economic life was bifurcated, agriculture belonged to the village, and trade and industry to the town. In India there were cities but they were mere parasites. Some were seats of political authority, some centres of religion, some marked the crossing of rivers or roads, but few owed their prosperity or population to any independent industry or commerce."

डा० ताराचन्द : `हिस्ट्री ऑव द फ्रीडम मूवमेण्ट इन इण्डिया`, १९६१ (नई दिल्ली), पृ० १८८

२- ए०आर० देसाई : `सोशल बैक्ग्राउन्ड ऑव इण्डियन नेशनालिज्म`, १९५९ (बम्बई) पृ० २९ ।

शेष आगामी पृष्ठ पर

और आर्थिक प्रभाव की ओर संकेत करते हुए पंडित जवाहर लाल नेहरू ने कहा है कि परम्परागत श्रमविभाजन पर आधारित आत्मनिर्भर ग्रामीण समुदाय अपने प्राचीन रूप में सुरक्षित नहीं रहा। जो परिवर्तन हुआ वह एक सामान्य स्वाभाविक प्रगति न थी और इसने भारतीय समाज के सम्पूर्ण आर्थिक और संगठनात्मक आधार को छिन्न भिन्न कर दिया। एक ऐसी व्यवस्था जिसके पीछे सामाजिक आश्रय और नियंत्रण का आधार था तथा जो जनता की सांस्कृतिक परम्परा की एक भाग था शीघ्र ही और बलपूर्वक बदल दी गई और दूसरी व्यवस्था बाहर से लाद दी गई। भारतवर्ष दुनिया के बाजार में तो नहीं आ सका बल्कि ब्रिटिश संगठन का एक उपनिवेशिक तथा कृषि सम्बन्धी उपकरण मात्र हो गया।[१]

१- "The self-sufficient village community, with its traditional division of labour, could not have continued in its old form. But the change that took place was not a normal development and it disintegrated the whole economic and structural basis of Indian society. A system which had social sanctions and controls behind it and was a part of the people's cultural heritage was suddenly and forcibly changed and another system, administered from outside the group, was imposed. India did not come into a world market, but became a colonial and agricultural appendage of the British structure."

जवाहर लाल नेहरू : 'दी डिस्कवरी ऑव इण्डिया', १९६० (बम्बई, नई दिल्ली आदि) पृ० ३२०

गत पृष्ठ का शेष :

३- "The village community which fostered cooperative living was destroyed. New economic relations based on the Western ideas of individual property and enterprise, competition and market economy began to prevaill"

डा० ताराचन्द : 'हिस्ट्री ऑव द फ्रीडम मूवमेन्ट इन इण्डिया', १९६१, (नई दिल्ली) पृ० ३९१

स्पष्ट है भारतवर्ष में ब्रिटिश काल में नई तरह की पूंजीवादी औद्योगिक व्यवसायिक अर्थ-व्यवस्था को जन्म मिला । इस अर्थ-व्यवस्था ने समाज के संपूर्ण आर्थिक ढांचे को प्रभावित किया । गांव की आत्मनिर्भर आर्थिक व्यवस्था टूट गई तथा उद्योग और व्यवसाय प्रधान अर्थ-तंत्र को जन्म मिला । परिणामस्वरूप पूंजीपति-व्यवसायी और मजदूरों के वर्ग सामने आए ।

मध्ययुग में मुसलमान शासकों की जागीरदारी और रैयतबारी व्यवस्था को जन्म मिला था । रैयतवार किसान भूमि के ठेकेदारों को या सरकार को मालगुजारी देते थे । जागीरदार वे लोग होते थे जिनका सम्बन्ध राजघराने से होता था । इसके अलावा शुरू में बहादुरी दिखाने वाले को भी जागीरें दी जाती थीं । जागीरदार अपने इलाके की भूमि की व्यवस्था करता था और कर का कुछ अंश जो उसे किसानों से मिलता था उसे वह बादशाह को प्रदान करता था । ब्रिटिश प्रशासन ने इस व्यवस्था को बदल कर जमींदारी व्यवस्था को जन्म दिया । नई भूमि-व्यवस्था के अन्तर्गत गांव भूमि के मालिक और उसके निरीक्षक नहीं रहे । किसान का स्वामित्व भूमि से समाप्त हो गया । उसका सीधा सम्बन्ध राज्य से हो गया जिसके लिए उसे जमींदार के माध्यम से कर देना पड़ता था । भूमि सम्बन्धी झगड़े अब गांव पंचायतों द्वारा नहीं बल्कि अदालतों द्वारा निर्णित होते थे ।[१] पुराने राजे-महाराजे भी स्वतंत्र रूप से अथवा अंग्रेजी प्रशासन के एजेन्टों के संरक्षण में अपने वैभव और विलासी प्रवृत्ति की रक्षा के लिए हाथ-पांव फेंक रहे थे ।

उभरते हुए मजदूर वर्ग की चर्चा की जा चुकी है । किसान भी अपनी जीर्ण-शीर्ण अवस्था में अपने अस्तित्व को बनाए हुए था । इस प्रकार प्रेमचन्द के समस्त भारतीय समाज के आर्थिक स्वरूप को परखने के लिए हमें जिन संदर्भों की आवश्यकता है और प्रेमचन्द-साहित्य के सम्बन्ध में उन पर विचार करना है वे हैं - बढ़ता हुआ पूंजीवाद, उद्योग तथा व्यवसायिक स्थिति, भूपति अथवा भूस्वामी अर्थात् राजे महाराजे,

---

१- ए०आर०देसाई : `सोशल बैकग्राउन्ड ऑव इण्डियन नेशनालिज्म`, १९५९ (बम्बई), पृ० ३० ३१ ।

ताल्लुकेदार और जमींदार और अर्थतन्त्र में उनका महत्व एवं प्रभाव तथा किसान और मजदूर और उनकी स्थिति ।

पूंजीपति-व्यवसायी : उद्योग और व्यवसाय

ब्रिटिश शासन-व्यवस्था के अन्तर्गत् भारतीय ग्रामीण उद्योग धंधों को गहरा आघात लगा । ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था के विघटन के साथ ही ग्रामीण उद्योगों का पतन हुआ । ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना आर्थिक लाभ के लिए की गई थी । अत: जिन भागों में कम्पनी का अधिकार हुआ वहां पर ग्रामीण उद्योगों को विनष्ट करने के प्रयास किए गए । कम्पनी का शासन ब्रिटेन के हाथ में हस्तान्तरित होने पर भी इस नीति का पालन किया गया । भारत के कच्चे माल और खनिज पदार्थ को इंगलैण्ड भेजा जाता रहा और वहां से निर्मित वस्तुएं भारत में बिकती रहीं । ब्रिटेन के उद्योग को भारत से कच्चा माल भी मिलता था और भारत उसके लिए सर्वोत्तम बाजार भी था ।[१]

विश्व में पूंजीवाद का विकास तेजी से हो रहा था । भारत भी उससे अछूता नहीं था । १८५७ के संघर्ष के बाद ब्रिटिश-प्रशासन को ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता थी जो संकट में उसकी सहायता करते । इधर देश में औद्योगीकरण की मांग भी होने लगी थी । अत: ब्रिटिश सरकार ने एक सीमित स्तर के उद्योगों को भारतियों के हाथ में बढ़ने दिया । मूल रूप में उनकी नीति ब्रिटेन की हित की रक्षा ही रही । प्रथम विश्वयुद्ध में युद्ध से प्रभावित राष्ट्रों में आर्थिक असंतुलन बढ़ा । भारत भी

१- "The classic type of modern colonial economy was built-up, India becoming an agricultural colony of industrial England, supplying raw materials and providing markets for England's, industrial goods."

जवाहर लाल नेहरू : 'दी डिस्कवरी ऑव इण्डिया', (बम्बई, नई दिल्ली आदि), पृ० ३१६ ।

उससे प्रभावित हुआ । भारत में भी पूंजीपति धन और शक्ति से मजबूत हुए और अर्जित-पूंजी के आधार पर नए नए साधन खोजने प्रारम्भ किए ।[१] युगचेता प्रेमचन्द इन समस्त परिस्थितियों से परिचित थे । उनके 'रंगभूमि' उपन्यास में औद्योगिक विकास का चित्रण हुआ है । 'रंगभूमि' का व्यवसायी जॉनसेवक छोटे से चमड़े के व्यवसायी से बढ़कर कारखाने का मालिक बनता है । जॉनसेवक अंग्रेजों का साथी और सहधर्मी है । उसके ही शब्दों में "हम शासनाधिकारियों के सहधर्मी हैं । हमारा धर्म, हमारी रीति-नीति, हमारा आहार व्यवहार अंग्रेजों के अनुकूल है । हम और वे एक कलिसिया में, एक परमात्मा के सामने सिर झुकाते हैं ।"[२] वह पुन: कहता है - "मेरे विचार में हमारा कल्याण अंगरेजों के साथ मेलजोल करने में है । अंग्रेज इस समय भारतवासियों की संयुक्तशक्ति से चिंतित हो रहे हैं । हम अंग्रेजों से मैत्री करके उन पर अपनी राजभक्ति का सिक्का जमा सकते हैं और मनमाने स्वत्व प्राप्त कर सकते हैं ।"[३] प्रेमचन्द ने अंग्रेजों के बिरादरी के ईसाई जॉनसेवक को उद्योगपति के रूप में दिखाकर उनकी उस नीति की ओर संकेत किया है जिसके फलस्वरूप भारतीयों को बड़े उद्योगों में न आने देने की योजना बनाई गई थी । जॉनसेवक के कथन से ब्रिटिश प्रशासन की आशंका और पूंजीपति जॉनसेवक का उसके सहयोगी होने की पुष्टि हो जाती है ।

प्रेमचन्द ने विकासमान पूंजीवाद के दर्शन 'रंगभूमि' के अलावा 'गोदान' उपन्यास में भी कराया है । 'रंगभूमि' का जॉनसेवक व चमड़े के व्यापारी से सिगरेट

१- "The end of the world war found India in a state of suppressed excitement. Industrialisation had spread and the capitalist d class had grown in wealth and power. This handful at the top had prospered and were greedy for more power and opportunity to invest their savings and add to their wealth. The great majority, however, were not so fortunate and b looked forward to a lightening of the burdens that crushed them."
जवाहर लाल नेहरू :- 'ऐन आटोबायोग्राफी', १९६२ (लंदन) पृ० ४०

२- 'रंगभूमि' पृ० १४७

३- 'रंगभूमि' पृ० १४७

के कारखाने का मालिक बन जाता है। उसे इस कारखाने की स्थापना में संघर्ष करना पड़ता है परन्तु अंत में ग्रामीण अर्थ व्यवस्था के विरुद्ध पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था की विजय होती है। सामन्तवर्गीय राजा महेन्द्र कुमार तथा सरकारी सहायता के बल पर वह कारखाने की स्थापना में सफल हो जाता है।।जॉनसेवक का व्यापार दिन प्रतिदिन प्रगति पर है। पांडेपुर को उजाड़ने और अपने सिगरेट के कारखाने को पूर्णरूपेण सुव्यवस्थित करने के बाद 'वह अब पटने में एक तम्बाकू की मिल खोलने का आयोजन कर रहे हैं। क्योंकि बिहार प्रान्त में तम्बाकी कसरत से पैदा होती है।'[1] जॉनसेवक की भांति 'गोदान' का खन्ना भी एक साधारण क्लर्क से बढ़कर बैंक का मैनेजर और फिर चीनी की मिल का मालिक बन गया है। 'अभी दस साल पहले जो व्यक्ति बैंक में क्लर्क था, वह केवल अपने अध्यवसाय, पुरुषार्थ और प्रतिभा से शहर में पुजता है।'[2]

जॉनसेवक तथा चन्द्रप्रकाश खन्ना पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस युग में पूंजीवाद की प्रबल शक्ति के कायल सामन्तवर्ग के लोग भी होते हुए दिखाई देते हैं। 'रंगभूमि' के भरतसिंह जॉनसेवक के तर्कों के कायल हो जाते हैं और कारखाने में हिस्से लेने के लिए तैयार हो जाते हैं।[3] 'कायाकल्प' के राजा विशालसिंह का इरादा एक शक्कर की मिल खोलने का है जिसमें वे अंग्रेज मैनेजर नियुक्त करके धन कमाना चाहते हैं।[4] 'गोदान' के राय अमरपाल सिंह भी हिस्से लेने की खन्ना की सलाह की उपेक्षा नहीं कर सकते।[5] यद्यपि वे आर्थिक रूप से असमर्थ हैं इसी कारण वे हिस्से नहीं ले पाते।

१- 'रंगभूमि' पृ० ५४१

२- 'गोदान' पृ० ६४

३- 'रंगभूमि' पृ० ४७

४- 'कायाकल्प' पृ० ३५।

५- 'गोदान' पृ० ६४

६- 'डेल्बर्ट सी० मिलर, विलियम एच फार्म, 'इन्डस्ट्रियल सोशिऑलोजी', १९५१ (न्यूयार्क) पृ० १९५-९६

७-

पूंजीपति और उद्योगपति की यह धारणा होती है कि उसके बिना राष्ट्र और व्यवसाय की प्रगति नहीं हो सकती है। समाज में अपनी पूंजी की शक्ति के आधार पर वह अपनी प्रतिष्ठा ही नहीं चाहता बल्कि वह अपने को नेता मानता है। वह चाहता है कि उद्योग का नेता होने के नाते उसे समुदाय को निर्देश देने का उत्तरदायित्व है। वह अपने को शासन-तंत्र का अभिन्न अंग और उसका नियंत्रक मानता है।[१] `रंगभूमि` का पूंजीपति उद्योगपति जॉनसेवक यह घोषणा करता है "यह व्यापार राज्य का युग है। योरोप के बड़े-बड़े शक्तिशाली साम्राज्य पूंजीपतियों के इशारों पर बनते बिगड़ते हैं। किसी गवर्नमेण्ट का साहस नहीं कि उनकी इच्छा का विरोध करे।"[२] जॉनसेवक राजनीति में इसलिए भाग लेने का इच्छुक है कि वह अपने हित की रक्षा कर सके। उसकी घोषणा है - "मेरा कोई दल न होगा। मैं इसी विचार और उद्देश्य से आऊंगा कि स्वदेशी व्यापार की रक्षा कर सकूं। मैं प्रयत्न करूंगा कि विदेशी वस्तुओं में बड़ी कठोरता से कर लगाया जाय, इस नीति का पालन किए बिना हमारा व्यापार कभी सफल न हो सकेगा।"[३] मजदूरों का शोषण करने वाले गोदान के खन्ना भी "पिछले कौमी आंदोलन में उन्होंने बड़ा जोश दिखाया था। जिले के प्रमुख नेता रहे थे दो बार जेल गये थे और कई हजार का नुकसान उठाया था।"[४] प्रेमचन्द व्यवसायियों की नेतृत्व की भावना और उनकी आर्थिक शक्ति से भी परिचित थे। `गोदान` के मेहता पूंजीपति खन्ना को `राजाओं का राजा` मानते हैं।[५] वह यह भी जानते हैं कि "आज संसार का शासन सूत्र बैंकरों के हाथ में है। सरकार उनके हाथ का खिलौना है।"[६]

१- `डेल्बर्ट सी० मिलर, विलियम एच फार्म, `इन्डस्ट्रियल सोशियोलोजी`, १९५१ (न्यूयार्क) पृ० १९५-८६

२- `रंगभूमि` पृ० २१४

३- `रंगभूमि` पृ० ३५४

४- `गोदान` पृ० २८१

५- `गोदान` पृ० २४१ ६- `गोदान` पृ० २४१

७- `कर्मभूमि` पृ० २४६

मध्यवर्ग के व्यवसायियों में 'कर्मभूमि' के धनीराम, मनीराम और लाला समरकान्त का उल्लेख किया जा सकता है। लाला धनीराम घी के व्यापारी हैं और उनका लड़का मनीराम कागज और चीनी की एजेन्सी करता है।[१] धनीराम ऐसे व्यापारी हैं जिनका अधिकारियों से मेल मिलाप है। मनीराम ऐसी पत्नी चाहता है जो व्यापार सम्बन्धी समस्याओं को समझ सके और व्यापारिक एजेन्टों से बातचीत करके कमीशन का रेट बढ़ा सके।[२] लाला समरकान्त उद्योगी पुरुष थे। उनके पिता केवल एक झोपड़ी छोड़कर मरे थे मगर समरकान्त ने अपने बाहुबल से लाखों की सम्पत्ति जमा कर ली थी। पहले उनकी एक छोटी सी हल्दी की आढ़त थी। हल्दी से गुड़ और चावल की बारी आयी। तीन बरस तक लगातार उनके व्यापार का क्षेत्र बढ़ता ही गया। अब आढ़तें बंद कर दी गयीं। केवल लेन देन का काम करते थे।[३] इस प्रकार से स्पष्ट है कि प्रेमचन्द युग के मध्यवर्गीय व्यवसाय और व्यवसायी से परिचित दिखाई पड़ते हैं। उच्च मध्यवर्ग के व्यवसायी धनीराम का सरकार प्रेम और मध्य वर्ग के व्यवसायी लाला समरकान्त के हेर फेर को वह भली भाँति समझते थे।

उद्योगपति और व्यवसायी कभी किसी का मित्र और हितैषी नहीं हो सकता जहां उसके स्वार्थ या लाभ का प्रश्न उठ खड़ा हो। इन लोगों की इस मनोदशा का प्रेमचन्द को अच्छी तरह बोध था। सोफिया घर में रहे या न रहे, पुत्र प्रभुसेवक प्रसन्न रहें, अथवा अप्रसन्न रहे जॉनसेवक को चिंता नहीं है। पांडेपुर की भूमि को लेकर क्लार्क और राजा महेन्द्र में मतभेद है। ऐसी स्थिति में अपना स्वार्थ साधने के लिए जॉनसेवक 'गुप्त रूप से राजा महेन्द्र कुमार सिंह की कल घुमाते रहते थे पर प्रकट रूप से मि० क्लार्क के आदर-सत्कार में कोई बात उठा न रखते थे।'[४] यह है

१- 'कर्मभूमि' पृ० २५६
२- 'कर्मभूमि' पृ० २४६
३- 'कर्मभूमि' पृ० ६
४- 'रंगभूमि' पृ० २५६

व्यवसायिक हथकण्डा जिसके आधार पर उद्योगपति या व्यवसायी पूंजी का मालिक बनता है। अपने अभिन्न मित्र राय अमरपाल सिंह से खन्ना का कथन है -" Business is Business" यह आप जानते हैं।"[१] खन्ना राय साहब को बैंक से ऋण दिलाने के लिए भी कमीशन चाहता है। वाणी से वह राय साहब को बड़ा भाई मानता है परंतु उसका आग्रह है "जिस तरह मैं भाई के नाते आपको यह कमी नहीं कह सकता कि दूसरों से ज्यादा कमीशन दीजिए उसी तरह आपको भी मेरे कमीशन में रियासत के लिए आग्रह न करना चाहिए।"[२] औद्योगिक और व्यवसायिक अर्थ-व्यवस्था में कोई किसी का सगा, कोई किसी का मित्र नहीं होता। आधुनिक युग में इस प्रवृत्ति की प्रधानता के कारण आज की सभ्यता को प्रेम चन्द "महाजनी सभ्यता" कहते हैं और उसका एक सिद्धांत" Business is business " अर्थात् व्यवसाय व्यवसाय है"[३] मानते हैं। वे स्पष्ट कहते हैं - "जहां लेन-देन का सवाल है, रुपये पैसे का मामला है वहां न दोस्ती का गुजर है न मुरौवत का, न इंसानियत का, बिजनेस में कैसी दोस्ती ?"[४] समरकान्त अपने पुत्र अमरकान्त से इसलिए असंतुष्ट है क्योंकि उसने काले खां से चोरी के कड़े नहीं खरीदे थे हैं। वे अमरकान्त को फटकारते हुए कहते हैं "कौन है जिसे धन की जरूरत नहीं है ? साधु सन्यासी तक तो पैसों पर प्राण देते हैं - - - बड़े-बड़े तो धन की उपेक्षा नहीं कर सके, तुम किस खेत की मूली हो।"[५] यही नहीं स्वदेशी के नाम पर व्यवसायियों ने धन कमाने का प्रयत्न किया था। सेठ खूबचन्द ने स्वदेशी आंदोलन के नाम पर खूब पैसा पैदा किया है। "जब से स्वदेशी आंदोलन चला है, मिल के माल की खपत दूनी हो गई है।

१- "गोदान" पृ० २३७

२- "गोदान" पृ० २३८

३- महाजनी सभ्यता (प्रेमचन्द स्मृति) पृ० २६०

४- (प्रेमचन्द स्मृति) महाजनी सभ्यता , पृ० २६०

५- "कर्मभूमि" पृ० १५ ।

सेठ जी ने कपड़े की दर में दो आने रूपये बढ़ा दिये हैं ।"[1] परंतु मजदूरों की मजदूरी घटाने पर तुले हुए हैं । प्रेमचन्द ने १६ अक्तूबर १६३२ के जागरण में 'स्वदेशी की आड़ में लूट ' लेख में करोड़पति मिलमालिकों और व्यवसायियों की इस प्रवृत्ति की आलोचना करते हुए यह अपील की थी कि ग्राहकों की भांति मिल मालिकों का भी कर्तव्य है कि वे त्याग भाव दिखावें । उन्होंने लिखा था - "'स्वदेशी ' राष्ट्र के प्रति व्रत है और इस व्रत का पालन दोनों ओर से होना चाहिए । मिल मालिकों का कर्तव्य है कि वे अपने माल को उसी त्याग भाव से सस्ता बेचने का उद्योग करें, जिस त्याग भाव से ग्राहक उनका माल खरीदता है ।"[2]

प्रेमचन्द अपने युग की मात्र औद्योगिक, व्यवसायियक परिस्थितियों से ही नहीं बल्कि उद्योगपतियों और व्यवसायियों की मनोवृत्ति तथा व्यवसायियक वातावरण से भी भली भांति भिज्ञ थे । इसके साथ ही युग का विकासमान पूंजीवाद, तत्कालीन शासन की औद्योगिक नीति, उद्योगपतियों - व्यवसायियों का राजनैतिक हस्तक्षेप और राजनीति में उनके प्रभाव, मध्यवर्ग के व्यवसायियों के हथकण्डे और हेरफेर आदि सबका बोध प्रेमचन्द को था जिसकी ओर उन्होंने यथासंभव स्थान-स्थान पर संकेत किया है ।

भूपति अथवा भूस्वामी -

राज्य की उन्नति के दैवी सिद्धांत के अनुसार राजा ईश्वर द्वारा भेजा गया प्रतिनिधि था और संपूर्ण राज्य की भूमि में उसका स्वत्व था । राज्य की उत्पत्ति के अन्य सिद्धांतों के विवेचक भी भूमि पर राज्य के नियंत्रण के सिद्धान्त को मानते रहे हैं । जनसंख्या की वृद्धि के कारण कृषि के लिए उपयोगी भूमि में जिन राज्यों, राष्ट्रों अथवा देशों में कमी हुई वहां पर भूमि सम्बन्धी नियंत्रण और व्यवस्था की चिन्ता होने लगी । भारतवर्ष में प्राचीन काल में भूमि का स्वामी राजा था और

१- 'डामुल का कैदी ' मा०स० भाग २, पृ० २३६

२- जागरण १६ अक्तूबर १६३२ 'स्वदेशी की आड़ में लूट ' दे० वि० पृ० भाग ३, पृ० १६५ ।

राज्य की जनता अपनी सुरक्षा तथा अन्य राज्य सम्बन्धी सुविधाओं के बदले अपनी उपज का कुछ अंश राज्य को देती रही है। उपजके अंश का निर्धारण राजा करता था भूमि का स्वामित्व जनता के हाथ में न होकर राज्य के हाथ में था। मध्य युग में भीभूमि का स्वामित्व शासकों अथवा उसके द्वारा नियुक्त जागीरदारों को मिला था। मुगल काल में रैयतवारी व्यवस्था प्रचलित थी जिसके आधार पर किसान भूमि के उपज का अंश ही भूमि के स्वामी को प्रदान करते थे। ब्रिटिश हुकूमत में रैयतवारी व्यवस्था के स्थान पर जमींदारी व्यवस्था को जन्म मिला।

भूपति अथवा भूस्वामी के रूप में सामन्त वर्ग के राजे-महाराजे, देशी रियासतों अथवा राज्यों में अंग्रेजी प्रशासन काल में भी विद्यमान थे। सन् १७७३ ई० में सर्वप्रथम लार्ड कार्नवालिस ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा में भूमि की स्थाई व्यवस्था की जिसके आधार पर उसने भारतवर्ष में जमींदारों के पहले समूह को जन्म दिया। इन जमींदारों का काम मालगुजारी वसूल करना और सरकारी खजाने में जमा करना था।[१] इसके बाद धीरे धीरे जमींदारी-व्यवस्था, संयुक्त प्रान्त, बाम्बे, मध्य प्रांत, तथा पंजाब और मद्रास के ब्रिटिश प्रशासित अनेक भागों में फैलती गई। यह जमींदार नए सामन्त थे जिन्होंने ब्रिटिश प्रशासन के अन्तर्गत अर्थ-व्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इस प्रकार भूपति अथवा भूस्वामियों के रूप में जो वर्ग सामने आये उनमें राजे-महाराजे, ताल्लुकेदार, जमींदार आदि थे। प्रेमचन्द के समय अधिकतर रियासतों और राज्यों में अंग्रेजों का सीधा अधिकार था अथवा उनके एजेन्ट दरबारों में नियुक्त थे। इनकी स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद पूंजीवादी व्यवस्था बलवती हो रही थी जिसके कारण पुराने जमींदार धन संचय के लिए प्रयत्नशील हो रहे थे। राजनैतिक जागरण के कारण प्रेमचन्द युग के जमींदार नए ढंग से शोषण के तरीके खोजने में व्यस्त थे।[२] प्रेमचन्द ने इस सबका चित्रण अपने साहित्य में किया है।

१- ए०आर० देसाई : `सोशल बैकग्राउन्ड ऑव इण्डियन नेशनालिज्म`, १६५६ (बम्बई) दे० पृ० ३५।

२- देखिए आगामी पृष्ठ ----

'रंगभूमि' के भरतसिंह सेवा-समिति के संस्थापक और संचालक हैं। परन्तु खुलकर सरकार के विरुद्ध कार्य ~~कार्य~~ नहीं करना चाहते, क्योंकि वह परम्परागत सुख भोग से अपने को अलग नहीं कर सकते थे। प्रेमचन्द के अनुसार - 'वह ऐश्वर्य का सुख नहीं भोगना चाहते थे, लेकिन ऐश्वर्य की ममता का त्याग न कर सकते थे।'[1] उनके त्यागमय जीवन में भी जायदाद रक्षा की चिन्ता है। वे अपनी जायदाद को 'कोर्ट आफ व वार्डस' में दे देते हैं।[2] सामन्ती-व्यवस्था के सुखों को वे परिवार छूटने पर भी भूले नहीं।[3]

राजा महेन्द्र कुमार सिंह चतारी के राजा हैं - परन्तु स्थाई रूप से बनारस में रहते हैं। वे काशी म्यूनिसिपैलिटी के सदस्य हैं। प्रधान होने पर भी वह जिला कलक्टर मिस्टर जौजफ क्लार्क की इच्छाओं के गुलाम हैं। चाहकर भी वह जॉनसेवक का विरोध नहीं कर सकते और सूरदास की जमीन जॉनसेवक को दिलाने में मदद करते हैं। यों कहिए वे पूरी तरह ब्रिटिश प्रशासन की इच्छा के गुलाम हैं।

जसवन्त नगर के महाराज कहने को तो रियासत के स्वामी हैं। महाराज्य के अनुसार 'राजा तो ईश्वर का अवतार हैं।'[4] परन्तु क्लार्क से वह इतना भयभीत है कि उसके आने की सूचना पाकर वह खड़े होकर कहते हैं - 'आ गया यमदूत, आ गया।

१- 'रंगभूमि', पृ० ४१६

२- 'रंगभूमि', पृ० ४४६

३- 'रंगभूमि' पृ० ५४४

४- 'रंगभूमि' पृ० ३६१

गत पृष्ठ का शेष :

२- "Many of the old traditional Zemidar families who carried on the old methods of showing some consideration and relaxation for the peasants in times of difficulty, broke down under the burden and were at once ruthlessly sold out, —— A new type of sharks and rapacious business men came forward to take over the estates, who were ready to stick at nothing to extract the last anna from the peasantry in order to pay their quota and fill their own pockets."

आर०पी०दत्त: "इण्डिया टुडे" १६४६ (बम्बई) पृ० २१६

कोई है ? कोट पतलून लाओ । तुम जाओ विनय, चले जाओ, रियासत से चले जाओ ।"[१] प्रेमचन्द के पात्र विनय को ऐसे राजा से घृणा हो जाती है क्योंकि इतने नैतिक पतन, इतनी a कायरता से " राज्य करने से डूब मरना अच्छा है ।"[२]

`कायाकल्प ` के राजा विशालसिंह प्रारम्भ में सामन्ती खानदान के एक साधारण से पट्टीदार हैं और गांव में रहते हैं । जगदीशपुर की रानी देवप्रिया के ये चचेरे देवर हैं । गुज़ारे के लिए मिले हुए गांवों को रेहन करके ५० वर्ष इनके परिवार ने काटे हैं । रानी के पट्टीदार होने के कारण सामन्ती मर्यादा के निर्वाह के लिए उन्हें `नौकर चाकर, घोड़ागाड़ी, सभीकुछ रखना a पड़ता था ।"[३] परम्परा की नकल अभी तब चली आती थी । रानी के नि:संतान होने के कारण यह एक मात्र उत्तराधिकारी थे । राज्य मिलने के पहले वे बेगार प्रथा के प्रचण्ड आलोचक हैं तथा प्रजा के सच्चे हितैषी हैं । मुंशी वज्रधर से कहते हैं - `बेचारी प्रजा तबाह हुई जाती है । आप देखेंगे कि मैं इस प्रथा(बेगार) को क्योंकर जड़ से उठा देता हूं । आप देखेंगे, मैं रियासत को क्या से क्या कर दिखाता हूं । काया पलट कर दूंगा । सुनता हूं, पुलिस आये दिन इलाके में तूफान मचाती रहती है । मैं पुलिस को यहां कदम न रखने दूंगा ।"[४] प्रजा की दुख कातरता पर दुखी और चिन्तित रहने वाले ठाकुर विशालसिंह राजा विशालसिंह होते ही प्रजा पर अत्याचार करना प्रारम्भ कर देते हैं । उनके राजतिलक के समय तीन महीने तक सारी रियासत के बढ़ई, मिस्त्री, दरजी, चमार, कहार सब दिल तोड़कर काम करते रहे । यह सब काम बेगार से होता रहा केवल मजदूरों को भोजन मात्र मिल जाता रहा ।"[५] वे राजतिलक के लिए धन वसूली की अनुमति दे देते हैं, जिस वसूली में लूट खसोट, ठोंक-पीट, गाली गलौज तो साधारण बात थी किसानों के बैल, गायें खोल a ली गईं

१- `रंगभूमि ` पृ० ३६२

२- `रंगभूमि ` पृ० ३६२

३- `कायाकल्प ` पृ० ३३

४- `कायाकल्प ` पृ० ३५

५- `कायाकल्प ` पृ० ६१ ।

अलल्ले-तलल्ले खर्च है । पैसे को तो कुछ समझते ही नहीं । नौकरों का वेतन छ: महीने से बाकी पड़ा हुआ है, मगर हीरा-महल बन रहा है ।'[1] कर्ज के बोझ से दबे रहने पर भी खर्च वही, शान वही, वैभव की आकांक्षा वही है ।

प्रेमचन्द जी के 'प्रेमाश्रम' में हमें जमींदारों और ताल्लुकेदारों का जमघट मिलता है । 'प्रेमाश्रम' का मुख्य विषय है जमींदारी प्रथा के दुष्परिणामों को प्रकट करना तथा किसान जीवन की कठिनाई है । इस उपन्यास में उन्होंने जमींदारी के सभी पहलुओं - ऐश्वर्य, विलासिता, शोषण, अन्याय, अधिकार-लिप्सा तथा वैभव लोलुपता आदि पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला है । इस उपन्यास में हम जमींदारों को अनेक रूपों में देख सकते हैं ।

लाला जटाशंकर और प्रभाशंकर का परिवार काशी में औरंगाबाद के निकट रहता है । 'लाला जटाशंकर मरते मरते मर गये, पर जब घर से निकले तो पालकी पर । लड़के-लड़कियों के विवाह किये तो हौसले से । कोई उत्सव आता तो हृदय सरिता की भाँति उमड़ आता था ।'[2] लाला जटाशंकर उस समय के जमींदार हैं जिनमें आधुनिकता का भूत नहीं सवार है अपनी सनातनी मर्यादा के निर्वाह में लगे हुए हैं । अतिथि-सेवा और साधु-सत्कार में उन्हें हार्दिक आनन्द आता है । उनकी मृत्यु के बाद भी प्रजा उनका यशोगान करती हुई दिखाई देती है । मनोहर उनके पुत्र ज्ञानशंकर से अपमानित होने के बाद भी कहता है - 'भैया तब की बातें जाने दो । तब साल-साल की देन बाकी पड़ जाती थी । मुदा मालिक कभी कुड़की बेदखली नहीं करते थे । --- लड़कियों के ब्याह के लिए उनके यहाँ से लकड़ी चारा और २५) बंधा हुआ था ।'[3] बेगार भी लेते थे परंतु उदारता और प्रेम के बश में करके, जौर और जबरदस्ती से नहीं ।[4]

१- 'गोदान' पृ० २३४

२- 'प्रेमाश्रम' पृ० ६

३- 'प्रेमाश्रम' पृ० १४

४- मनोहर - 'जब वह अपने लड़कों की तरह पालते थे तो रैयत भी हँसी-खुशी उनकी बेगार करती थी ।' 'प्रेमाश्रम' पृ० १४ ।

जटाशंकर के बाद उनके छोटे भाई प्रभाशंकर रह गए हैं। प्रभाशंकर का कोई प्रभाव नहीं है। मुहल्ले का बनिया पैसे-धेले की चीज भी इस परिवार के नाम उधार देने के लिए तैयार नहीं था। उनके हाथों में न शक्ति है और न धन परन्तु पुरानी मर्यादा और शान को निभाना चाहते हैं। वे असामियों पर अत्याचार नहीं करना चाहते। वे चाहते हैं - "हम लोग तो जिस प्रकार अब तक निभाते आये हैं उसी प्रकार निभायेंगे"।[1] नए बौद्धिक वातावरण की जमींदारी प्रवृत्ति से उनका मेल नहीं खाता। ज्ञानशंकर के अनुसार उन्होंने "अपना सारा जीवन नष्ट कर दिया। लाखों की जायदाद भोगविलास में उड़ा दी।"[2] परन्तु जटनश प्रभाशंकर उसे कुल मर्यादा की रक्षा समझते हैं। उनके अनुसार ज्ञानशंकर की विलासी प्रवृत्ति सही माने में भोग विलास के लिए प्रयत्नशील है। क्योंकि वे कहते हैं - "हमने दूसरों के लिए बिगाड़ा है, तुम अपने लिए बिगाड़ोगे"[3] लाला प्रभाशंकर अंत तक अपने कुल की मर्यादा की रक्षा के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। वह परिवार में बंटवारा नही चाहते, परन्तु बुद्धिवादी जमींदार ज्ञानशंकर के सामने उनकी नहीं चल पाती।

ज्ञानशंकरतीसरीश्रेणी का जमींदार है, जो पुराने ढंग के सामंती जमींदार प्रभाशंकर के स्थान पर एक नए ढंग के पूंजीपति जमींदार के रूप में हमारे सामने आता है। यह सामन्ती व्यवस्था के जमींदार कुल का जो अब निर्धन हो गया है, सदस्य है। नगर में यह प्रतिष्ठित परिवार अपनी प्रतिष्ठा खो चुका है। ज्ञानशंकर पुरानी मर्यादा को वापस लाना चाहते हैं परंतु बुद्धिवाद के सहारे अधिक से अधिक पूंजी अर्जित करना चाहता है, चाहे वह शोषण द्वारा प्राप्त हो अथवा धोखा देकर। ज्ञानशंकर बी०ए० पास है। "ज्ञानशंकर की बड़ी-बड़ी अभिलाषाएं हैं, वह अपने परिवार को समृद्धि के शिखर पर ले जाना चाहता है। घोड़े फिटन की आकांक्षा,

---

१- "प्रेमाश्रम" पृ० ६
२- "प्रेमाश्रम" पृ० १०
३- "प्रेमाश्रम" पृ० ११
४- "प्रेमाश्रम" पृ० १०

दीवान खाने को सजाने तथा मकान बढ़ाने की इच्छा है ।"[१]

ज्ञानशंकर भौतिक युग का बौद्धिक जमींदार है । वह कानून की शरण लेकर वैज्ञानिक ढंग से शोषण करने का प्रयास करता है । ज्ञानशंकर लखनपुर के आसामियों के ऊपर इजाफा लगान करने का इरादा करके दावा दायर करने के लिए सूची तैयार करवाता है ।[२] वह परिस्थितियों को सोच समझ कर अपने स्वार्थों की पूर्ति का प्रयत्न करता है । अपने साले रामानन्द की मृत्यु पर ज्ञानशंकर के हृदय में नई-नई आकांक्षाएं तरंगे भरने लगती हैं । ज्ञानशंकर साले की मृत्यु की सूचना पाकर सम्पत्ति के सम्बन्ध में कानूनी सलाह लेने के लिए बैरिस्टर ईर्फान अली के पास तत्काल चल देता है ।[४] ज्ञानशंकर गायत्री से प्रेम बढ़ाता है इस प्रेम के पीछे विलासी भावना के साथ ही जायदाद पाना भी है । राय कमलानन्द और ज्ञानशंकर मे मध्य वार्ता इस तथ्य का उद्घाटन करती है ।

राय - तुमने यह जाल किसके लिए फैलाया है ?
ज्ञान - गायत्री के लिए
राय - तुम उससे क्या चाहते हो ?
ज्ञान - उसकी सम्पत्ति और उसका प्रेम ।[५]

ज्ञानशंकर अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए राय साहब को विष दिलवा देता है । वह गायत्री को अपनी जायदाद को धर्म खाते में दिए जाने से तर्क एवं बुद्धि के आधार पर रोकने में सफल होता है । ज्ञानशंकर इतना अधिक स्वार्थी और सम्पत्ति का लोभी है कि उसे अपने अग्रज प्रेमशंकर का अमेरिका से वापस आना अच्छा

१- 'प्रेमाश्रम' पृ० १०
२- 'प्रेमाश्रम' पृ० २३
३- 'प्रेमाश्रम' पृ० १४३
४- 'प्रेमाश्रम' पृ० ६८
५- 'प्रेमाश्रम' पृ० २७४

नहीं लगता । वह राय कमलानन्द से कहता है - 'आप मेरे पिता तुल्य है, आपसे पर्दा क्या है ? इनके आने से मेरे सारे मनसूबे मिट्टीमें मिल गये । मैं समझता था चाचा साहब से अलग होकर दो चार वर्षों में मेरी दशा कुछ सुधर जायगी । मैंने चाचा साहब को अलग होने पर मजबूर किया, जायदाद की बांट भी अपनी इच्छानुसार की, जिसके लिए चाचा साहब की संतान मुझे सदैव कोसती रहेगी । किन्तु सब किया, कराया बेकार गया ।'[1]

ज्ञानशंकर प्रेमशंकर को बिरादरी का भय दिखाता है और कहता है 'मुझे इतना साहस नहीं कि बिरादरी का विरोध कर सकूं ।'[2] प्रेमशंकर घर से अलग गांव में रहने लगते हैं । प्रेमशंकर जमींदार की हैसियत से नहीं रहना चाहते हैं वह इसे स्पष्ट शब्दों में ज्ञानशंकर से कह देते हैं परन्तु ज्ञानशंकर को इससे भी संतोष नहीं ~~हुआ~~ वह सोचता है - 'वह इस्तीफा लिख देते तो बात पक्की हो जाती ।'[3]

ज्ञानशंकर अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए हर तरह का स्वांग रचने वाला हृदयहीन जमींदार होता है । न तो वह धोखा देने में हिचकता है और न ही असामियों को लूटने तथा उन पर अत्याचार करने में ही । वह ताल्लुकेदार बनता है तथा स्थानीय राज्य सभा का मेम्बर भी हो जाता है ।

मायाशंर चौथी कोटि का जमींदार है जो युग और परिस्थिति को पहचान लेता है । वह गांधीवादी प्रेमशंकर द्वारा दीक्षित हुआ है इसी कारण वह गांधीवाद से समझौता करने में ही अपना कल्याण समझता है । मायाशंकर, ज्ञानशंकर, राय कमलानन्द तथा रानी गायत्री की संपत्ति का उत्तराधिकारी ताल्लुकेदार है परन्तु वह पिता की तरह आततायी, अन्यायी और धोखेबाज न होकर अपने को प्रजा का सेवक मानता है । वह भाषण में कहता है - 'ताल्लुकेदार अपनी प्रजा का मित्र, गुरु

१- 'प्रेमाश्रम' पृ० १०७

२- 'प्रेमाश्रम' पृ० ११३

३- 'प्रेमाश्रम' पृ० १४२ ।

और सहायक हैं, मैं बड़ी विनय के साथ निवेदन करूंगा कि वह इतना ही नहीं कुछ और भी है, वह अपनी प्रजा का सेवक भी है।'[१] मायाशंकर प्रेमचन्द का प्रजा हितैषी जमींदार है।

सामंती-व्यवस्था की उपज जमींदारी व्यवस्था में इन चार वर्गों के अलावा प्रेमचन्द कथा-साहित्य में इन तथाकथित कानूनी भूमिपतियों का एक पांचवा-वर्ग भी है, उस वर्ग का प्रतिनिधित्व 'प्रेमाश्रम' के राय कमलानन्द, गायत्री और 'गोदान' के राय अमरपाल सिंह करते हैं। ये लोग विचारों की दृष्टि से समझदार और प्रगतिशील लगते हैं। समय को समझते हैं परंतु प्रजा का शोषण करते जाते हैं। जानकर भी अनजान बने हुए दिखाई देते हैं। राय कमलानन्द और राय अमरपाल के चरित्रों, विचारों एवं कार्यों में अद्भुत मेल दिखाई देता है। दोनों अपने वर्गों के दोषों को स्वीकार करते हैं परन्तु उन दोषों से ऊपर नहीं उठ पाते।

राय कमलानन्द स्वत: कहते हैं - 'मैं मानता हूं कि जमींदार के हाथों किसानों की बड़ी दुर्दशा होती है। मैं स्वत: इस विषय में सर्वथा निर्दोष नहीं हूं, बेगार लेता हूं, डाड बांध भी लेता हूं, बेदखली या इजाफा का कोई अवसर हाथ से नहीं जाने लेता, असामियों पर अपना रोब जमाने के लिए अधिकारियों की खुशामद भी करता हूं, साम, दाम, दण्ड, भेद सभी से काम लेता हूं।'[२]

एजेंट से कहे गए राय कमलानन्द के इन वचनों से साम्य रखने वाले, समान विचारधारा के ऐसे शब्द राय अमरपालसिंह ने प्रोफेसर मेहता से कहे हैं। 'मैं उस वातावरण में पला हूं, जहां राजा ईश्वर है और जमींदार ईश्वर का मंत्री। मैं इसे स्वीकार करता हूं कि किसी को भी दूसरे के श्रम पर मोटे होने का अधिकार नहीं है। उपजीवी होना और लज्जा की बात है। - - - इस व्यवस्था ने हम जमींदारों में कितनी विलासिता कितना दुराचार, कितनी पराधीनता और कितनी

१- 'प्रेमाश्रम' पृ० ३१२।

२- 'प्रेमाश्रम' पृ० ८६।

निर्लज्जता भर दी है, यह मैं खूब जानता हूं। - - - हम अपने असामियों को लूटने के लिए मजबूर हैं।"[१]

राय अमरपाल सिंह राय कमलानन्द से बुद्धि में और भी आगे बढ़े हुए हैं। वे अपने असामी होरी से अपना रोना रोते हैं और अपनी विवशता को प्रकट करते हैं - "मुझे तो यही आश्चर्य होता है कि क्यों तुम्हारी आहों का दावानल हमें भस्म नहीं कर डालता, मगर नहीं, आश्चर्य करने की कोई बात नहीं। भस्म होने में तो बहुत देर नहीं लगती, वेदना भी थोड़ी देर की होती है। हम जौ-जौ, अंगुल-अंगुल और पोर-पोर भस्म हो रहे हैं। - - - मैं तो कभी कभी सोचता हूं कि अगर सरकार हमारे इलाके छीनकर ब हमें अपनी रोजी के लिए मेहनत करना सिखा दे, तो हमारे साथ महान उपकार करे, और यह तो निश्चय है कि अब सरकार भी हमारी रक्षा न करेगी। - - - लक्षण कह रहे हैं कि अब बहुत जल्द हमारे वर्ग की हस्ती मिट जाने वाली है।"[२] राय साहब की ऐसी मीठी मीठी तथा दुख-कातरता से पूर्ण बातें होरी ऐसे भोले-भाले किसानों का मन जीतने के लिए पर्याप्त है। बात यह थी कि उत्सव के लिए होरी के गांव से ही राय साहब को कम से कम पांच सौ रूपये चाहिए थे। राय अमरपालसिंह ऐसे जमींदारों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो सफल बहेलिए की भांति पक्षी के सामने दाना फेंक कर उसका भक्षण करने का यत्न करते थे। राष्ट्रीय आंदोलन की तीव्र गति और जनता की जागृति 'गोदान' के रचना काल तक जमींदारों द्वारा खुला डाका डालने में बाधक थी।

किसान और मजदूर

प्राचीन काल से ही भारतीय जीवन की अर्थ-व्यवस्था के आधार भभारतीय गांव थे। भारतीय गांव स्वायत्त संस्था के रूप में अर्थ-व्यवस्था के अंग थे। लेकिन ब्रिटिश-प्रशासन के अन्तर्गत ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था विनष्ट हो गई। एक भी वर्ग

१- 'गोदान', पृ० ५७-५८

२- 'गोदान', पृ० १८-१९।

फीट भूमि ऐसी नहीं थी जिसकी व्यवस्था ग्रामीण स्वतंत्र रूप से कर सकते ।[१] ब्रिटिश राजकर-सम्बन्धी नीति तथा भूमि-व्यवस्था में प्राचीन व्यवस्था तथा ग्रामीण संगठन को विनष्ट कर दिया जिसके अन्तर्गत भारतीय किसान युगों से रहता चला आया था । वह ढांचा भ जो सामाजिक संगठन की रक्षा समस्त बाहरी प्रभावों से करता था टूट गया और व्यक्तिगत, सम्पत्ति, व्यक्तिगत साहस, धन-संचयन तथा तकनीकी प्रगति के आधार पर संगठित समाज के निर्माण का रास्ता खुल गया ।[२] इस नए परिवर्तन का प्रभाव भारतीय गांवों को प्रभावित नहीं कर सका । विश्व के अन्य भागों के किसानों की भांति भारतीय किसान वैज्ञानिक उपकरणों के प्रयोग को नहीं जान सका । दुनिया में होने वाले वैज्ञानिक आविष्कारों के सम्बन्ध में यह जान भी नहीं सका । मानसून पर ही वह आधारित भ रहा । अपनी फसल के अच्छा होने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करता रहा ।[3] भारतीय ग्रामों पर इसका

१- "Both before and after the Aryn conquest of India, autonomous village institutions have been a consistent feature of the public life of India. This is true as much of the Aryan kingdoms of the north of the Tamil kingdoms of the south. But under British rule these institutions have been destroyed and the long arm of the bureaucracy stretches into the remotest village. There is not one square foot of land where the people feel that they are free to manage their own affairs. 18.

सुभाष चन्द्र बोस : "द इण्डियन स्ट्रगल", १९४८ (कलकत्ता) पृ० १८ ।

२- "The British fiscal policy and land system destroyed the ancient institutions and the rural organisation under which the Indian cultivator had lived for centuries. The shell which had protected the social organisation from all external influences was thus broken and the way was opened for the establishment of a society organised on the basis of private property, individual enterprise, accumulation of capital, and technological progress. 357.

डा० ताराचन्द : "हिस्ट्री ऑफ द फ्रीडम मूवमेन्ट इन इण्डिया", १९६१, (नई दिल्ली) पृ० ३५७ ।

३- आगामी पृष्ठ पर देखिए -

अत्यन्त बुरा प्रभावहुआ । गांव की जनता गरीब होती गई । गांव का जीवन स्तर गिरता गया और ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था गिरावट की चरम सीमा पर पहुंच गई ।[१] सामन्तों और जमींदारों के अत्याचार और अनाचार बढ़ते रहे । आर्थिक शोषण की प्रतिक्रिया चलती रही । सामंतों तथा जमीदारों ने किसानों को चूसने के लिए नए नए हथकण्डे अपनाए जिसका उल्लेख भूपति अथवा भूस्वामी शीर्षक पर विचार करते समय किया जा चुका है । ग्रामीणों की दशा दिन प्रतिदिन खराब होती गई । १६२०-२१ के भारतीय गांवों के दौरे के अनुभव का चित्रण करते

१- "So far as economic functioning was concerned, the village was a self-sufficient unit. Its main productive activity was agriculture. Arts and crafts were ancillary, and trading, banking, etc., subserved the principal business of raising different kinds of crops and arranging their disbursement and consumption. The rural standards of living were low and the village economy hardly rose above the subsistence level. 110.

डा० ताराचन्द : 'हिस्ट्री ऑव द फ्रीडम मूवमेन्ट इन इण्डिया', १६६१, (नई दिल्ली), पृ० ११० ।

गत पृष्ठ का शेष :

३- Like his brothers in other parts of the world, the Indian son of the soil possesses a remarkable intuitive sense which serves him well in his battle with nature. But whereas agriculturists elsewhere are fortifying this sense with all the knowledge that science can spread, the Indian peasant is still living the life, adopting the same methods, of his forefathers generations ago.

Then the peasant lived in a small village and his life was circumscribed by what happened in that little unit. He tended his land, adapted his labours to the vagaries of the monsoon. Prayed to his God that the harvest would be fruitful and the buyers plentiful, and left it at that. His mind did not perceive, and could not perceive, the changes which were being wrought by a contracting world. 214.

मार्गेरीटी बार्न्स: 'इण्डिया टु डे टुमारो', १६३७ (लन्दन) पृ० २०६ ।

हुए नेहरू ने लिखा है कि पहली बार हम लोगों ने भारतीय ग्रामीणों को मिट्टी के घरोंदों तथा भूख की छाया में जीवन बिताते हुए देखा । भारतीय अर्थशास्त्र को हमने इन यात्राओं में किताबी अध्ययन की अपेक्षा निकट से परखा जो कि बिलकुल भिन्न था ।[१] दूसरे स्थल पर भूमि-व्यवस्था की आलोचना करते हुए लिखा है कि कृषि-ऋण की प्रगतिशील प्रगति स्वत: भूमि-व्यवस्था के अस्थायित्व तथा असुदृढ़ताकी साक्षी थी । जनसंख्या का बहुमत साधन विहीन था और भुखमरी के डण्डे के नीचे जीवन व्यतीत कर रही थी ।[२]

किसानों की भांति मजदूरों की दशा भी अत्यन्त दयनीय थी । ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था के विघटन से ग्रामीण उद्योग-धंधों को भारी आघात लगा था जिसके परिणामस्वरूप उद्योगधंधों पर लगे हुए कामगर बेकार हो रहे थे । खेती की दशा अपने आप दयनीय होती जा रही थी ऐसी अवस्था में मजदूरों की खेती में खपत असम्भव थी । इस सम्बन्ध में सुप्रसिद्ध इतिहासकार डा० ताराचन्द ने लिखा है कि इंगलैण्ड में किसान आंदोलन ने मजदूरों को भूमिविहीन करके तथा बेकार बनाकर उन्हें अत्यन्त कठिनाई और दयनीय स्थिति में छोड़ दिया था परन्तु औद्योगिक क्रांति ने शीघ्र ही मजदूरों को खपा लिया । भारतवर्ष में मजदूर उद्योगों से अलग कर दिया गया था लेकिन यहां पर उन मजदूरों की खपत के लिए न तो उद्योगों का विकास हुआ था और न ही कृषि को विस्तार मिला । इस प्रकार से भारतीय अर्थ-व्यवस्था विदेशी ~~औपनिवेशिक~~ शोषण- पद्धति का उपकरण मात्र हो गई थी ।[३] स्थिति यह थी

१- जवाहरलाल नेहरू : 'द डिस्कवरी ऑव इण्डिया', १६६७ (बम्बई, नई दिल्ली आदि), पृ० ३८३ ।

२- जवाहर लाल नेहरू : ' ऐन आटोबॉयोग्रैफी ' १६६२ (लंदन) पृ० ३०२ ।

३- "In England, too, the agrarian revolution had thrown labour out of land and increased unemployment, causing great misery and hardship. But the Industrial Revolution which followed, soon absorbed the unemployed labourers in the newly established manufacturing industries, so that the period of

Contd......

कि प्रेमचन्द के समय भारतीय किसान और मजदूर दोनों की आर्थिक स्थिति अत्यंत दयनीय थी । दोनों सरकार की शोषण नीति और उपेक्षा के शिकार थे ।

प्रेमचन्द किसानों और मजदूरों की इस दयनीय दशा से परिचित थे । किसानों और मजदूरों का शोषण करने वाली सरकार जमींदारों, सरकारी मुलजिमों महाजनों या साहूकारों के हथकंडों से भी वे भली भांति परिचित थे । उन्होंने अप्रैल १९३० के हंस में लिखा था - "अंग्रेजी राज्य में गरीबों, मजदूरों और किसानों की दशा जितनी खराब है और होती जा रही है, उतनी समाज के किसी और अंग की नहीं । - - - लेकिन यह सब कुछ होने पर भी सरकार के हाथों किसी सम्प्रदाय की इतनी बर्बादी नहीं हुई है जितनी किसानों और मजदूरों की खासकर किसानों की । - - - हमारे राष्ट्र का सबसे बड़ा भाग अन्याय पीड़ित है । सब छोटे-बड़े उसकि को नोचते हैं, उसी का रक्त और मांस खाकर मोटे होते -हैं, पर कोई उसकी खबर नहीं लेता ।"[1] अपने युग के ग्रामीण किसानों और मजदूरों का चित्र प्रस्तुत करते हुए उन्होंने १९ दिसम्बर १९३२ के जागरण मे लिखा था - "भारत के अस्सी फी सदी आदमी खेती करते है । कई फी सदी वह हैं जो अपनी जीविका के लिए किसानों के मुहताज हैं जैसे गांव के बढ़ई, लुहार आदि । राष्ट्र के हाथ में जो कुछ विभूति है, वह इन्हीं किसानों और मजदूरों की मेहनत का सदका है । हमारे स्कूल और विद्यालय, हमारी पुलिस और फौज, हमारी अदालतें और कचहरियां, सब इन्हीं की कमाई के बल पर चलती हैं, लेकिन वही जो राष्ट्र के अन्न और धनदाता हैं, भरपेट अन्न को तरसते हैं, जाड़े पाले में ठिठुरते हैं

१- हंस अप्रैल १९३० दे०प्र०भाग २ पृ० ४२

गत पृष्ठ का शेष :-

unemployment and hardship was cut short. In India, on the other hand, labour was released from industry, but there was uncomparable development of industries or extension of agriculture to absorb that labour. The economic development of the country became an appendage of a foreign exploitation system.

डा० ताराचन्द : "हिस्ट्री ऑव द फ्रीडम मूवमेन्ट इन इण्डिया, १९६१, (नई दिल्ली), पृ० ३९१ ।

और मक्खियों की तरह मरते हैं। ---- आज आप किसी गांव में निकल जाइए, आपको खोजने से भी हृष्ट-पुष्ट आदमी न मिलेगा, न किसी की देह पर मांस है न कपड़ा। मानों चलते फिरते कंकाल हों। और तो और उन्हें रहने को स्थान नहीं है। उनके द्वारों पर खड़े होने तक की जगह नहीं, नीची दीवारों पर रक्खी हुई फूस की झोपड़ियों के अंदर वह, उसका परिवार, भूसा, लकड़ी, गाय बैल सब-के-सब बढ़े हुए जीवन के दिन काट रहे हैं।"[1]

प्रेमचन्द के 'प्रेमाश्रम' और 'गोदान' उपन्यास तत्कालीन ग्रामीण जीवन विशेष रूप से किसान-जीवन की अमर गाथाएं हैं। 'प्रेमाश्रम' के किसान जमींदारी अत्याचार के शिकार हैं। जमींदार के रूप में ज्ञानशंकर किसानों का हर तरह से शोषण करना चाहता है। करिन्दा गौस खां और पियादा गिरधर महाराज जमींदारों के एजेन्ट हैं जो शोषण के लिए नियुक्त किए गए हैं। ज्ञानशंकर की सलाह है 'आप लोगों को तो सैकड़ों हथकण्डे मालूम हैं, किसी भी शिकंजे में कस लीजिए।"[2] ज्ञानशंकर इजाफा लगान बढ़ाने के लिए कानून की शरण ग्रहण करता है। वह किसानों को तबाह करके उनको लाचार कर देना चाहता है। मजिस्ट्रेट ज्वालासिंह की पत्नी शीलमणि के माध्यम से सिफारिश कराकर वह मुकदमें में जीतना चाहता है।[3] हारने पर वह पुन: अपील करता है। 'ज्ञानशंकर को अपील के सफल होने का पूरा विश्वास था। उन्हें मालूम था कि किसानों में धनाभाव के कारण अब बिलकुल दम नहीं है।"[4] ज्वालासिंह की गुप्त सहायता से किसानों को पैरवी के लिए धन मिल जाता है। किसानों की विजय होती है। यह प्रेमचन्द की आदर्श स्थापना है। वस्तुस्थिति यह थी कि सरकार, सरकारी अफसर भी

१- 'जागरण' १६ दिसम्बर १६३२ दे० वि० पु० भाग २, पृ० ४८६।

२- 'प्रेमाश्रम' पृ० १६

३- 'प्रेमाश्रम' पृ० १४६

४- 'प्रेमाश्रम' पृ० १६४।

जमींदारों के सहयोगी थे । किसानों को शोषण करने में वह भी पीछे नहीं थे ।
देवरीवार का एक किसान अपनी बुढ़िया माता को अस्पताल लिए जा रहा था कि बीच में सरकारी लश्कर के लादने के बेगार में पकड़ लिया जाता है । उसी के शब्दों में "सड़क के किनारे बगीचे में डिप्टी साहब का लश्कर उतरा है, वहां पहुंचा तो चपरासियों ने गाड़ी रोक ली और हमारे कपड़े-लत्ते फेंक-फांककर लकड़ी लादने लगे । कितनी अरज-बिनती की, बुढ़िया म बीमार है, मर रात का चला हूं, आज अस्पताल नहीं पहुंचता तो कल न जाने, उसका क्या हाल हो । मगर कौन सुनता है ? मैं रोता ही रह रहा, वहां गाड़ी लद गयी " - - - कल अस्पताल जाऊंगा ।[1] यह थी स्थिति तत्कालीन हुकूमत की । किसान जमींदार और सरकार के शोषण से ही ग्रस्त नहीं है बल्कि जमींदारों के निठल्ले रिश्तेदार नातेदार भी उनके श्रम के हिस्सेदार हैं । गायत्री के शब्दों में "जमींदारी का घमण्ड सबको है, सभी असामियों पर रोब जमाना चाहते हैं, उनका गला दबाने के लिए सब तत्पर रहते हैं । बेचारे किसानों को, जो अपने परिश्रम की रोटियां खाते हैं, इन निठल्लों का अत्याचार इसलिए सहना पड़ता है कि मेरे दूर के रिश्तेदार हैं ।"[2]

किसान मुकदमेबाजी, जालसाजी से त्रस्त है । लगान के बोझ से दबा वह जहां एक ओर सामंतवर्ग और उनके कारिन्दों के अत्याचार से परेशान था वहीं दूसरी ओर वह साहूकारों, महाजनों और पुलिस अधिकारियों के शोषण का शिकार भी था । ठोकर, पीड़ा और भूख उनका इनाम था ।[3] मुकदमेबाजी तथा जमींदारों के जालसाजी की कहानी प्रेमचन्द ने 'प्रेमाश्रम' उपन्यास में की है । लगान के बोझ का चित्रण 'कर्मभूमि' उपन्यास में किया गया है । जमींदारों के शोषण, साहूकारों और महाजनों द्वारा किसान के शोषण और पुलिस द्वारा अत्याचार की

१- 'प्रेमाश्रम' पृ० ५३

२- 'प्रेमाश्रम' पृ० ८२

३- जवाहर लाल नेहरू : "ऐन आटोबॉयोग्रैफी", १९६२ (बम्बई, दिल्ली आदि), पृ० ५२ ।

की कहानी 'गोदान' उपन्यास में होरी के माध्यम से कही गई है। होरी बुद्धिजीवी जमींदार अमरपालसिंह के शोषण का शिकार तो है ही वह भिंगुरीसिंह, पटेश्वरी, पंडित दातादीन, नोखेराम, मंगरू साह और दुलारी सहुआइन ऐसे आधा दर्जन महाजनों के गोल से घिरा हुआ है। किसान होरी अपने शोषण की कहानी स्वत: भोला से कहता है - "अनाज तो सब का सब खलिहान में ही तुल गया। जमींदार ने अपना लिया, महाजन ने अपना लिया। मेरे लिए पांच सेर अनाज बच रहा। यह भूसा तो मैंने रातों रात ढोकर छिपा दिया था, नहीं तिनका भी न बचता।"[1] भाई के द्वेष ने हीरा द्वारा होरी की गाय को विष दिला दिया है। पुलिस के दरोगा के लिए इससे अच्छा सुअवसर और क्या हो सकता था, वह आ धमके। भिंगुरीसिंह, पटेश्वरी, दातादीन और नोखेराम बीच के दलाल बन गए। होरी को अपनी गाय खोने के साथ ही दरोगा को घूस और घूस के साथ इन नेताओं की दलाली भी देनी पड़ती है।[2] किसान होरी अन्ततोगत्वा मजदूर बनता है और मजदूर की हैसियत से अपने जीवन का बलिदान करता है।[3]

गांव के मजदूरों की स्थिति किसानों से अच्छी नहीं थी। वे सामन्ती परम्परा की बेगार-प्रथा के शिकार थे। इसका चित्रण प्रेमचन्द ने 'कायाकल्प' उपन्यास में किया है। विशालसिंह का राजतिलक होने वाला है। "तीन महीने तक सारी रियासत के बढ़ई, मिस्त्री, दरजी, चमार, कहार सब दिल तोड़कर काम करते रहे। - - - बहुत कुछ काम बेगार से चल गया था। मजूरों को भोजन मात्र मिल जाता था।"[4] चक्रधर को मजदूरों से सहानुभूति तो थी परन्तु वे उनकी

१- 'गोदान' पृ० २८

२- 'गोदान' दे०पृ० ११६-१६

३- किसान जीवन के सम्बन्ध में विस्तार के लिए दे० अध्याय ३ 'प्रेमचन्द साहित्य में गांव और शहर : समाज शास्त्रीय दृष्टि' का ग्रामीण पक्ष।

४- 'कायाकल्प' पृ० ६१।

हिमायती नहीं कर सकते थे । 'चक्रधर को रोज खबरें मिलती रहती थीं कि प्रजा पर बड़े-बड़े अत्याचार हो रहे हैं, लेकिन वह राजा साहब से शिकायत करके उन्हें असमंजस में न डालना चाहते थे । अक्सर खुद जाकर मजदूरों और कारीगरों को समझाते थे ।'[१] बेगार का क्रम चलता रहा । मजदूर पिसते रहे । प्रेमचन्द ने इस सम्बन्ध में लिखा है - 'वे मजदूर, जो छाती फाड़-फाड़कर काम कर रहे थे, भूखों मरते थे । कोई उनकी खबर तक न लेता था । काम लेने को सब थे, पर भोजन पूछने वाला कोई न था । चमार पहर रात रहे घास छीलने जाते, मेहतर पहर रात से सफाई करने लगते, कहार पहर रात से पानी खींचना शुरू करते, मगर कोई उनका पुरसा हाल न था -- दिन भर धूप में जलते, रात भर क्षुधा की आग में ।'[२] यह तो राजदरबार की स्थिति थी । गांव के छोटे-छोटे जमींदार मजूरों से बेगार लिया करते थे । पूरे दिन की मजदूरी कुछ छटांक अनाज हुआ करती थी । उनकी स्त्रियों की मजदूरी दिन भर की कुछ रोटियां हुआ करती थीं । इस प्रकार से गांव के कामगर मजदूरों की हालत किसानों से भी दयनीय थी । प्रेमचन्द ने इसका संकेत 'कायाकल्प' के ऊपर केइ कथनों में किया है ।

नगर जीवन में भी मजदूरों की स्थिति से प्रेमचन्द परिचित थे । उद्योगों के आसपास उनके पतित जीवन की संभावनाओं का उन्हें बोध था । 'रंगभूमि' में वे औद्योगीकरण के विरोध में संघर्ष करते हुए दिखाई देते हैं । इस संघर्ष के मूल में एक कारण मजदूरों की आचरण भ्रष्टता, नैतिक पतन, दयनीय स्थिति और सांस्कृतिक पतन भी है । उद्योग-युग में कारखाने की स्थापना को वे रोक नहीं सके हैं और जिसका उन्हें भय था वह मजदूरों के जीवन में व्याप्त हो चुका है । 'मिल के परदेशी मजदूर, जिन्हें न बिरादरी का भय था, न सम्बन्धियों का लिहाज, दिन भर तो मिल में काम करते, इस क रात को ताड़ी शराब पीते । जुआ नित्य होता था । - - - एक छोटा मोटा चकला आबाद हो गया था ।'[३] 'गोदान' में

१- 'कायाकल्प' पृ० ६१

२- 'कायाकल्प' पृ० ६८

३- 'रंगभूमि' पृ० ४३६ ।

गोबर के साथ मिल में काम करने वाले मजदूर काम से वापस आकर ताड़ी शराब में मस्त रहते हैं और जुआ खेलते हैं ।[१] मजदूर एक ओर अपनी दयनीय स्थिति और सामाजिक उपेक्षा के कारण स्वतः अपने को कुसंस्कारों के गर्त में डाल रहा था दूसरी ओर उसके शोषण के षडयंत्र चलते रहते । 'गोदान' के खन्ना की मिल में मजदूरों की मजदूरी शक्कर में ड्यूटी लग जाने से इसलिए घटा दी जाती है क्योंकि "ड्यूटी से अगर पांच की हानि थी, तो मजूरी घटा देने से दसका लाभ था ।"[२] बेकारी की यह हालत है कि मजदूरों का दल मालिकों की तरफ से फौजदारी तक करने के लिए तैयार है ।[३] 'डामुल का कैदी' कहानी के सेठ खूबचन्द भी मिल के मजदूरों की मजदूरी घटाने का ऐलान करते हैं । प्रेमचन्द के अनुसार 'वास्तव में यह चाल पुराने आदमियों को भगाने के लिए चली जाती थी ।"[४] पुराने मजूरों को मजूरी देने से नए मजदूर के कम वेतन पर मिलने की संभावना है । रोजनदारी या प्रतिदिन की फुटकर मजदूरी पर काम करने वाले शहर में आए हुए देहाती मजदूरों के विषय में प्रेमचन्द 'गोदान' में लिखते हैं -"दिन भर शहर में पिसते थे । पहर रात गये घर पहुंचते थे और जो कुछ रूखा सूखा मिल जाता था, खाकर पड़े रहते थे । प्रातः काल फिर वही चरखा शुरू हो जाता था । जीवन नीरस, विरान है, केवल एक ठर्रा मात्र हो गया था ।"[५] इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रेमचन्द युग के औद्योगिक मजदूरों तथा प्रतिदिन की मजदूरी पर काम करने वाले दोनों प्रकार के मजदूरों की स्थिति और उनके शोषित-जीवन से परिचित थे ।

१- 'गोदान' पृ० २७९

२- 'गोदान', पृ० २८३

३- 'गोदान' पृ० २८५-८६

४- 'डामुल का कैदी' मा०स० भाग २ पृ० २३९

५- 'गोदान' पृ० १४३ ।

आर्थिक जागरण और प्रेमचन्द

किसी भी राष्ट्र या देश के अर्थ की धुरी मूल रूप से किसान और मजदूर होते हैं। राष्ट्र की आर्थिक प्रगति के आधार-स्तम्भ राष्ट्र के किसान और मजदूर होते हैं। राष्ट्र का उत्पादन और राष्ट्र की औद्योगिक प्रगति इन्हीं के ऊपर निर्भर होती है। विश्व के राष्ट्रों में जैसे ही सामंतवादी और पूंजीवादी व्यवस्था को जन्म मिला वैसे ही किसानों और मजदूरों का शोषण प्रारम्भ हुआ और यह युगों तक चलता रहा। भारतवर्ष में भी शोषण की यह प्रक्रिया शताब्दियों तक चलती रही। आधुनिक युग विशेष रूप से बीसवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध विश्व में इस शोषण के विरुद्ध संघर्ष का युग रहा है। १९१७ में रूस में किसानों और मजदूरों की क्रांति ने रूस में किसान-मजदूर सरकार की स्थापना करने में सफलता प्राप्त की। चीन में भी आर्थिक क्रांति हुई और वहां पर साम्यवादी सरकार की स्थापना हुई। १९१८ के पूर्व डा० टाड ऐसे प्रसिद्ध इतिहासकार और सामाजिक विचारक ने भी यह घोषणा की थी कि सम्प्राप्ति प्रगति नहीं है और न ही धन की वृद्धि ही प्रगति है बल्कि धन का विभाजन भी प्रगति है।[१] दूसरे स्थान पर उन्होंने स्पष्ट कहा है कि 'धन सामाजिक प्रगति की मुख्य शक्ति हो सकती है यदि

१- "Achievement is not progress : not mere increase of wealth but increased socialization of wealth (well-being) is desirable. Or, as a young Progressive puts it, what the people demand is not a trebled production of coal, not more smoke, not more ashes, but more heat; not a statistical demonstration of rising national wealth, but distributed wealth, more economic satisfactions more widely distributed."

डा० आर्थर जेम्स टाड : 'थ्योरीज ऑव सोशल प्रोग्रेस', १९१८ (न्यूयार्क), पृ० १९१।

वितरण और उपभोग का ढंग जनवर्ग की आवश्यकताओं के आधार पर निर्मित होकर जनता को सामाजिक सुअवसर प्रदान करे । इस तरह की व्यवस्था एक प्रकार की संस्कृति का निर्माण करेगी जो घृणा और अन्तर न प्रदान करके सामाजिक सुदृढ़ता और अन्तराष्ट्रीय शान्ति प्रदान करेगी ।[१] ड्यूट सैन्डर्सन के अनुसार इस युग में अमेरिका के किसान भी संकट के समय संगठन की शक्ति पर विश्वास करने लगे हैं ।[२]

भारतवर्ष में भी बीसवीं शताब्दी आर्थिक जागरण का युग है । बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में लाला लाजपतराय, तिलक, गोखले, अरविन्द और वरीन्द्र घोष के नेतृत्व में चलने वाले राष्ट्रीय आंदोलन का मुख्य आधार स्वदेशी और बहिष्कार था । निश्चित रूप से राष्ट्रीय जागरण के साथ आर्थिक जागरण का सूत्रपात हो चुका था । प्रेमचन्द ने जमाना, जून १६०५ में देशी चीजों का प्रचार कैसे बढ़ सकता है ।" तथा आवाजें खल्क ", १६ नवम्बर १६०५ में "स्वदेशी आंदोलन लेख लिखकर आंदोलन के इस अंश का समर्थन किया था और आर्थिक स्वतंत्रता की आवश्यकता पर बल दिया था ।[३] प्रेमचन्द रूस की आर्थिक क्रांति से प्रभावित थे उन्होंने "जमाना " फरवरी १६१६ के अंक में लिखा था - "नये जमाने ने एक नया पन्ना पलटा है । आने वाला जमाना अब किसानों और मजदूरों का है । दुनिया की रफतार इसका साफ सबूत दे रही है । हिन्दुस्तान इस हवा से बेअसर नहीं रह सकता ।"[४] रूस की चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा था "इनकलाब के पहले कौन जानता था कि रूस की पीड़ित जनता में इतनी ताकत छिपी हुई है ?[५] इसके बाद ही प्रेमचन्द ने २१ दिसम्बर १६१६ को जमाना के संपादक मुंशी दयानारायन निगम के नाम अपने पत्र में लिखा था - "मैं अब करीब करीब बाल्शेविस्ट उसूलों का कायल

१- डा० आर्थर जेम्स टाड ः "थ्योरीज ऑव सोशल प्रोग्रेस", १६१८, (न्यूयार्क) पृ० १६४ ।

२- ड्यूट सैन्डर्सन : "रिसर्च मैमोरन्डम आन रूरल लाइफ इन डेप्रेसन", १६३७ (न्यूयार्क), पृ० १४५

३- दे० विविध प्रसंग भाग १ पृ० १७-२२

४- जमाना फरवरी १६१६ दे० विविध प्रसंग भाग १ पृ० २६२

५- जमाना फरवरी १६१६ दे० वि० प्र० भाग १ पृ० २६२ ।

हो गया हूं ।"[१] स्पष्ट है प्रेमचन्द गरीबों के रहनुमा, साथी और वकील थे। उन्होंने १७ फरवरी १९२३ को दयानारायन निगम के नाम अपने पत्र में लिखा था - "मैं तो उस आने वाली पार्टी का मेम्बर हूं जो कौतहुन्नास (छोटे लोगों) की सियासी तालीम को अपना दस्तूर-उल-अमल (कार्य प्रणाली) बनायें।"[२]

प्रेमचन्द वैचारिक रूप से ही मजदूरों, किसानों और गरीब जनता के साथी नहीं थे बल्कि साहित्य के माध्यम से भी उनका साथ दिया है। फरवरी १९१९ 'जमाना' में उन्होंने नब्बे फी सदी वाले किसानों के देश में किसानों की दुर्दशा पर विचार करते हुए लिखा था - "क्या यह शर्म की बात नहीं है कि जिस देश में नब्बे फी सदी आबादी किसानों की हो उस देश में कोई किसान सभा कोई किसानों की भलाई का आंदोलन, कोई खेती का विद्यालय, किसानों की भलाई का कोई व्यवस्थित प्रयत्न न हो।"[३] सामन्त वर्ग के प्रतिनिधियों को उनके अन्याय के प्रति उन्हें सचेत करते हुए उनसे अत्याचार और शोषण को रोकने की अपील करते हुए उन्होंने लिखा था - "हमारे ताल्लुकेदार और जमींदार, चाहे वे अंधेरे अवध के हो या उजाले बंगाल के, सबसे ज्यादा दोष है। उचित है कि वे तत्कालिक हानि की चिन्ता न करके किसानों की भलाई और सुधार की कोशिश करें, स्वेच्छा से उन अधिकारों से हाथ खींच लें जो उन्हें किसानों पर प्राप्त है। उनसे बेगार लेना छोड़ दें, उनके साथ आदमियत का बर्ताव करें, इजाफा और बेदखली से परहेज करें, ताकि जनता के दिलों में उनकी इज्जत और उनके प्रति श्रद्धा हो।"[४] प्रेमचन्द का 'प्रेमाश्रम' उपन्यास इसके बाद लिखा गया था। इस उपन्यास में उन्होंने जहां एक ओर प्रेमशंकर के माध्यम से किसानों की दशा में सुधार का प्रयत्न किया है वहीं दूसरी ओर उन्होंने लखनपुर के किसानों की एकता और संगठन के रूप में किसानों को जागृत करने का प्रयत्न भी किया है।

१- चिट्ठी पत्री भाग १ पृ० ९३

२- दे० चिट्ठी पत्री भाग १ पृ० १२९-३०

३- जमाना फरवरी १९१९ वि०पु० भाग १ पृ० २६८।

४- जमाना फरवरी १९१९ दे० वि० पु० भाग १ पृ० २६८

५- 'प्रेमाश्रम' पृ० २०२।

प्रेमशंकर के माध्यम से उन्होंने आदर्श कृषि शाला का निर्माण किया है। `प्रेमशंकर की कृषिशाला अब नगर के रमणीय स्थानों की गणना में थी। - - - अब अपनी इच्छानुसार नई नई फसलें पैदा करने, नाना प्रकार की परीक्षाएं करते, -- जिन खेतों में मुश्किल से पांच सात मन उपज होती थी। वहां अब पन्द्रह-बीस मन का औसत पड़ता था।`[1] यही नहीं `प्रेमशंकर अक्सर कृषकों की आर्थिक दुरवस्था पर विचार किया करते थे। अन्य अर्थशास्त्र वेत्ताओं की भांति वह कृषकों पर फजूल खर्ची, आलस्य, अशिक्षा या कृषि विधान से अनभिज्ञता का दोष लगाकर इस प्रश्न को हल न करते थे।`[2] प्रेमशंकर नए ढंग की खेती पर जोर देना चाह रहे हैं। वे सरकार के सामने भी कृषि सुधार का प्रस्ताव रखना चाहते हैं जिसके लिए वे लखनऊ में रामकमलानन्द के यहां आयोजित हिज एक्सलेंसी की पार्टी में कृषि सम्बन्धी एक लेख पढ़ना चाहते हैं। परन्तु उस समय सरकार की कृषि और कृषकों के प्रति उपेक्षित नीति से परिचित प्रेमचन्द निबन्ध के सम्बन्ध में लिखते हैं - `ऐसी सभा में अपना निबन्ध पढ़ना अंधों के आगे रोना था।`[3] `पशु से मनुष्य` कहानी में प्रेमशंकर सहकारिता के पक्षधर हैं। वे श्रमिकों की भांति ही वस्त्र पहनते हैं। खेती की संयुक्त आय में से २० मासिक गरीबों की औषधियों के लिए निकाल देते हैं। उनके अनुसार `कालचिन्हों से अब ज्ञात होता है कि यह प्रतिद्वन्दिता अब कुछ ही दिनों की मेहमान है। इसकी जगह अब सहकारिता का आगमन होने वाला है। - - -- सहकारिता ही हमें इस संकट से मुक्त कर सकती है।`[4] आर्थिक जागरण के इस सृजनात्मक पक्ष के अलावा प्रेमचन्द ने अपनी आर्थिक स्थिति के प्रति जागरूक और संघर्ष के लिए प्रयत्नशील कृषकों का भी चित्र प्रस्तुत किया है। `प्रेमाश्रम` का कादिर जमींदार सरकार और हाकिमों की कुदृष्टि और अपने अस्तित्व से परिचित है। उसके अनुसार `अपना कमाते हैं, अपना खाते हैं, फिर भी जिसे

१- `प्रेमाश्रम` पृ० २०२

२- `प्रेमाश्रम` पृ० २०३

३- `प्रेमाश्रम` पृ० १२२

४- `पशु से मनुष्य` दे० मा० सा० भाग २, पृ० १०६।

देखो धौंस जमाया करता है, सभी की गुलामी करनी पड़ती है। क्या जमींदार, क्या सरकार, क्या हाकिम सभी की निगाह हमारे ऊपर टेढ़ी है और शायद अल्लाह भी नाराज है। नहीं तो क्या हम आदमी नहीं है कि कोई हमसे बड़ा बुद्धिमान है।"[1] इसी उपन्यास के युवक बलराज को विदेशों में किसानों के संघर्ष और उनकी शक्ति का ज्ञान है। उसके अनुसार -"तुम लोग तो ऐसी हंसी उड़ाते हो, मानों काश्तकार कुछ होता ही नहीं। वह जमींदार की बेगार ही भरने के लिए बनाया गया है, लेकिन मेरे पास भी पत्र आता है, उसमें लिखा है कि रूस देश में काश्तकारों का राजा है, वह भी जो चाहते हैं करते हैं। उसी के पास कोई और देश बेलगारी है। वहाँ अभी हाल की बात है, काश्तकारों ने राजा को गद्दी से उतार दिया है और अब किसानों और मजदूरों की पंचायत राज करती है।"[2] `प्रेमाश्रम` में किसान सामूहिक रूप से जमींदार के विरुद्ध संघर्ष करते हैं, जिसके फलस्वरूप ज्ञानशंकर का उत्तराधिकारी जमींदार माया शंकर बदले हुए रूप में दिखाई देता है।

गांधी के आगमन से भारतीय किसानों को नेतृत्व की सच्ची सहानुभूति प्राप्त हुई। १६१६ में गांधी जी ने चम्पारन के किसानों की दशा की जांच की। ठीक उसी समय जब गांधी जी चम्पारन में थे तो गुजरात में करिया जिले के किसानों ने लगान वृद्धि के विरुद्ध आंदोलन प्रारम्भ किया था। यह आंदोलन विट्ठलभाई पटेल, शंकर लाल बैंकर तथा अनसुइया साराभाई द्वारा गांधी जी के निर्देशन में चलाया गया था। किसानों ने तब तक लगानें देने से मना कर दिया था जब तक कि उनकी मांगें न पूरी हो जायें।[3] गांधी किसानों की आत्मा और हृदय थे। उनका उद्देश्य किसानों की भांति ही रहना और उनकी ही भांति अनुभव करना था। वे किसानों

१- `प्रेमाश्रम` पृ० १८३

२- `प्रेमाश्रम` पृ० ४६

३- डा० राजेन्द्र प्रसाद : `आटोबॉयोग्राफी`, १६५७ (बम्बई) पृ० १०२

की समस्याओं को आर्थिक दृष्टि के साथ नैतिक दृष्टि से भी सोचते थे ।[1] गांधी किसानों को उनकी तरक्की के लिए उन्हें विभिन्न शक्तियों एवं दबावों से मुक्त करना चाहते थे ।[2] १६२४ में देशबन्धु और मोती लाल नेहरू ने भी एक संयुक्त वक्तव्य में यह घोषणा की थी कि कांग्रेस का दायित्व सम्पूर्ण देश के किसान और मजदूर संगठनों को सहायता देना भी है । उन्होंने यह भी कहा था कि मजदूरों की समस्या प्रत्येक देश की एक कठिन समस्या है लेकिन भारतवर्ष में ये कठिनाइयां और भी महान हैं । हमें उनका संगठन करना चाहिए जिससे हम पूंजीपतियों एवं जमींदारों से उनके शोषण की रक्षा कर सके ।[3] इस प्रकार से स्पष्ट है कि प्रेमचन्द के साहित्य के मध्य काल में अर्थात् 'प्रेमाश्रम' 'रंगभूमि' 'कायाकल्प' और 'कर्मभूमि' के रचनाकाल में राष्ट्र का वातावरण ऐसा था जहां देश के राजनैतिक चिन्तन के साथ आर्थिक पहलुओं पर भी विचार किया जाने लगा था । लाला लाजपतराय ने १६ मार्च १६२८ को सैन्ट्रल लैजिस्लेटिव एसैम्बली में फाइनैंस बिल के सम्बन्ध में बोलते हुए सरकार को चेतावनी देते हुए कहा था कि देश की आर्थिक दशा अत्यन्त दयनीय होती जा रही है । एसैम्बली में भाषण से उसकी सुरक्षा नहीं होगी । सरकार को उसकी दशा में खुले मन से सुधार करना चाहिए ।[4]

१- "Mr. Gandhi is heart and soul with the peasantry. It is his aim to live and feel as one of them. He sees the terribly depressed conditions - almost sub-human-under whih they live, and the problem presents itself to him as one rather of morale than of economics."

मार्गैरीय बार्न्स : 'इण्डिया टुडे ऐण्ड टुमारो', १६३७ (लन्दन) पृ० २११ ।

२- मार्गैरीय बार्न्स : 'इण्डिया टुडे ऐण्ड टुमारो', १६३७ (लन्दन) दे०पृ० २२०

३- मोती लाल नेहरू : 'द वाइस ऑव फ्रीडम', १६६१ (एशिया पब्लिशिंग हाउस) दे० पृ० ५२३ ।

४- "I wish once more to warn the government Benches that the situation is becoming very very serious, and in all honesty and in all humility I beg the Government to go into the matter of

Contd...

प्रेमचन्द ने `कायाकल्प `उपन्यास में सामन्तवर्गीय शोषण बेगार प्रथा के विरुद्ध आवाज बुलन्द की है। रियासत के चमार जो कई महीने से बेगार कर रहे हैं इस अन्याय के विरोध में खड़े दिखाई देते हैं। चमारों का निर्णय है - `हमें अब इस राज्य में नहीं रहना है। कुछ हाथ-पांव थोड़े कटाये बैठे हैं।'[१] राजा द्वारा ललकार जाने पर चौधरी का उत्तर है `जब लात खाते थे, तब खाते थे अब न खायेंगे।'[२] चौधरी जानता है - `वह समय ही ढह गया है। क्या अब हमारी पीठ पर कोई नहीं कि मार खाते रहें और मुंह न खोलें ? अब तो सेवा सम्मती हमारी पीठ पर है।'[३] गांव के ये चमार प्रशासन और अपने सामन्त राजा विशालसिंह की सम्मिलित शक्ति का सामना करते हैं। `रंगभूमि ` में पांडेपुर का किसान सूरदास औद्योगिक क्रांति के विरुद्ध संघर्ष करता है उसके संघर्ष का आधार शुद्ध आर्थिक न होकर नैतिक भी है। वह नहीं चाहता कि गांव में औद्योगिक वातावरण फैले जो यहां की अर्थ-व्यवस्था के साथ भाई-चारे, मेल-मिलाप को समाप्त ही कर दे। साथ ही अनाचरण और अनैतिकता ऐसे दुर्गुणों को भी जन्म दे। सूरदास जानता है `मैं दूं तो भी जमीन निकल जायगी, न दूं तो भी निकल जायगी।'[४] फिर भी वह जीवन पर्यन्त संघर्ष करता रहता है। सूरदास ऐसे अपाहिज ग्रामीण

१- `कायाकल्प ` पृ० १००

२- `कायाकल्प ` पृ० १०१

३- `कायाकल्प ` पृ० १०१

४- `रंगभूमि ` पृ० १७

गत पृष्ठ का शेष :-

of the economic distress of this country. The country will not be saved by the blue books issued by the Public Information Bureau; it will not be saved by speeches in this House. If the Government wants to do anything for the people of this country, let it frankly and openly improve the economic condition of the people of this country."

बी०बी०जोशी, `लाला लाजपतराय राइटिंग ऐण्ड स्पीचेज, १९६६ (नईदिल्ली), पृ० ४१६

के विरुद्ध पूंजीपति जॉनसेवक, सामन्तवर्गीय राजा महेन्द्रकुमार और अंग्रेज सरकार के रूप में मि० क्लार्क की सम्मिलिति शक्ति लगी हुई है। सूरदास को अंत में असफलता मिलती है परंतु वह 'रंगभूमि' से मुहं मोड़ना नहीं जानता। यह आर्थिक जागरण का सूचक है। सरकार पूंजीपति तथा सामंतों की शक्ति के सामने असहाय ग्रामीण की सफलता संभव ही नहीं थी। परंतु सूरदास का अनवरत संघर्ष तत्कालीन आर्थिक जागृति और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष की भावना के उदय का प्रमाण है।

'रंगभूमि' और 'कायाकल्प' के बाद 'कर्मभूमि' उपन्यासों में आर्थिक जागरण के चित्र दिखाई देते हैं। 'कर्मभूमि' उपन्यास में तीन आंदोलन चित्रित किए गए हैं। प्रथम अछूतों का मंदिर प्रवेश आंदोलन, दूसरा गांव में अमरकान्त, आत्मानन्द, सकीना और सलीम के नेतृत्व में लगान आंदोलन और तीसरा शहर में गरीबों का आवास आंदोलन। इनमें में अंतिम दो का सम्बन्ध आर्थिक जागरण से है। १६१६ के आसपास विश्वव्यापी आर्थिक मंदी के कारण संसार के सामने आर्थिक संकट उत्पन्न हो गया था। आर्थिक मंदी के कारण अनाज की कीमतों में गिरावट के फलस्वरूप सबसे अधिक प्रभावित होने वाला वर्ग कृषक वर्ग था। भारतवर्ष में इस समय कांग्रेस द्वारा अधिकृत तथा अनाधिकृत दोनों प्रकार के किसान आंदोलन संयुक्त प्रांत, आंध्र, गुजरात, कर्नाटक तथा अन्य दूसरे प्रान्तों में हुए।[१] 'कर्मभूमि' का किसान आंदोलन उत्तर प्रदेश के पहाड़ी इलाके के गांवों में चलाया जाता है। तत्कालीन मंदी की चर्चा करते हुए प्रेमचन्द ने लिखा है - "लेकिन इस साल अनायास ही जिन्सों

१- "The world agrarian and general economic crisis which occurred in 1929 hit the Indian peasantry hard. They were in a state of ferment sections of them participated in demonstrations and meetings organized by the congress. These were peasant movements in the U.P., Andhra, Gujarat, Karnatak, and other parts of the country, both authorised by the Congress and unauthorised.

ए०आर० देसाई : "सोशल बैकग्राउन्ड ऑव इण्डियन नेशनालिज्म", १६५६ (बम्बई), पृ० १७५।

का भाव गिर गया। इतना गिर गया, जितना चालीस साल पहले था। जब भाव तेज था, किसान अपनी उपज बेच बाच कर लगान दे देता था, लेकिन जब दो और तीन की जिन्स एक में बिके, तो किसान क्या करे। कहाँ से लगान दे, कहाँ से दस्तूरियाँ दें, कहाँ से कर्ज चुकाए। विकट समस्या आ खड़ी हुई, और यह दशा कुछ इसी इलाके में न थी। सारे प्रांत, सारे देश, यहाँ तक कि सारे संसार में यही मंदी थी।"[1] इस मंदी और कठिनाई में भी सरकार द्वारा लगान वसूली की कड़ाई का चित्र प्रस्तुत करते हुए इसी समय लिखी गई 'जेल' कहानी में प्रेमचन्द लिखते हैं - "देहातों में आजकल संगीनों की नोक पर लगान वसूल किया जा रहा है। - - - गरीब किसान लगान कहाँ से दे। उस पर सरकार का हुक्म है कि लगान कड़ाई के साथ वसूल किया जाय।"[2] किसानों में जागृति फैल चुकी है। उन्हें जगाने वाले अमरकान्त और आत्मानन्द ऐसे नेता उनके बीच पहुँच चुके हैं। अत: सरकार और जमींदारों के अन्याय के विरोध में खड़े होने में उन्हें देर नहीं है। 'कर्मभूमि' और 'जेल' कहानी दोनों स्थानों में किसान लगान के विरुद्ध आन्दोलन करता है।

भारतवर्ष में औद्योगीकरण के विकास से मजदूर संगठनों का निर्माण भी प्रारम्भ हो गया था। १६०८ में भारतीय नगरों के मजदूर इतना जाग चुके थे कि तिलक को ६ वर्ष के लिए कारावास का दण्ड दिए जाने पर वे बम्बई नगर में ६ दिन की हड़ताल करने की क्षमता रखते थे। आगे चल कर गांधी के असहयोग आंदोलन से भारतीय मजदूरों में भी जागरूकता आई। जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है कि देशबन्धु और मोती लाल नेहरू ऐसे स्वराज्य पार्टी के नेता भी मजदूर संगठनों को सहायता प्रदान करने के पक्षपाती थे। लाला लाजपतराय ने २ जून १६२६ को जेनेवा की लेबर कान्फरेन्स में पूर्व के मजदूरों के सम्बन्ध में बोलते हुए कहा था कि भारतवर्ष में भारतीय मजदूरों की दशा के सुधार का कोई प्रयत्न नहीं किया जा रहा है और

१- 'कर्मभूमि' पृ० २८७

२- 'जेल' मा०स० भाग ७ पृ० १० ।

भारत की सरकार अन्य सरकारों की भांति उनके पिछड़ेपन को दूर नहीं करना चाह रही है ।[१] भारतवर्ष में ट्रेड यूनियन से सम्बन्धित मजदूर आन्दोलन का चित्रण प्रेमचन्द-साहित्य में दो स्थानों पर हुआ है । प्रथम `गोदान ` में चन्द्रप्रकाश खन्ना की चीनी मिल का मजदूर आंदोलन और दूसरा --- `डामुल का कैदी` कहानी का सेठ खूबचन्द की सूती कपड़े की मिल का मजदूर आंदोलन/इन दोनों आंदोलनों का कारण मिलमालिकों द्वारा मजदूरी घटाया जाना है । दोनों स्थानों पर मिल मालिकों का उद्देश्य मजूरी घटा कर पुराने मजूरों को काम से हटा कर कम मजदूरी पर नए मजदूर भर्ती करना है।[२] भारतवर्ष में १६२६ तक मजदूर संगठनों और मजदूर आन्दोलनों की बाढ तो थी परन्तु उन्हें आंदोलनों में प्राय: असफलता ही मिलती रही । `गोदान ` का मजदूर आन्दोलन भी असफल होता है । प्रेमचन्द के अनुसार `आखिर जब पुराने आदमी खूब परास्त हो गए तब खन्ना उन्हें बहाल करने पर राजी हुए ।`[३] इस आन्दोलन में मजदूर संगठन का मंत्री ओंकार नाथ मजदूरों को धोखा देता है । मजदूर नेताओं की कमजोरी और धोखेबाजी का यह एक उदाहरण है । इस आन्दोलन में मजदूरों को मेहता ऐसे विचारक की सहानुभूति भी प्राप्त है । आन्दोलनों की असफलता में भी तत्कालीन औद्योगिक मजदूरों में आर्थिक जागृति तथा अधिकार रक्षा के लिए संघर्ष के भाव मिलते हैं ।

शिक्षा और संस्कृति -

अध्याय के प्रारम्भ में हम देख चुके हैं कि समाज-शास्त्र समाज के शैक्षाणिक तथा सांस्कृतिक पक्षों का भी अध्ययन करता है । समाज शास्त्र की अपनी सीमा समय की सीमा भी होती है । वह किसी काल विशेष के सामाजिक पहलुओं का अध्ययन करता है । समाजशास्त्र शैक्षिक और सांस्कृतिक अवस्था के अध्ययन के प्रति

१- बी०सी० जोशी : `लाला लाजपतराय राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज`, १६६६ (नई दिल्ली) पृ० ३१२

२- (क) `गोदान ` पृ० २८४
(ख) `डामुल का कैदी ` मा०स० भाग २ पृ० २३६

३- `गोदान ` पृ० ३०८ ।

अपनी प्रारम्भिक अवस्था से जागरूक बन रहा है । साहित्यकार प्रेमचन्द ने भी युग के शैक्षिक और सांस्कृतिक पक्षों को अछूता नहीं रहने दिया । युग की शैक्षणिक और सांस्कृतिक स्थितियों से सम्बद्ध पहलुओं की उन्होंने अपने साहित्य में चर्चा मात्र ही नहीं की बल्कि तत्कालीन शिक्षा और संस्कृति की आलोचना प्रत्यालोचना के साथ उनके सम्बन्ध में अपनी मान्यताएं और मन्तव्य भी प्रस्तुत किए हैं । इस सम्बन्ध में प्रेमचन्द के विचार अत्यन्त स्पष्ट और सुलझे हुए हैं । युग के राष्ट्र नायकों की भांति उन्होंने देश के शैक्षिक और सांस्कृतिक पक्ष को समझा है और उनमें आवश्यक परिवर्तनों की मांग की है । इस तथ्य को अधिक स्पष्ट रूप में समझने के लिए हमारे लिए आवश्यक है कि हम दोनों पहलुओं पर प्रेमचन्द और प्रेमचन्द-साहित्य के संदर्भ में अलग-अलग विचार करें ।

तत्कालीन शिक्षा और शिक्षा-व्यवस्था :

आधुनिक युग में भारतीय शिक्षा की प्राचीनतम मान्यताएं टूट चुकी थी । १८३५ ई० में लार्ड मैकॉले की शिक्षा के सम्बन्ध में घोषणा के बाद अंग्रेजों की बाबू बनाने वाली शिक्षा-नीति को बढ़ावा मिला । विद्यालयों से निकल कर युवक सीधे नौकरी की खोज करता था । शिक्षा का उद्देश्य मात्र स्वार्थ था । पढ़-लिखकर धन कमाना मात्र ही शिक्षा का मुख्य उद्देश्य हो गया था । भारतीय शिक्षा के पुराने आदर्श दम तोड़ चुके थे । प्रेमचन्द इस वातावरण और समाज की ऐसी व्यवस्था से परिचित थे । उन्होंने सितम्बर १९३३ के 'हंस' में लिखा था - "हमारी शिक्षा हमारी सामाजिक चेतना को नहीं जगाती, उसका उद्देश्य अपने फायदे के लिए समाज से काम निकालना है । समाज केवल इसलिए है कि उसे बढ़ने और संचय करने का अवसर दें । वही मनुष्य सफल समझा जाता है जो समाज को खूब अच्छी तरह एक्सप्लाइट कर सके । व्यवस्था ही कुछ ऐसी है कि व्यक्ति को मजबूर होकर उसी लीक पर चलना पड़ता है । दूसरा कोई रास्ता नहीं है ।"[1] प्रेमचन्द यह भी जानते थे कि यह रवैया भारतवर्ष का ही नहीं विश्व की

१- 'हंस' सितम्बर १९३३ 'शिक्षा का नया आदर्श', दे० विविध प्रसंग, भाग ३, पृ० ३२१ ।

शिक्षा प्रणाली का है। शिक्षा का प्राचीन आदर्शवादी उद्देश्य समाप्त हो चुका था।' रूसों के प्रकृतिवाद भी अस्तित्वहीन हो चुका था। प्रेमचन्द के समय तक जानडीवी का शिक्षा का व्यवहारवादी सिद्धान्त पनप चुका था और विश्व में इस सिद्धान्त को मान्यता भी मिल चुकी थी। ऐसी शिक्षा का उद्देश्य शुद्ध व्यवहारवाद या जीविकोपार्जन के लिए शिक्षा था। इस तथ्य का उद्घाटन करते हुए प्रेमचन्द ने लिखा था - "संसार में इस समय जिस शिक्षा प्रणाली का व्यवहार हो रहा है, वह मनुष्य के में ईर्ष्या, भय, घृणा, स्वार्थ, अनुदारता और कायरता आदि दुर्गुणों ही को पुष्ट करती है और वह क्रिया शैशव की अवस्था से ही शुरू हो जाती है।"[१] प्रेमचन्द यह भी जानते थे कि 'प्रेमाश्रम' के स्वार्थी भौतिकवादी ज्ञानशंकर ने 'वह शिक्षा पायी है जिसका मूल-तत्व स्वार्थ है। उसमें अब दया, विनय, सौजन्य कुछ भी नहीं रहा। वह अब केवल अपनी इच्छाओं का, इन्द्रियों का दास है।"[२] राय कमलानन्द ज्ञानशंकर के अवगुणों को उसकी शिक्षा की देन मानते हैं। उनके शब्दों में "तुम्हें आदि से भौतिक शिक्षा मिली है। - - तुम जो कुछ हो अपनी शिक्षा-प्रणाली के बनाए हुए हो।"[३] प्रेमचन्द यह मानते थे कि "हमारी डिग्री है - हमारा सेवा-भाव, हमारी नम्रता, हमारे जीवन की सरलता, अगर वह डिग्री नहीं मिली, अगर हमारी आत्मा जागृत नहीं हुई, तो कागज की डिग्री व्यर्थ है।"[४] प्रेमचन्द के अनुसार विद्या का धर्म "आत्मिक उन्नति का फल उदारता, त्याग, सदिच्छा, सहानुभूति, न्यायपरायणता और दयाशीलता है।"[५] प्रेमचन्द यह भी जानते थे कि आधुनिक शिक्षा में इन गुणों का अभाव है। वह तो निर्बलों का खून चूसने के लिए प्राप्त की जाती है। रायसाहब के शब्दों में उनकी स्पष्ट उक्ति -"हम जमींदार हैं, साहूकार हैं, वकील हैं, सौदागर हैं, पदाधिकारी हैं -

---

१- हंस सितम्बर १९३३ 'शिक्षा का नया आदर्श' दे० विविध प्रसंग, भाग ३ पृ० २२२

२- 'प्रेमाश्रम' पृ० २१४

३- 'प्रेमाश्रम' पृ० २८२

४- 'कर्मभूमि' पृ० १०४

५- 'पशु से मनुष्य' मा०स० भाग ८ पृ० ११०

इनमें कौन जाति की सच्ची वकालत करने का दावा कर सकता है ? --- इस उच्च शिक्षा ने हममें सिवाय विलास-लालसा और सम्मान प्रेम, स्वार्थ-सिद्धि और अहम्मन्यता के, और कौन सा सुधार कर दिया । हम अपने घमंड में अपने को जाति का अत्यावश्यक अंग समझते हैं, पर वस्तुत: हम कीट-पतंग से भी गये बीते हैं ।"[१]

ब्रिटिश सरकार ने भारतीय शिक्षा को उपेक्षा की दृष्टि से देखा था । सर्वप्रथम १८१३ ई० में सम्पूर्ण ब्रिटिश प्रशासित भारत देश के लिए केवल एक लाख सालाना की धनराशि शिक्षा के लिए स्वीकृत की गई थी । तभी से शिक्षा में प्राच्य और पाश्चात्य शिक्षा का विवाद उठ खड़ा हुआ । १८३५ ई० में मैकाले की घोषणा ने इस विवाद काअन्त किया । इस विवाद से स्पष्ट है कि भारतवर्ष में कुछ ऐसे लोग थे जो संस्कृत, अरबी, फारसी के माध्यम से भारतीय शिक्षा-प्रणाली के पक्षपाती थे । इस तरह की विचारधारा जीवित रही और राष्ट्रीय शिक्षा के लिए १६ वीं० शताब्दी के प्रथम दशक में लाहौर में डी०ए०वी० कालेज की स्थापना हुई । इसके बाद के राष्ट्रीय विद्यालयों में काशी विद्यापीठ, बनारस, बिहार विद्यापीठ, पटना, गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद तथा बंगाल राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, कलकत्ता आदि युवकों को राष्ट्रीय शिक्षा प्रदान करने के लिए स्थापित किए गए । प्रेमचन्द की राष्ट्र की इस आवश्यकता का अनुभव किया था । 'कर्मभूमि' में वे एक ऐसे आश्रम की स्थापना का प्रयत्न करते हुए दिखाई देते हैं जहां पर 'फीस बिलकुल' नहीं ली जाती थी, --- छोटे छोटे, भोले भाले, निष्कपट बालकों का कैसे स्वाभाविक विकास हो, कैसे वे साहसी, संतोषी, सेवाशील नागरिक बन सकें यही मुख्य उद्देश्य था ।"[२] यह विद्यालय डाक्टर शान्तिकुमार की शाला थी जिसका उद्देश्य चरित्र निर्माण था । डा० शान्तिकुमार इस आश्रम को यूनिवर्सिटी बना देना चाहते हैं जिसके लिए वह रेणुका से सहायता लेते हैं । यह थी प्रेमचन्द की राष्ट्रीय विद्यालय की कल्पना जिसकी इस समय आवश्यकता थी । वे जानते

१- 'प्रेमाश्रम' पृ० २७१ ।

२- 'कर्मभूमि' पृ० १०५-१०६ ।

थे "लड़का जैसी शिक्षा पाता है, वैसा ही मनुष्य बनता है। हमारे विद्यालय ही राष्ट्र की संस्कृति के सबसे बड़े रक्षक हैं।"[१]

अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली की आलोचना हमारे यहां के राष्ट्रीय नेता भी करते थे। २५ दिसम्बर १६२० ई० में नागपुर की आल इण्डिया कालेज स्टूडेन्ट्स कान्फरेन्स के अध्यक्षीय पद से बोलते हुए लाला लाजपत राय ने कहा था कि 'मेरी धारणा है कि अनुदान प्राप्त या गैर अनुदान प्राप्त सरकारी स्कूलों और कालेजों अथवा सरकारी विश्वविद्यालयों द्वारा नियंत्रित विद्यालयों में प्रचलित वर्तमान शिक्षा-प्रणाली अराष्ट्रीय है। यह हमें स्वतंत्र रखने की अपेक्षा दास बनाती है।"[२] इसी भाषण में उन्होंने नवजवान भारत को संदेश देते हुए कहा था कि वर्तमान शिक्षा राष्ट्रीय भावना को कुचलने वाली है। एक जेलर कभी भी अपनी मृत्यु का वारन्ट नहीं तैयार कर सकता है। इसलिए भारतीय नवयुवकों को चाहिए कि वे सचेत रहें और राष्ट्रीय आवश्यकता के अनुसार कर्तव्य की ओर अग्रसरित हों।[३] प्रेमचन्द अंग्रेजी राज्य के विद्यालयों के उद्देश्य और अंग्रेजी राज्य की उन पर छाप से परिचित थे। उन्होंने जनवरी-फरवरी १६३२ के हंस में लिखा था - "अंग्रेजी राज्य में नये-नये विद्यालय खुले मगर उनका आदर्श और उद्देश्य कुछ और था। वह दफतरी शासन का एक विभाग मात्र था जिसका उद्देश्य सत्य की खोज और संस्कृति का विकास नहीं, दफतरों के लिए कर्मचारियों का निर्माण था। यहां की पुस्तकों पर शिक्षा-विधि पर अंग्रेजी राज की छाप थी। छात्रों के आत्म सम्मान को कुचला

१- 'हंस' जनवरी-फरवरी १६३२ ई० विविध प्रसंग, भाग ३, पृ० २०१-२०२

२- "I hold the opinion that the Educational system at present followed in Government schools and colleges, aided and unaided, or controlled by official Universities, is a denationalising system. It is meant more to enslave us than to free us."
वी०सी० जोशी : 'लाला लाजपतराय : राइटिंग्स ऐण्ड स्पीचेज, का बैंड, १६६६ (नई दिल्ली), पृ० ८१

३- वी०सी० जोशी : लाला लाजपतराय : राइटिंग्स ऐण्ड स्पीचेज : दे० "मैसेज टू यंग इण्डिया" १६६६ (नई दिल्ली), पृ० ८०-८९

जाता था ।"[1] यही कारण है कि वे `कर्मभूमि ` में अमरकान्त ऐसे राष्ट्रप्रेमी छात्र की सृष्टि करते हैं जो अपनी शिक्षा के व्यय के लिए सूत कातता है, जिसे डिग्री से नहीं राष्ट्र से प्रेम है । `कर्मभूमि` के डा० शान्तिकुमार के आश्रम की स्थापना सच्चे रूप में राष्ट्रीय विद्यालय की स्थापना की पृष्ठभूमि है । प्रेमचन्द चाहते थे कि बच्चे प्रारम्भ से ही स्वाधीन बनें । इसी कारण अप्रैल १६३० के हंस में उन्होंने `बच्चों को स्वाधीन बनाओ ` लेख लिख कर अभिभावकों को सलाह दिया था कि वे घर में बच्चों पर अधिक ध्यान दें ।

प्रेमचन्द ऐसी शिक्षा को शिक्षा मानने के लिए तैयार नहीं थे जिसका उद्देश्य मात्र स्वार्थ-साधन है । उनकी स्पष्ट राय थी - "जो शिक्षा हमें निर्बलों को सताने के लिए तैयार करे, जो हमें पदवी और धन का गुलाम बनावे, जो हमें भोग-विलास में डुबाये, जो हमें दूसरों का रक्त पीकर मोटा होने का इच्छुक बनायें, वह शिक्षा नहीं भ्रष्टता है ।"[2] अपने समय की प्रचलित शिक्षा प्रणाली के सम्बन्ध में वे यह भी जानते थे कि "स्वार्थ-सेवा अंग्रेजी शिक्षा का प्राण है ।"[3] इसी कारण वे `सेवासदन ` में कह उठते हैं - "यह सबके सब स्वार्थ सेवी हैं, उन्होंने केवल दीनों का गला दबाने के लिए, केवल अपना पेट पालने के लिए अंग्रेजी पढ़ी है । यह सब-के-सब फैशन के गुलाम है, जिनकी शिक्षा ने उन्हें अंग्रेजों का मुंह चिढ़ाना सिखा दिया है, जिनमें दया नहीं, धर्म नहीं, निज भाषा से प्रेम नहीं, चरित्र नहीं, आत्मबल नहीं, वे भी कुछ आदमी हैं ।"[4] प्रेमचन्द को तत्कालीन प्रचलित शिक्षा प्रणाली में भारतीयता के लक्षण नहीं दिखाई देते हैं । स्वार्थ, धनलिप्सा और गुलामी भी उस शिक्षा के आधार हैं । आत्मबल, स्वभाषाप्रेम और सच्चरित्रता का उस शिक्षा से कोई सम्बन्ध नहीं है । भौतिकवाद की भावना ही उस शिक्षा की देन है । महात्मा गांधी ने भी तत्कालीन शिक्षा प्रणाली में अन्यायी शासन से सम्बद्ध होने, ~~मस्तिष्क~~ मानसिक ज्ञान तक सीमित होने तथा विदेशी भाषा के माध्यम के दोष

१- हंस, अप्रैल, १६३०, `बच्चों को स्वाधीन बनाओ, लेख दे० विविध प्रसंग, भाग ३ पृ० १८५-१८८ ।

२- `पशु से मनुष्य ` मा०स० भाग ८ पृ० ११०

३- `दीक्षा ` मा०स० भाग ३ पृ० १८८

४- `सेवासदन ` पृ० २०२

कगार थे ।[१]

प्रेमचन्द शिक्षित वर्ग को प्रशासन के गुलाम के रूप में नहीं देखना चाहते थे । इसलिए भरतसिंह के शब्दों में उन्होंने कहा है - "शिक्षित वर्ग जब तक शासकों का आश्रित रहेगा हम अपने लक्ष्य के जौ भर भी निकट न पहुंच सकेंगे ।"[२] जहां तक माध्यम का प्रश्न है उनके पात्र अनिरुद्धसिंह को अंग्रेजी से "ऐसी घृणा होती है जैसे किसी अंग्रेज के उतार कपड़े पहनने से ।"[३] अनिरुद्धसिंह राष्ट्र के लिए एक सार्वदेशिक भाषा के पक्षपाती हैं ।[४] प्रेमचन्द ने 'वे राष्ट्र भाषा का राष्ट्र' लेख में लिखा था "शायद संसार में भारत ही एक ऐसा देश है जिसकी अपनी कौमी जबान नहीं है । आज एक बलवान केन्द्रीय शासन के सिवा हमें एकता में बांधने वाली क्या चीज है ? धर्म में शक्ति नहीं, वह चीज राष्ट्र भाषा ही हो सकती है ।"[५]

प्रेमचन्द 'मानसिक पराधीनता' लेख में लिखते हैं - "हम मानते हैं कि अंग्रेजी भाषा प्रौढ़ है, हरेक प्रकार के भावों को आसानी से जाहिर कर सकती है और भारतीय भाषाओं में अभी वह बात नहीं आयी, लेकिन जब वही लोग, जिन

१- "The existing system of Education is defective, apart from its association with an utterly unjust Government, in three most important matters (a) It is based upon foreign culture to the almost entire exclusion of indigenous culture; (b) It ignores the culture of the heart and the hand and confines itself simply to the head; and (c) Real Education is impossible through a foreign medium."
महात्मा गांधी : 'यंग इण्डिया' १९१९-२२, पृ० ४५१

२- 'रंगभूमि' पृ० २६०

३- 'सेवासदन' पृ० १८३

४- 'सेवासदन' पृ० १८३

५- 'जागरण' ६ अप्रैल, १९३४ दे० विविध प्रसंग, भाग ३ , पृ० २६०

जिन पर भाषा के निर्माण और विकास का दायित्व है, दूसरी भाषा के उपासक हो जांय, तो उनकी अपनी भाषा का भविष्य भी तो शून्य हो जाता है। फिर क्या विदेशी साहित्य की नींव पर आज भारतीय राष्ट्रीयता की दीवार खड़ी करेंगे ? यह हिमाकत है।'[१] आगे वे इसी लेख में लिखते हैं - 'जरा इस गुलामी को देखिए, कि हमारे विद्यालयों में हिन्दी या उर्दू भी अंग्रेजी द्वारा पढ़ाई जाती है। अगर बेचारा हिन्दी, प्रोफेसर अंग्रेजी में लेक्चर न दें, तो छात्र उसे नालायक समझते हैं - - - - वाह री भारतीय दासता तेरी बलिहारी है।'[२] स्पष्ट है प्रेमचन्द विदेशी भाषा के माध्यम के प्रबल विरोधी थे साथ ही उस भावना के भी विरोधी थे जो अंग्रेजी भाषा को अपना सब कुछ मानती थी। प्रेमचन्द शिक्षा में भारतीय संस्कृति के मूल्यों के पक्षपाती थे। 'कर्मभूमि' के अमरकान्त को आधुनिक फैशन परस्त भौतिकवादी अध्यापकों को देख कर वेदना होती है। वह अतीत के अध्यापकों की आधुनिक अध्यापकों से तुलना करने लग जाता है। इस सम्बन्ध में प्रेमचन्द लिखते हैं - 'अमर को उस अतीत की याद आती, जब हमारे गुरुजन झोपड़ों में रहते थे, स्वार्थ से अलग, लोभ से दूर, सात्विक जीवन के आदर्श, निष्काम सेवा के उपासक। वह राष्ट्र से कम-से-कम लेकर अधिक देते थे। वह वास्तव में देवता थे। और एक यह अध्यापक हैं, जो किसी अंश में भी एक मामूली व्यापारी या राज्य कर्मचारी से पीछे नहीं। इनमें भी वही दम्भ है, वही धनपद है, वही अधिकार पद है। हमारे विद्यालय क्या हैं, राज्य के विभाग हैं, और हमारे अध्यापक उसी राज्य के अंग हैं।'[३] अमर को झोपड़ी में रहने वाले, वल्कलधारी, कंदमूल फलभोगी तथा द्वेष और लोभ से रहित प्राचीन काल के अध्यापकों के सामने मनोविकारों के कैदी अपनी इच्छाओं के गुलाम आधुनिक अध्यापक तुच्छ लगते हैं।[४] वास्तव में अमर के माध्यम से प्रेमचन्द की यह अपनी धारणा है। प्राचीन और नवीन प्रथा के आदर्शों के अंतर के सम्बन्ध में प्रेमचन्द लिखते हैं - 'प्राचीन प्रथा की तरफ आंखें

१- हंस जनवरी १९३१ दे० विविध प्रसंग, भाग ३ पृ० १६०

२- हंस जनवरी १९३१ मन दे० विविध प्रसंग भाग ३ पृ० १६०-१६१

३- 'कर्मभूमि' पृ० १०५

४- 'कर्मभूमि' पृ० १०५

उठाइए । कुलपति हैं, वह ज्ञान की मूर्ति, विद्या का भण्डार, जमाने का सर्द गर्म चखे हुए और संसार के प्रलोभन से ऊंचा उठा हुआ । अध्यापक ~~क्~~ भी उसी सांचे में ढले हुए, कहीं आडम्बर नहीं, कहीं विद्याभिमान नहीं, वहां शान इसमें नहीं कि कौन कितना व्यसनी है, किसके पास कितने ~~अच्छे~~ कुत्ते हैं, या कौन सिनेमा ज्यादा देखता है, बल्कि इस बात में है कि किसमें ज्यादा त्याग है, किसमें ज्यादा भक्ति या विद्वता है, कौन ज्यादा स्वावलम्बी है, किसमें सेवा और सहायता का भाव अधिक है , दोनों आदर्शों में कितना अन्तर है ।"[1]

शिक्षा के आधुनिक भौतिकवादी और व्यापारिक स्वरूप का चित्रण प्रेमचन्द ने `कर्मभूमि` उपन्यास में किया है । `कर्मभूमि` का प्रारम्भ ही वह इस वाक्य "हमारे स्कूलों और कालेजों में जिस तत्परता से फीस वसूल की जाती है , शायद मालगुजारी भी उतनी सख्ती से नहीं वसूल की जाती,[2] ऐसे करते हैं । वे शिक्षालयों को शिक्षालय न मानकर जुर्मानालय और दुकानदारी मानते थे । `कर्मभूमि` में वे लिखते हैं - "हमारे शिक्षालयों में नर्मी को घुसने ही नहीं दिया जाता । वहां स्थाई रूप से मार्शल-ला का व्यवहार होता है । -- देर से आइए तो जुर्माना, न आइए तो जुर्माना, सबक याद न हो तो जुर्माना, किताबें न खरीद सकिए, तो जुर्माना, कोई अपराध हो जाय तो जुर्माना, शिक्षालय क्या है, जुर्मानालय है ।"[3] एक दूसरे स्थान पर वे लिखते हैं - "कोई दुकानदारी सी जहां पग-पग पर छात्रों से कुछ न कुछ वसूल करने की फिक्र रहती है ।"[4] `कर्मभूमि` में भी वे लिखते हैं - "यही हमारी पश्चिमी शिक्षा का आदर्श है, जिसकी तारीफों के पुल बांधे जाते हैं । यदि ऐसे शिक्षालयों से पैसे पर जान देने वाले, पैसे-पैसे के लिए गरीबों का गला काटने वाले, पैसे के लिए अपनी आत्मा को बेच देने वाले

१- `हंस` जनवरी फरवरी १९३२ ई० विविध प्रसंग, भाग ३ पृ० २०३

२- `कर्मभूमि` पृ० ५

३- `कर्मभूमि` पृ० ५

४- हंस जनवरी फरवरी १९३२ ई० विविध प्रसंग भाग ३ पृ० २०२

छात्र निकलते हैं, तो आश्चर्य क्या है ,"[१] 'कर्मभूमि' के प्रोफेसर भाटिया तथा प्रोफेसर चक्रवर्ती ऐसे भौतिकवादी और फैसनपरस्त अध्यापकों की स्थिति को देखकर सलीम ऐसे नवजवान के हृदय में भी नया शौक, नया अरमान जाग उठता है । और वह उनके पीछे-पीछे जहन्नुम में जाने के लिए तैयार है ।[२] आधुनिक विद्यालयों में वह आदर्श नहीं रहा जिसकी प्रेमचन्द खोज करते थे । यही कारण है कि उन्होंने आधुनिक विद्यालयों और शिक्षा व्यवस्था की आलोचना की है तथा प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति का समर्थन किया है । 'स्वामी श्रद्धानन्द और भारतीय शिक्षा प्रणाली' लेख में उन्होंने आधुनिक शिक्षा प्रणाली के दोषों को दिखाते हुए स्वामी जी की प्रशंसा करते हुए लिखा है - "स्वामी श्रद्धानन्द जी ने इसी (त्यागमय भारतीय आदर्श) आदर्श को जिन्दा कर दिखाया । समय उनके अनुकूल न था, विरोधियों का पूछना ही क्या, चारों तरफ बाधाएं । पर जितने आदर्शवादी थे, उतने ही हिम्मत के धनी थे । किसी बात की परवाह न करते हुए गुरुकुलों की स्थापना कर दी ।"[३] 'दक्षिण का शान्ति निकेतन' लेख में उन्होंने शान्ति-निकेतन, काशी विद्यापीठ, ऐसी स्वतंत्र शिक्षण संस्थाओं को उत्तर भारत के लिए गर्व की वस्तु बताते हुए प्रसिद्ध शिक्षा प्रेमी अर्नेस्ट उड तथा उनके द्वारा शान्ति निकेतन के आधार पर दक्षिण में स्थापित 'मदन पिल्ले विद्यालय' की भूरि-भूरि प्रशंसा की है ।[४]

उद्देश्य, लक्ष्य और दिशाविहीन शिक्षा-प्रणाली ने बेकारी को जन्म दिया था । जैसा कि देख चुके हैं कि समाज की व्यवस्था ही ऐसी थी जिसके अन्तर्गत इस तरह की शिक्षा प्रणाली का प्रचलन आवश्यक हो गया था । आर्थिक स्थिति भी ऐसी दयनीय थी कि उन्हें बाबू बनने के लिए शिक्षा ग्रहण करने के लिए उ प्रयत्नशील रहना पड़ता था । तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक परिवेश

१- 'कर्मभूमि' पृ० ५

२- 'कर्मभूमि' पृ० १६१

३- 'हंस' जनवरी-फरवरी १९३२ ई० विविध प्रसंग, भाग ३ पृ० २०३

४- 'हंस' जून १९३३ 'दक्षिण का शान्ति निकेतन' ई० विविध प्रसंग भाग ३, पृ० २१५-१६ ।

में शिक्षित भारतीय युवक की स्थिति अनिश्चित थी । वह विद्यालय में से सनद के साथ अपने भविष्य की आशा के साथ निकलता था । परन्तु वह समय दूर नहीं होता था जब कि उसकी आशा यदि समाप्त नहीं हो जाती तो भी वह ह्रास अवश्य हो जाता था क्योंकि जिस व्यवसाय को उसने चुना था वह पहले से ही भीड़युक्त था और उसे कठिनाई से एक मजदूर (श्रमी) से अधिक वेतन मिल पाता था ।[१] प्रेमचन्द बेकारी की इस स्थिति से परिचित थे । 'ज्वालामुखी' कहानी में प्रेमचन्द लिखते हैं - "बी०ए० पास का कोई पुरसांहाल न था । महीनों इसी तरह दौड़ते गुजर गये, पर अपनी रुचि के अनुसार कोई जगह न नजर आयी । मुझे अक्सर अपने बी०ए० होने पर क्रोध आता था । ड्राइवर, फायरमैन, मिस्त्री, खानसामा या बवर्ची होता तो मुझे इतने दिनों तक बेकार न बैठना पड़ता ।"[२] 'परीक्षा' कहानी में एक दीवान पद के लिए उम्मीदवारों का झुंड साक्षात्कार के लिए उपस्थित हुआ है । इनमें 'सबसे विशेष संख्या ग्रेजुएटों की थी, क्योंकि सनद की कैद न होने पर भी सनद से परदा तो ढका रहता है ।"[३] 'ज्वालामुखी' में वे प्रारम्भ में लिखते हैं - "डिग्री लेने के बाद मैं नित्य लाइब्रेरी जाया करता ।

१- "These, then, are the main economic, social and educational conditions which govern the development of the Indian Youth. He emerges from his college with his degree, full of hope for the future. It is not long before his hopes are deminished - if they have not disappeared altogether - as he finds that the profession he has chosen is already "Overcrowded", and that he is being offered salaries scarcely above those of menials."

मार्गरेट टी० बार्न्स : 'इण्डिया टु डे ऐण्ड टुमारो' : १९३७, लन्दन, पृ० २०५

२- 'ज्वालामुखी' मानसरोवर भाग ८ पृ० ८८

३- 'परीक्षा' मानसरोवर भाग ८ पृ० २९९

~~४- 'ज्वालामुखी' मानसरोवर भाग ८ पृ० ८८~~

पत्रों या किताबों का अवलोकन करने के लिए नहीं । - - - मैं केवल अंग्रेजी पत्रों के 'वान्टैड' कालमों को देखा करता । जीवन यात्रा की फिक्र सवार थी ।'[१] एक रमणी द्वारा सचिव की वान्ट के लिए आवेदनों में - 'कितने ही एम०ए० थे, कोई बी०एस-सी० था, कोई जर्मनी से पी०एच-डी० की उपाधि लिए हुए था,।'[२] इस प्रकार से स्पष्ट है कि भारतीय शिक्षार्थियों के भविष्य का बोध प्रेमचन्द जी को था । मार्गैरीटा बार्न्स ने दूसरे स्थान पर लिखा है कि 'शिक्षा का उद्देश्य शिक्षार्थी में वह योग्यता प्रदान करता है कि वह किसी भी परिस्थिति में उचित निर्णय ले सके । वर्तमान समय में (भारत मे) दी जाने वाली शिक्षा मुश्किल से इस कार्य को पूरा कर पाती है । किसी भी व्यक्ति को यह ऐसी विचारधारा प्रदान करती है कि उसके पास न तो कोई ऐसा आधार है और न ही ऐसी पृष्ठभूमि है कि वे समय आने पर निर्देश देने के योग्य हों सकें इसकी अपेक्षा वे प्राय: आदेश प्राप्त करते हैं ।'[३] और प्रेमचन्द के अनुसार 'दफतर का बाबू बेजबान जीव है । - - - बेचारे दफतर के बाबू को आंखें दिखाये, डांट बतायें, दुत्कारों या ठोकरें मारें, उसके माथे पर बल न आयगा । - - संतोष का पुतला, सब्र की मूर्ति, सच्चा आज्ञाकारी, गरज उसमें तमाम मानवी अच्छाइयां मौजूद होती हैं - - - इसकी अंधेरी तकदीर में रौशनी का जलवा कभी दिखाई नहीं देता ।'[४] तत्कालीन शिक्षा प्रणाली की देन बहुसंख्यक वर्ग जो प्राय: क्लर्क होते थे के जीवन की यही कहानी थी ।

इन सम्पूर्ण तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि प्रेमचन्द को युग की शिक्षा, शिक्षा-व्यवस्था में दोष, उस शिक्षा से निकले हुए व्यक्तियों की प्रवृत्ति स्वार्थ परता, भौतिकता, नौकरी करने वाले शिक्षितों की योग्यता तथा उनके आत्मबल

१- 'ज्वालामुखी' मानसरोवर भाग ८ पृ० ८८

२- 'ज्वालामुखी' मानसरोवर भाग ८ पृ० ८६

३- मार्गैरीटा बार्न्स : इण्डिया टूडे एण्ड टुमारो', १६३७ (लन्दन) दे० पृ० २०६

४- 'इस्तीफा' मानसरोवर भाग ५ पृ० ३२ ।

की हीन दशा का अच्छी तरह ज्ञान था । शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त असंतोष और सुधार के प्रयत्नों से भी प्रेमचन्द अनभिज्ञ नहीं थे । युग की मांग के साथ उन्होंने राष्ट्रनेताओं के साथ एक राष्ट्रीय साहित्यकार की भांति सुधार में कदम भी मिलाया है ।

युग का सांस्कृतिक परिवेश

संस्कृति का सम्बन्ध मूल्य निर्धारण से होता है । बी०एस० सान्याल के अनुसार - 'सिद्धान्त और व्यवहार रूप में मूल्यों के प्रत्यक्षीकरण सम्बन्धी सम्पूर्ण विषय या स्थितियां संस्कृति कही जा सकती है और सम्पूर्ण सांस्कृतिक स्थितियाँ व्यवहार या सिद्धांत अथवा दोनों रूपों में मूल्यो के प्रत्यक्षीकरण की स्थितियों के रूप में विश्लेषित की जा सकती है ।'[१] आगे सन्याल ने संस्कृति का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है कि दर्शन (फिलासफी) ललित कलाएं (फाइन आर्ट्स) और धर्म (रिलीजन) का प्रयोग संस्कृति के रूप में किया जा सकता है । उनके अनुसार दर्शन मूल्यों के निर्धारण का सिद्धान्त पक्ष है, ललित कलाएं उसका व्यवहार पक्ष तथा धर्म संस्कृति के पत्यक्षीकरण के रूप में सिद्धान्त रूप में सर्वोच्च मूल्य है । धर्म दर्शन का एक भाग है तथा दर्शन और कला संस्कृति के अंग हैं। इसलिए संस्कृति की विस्तृत सीमा है ।[२] प्रेमचन्द के अनुसार "कल्चर (सभ्यता या परिष्कृत) एक व्यापक शब्द है । हमारे धार्मिक विचार, हमारी सामाजिक रूढ़ियां, हमारे राजनैतिक सिद्धांत, हमारी भाषा और साहित्य, हमारा रहन-सहन, हमारे आचार-व्यवहार, सब हमारे कल्चर के अंग हैं ।"[३] इस प्रकार बी०एस०सन्याल द्वारा संस्कृति

१- "All cases of realization of values in theory and practice can be called culture. And all cases of cultures can be analysed as cases of realization of values either in theory or practical or in both.

बी०एस०सन्याल : 'कल्चर' ऐन इन्ट्रोडक्शन, १९६२ (एशिया पब्लिशिंग हाउस) बम्बई, पृ० ४४

२- बी०एस०सन्याल, 'कल्चर' ऐन इन्ट्रोडक्शन , १९६२ (एशिया पब्लिशिंग हाउस) बम्बई ई० पृ० ४४

३- हंस जनवरी १९३१ ई० विविध प्रसंग ३ पृ० १८१

की आस्था और प्रेमचन्द की व्याख्या में शब्दों के हेर-फेर का भेद है, भाव दोनों के एक ही हैं। यहां पर यह दुहरा देना आवश्यक है कि समाजशास्त्र, सांस्कृतिक परिवर्तन से उत्पन्न समस्याओं और उनकी प्रक्रियाओं, वैचारिक परिवर्तन, कला और साहित्य के प्रकरणों और विधि, मूल्यों की पूर्व स्थिति और उनके अवमूल्यन के आदर्शों, विचार धाराओं और सामाजिक पराकाष्ठा की स्थिति आदि की व्याख्या करता है जो सामाजिक ढांचे क में होने वाले परिवर्तन के साथ सहगामी रूपान्तर और सामाजिक ढांचे के निर्माण में सांस्कृतिक भूमिका को स्पष्ट करते हैं।[१]

भारतीय संस्कृति की एकरूपता उसकी अपनी विशेषता थी। प्राचीन काल से अनेक अलगाव और परिवर्तनों के मध्य भी भारतवर्ष में सांस्कृतिक एकता बनी रही जो आज भी अपने मूल रूप में विद्यमान है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री और भारतीय संस्कृति के कुशल अध्येता डा० डी०एन० मजूमदार के अनुसार 'भारतीय संस्कृति की संचालन शक्तियों की सतत प्रवृत्तियां, विभाजकता और एकरूपता रही हैं। अन्तत: एकरूपता भारतीय संस्कृति के भाग्य के स्वरूप निर्माण में महत्वपूर्ण प्रवृत्ति रही है।[२] मजूमदार ने यह भी स्पष्ट किया है कि भारत की भांति अन्य किसी स्थान में इतने वंश, जातियां, भाषाएं और सांस्कृतिक स्तर नहीं मिलते। इन विभिन्न वंशों, संस्कृतियों और विश्वासों वाली भूमि की भांति दूसरे स्थानों में सहनशक्ति

१- "Sociology of culture would seek to analyse all those problems and processes of culture change, i.e. change in patterns of thought, themes of art and literature and its style, value orientalism and norms of its evaluation, ideologies and utopias which show concomitant variation with changes in social structure and cultural role systems of the components of the social structure."

टी०के० उनायन, इन्द्रदेव, योगेन्द्र सिंह, 'टुवर्ड्स ए सोशियोलॉजी ऑव कल्चर इन इण्डिया', १९६५ (नई दिल्ली) पृ० १४

२- "Fision and fusion have been the perpetual trends of Indian cultural dynamics, fusion ultimately shaping the destiny of Indian culture."

डा०डी०एन० मजूमदार : 'द मैट्रिक्स ऑव इण्डियन कल्चर' १९४७ (लखनऊ) पृ० भूमिका, पृ० ५-६

और आत्मसात करने की प्रवृत्ति भी नहीं पाई जाती है । उन्होंने यह भी कहा है कि इस संक्रांति काल में भारतीय संस्कृति के स्वरूप निर्माण में किसी को संदेह नहीं होना चाहिए ।[1] यह बात अपने स्थान पर पूर्णरूपेण सत्य है कि भारतवर्ष में प्राचीनकाल से अनेक जातियां निवास कर रही हैं । समय-समय पर अनेक विदेशी वंश और जातियां यहां पर आक्रमणकारी के रूप में, निवास के लिए अथवा व्यापारिक दृष्टिकोण लेकर आईं परन्तु भारतीय संस्कृति ने उन्हें अपने में आत्मसात कर लिया । अनेक विभिन्नताओं के होते हुए भी हमारे यहां के सांस्कृतिक मूल्यों की मौलिकता में भेद नहीं रहा ।

प्रेमचन्द भारतीय संस्कृति के इस सबल पक्ष को पहचानते थे । यही कारण है कि वे हिन्दू संस्कृति और मुस्लिम संस्कृति में भी भेद मानने के लिए तैयार नहीं थे । उन्होंने १५ जनवरी १६३४ के `जागरण ` में `साम्प्रदायिकता और संस्कृति ` लेख में अपनी इस विचारधारा का परिचय दिया था । इस लेख में उन्होंने लिखा था कि हिन्दुओं और मुसलमानों में न तो भाषा सम्बन्धी भेद हैं, न पहनावा और वेश सम्बन्धी तात्त्विक अन्तर है और न संगीत और चित्रकला आदि संस्कृति के अंगों में मूलभेद है । इसलिए उन्होंने संस्कृति के नाम पर साम्प्रदायिकता का दंभ भरने वाले लोगों के लिए लिखा था - `फिर हमारी समझ में नहीं आता कि वह कौन सी संस्कृति है, जिसकी रक्षा के लिए साम्प्रदायिकता इतना जोर बांध रही है । वास्तव में संस्कृति की पुकार केवल ढोंग है, निरा पाखण्ड । और इसके जन्मदाता भी वही लोग हैं जो साम्प्रदायिकता की शीतल छाया में बैठ विहार करते हैं ।'[2] संस्कृति के मूल तत्वों में विभेद न होने पर केवल धर्म के नाम पर किसी संस्कृति के नामकरण के वे विरोधी थे । उन्होंने स्पष्ट लिखा था `संस्कृति का धर्म से कोई

१- डा० डी०एन० मजूमदार : `द मैट्रिक्स ऑव इण्डियन कल्चर `, १६४७ (लखनऊ) पृ० भूमिका का पृ० ५-६

२- `जागरण ` १५ जनवरी १६३४ दे० विविध प्रसंग भाग ३ पृ० २३४ ।

सम्बन्ध नहीं। आर्य संस्कृति है, ईरानी संस्कृति है, अरब संस्कृति है, लेकिन ईसाई संस्कृति और मुस्लिम या हिन्दू संस्कृति नाम की कोई चीज नहीं है।"[१] प्रेमचन्द आधुनिक युग की अर्थप्रधान संस्कृति से भी परिचित थे। पश्चिम से आए हुए प्रभाव और अर्थ के बढ़ते हुए महत्त्व से वे अवगत थे। यही कारण है कि उन्होंने स्पष्ट लिखा है - "अब न कहीं मुस्लिम संस्कृति है, न कहीं हिन्दू संस्कृति, न कोई अन्य संस्कृति, अब संसार में केवल एक संस्कृति है और वह है आर्थिक संस्कृति।[२]

पंडित जवाहर लाल नेहरू भारतीय संस्कृति को जनवर्ग की संस्कृति (द कल्चर आव मासेस) मानते हैं परन्तु साथ ही वे प्राचीन संस्कृति के आधार पर चलने वाले जीवन और आधुनिक जीवन के दो जीवन (टू लाइव्स) की संज्ञा देते हैं और उनमें पहाड़ की चोटी और तराई का भेद मानते हैं।[३] भारतीय गांवों में संस्कृति का प्राचीनतम रूप आज भी अपने मूल रूप में यत्र-तत्र विद्यमान है। जब कि भारतीय नगरों में जहां से पश्चिमी सभ्यता की शुरुआत हुई पश्चिम का प्रभाव पर्याप्त मात्रा में व्याप्त हो चुका है।[४] पुराने जमाने के मानवीय गुण और मानवीय मान्यताएं गांवों में अब भी अवशेष हैं जब कि नगरों और कस्बों में वे मिटती जा रही हैं। प्रेमचन्द पुराने और नए जमाने के इस भेद को भली भांति जानते थे। उन्होंने जमाना फरवरी १६१६ के अंक में 'पुराना जमाना : नया जमाना', लेख लिखकर इस भेद को स्पष्ट किया था। उन्होंने इस लेख के प्रारम्भ में लिखा था - "पुराने जमाने में सभ्यता का अर्थ आत्मा की सभ्यता और आचार की सभ्यता होता था। वर्तमान युग में सभ्यता का अर्थ है स्वार्थ और आडम्बर। उसका नैतिक पक्ष छूट गया।"[५] आज की सभ्यता में अर्थ को प्रधान मान लिया गया है। चारों तरफ

१- 'जागरण' १५ जनवरी १६३४ दे० विविध प्रसंग, भाग ३ पृ० २३२

२- 'जागरण' १५ जनवरी १६३४ दे० विविध प्रसंग, भाग ३ पृ० २३२

३- जवाहर लाल नेहरू : 'द डिस्कवरी ऑव इण्डिया', १६४७ (बम्बई नई दिल्ली आदि) पृ० ६६-७०

४- इस सम्बन्ध में इसी प्रबंध के अध्याय ३ का दे० 'ग्रामीण समुदाय' और शहरी समुदाय'।

५- 'जमाना' फरवरी १६१६ दे विविध प्रसंग भाग १ पृ० २५८।

धन का राज्य है । धन और स्वार्थ के पीछे लोग सद्गुणों को भूल गए हैं । इसी कारण प्रेमचन्द इस धन प्रधान संस्कृति के सम्बन्ध में कहते हैं - "भौतिकता और स्वार्थ-परता उसकी आत्मा है ।"[१] पुरानी और नई सभ्यता में भेद स्पष्ट करते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं - "पुरानी सभ्यता सर्वजन सुलभ, प्रजातांत्रिक थी । उसकी जो कसौटी धन और ऐश्वर्य की आंखों में थी वही कसौटी साधारण और नीच लोगों की आंखों में थी । गरीबी और अमीरी के बीच उस समय कोई दीवार न थी --- पर आधुनिक सभ्यता ने विशेष और साधारण में, छोटे और बड़े में, धनवान और निर्धन में एक दीवार खड़ी कर दी है ।"[२]

प्रेमचन्द ने इस भेद की दीवार को अपने सम्पूर्ण साहित्य में देखा है । यह भेद 'प्रेमाश्रम' में ज्ञानशंकर, राय कमलानन्द, रानी गायत्री में एक ओर और दूसरी ओर लखनपुर के निरीह किसानों में है । यही भेद 'रंगभूमि' के उद्योगपति जानसेवक और गांव के किसान और अंधे सूरदास में है । सांस्कृतिक परिवेश ही वह वातावरण है जिसके कारण ज्ञानशंकर न तो अपने चाचा प्रभाशंकर से ही मेल रखना चाहता है और न भाई प्रेमशंकर से । वह चाचा से अलग होकर धनवान होना चाहता है और भाई का हिस्सा हड़प कर । यही नहीं ससुर की सम्पत्ति के साथ ही साली गायत्री की संपत्ति के लिए भी उसकी आंखें लगी हुई हैं, जिसके लिए वह कोई भी स्वांग रचने के लिए, कैसा भी कुचक्र करने के लिए तैयार है, जिसमें श्वसुर को विष देना और साली से प्रेम का स्वांग रचना भी सम्मिलित है । जानसेवक को धन से ऐसा मोह है कि उसे पुत्र और पुत्री के बनने और बिगड़ने की चिन्ता नहीं है । प्रेमचन्द ने 'रंगभूमि' उपन्यास में उद्योग प्रधान संस्कृति का स्वरूप चित्रित करने का प्रयास किया है । औद्योगिक संस्कृति के कारण सामाजिक बंधन टूटते जा रहे हैं । गांव उजड़-उजड़ कर नगरों के रूप में परिवर्तित होते जा रहे हैं ।

१- 'जमाना' फरवरी १९१९ ई० विविध प्रसंग, भाग १ पृ० २५९ ।
२- 'जमाना' फरवरी १९१९ ई० विविध प्रसंग भाग १ पृ० २५८-२५९ ।

मिलों और कारखानों के आस पास मजदूरों का जीवन सामाजिक बंधनों से विहीन होता जा रहा है। `रंगभूमि` उपन्यास में उद्योग की स्थापना से इसी परिणाम की ओर संकेत किया गया है। सूरदास को भय है कि कारखाने की स्थापना से यहां पर वह अनर्थ होगा जो गांव में कभी नहीं हुआ था। सूरदास के सामने दो दृश्य हैं, एक पहले का और दूसरा कारखाना स्थापित हो जाने के बाद का। उसके ही शब्दों में `हमारे मुहल्ले में किसी ने औरतों को नहीं छेड़ा था, न कभी इतनी चोरियां हुईं, न कभी इतने धड़ल्ले से जुआ हुआ, न शराबियों का ऐसा हुल्लड़ ह रहा।'[1] सूरदास को जिस चीज का भय था वह अब हो रहा है। 'मिल के परदेशी मजदूर, जिन्हें न बिरादरी का भय था, न सम्बन्धियों का लिहाज, दिन भर तो मिल में काम करते, रात को ताड़ी, शराब पीते। जुआ नित्य होता था। ऐसे स्थानों पर कुलटाएं भी आ पहुंचती हैं। वहां भी एक छोटा सा चकला आबाद हो गया था।'[2] कलों और कारखानों के आविष्कार ने पूर्व और पश्चिम की संस्कृति में भेद उत्पन्न कर दिया है और पश्चिम का वही उद्योगवाद भारतवर्ष में आ पहुंचा है। प्रेमचन्द लिखते हैं 'पूर्व और पश्चिम में कोई अंतर नहीं। वही अहिंसा और सेवा, जो हमारी संस्कृति का मूल तत्व है, पश्चिमी संस्कृति का भी मूलाधार है। जो कुछ अंतर है वह नई और पुरानी संस्कृति में है। --- पश्चिम की पुरानी संस्कृति हमारी संस्कृति से अभिन्न थी। जब से पश्चिम में कलों का युग प्रारम्भ हुआ, तभी से वहां की संस्कृति में स्वार्थ और संघर्ष की प्रधानता हुई।'[3] दूसरे स्थान पर वे लिखते हैं -`कलों के आविष्कार ने व्यवसायिकता की एक हवा सी फैला दी है। यह व्यवसायिकता पश्चिमी सभ्यता का कलंक है।'[4]

१- `रंगभूमि` पृ० २६७-६८

२- `रंगभूमि` पृ० ४२६

३- `जागरण` ५ सितम्बर १६३२ ई० विविध प्रसंग भाग ३ पृ० २०५-२०६

४- `हंस` सितम्बर १६३२ ई० विविध प्रसंग भाग ३ पृ० २०७।

इस नई सम्यता को प्रेमचन्द महाजनी सम्यता कहते हैं। उनके अनुसार "इस महाजनी सम्यता ने दुनिया में जो नई रीति-नीतियां चलाई हैं उनमें सबसे अधिक और रक्तपिपासु यही व्यवसाय वाला सिद्धान्त है।"[१] इस सम्यता का एक सिद्धांत है" Business is business'अर्थात् व्यवसाय व्यवसाय है, उसमें भावुकता के लिए गुंजाइश नहीं।"[२] सच तो यह है कि "इस सम्यता की आत्मा है व्यक्तित्व।"[३] "रंगभूमि" के जानसेवक और "गोदान" के चन्द्रप्रकाश खन्ना इसी व्यापार, व्यापार के सिद्धान्त को मानने वाले हैं और शुद्ध रूप से व्यक्तिवाद और भौतिकवाद के उपासक हैं। "कर्मभूमि" के लाला मनीराम तो पत्नी ऐसी चाहते हैं जो एजेण्टों को पटाकर अधिक कमीशन की गुंजाइश निकाल सके। लाला समरकान्त को पुत्र से यह शिकायत है कि उसने काले खां से चोरी का सोना कम दाम पर क्यों नहीं लिया। यह सब इसी व्यवसाय प्रधान सम्यता का परिणाम है।

ब्रिटिश निवासियों ने भारतीय जीवन के प्रत्येक अंग को प्रभावित किया था। भारतवर्ष में पिछड़ेपन के कारण केवल भारतीय व्यवसाय में ही वे हावी नहीं हुए थे बल्कि भारतीय संगठन और टैक्नीक में भी उनका महत्व स्थापित हुआ था।[४] सम्पूर्ण देश में न्याय व्यवस्था, उच्च शिक्षा की शुरुआत, आधुनिक बैंकिंग और व्यापार तथा आधुनिक उद्योगों की स्थापना के साथ भारतीय समाज का आधुनिकीकरण ब्रिटिश प्रशासन के अन्तर्गत ही प्रारम्भ हुआ।[५] शिक्षा के क्षेत्र में भी ब्रिटिश तरीकों

१- "महाजनी सम्यता" लेख दे० अमृतराय (चयनकर्ता) प्रेमचन्द स्मृति पृ० २४१

२- "महाजनी सम्यता लेख से दे० अमृतराय (चयकर्ता प्रेमचन्द स्मृति पृ० २६०

३- "महाजनी सम्यता" लेख दे० अमृतराय (चयनकर्ता प्रेमचन्द स्मृति पृ० २६१

४- दे० जवाहर लाल नेहरू : "डिस्कवरी आव इण्डिया", १६६७ (एशिया पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, बम्बई आदि) का अंश "द बैकवर्डनेस आव इण्डिया ऐण्ड सुपरियारिटी आव द इंगलिश इन आर्गनाइजेशन एण्ड टैक्नीक" पृ० २६१-२६६

५- "The modernization of Indian Society was begun under British rule largely by the activities of an elite of colonial administrators who established an effective administrative and judicial system over the whole country,

Contd...

का प्रभुत्व हो गया । शिक्षा की इस नई प्रणाली ने एक नए तरह के बुद्धिवादियों को जन्म दिया । आई०पी० देसाई के अनुसार "सामान्य रूप से ऐसा माना जाता है कि जिन लोगों ने नई शिक्षा ग्रहण की उन्होंने पाश्चात्य समाज और पाश्चात्य संस्कृति को भी स्वीकृति दी और फलत: एक नए बुद्धिवादी वर्ग के रूप में ये लोग भारतवर्ष में पश्चिमी समाज और संस्कृति के अथवा पाश्चात्यीकरण के क्रियाशील और प्रभावशाली एजेण्ट रहे हैं ।"[१] इस नई शिक्षा-व्यवस्था ने भारतीय जीवन की मूल दशाओं, परम्पराओं, आचार व्यवहार, व्यवसाय और राजनीति संपूर्ण पक्षों को प्रभावित किया है ।[२] प्रेमचन्द प्रभाव की इस स्वीकृति को मानसिक पराधीनता मानते हैं । उन्होंने जनवरी १९३१ के 'हंस' में 'मानसिक पराधीनता' लेख में लिखा था - "हम दैहिक पराधीनता से मुक्त होना तो चाहते हैं, पर मानसिक पराधीनता में अपने आपको स्वेच्छा से जकड़ते जा रहे हैं । किसी राष्ट्र या जाति का सबसे बहुमूल्य अंग क्या है ? उसकी भाषा, उसकी सभ्यता, उसके विचार, उसका कल्चर । -- हिन्दू और क्या मुसलमान, दोनों अपने कल्चर की रक्षा की दुहाई देते हुए भी उसी कल्चर का गला घोटने पर तुले हुए हैं ।"[३] ऐसा क्यों हो रहा है ? वह

१- "It is generally presumed that all these who took to the new education also approved of western society and culture, and that consequently as a class the new intellectuals were the most potent and active agents af western society and culture in India or of westernisation in India."
आई०पी० देसाई : 'द न्यू एलीट्स (Elite)' दे० टी०के० एन० उनाथन, इन्द्र देव, योगेन्द्रसिंह (सं) : 'टूवर्ड्स ए सोशियलाजी आव कल्चर इन इण्डिया' १९६५ (न्यू डेलही) पृ० १५०-१५१ ।

२- दे० आई०पी० देसाई ; द न्यू एलीट (Elite); टी०के० उनाथन, इन्द्रदेव, योगेन्द्रसिंह (सं) टूवर्ड्स ए सोशियॉलाजी ऑव कल्चर इन इण्डिया ; १९६५ (न्यू देलही) पृ० १५०-१५५

गत पृष्ठ का शेष :-

introduced higher education, and promoted modern banking and commerce, as well as some modern industries."
टी०बी०बाटमोर ; 'माडर्न एलीट्स इन इण्डिया', दे०टी०के०एन०उनाथन, इन्द्रदेव, योगेन्द्रसिंह ; 'टूवर्ड्स ए सोशियॉलॉजी ऑव कल्चर इन इण्डिया', १९६५ (न्यूदेलही), पृ० १८१

इसलिए कि "वे अपनी भाषा के स्थान पर अंग्रेजी का प्रयोग कर रहे हैं। भाषा को छोड़िए वे वेश भूषा में ही हमारे हिन्दुस्तानी योरोपियन हैं।"[1] सारा का सारा पहनावा पश्चिमी है अपना कुछ नहीं। हमारी सभ्यता के संगठनात्मक और आंतरिक गुण भी समाप्त हो गए हैं। "हमारी सभ्यता में सम्मिलित कुटुम्ब एक प्रधान अंग था। पश्चिमी सभ्यता में परिवार का अर्थ है - केवल स्त्री और पुरुष। दोनों में बुराइयां और भलाइयां दोनों ही हैं, पर जहां एक में सेवा और त्याग प्रधान है, वहां दूसरे में स्वार्थ और संकीर्णता। हमारी सभ्यता में नम्रता का बड़ा महत्व था, पश्चिमी सभ्यता में आत्म प्रशंसा को वही स्थान प्राप्त है। - - - हमारी सभ्यता में धन का स्थान गौण था, विद्या और आचरण से आदर मिलता था। पश्चिमी सभ्यता में धन ही मुख्य वस्तु है।"[2] और उसी सभ्यता को हम अपनाते जा रहे हैं।

प्रेमचन्द के कथा-साहित्य में हमें इस संस्कृति का प्रभाव पढ़े लिखे लोगों में स्पष्ट दिखाई देता है। 'सेवासदन' के डा० श्यामाचरण फर्राटे की अंग्रेजी बोलते हैं। कुंवर अनिरुद्धसिंह द्वारा टोके जाने पर उनकी धारणा है कि "अंग्रेजी हमारी *Lingua Franca* (सार्वदेशिक भाषा) हो रही है।"[3] 'कर्मभूमि' के डा० शान्तिकुमार सामाजिक राष्ट्रीय कार्यकर्ता हैं। जनसेवी हैं परन्तु वेश भूषा उनका शुद्ध रूप से पश्चिमी है। प्रेमचन्द उनके सम्बन्ध में लिखते हैं - "वेश भूषा अंग्रेजी थी और पहली नजर में अंग्रेज ही मालूम होते थे।"[4] 'गोदान' की मालती और मेहता आचार-व्यवहार में पश्चिमी आदर्शों के कायल हैं। वैचारिक रूप से भले ही मेहता भारतीय दिखाई देते हैं परंतु रहन-सहन उनका पश्चिमी है। शिक्षित लोगों में 'प्रेमाश्रम' के डा० ईफान अली बैरिस्टर, डा० प्रियनाथ व

१- 'हंस' जनवरी १९३१ ई० विविध प्रसंग भाग ३ पृ० १९१
२- 'हंस' जनवरी १९३१ ई० विविध प्रसंग भाग ३ पृ० १९३
३- 'सेवासदन' पृ० १८३
४- 'कर्मभूमि' पृ० २७

गत पृष्ठ का शेष :-
३- 'हंस' जनवरी १९३१ ई० विविध प्रसंग भाग ३ पृ० १८८

चोपड़ा, डाक्टर तथा `गोदान ` के ओंकारनाथ सम्पादक सब अपना स्वार्थ साधते हुए दिखाई देते हैं। `प्रेमाश्रम ` के ज्ञानशंकर के समक्ष संयुक्त परिवार ~~की सम्मिलित~~ का कोई मूल्य नहीं है। `गोदान ` के खन्ना साहब के परिवार में स्त्री-पुरुष के अलावा कोई नहीं है। `गोदान ` के श्याम विहारी तंखा ने जाल-फरेब से धन कमाने के अलावा कुछ भी नहीं सीखा है। प्रेमचन्द के समस्त शिक्षित पात्रों में कुछ राष्ट्रीय और सामाजिक पात्रों को छोड़कर प्राय: सब धन की ओर दौड़ते और येन-केन प्रकारेण स्वार्थ साधते हुए दिखाई देते हैं।

प्रेमचन्द आधुनिक सभ्यता ऊपरी दिखावे वाली सभ्यता को सभ्यता नहीं मानते हैं। `सभ्यता का रहस्य ` कहानी में उन्होंने लिखा है - "अगर कोट-पतलून पहनना, टाई-हैट लगाना, मेज पर बैठ कर खाना खाना दिन में तेरह बार काफी या चाय पीना और सिगार पीते हुए चलना सभ्यता है तो उन गोरों को भी सभ्य कहना पड़ेगा जो सड़क पर शाम को कभी-कभी टहलते नजर आते हैं, शराब के नशे में आंखें सुर्ख व पैर लड़खड़ाते हुए, रास्ता चलने वालों को अनायास छेड़ने की धुन। क्या उन गोरों को सभ्य कहा जा सकता है? कभी नहीं। तो यह सिद्ध हुआ कि सभ्यता कोई और ही चीज है, उसका देह से इतना सम्बन्ध नहीं है, जितना मन से।"[1] इस कहानी में उन्होंने ऊपर से सभ्य रामरतन किशोर साहब के चरित्र का मूल्यांकन किया है। रायसाहब अपने घर के नौकर दमड़ी को बैलों के लिए चारा काटने के अपराध में ६ महीने की सजा देते हैं और खून के मुकदमें में फंसे शहर के रईस की जमानत रूपया लेकर कर लेते हैं। प्रेमचन्द इस पर टीका करते हुए लिखते हैं - "मेरे दिल में यह ख्याल और भी पक्का हो गया कि सभ्यता केवल हुनर के साथ ऐब करने का नाम है। आप बुरे से बुरा काम करें, लेकिन अगर आप उस पर परदा डाल सकते हैं तो आप सभ्य हैं, जेण्टलमैन हैं। अगर

१- `सभ्यता का रहस्य ` मानसरोवर भाग ४ पृ० १९६

२- `सभ्यता का रहस्य ` मानसरोवर भाग ४ पृ० २०३।

आप में वह सिफत नहीं तो आप असभ्य हैं, बदमाश हैं। यही सभ्यता का रहस्य है।"[1] 'शांति' कहानी में प्रेमचन्द ने इस नई सभ्यता की हंसी उड़ाई है। आत्म कथन शैली में लिखी गई इस कहानी की स्त्री पात्र के पति बाबू जी आधुनिक सभ्यता के उपासक हैं। घर में क्राकरी के बर्तन हैं। मेज पर भोजन होता है। क्लब की सैर भी होती है। स्त्री को वे आधुनिका बना देते हैं। उनके अस्वस्थ होने पर जब स्त्री आधुनिका का व्यवहार करती है तो उन्हें अपनी पुरानी सभ्यता ही श्रेष्ठ दिखाई देने लगती है।[2]

प्रेमचन्द संस्कृति के इस परिवर्तन को नवीन और प्राचीन का भेद मानते हैं। उनके अनुसार "पूर्व और पश्चिम की प्राचीन संस्कृति में विशेष अन्तर न था। हां चूंकि नई संस्कृति का बड़ा भाग पश्चिम से आया है इसलिए उसे पश्चिम की उपाधि मिल गई है।"[3] वास्तव में संस्कृति का आधुनिक स्वरूप बदले हुए सामाजिक मूल्यों का प्रतिफल है। इस परिवर्तन में पश्चिम का महत्वपूर्ण योग रहा है। यही कारण है कि हम उसे पश्चिमी कह देते हैं। समाजशास्त्र संस्कृति के अध्ययन के समय उन दशाओं के अध्ययन के साथ जिनके कारण सांस्कृतिक परिवर्तन हुआ है, संस्कृति के प्रभाव और नए सांस्कृतिक मूल्यों का अध्ययन करता है। प्रेमचन्द - साहित्य में इन दशाओं की ओर भी संकेत किया गया है जिनके कारण सांस्कृतिक परिवर्तन हुआ है और संस्कृति ने आधुनिक स्वरूप ग्रहण किया है। साथ ही उसके प्रभाव और आज के सांस्कृतिक मूल्यों का भी चित्रण हुआ है।

आधुनिक संस्कृति ने संगठित-राष्ट्रीयता जैसी महत्वपूर्ण वस्तु भारतीय जीवन को प्रदान की है। प्रेमचन्द उसको एक गुण के रूप में स्वीकार करते हैं। फरवरी १९१९ के 'जमाना' में ही उन्होंने लिखा था "वर्तमान सभ्यता का

१- 'सभ्यता का रहस्य' मानसरोवर भाग ४ पृ० २०३

२- 'शांति' मानसरोवर, भाग ७ पृ० ८०-९६।

३- 'हंस' नवम्बर १९३१ ई० विविध प्रसंग भाग ३ पृ० १९६।

सबसे अच्छा पहलू राष्ट्रीयता की भावना का जन्म लेना है। उसे इस पर गर्व है और उचित गर्व है। - - - आधुनिक सभ्यता ने इस भावना को एक संगठित अणुशासित, एकताबद्ध और व्यवस्थित रूप दे दिया है।"[१] प्रेमचन्द के राष्ट्रीय पात्र आधुनिक शिक्षा और आधुनिक सभ्यता की देन है। विदेशी साहचर्य से हमारे यहां के शिक्षित लोगों ने अपने अधिकार-कर्तव्य को समझा। विदेशों में किए गए राष्ट्रीय संघर्षों से प्रेरणा ली और अपने परतंत्र भारत में राष्ट्रीय धरातल पर उतरे और सामाजिक कार्य किए। विनय, प्रभुसेवक, अमरकान्त, शान्ति कुमार अमृतराय,पदमसिंह आदि प्रेमचन्द के राष्ट्रीय और सामाजिक पात्र हैं। आधुनिक युग में राष्ट्रीय साहित्य की रचना हुई। 'प्रभुसेवक' राष्ट्रीय साहित्यकार हैं। उसकी 'नौका' नाम की कविता में राष्ट्रीय द्वन्द और संघर्ष के भाव चित्रित हैं।[२] सोफिया राष्ट्रीय साहित्य का निर्माण चाहती है। इसी कारण वह प्रभुसेवक को प्रेरित करती हुई कहती है - "तुम्हारा कर्तव्य है कि अपनी इस आलौकिक शक्ति को स्वदेश बन्धुओं के हित में लगाओ।"[३] संगीतज्ञ के रूप में 'सेवासदन' के अनिरुद्धसिंह को चित्रित किया गया है। जिन्हें भारतीय सितार पसंद है।[४] 'कायाकल्प' के मुंशी यशोदानन्दन शास्त्रीय संगीत के ज्ञाता हैं और मुंशी वज्रधर का संगीत ज्ञान अधकचरा है।[५]

प्रेमचन्द के साहित्य में साहित्य और संगीत का भी उल्लेख मिलता है। परन्तु उसका चित्रण विस्तार के साथ नहीं किया गया है। अधूरे उपन्यास 'मंगल सूत्र' में अवश्य प्रेमचन्द ने साहित्यकार को प्रकाशकों के आगे घुटने टेकते हुए चित्रित किया है। आधुनिक सभ्यता में साहित्यकार को भी लक्ष्मी के सामने हाथ पसारना पड़ रहा है। लक्ष्मी के मालिक प्रकाशक उसका शोषण करने में नहीं चूकते, यही उपन्यास में प्रदर्शित किया गया है।

१- 'ज़माना' फरवरी १९१९ ई० विविध प्रसंग भाग १ पृ० २५९

२- 'रंगभूमि' पृ० ४१८

३- 'रंगभूमि' पृ० ९१

४- 'सेवासदन' पृ० १५३

५- 'कायाकल्प' पृ० ७८।

प्रेमचन्द को युग में सांस्कृतिक परिवेश, होने वाले सांस्कृतिक परिवर्तन, इस परिवर्तन के कारण और परिवर्तन की दशाओं का अच्छा बोध था। सांस्कृतिक परिवर्तन से जो स्थितियां उत्पन्न हुई हैं संस्कृति सम्बन्धी जो मूल्य बदले हैं, मनुष्यों में उसके प्रभाव से जो प्रवृत्तियां जागी हैं प्रेमचन्द ने उन सबकी ओर संकेत किया है।

धार्मिक-सामाजिक जीवन

अध्याय के प्रारम्भ में ही कहा जा चुका है कि धर्म, धार्मिक स्थिति और युग-धर्म के प्रभुत्व का अध्ययन धार्मिक समाजशास्त्र (सोशियॉलॉजी ऑव रिलीजन) के अन्तर्गत किया जाता है। सामाजिक जीवन के अध्ययन के लिए सम्पूर्ण समाज शास्त्र उत्तरदायी है। यहां पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि सामाजिक जीवन के अध्ययन के अन्तर्गत समाज की क्रिया-प्रतिक्रिया, संस्थाएं, स्थितियां, शिक्षा, राजनीति, अर्थ, धर्म, समुदाय, परिवार, सामाजिक स्थिति, विप्लव, संघर्ष, परिवर्तन एवं परिष्कार आदि आ जाते हैं। समाजशास्त्र इन सब का अध्ययन अपने विभिन्न रूपों में करता है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में भी प्रेमचन्द-साहित्य में उपलब्ध इन विभिन्न पहलुओं पर यथासंभव प्रकाश डालने का प्रयास भिन्न-भिन्न अध्यायों में किया गया है। इस शीर्षक के अन्तर्गत सामाजिक जीवन से हमारा सम्बन्ध प्रेमचन्द के समय सामाजिक स्थिति और उसके लिए किए गए तत्कालीन सुधार सम्बन्धी प्रयासों से है। धर्म और धार्मिक स्थिति का अध्ययन संस्कृति के अन्तर्गत भी संभव था, परन्तु उसका अध्ययन सामाजिक जीवन के साथ करना इसलिए उचित समझा गया है क्योंकि भारतीय धर्म-प्रधान समाज में धर्म का अध्ययन समाज के साथ करने में दोनों पक्षों के समझने में अधिक सुविधा होगी। युग के धार्मिक सामाजिक जीवन के अध्ययन के लिए पहले हमें धार्मिक सामाजिक स्थिति का अध्ययन करना होगा तत्पश्चात् धार्मिक सामाजिक जागरण पर विचार किया जायगा।

धार्मिक-सामाजिक स्थिति -

भारतवर्ष का समाज धर्मप्रधान समाज रहा है। प्राचीन भारतीय सभ्यता या भारतीय आर्य संस्कृति का मूल धर्म रहा है। धर्म कर्तव्य भावना का मूल आधार

भी रहा है। धर्म रीति या नियम का एक अंग रहा है साथ ही सम्पूर्ण सृष्टि के संचालन के लिए मूल नैतिक नियम भी था। यह एक ऐसी विधा थी जिसमें मनुष्य को संतुलित करना था और इस तरह का व्यवहार करना था जिससे वह एकता के साथ रह सके।[१] समाज की इस धर्म प्रधानता से प्रारम्भ में वर्ण और गोत्र से कोई सम्बन्ध नहीं था। आर्यों ने चार वर्ण माने थे। वे थे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र। शूद्र प्राय: द्रविड़ थे जो आर्यों और अनार्यों के संघर्ष में बन्दी हुए थे। वर्णों के आधार प्रारम्भ में जन्म जात न होकर कर्मगत था। आगे चल कर वर्णों में दुरूहता आती गई और जाति-व्यवस्था को जन्म मिला। ब्राह्मण जाति को सम्पूर्ण सुविधाएं मिलीं। ब्राह्मणों ने अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए वर्ण के साथ जाति व्यवस्था को अधिक जटिल बनाने का प्रयास किया। इस व्यवस्था के विरोध में अनेक बार उपक्रम और प्रयत्न किए गए। महात्मा बुद्ध का बौद्ध धर्म और महावीर स्वामी का जैन धर्म इन व्यवस्थाओं की जटिलताओं, उनके द्वारा उत्पन्न स्थितियों, क्रियाओं और आडम्बरों का प्रतिफल था। यह व्यवस्था इतनी बलवती हो गई थी कि उसका अस्तित्व आज तक बना हुआ है। नेहरू के अनुसार जाति-व्यवस्था का मूलाधार आर्यों और अनार्यों के विभेद था। आगे चलकर

१- "The central idea of old Indian civilization, or Indo-Aryan culture, was that of Dharma, which was something whixk much more than religion or creed; it was a conception of obligations, of the discharge of one's duties to oneself and to others. This dharma itself was part of Rita, the fundamental moral law governing the functioning of the universe and all it contained. If there was such an order then man was supposed to fit into it, and he should function in such a way as to remain in harmony with it.

जवाहर लाल नेहरू : 'डिस्कवरी ऑव इण्डिया', १९६७ (बम्बई, दिल्ली आदि) पृ० ६०

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र उपासक और उपदेशक, योद्धा, कृषक, व्यापारी और कलाकार तथा श्रमिकों के रूप में समाज में लोग विभाजित हुए। जीवन की सुविधा के लिए समाज को ही नहीं जीवन को ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास में बांटा गया। ब्राह्मणों के त्याग ने उन्हें समाज में महत्वपूर्ण स्थान दिया। परन्तु आगे जातीय जटिलता समाज में व्याप्त हुई जो आज के आर्थिक युग में भी विद्यमान है।[1]

वैदिक काल के बाद पौराणिक काल अथवा ब्राह्मण काल से ही धर्माडम्बर और धार्मिक धूर्तता प्रारम्भ हो गई थी। आगे चल कर सब से आश्चर्य की बात तो यह हुई कि मिथ्याडंबरों और ब्राह्मण धर्म की कुरीतियों के विरुद्ध उठे हुए बौद्ध और जैन धर्म के संन्यासियों में भी बाह्याडम्बर और मिथ्या प्रचार आ गया। उनका धर्म कर्म भी स्व में केन्द्रित होकर इन्द्रिय सुखतक सीमित रह गया। हिन्दू राजाओं की समाप्ति के बाद भारतीय धर्म की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गई। आधुनिक युग में ब्राह्मण केवल व्यासपीठों के उपदेशक रह गए। धर्म मात्र उनकी वृत्ति का साधन रह गया। उनका त्याग और उनकी तपस्या विश्राम करने चली गई। अन्य जातियों के लोगों ने भी सन्यास और साधुता को अपनी वृत्ति का आधार बनाया। सन्यासी और साधु समाज का बहुमत नराधम। विनाशकर्ता, व्यभिचारी पतित था। दान और दक्षिणा इनकी मुख्य वृत्ति थी। 'मंदिर' और 'मठ' इनके विहार स्थल थे। भारतवर्ष की यात्रा करने वाली विदेशी महिला मार्गरीटा बार्न्स ने इस सम्बन्ध में लिखा है - 'ऐसा नहीं है कि भारतवर्ष में विश्वप्रेम या मानव-समाज के प्रति उपकार की भावना नहीं है, परन्तु कभी-कभी यह मंदिरों, साधुओं और उपदेशकों के उपहार का रूप ले लेती है। अब तक किसी ने धनराशि का अनुमान नहीं लगाया करोड़ों रुपया प्रत्येक वर्ष-दान के रूप में दे दिया जाता है जिससे देश को बदले में कुछ नहीं मिलता।'[2] प्रेमचन्द धर्म की इस

१- जवाहर लाल नेहरू : 'डिस्कवरी ऑव इण्डिया', १९४७ (बम्बई, दिल्ली आदि) का दे० अंश ६ सिन्थेसिस ऐण्ड एडजस्टमेण्ट, द बिगिनिंग ऑव द कास्ट सिस्टम : पृ० ८७-९० ।

२- आगामी पृष्ठ पर देखिए -

अधोपतन की स्थिति से परिचित थे। उन्होंने हंस अप्रैल १६३४ के अंक में लिखा है - "हिन्दू समाज के परम पवित्र तथा माननीय मंदिरों की ओर दृष्टिपात करने से हृदय कांप उठता है। यहां की दशा दयनीय ही नहीं, चिंताजनक भी है। जहां भक्ति की, ज्ञान की, आत्म-साधन की तथा तपस्या की निर्मल धारा बहाकर लोगों के जीवन को सुंदर और सुखमय बनाना चाहिए, वहां आज दुराचार, पापाचार, भ्रष्टता तथा दुष्कृत्यों का केन्द्र देख कर आत्मा रो उठती है। उन्हें देखकर एक जोरदार प्रश्न उठता है कि क्या यही मंदिर है? क्या यही भगवान का निवास है।"[१] पुजारियों, महंतों और धर्मगुरुओं के पापाचार और विलासमय जीवन का चित्रण करते हुए इसी अंक में लिखते हैं - "पुजारियों का, महंतों का और धर्मगुरुओं का जीवन भयानक विलासिता से भरा हुआ है। वे मंदिरों की आड़ में जघन्य-से जघन्य कर्म करते नहीं शर्माते। ईश्वर को गाना सुनाकर खुश रखने के लिए उन्हें वेश्याएं चाहिए। इस बहाने वे अपनी राक्षसी कामना को पूर्ण करते और अपने जीवन को विलास-भावना और पतन के गड्ढे में डाल देते हैं। तिस पर भी हिन्दू-समाज के लिए वे पूज्य हैं, माननीय है और देवता-तुल्य है, क्योंकि वे पुजारी हैं महंत है और धर्मगुरु हैं। प्रतिदिन अनेक भोली-भाली तथा धर्मभीरु युवतियां पुन्य कमाने के लिए मंदिरों में पहुंचती है और वे उन ईश्वर के प्रतिनिधियों के द्वारा या उनके संकेत मात्र से गायब

१- 'हंस' अप्रैल १६३४ ई० विविध प्रसंग भाग ३ पृ० ६६० ।

गत पृष्ठ का शेष :

२- "It is not that there is no philanthrophy in India, but so often it takes the form of tribute to temples, Sadhus, and priests. Nobody has ever been able to compute the amount, but crores of rupees must pass hands in India every year in that form of charity which brings no return to the country".

मार्गेरीटा बार्न्स : इण्डिया टुडे ऐण्ड टुमारो, १६३७ (लन्दन) पृ० १५० ।

कर दी जाती है और उनकी काम-वासना की शिकार बन जाती है। हिन्दू-समाज को यह सब कुछ मालूम है।"[1] यही धार्मिक लोग किसी भी रूढ़ि, कुप्रथा के विरुद्ध आवाज उठाने या देश हितकारी कार्य का पूरी ताकत से विरोध करते हैं। ये लोग नए जमाने की आवाज से बेखबर हैं।[2] हिन्दू समाज इतना अंधविश्वासी है कि इनके चक्कर में फंसा हुआ है। प्रेमचन्द इस धार्मिक अंधविश्वास के सम्बन्ध में लिखते हैं - "हिन्दू समाज में पुजने के लिए केवल एक लंगोटी बांध लेने और देह में राख मल लेने की जरूरत है, अगर गांजा और चरस उड़ाने का अभ्यास भी हो जाय तो और ही उत्तम। यह स्वांग भर लेने के बाद फिर बाबा जी देवता बन जाते हैं। मूर्ख हैं, धूर्त हैं, नीच हैं पर इससे कोई प्रयोजन नहीं।"[3] आश्चर्य तो यह है कि धर्म के यही ठेकेदार सम्पत्तिशाली बन गए हैं। उस सम्पत्ति से भोग विलास और ऐश्वर्य में रत रहे हैं। प्रेमचन्द के अनुसार - "आज बड़ी बड़ी जमींदारियों के मालिक कितने ही महन्त हैं। उनकी लेन-देन की कोठियां चलती हैं, तरह तरह के व्यवसाय होते हैं और बहुधा उन्हीं दानियों की संतानें जिन्होंने जायदाद महन्तों को दान दी थी, आज इन्हीं महन्तों से कर्ज लेता है। इनका भोग-विलास और ऐश्वर्य हमारे राजाओं को भी लज्जित कर सकता है। उस जायदाद का उपभोग अब इसके सिवा कुछ नहीं है कि मुसण्डे खायं, डंड पेलें, और व्यभिचार करें।"[4] प्रेमचन्द के 'सेवासदन' उपन्यास के महन्त रामदास साधुओं की एक गद्दी के महन्त थे। उनके यहां सारा कारोबार भी बांके बिहारी जी के नाम पर होता था। 'श्री बांके बिहारी जी, लेन-देन करते थे और ३२) सैकड़े से कम सूद न लेते थे। वही मालगुजारी वसूल करते थे, वही रेहननामे बैनामे लिखते थे।"[5] महन्त रामदास का

१- 'हंस' अप्रैल बे १६३४ दे० विविध प्रसंग भाग ३ पृ० १६०

२- इस सम्बन्ध में विस्तार के लिए दे० हिन्दू समाज के वीभत्स दृश्य ३ - मंदिरों पर एक दृष्टि", विविध प्रसंग भाग ३ पृ० १६०-१६२

३- 'जागरण' २६ मार्च १६३४ दे० विविध प्रसंग भाग ३, पृ० १५७

४- 'जागरण' २६ मार्च १६३४ दे० विविध प्रसंग भाग ३ पृ० १५८

५- 'सेवासदन' पृ० ७।

इलाके में बड़ा आतंक था । 'श्री बांके विहारी जी' को रुष्ट करने का किसी में साहस नहीं था क्योंकि 'महंत रामदास ' के यहां दस-बीस मोटे ताजे साधु सन्यासी स्थायी रूप से रहते थे । वह अखाड़े में दंड पेलते । भैंस का ताजा दूध पीते, संध्या को दूधिया भंग छानते और गांजे-चरस की चिलम तो कभी ठंडी न होने पाती थी । ऐसे बलवान जत्थे के विरुद्ध कौन सिर उठाता ?"[1] धर्म के नाम पर भोग-विलास और ऐश्वर्य में रत बांके विहारी जी के चेले के अत्याचार का चित्रण प्रेमचन्द के चेतू किसान के ऊपर किए गए अत्याचार के माध्यम से किया है । एक यज्ञ में आमंत्रित महात्माओं के भोग के लिए आसामी पीछे ५) चंदा देने में चेतू समर्थ न था । इजाफे लगान की नालिश से वह कर्ज के बोझ से दबा हुआ था । इस किसान ने रुक्का लिखने से मनाही कर दी । परिणाम हुआ 'एक दिन कई महात्मा चेतू को पकड़े लाये । ठाकुर द्वारे के सामने उस पर मार पड़ने लगी । चेतू भी बिगड़ा । हाथ तो बंधे हुए थे, मुंह से लात घूसों का जवाब देता रहा और जब तक जबान बंद न हो गयी, चुप न हुआ । इतना कष्ट देकर भी ठाकुर जी को संतोष न हुआ । उसी रात को उसके प्राण हर लिये ।"[2] 'कर्मभूमि ' के चौधरी के इलाके के जमींदार महंत के ठाकुरद्वारे में "कोई न कोई उत्सव होता ही रहता था । कभी ठाकुर जी का जन्म है, कभी ब्याह है, कभी यज्ञोपवीत है, कभी झूला है, कभी जल विहार है । असामियों को इन अवसरों पर बेगार देनी पड़ती थी, भेंट, न्यौछावर, पूजा चढ़ावा आदि नामों से दस्तूरी चुकानी पड़ती थी ।"[3] अनाजों का भाव गिर जाने से इलाके में तबाही हो जाती है परंतु ठाकुरद्वारे के मालिक महंत का दिल नहीं पसीजता । किसानों की लगान माफी की प्रार्थना की सुनवाई महंत के दरबार में नहीं होती । परिणाम स्वरूप आंदोलन, रक्तपात और गिरफ्तारियों की नौबत आती है ।

१- 'सेवासदन ' पृ० ७-८

२- 'सेवासदन ' पृ० ८

३- 'कर्मभूमि ' पृ० २८६ ।

यह थी प्रेमचन्द युगीन समाज के धर्म की सही स्थिति । जहां पर धर्म के नाम पर धन और सम्मान प्राप्त करने का प्रयास किया जाता था परन्तु धार्मिक कार्यों से मुंह मोड़ लिया जाता था । पूंजीवादी उद्योग और व्यवसाय के युग में धर्म के अस्तित्व का चित्रण प्रेमचन्द ने `रंगभूमि ` और `कर्मभूमि ` उपन्यास में किया है । व्यवसायी जॉनसेवक का ताहिर अली को उपदेश है - `धर्म और व्यापार को एक तराजू तौलना मूर्खता है, धर्म धर्म है व्यापार व्यापार, परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं । संसार में जीवित रहने के लिए किसी व्यापार की जरूरत है, धर्म की नहीं, धर्म तो व्यापार का श्रृंगार है, वह धनाधीशों को शोभा देता है ।`[१] ताहिर अली को गरीबों के प्रति सहानुभूति का उसे मिसेज जॉनसेवक का जवाब है - `अब आपको ईश्वरीय कोप का इतना भय है, तो आज से हमारे यहां काम नहीं हो सकता ।`[२] `कर्मभूमि ` का व्यवसायी समरकान्त का धर्म गंगा स्नान करना, तिलक लगाना और चोरी का माल हजम करना है । उनके अनुसार संसार में कौन है जिसे धन की आवश्यकता नहीं है । काले खां के चोरी में कड़े वापस करने पर पुत्र अमरकान्त को फटकार बताते हैं - `तुम क्या जानते हो धर्म किसे कहते हैं । धर्म और चीज है, रोजगार और चीज । छि: साफ ढेढ़ सौ फेंक दिये ।`[३] सोफिया के प्रयास से पांडेपुर की जमीन की स्वीकृति मि० क्लार्क द्वारा वापस लिए जाने पर जॉनसेवक की बेटी को यह फटकार मिलती है - `धार्मिक विवेचनाओं ने तुम्हारी व्यवहारिक बुद्धि को डांवाडोल कर दिया है । तुम्हें इतनी ही समझ नहीं है कि त्याग और परोपकार केवल एक आदर्श है - कवियों के लिए, भक्तों के मनोरंजन के लिए, उपदेशकों की वाणी को अलंकृत करने के लिए । मसीह, बुद्ध और मूसा के जन्म लेने का समय अब नहीं रहा, धन ऐश्वर्य निन्दित होने पर भी मानवीय इच्छाओं का स्वर्ग है और रहेगा । खुदा के लिए मुझ पर अपने धर्म सिद्धान्तों की परीक्षा मत करो, मैं तुमसे नीति और धर्म का पाठ नहीं पढ़ना चाहता ।`[४] `गबन ` के करोड़ी मल की कई धर्मशालाएं हैं ।

१- `रंगभूमि ` पृ० ७२

२- `रंगभूमि ` पृ० ७६

३- `कर्मभूमि ` पृ० ४४

४- `रंगभूमि ` पृ० २१७

दान में कम्बल बांटते हैं। परन्तु उनके मिल में मजदूरों का शोषण और उन पर अत्याचार की सीमा नहीं है। देवीदीन के शब्दों में - 'उसे पापी कहना चाहिए महापापी, दया तो उसके पास से होकर नहीं निकली। --- आदमियों को हंटरों से पिटवाता है, हंटरों से। चरबी मिलाकर घी बेच कर इसने लाखों कमा लिये। --- इसके तीन तो बड़े बड़े धर्मशाले हैं, मुदा है पाखंडी।'[1] 'कर्मभूमि' के ब्रह्मचारी भी अछूतों पर जूते चलाते हैं परन्तु दक्षिणा मिलने पर उनका क्रोध शांत होता दिखाई देता है। आंदोलन समाप्त होने पर - 'सारे दिन मंदिर में भक्तों का तांता लगा रहा। ब्रह्मचारी आज फिर विराजमान हो गये थे और जितनी स दक्षिणा उन्हें आज मिली, उतनी शायद उम्र भर में न मिली होगी। इससे उनके मन का विद्रोह बहुत कुछ शांत हो गया।'[2] यह थी प्रेमचन्द के युग की धर्म और धार्मिकों की स्थिति जिसका यथार्थ चित्रण प्रेमचन्द जी ने प्रस्तुत किया है। आज भी धर्म और धार्मिकों की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है बल्कि वे अपने तत्कालीन स्वरूप से दो चार कदम और आगे ही हैं।

जहां तक सामाजिक स्थिति का प्रश्न है। समाज में धर्म की स्थिति का चित्रण ऊपर किया जा चुका है। जिस धर्मप्रधान समाज में धर्म की स्थिति इतनी दयनीय हो गई हो, धर्म मात्र स्वार्थ साधने का बहाना मात्र हो गया हो उसकी सामाजिक स्थिति की कल्पना सहज ही की जा सकती है। समाज में जाति-प्रथा की भयंकरता जिसका स्वरूप ब्राह्मण काल मे निर्मित होकर प्रारम्भ हुआ था वह आधुनिक युग में अपनी चरम सीमा पर है। प्रेमचन्द के समय जाति की जटिलता तो विद्यमान ही थी उसे विदेशी सरकार का सरकारी संरक्षण भी प्राप्त था। इस सम्बन्ध में प्रेमचन्द लिखते हैं - "हिन्दू खुद जाति भेद का जितना भक्त है, सरकार इस बात में उससे कोस भर आगे बढ़ी हुई है। और हमारा तो कहना ही क्या, हम तो पहले कायस्थ, या ब्राह्मण या वैश्य हैं, पीछे आदमी। किसी से मिलते ही हम पहला सवाल यही करते हैं कि आप कौन साहब हैं। ग्रामीणों में भी यही सवाल पूछा जाता है - कौन ठाकुर ? अगर वह अपनी सजाति हुआ,

---

१- 'गबन' पृ० १६१

२- 'कर्मभूमि' पृ० २१३।

तो उसके लिए चिलम भी है, तम्बाकू भी है, वरना उसमें कोई दिलचस्पी नहीं रहती। और हम कितने गर्व से अपने को शर्मा, वर्मा, तिवारी, चतुर्वेदी लिखते हैं कि क्या पूछना ? यह इसके सिवा क्या है कि भेद भाव हमारे रक्त में सन गया है और हममें जो पक्के राष्ट्रवादी हैं वे भी अपनी साम्प्रदायिकता की बिगुल बजाकर फूले नहीं समाते, वरना इसकी जरूरत ही क्या है कि हम अपने को चतुर्वेदी या त्रिवेदी कहें।"[१]

प्रेमचन्द-साहित्य में पात्रों की विभिन्नता में जातीयता का बोध हो जाता है। प्रेमचन्द के पात्रों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि विभिन्न जातियों के पात्र हैं। विभिन्न प्रकार की उपजातियां और क्षेत्रीय जातियों के भी पात्र हैं जिनमें कायस्थ, अहीर, चमार, पासी, भील, गोंड, नट आदि उल्लेखनीय हैं। समाज में सबसे दयनीय दशा शूद्रों या अछूतों की है। हिन्दू जाति व्यवस्था ने शूद्रों को आर्थिक रूप से ही कमजोर नहीं बनाया बल्कि धार्मिक दृष्टि से उन्हें अछूत करार कर दिया है यद्यपि स्वतंत्र भारत के संविधान ने अछूत ऐसी समस्या का संवैधानिक निराकरण कर दिया है परन्तु कोई भी निष्पक्ष पर्यवेक्षक इस बात से इन्कार नहीं कर सकता कि अछूतों की स्थिति में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है।[२] प्रेमचन्द ने अछूतों की दयनीय स्थित और उनकी समस्याओं का विशद चित्रण किया है।

१- 'हंस' फरवरी १९३४ ई० विविध प्रसंग भाग ३ पृ० १५३।

२- "One of the major facts of Hindu life is the existence of a system known as untouchability. The Indian constitution has abolished untouchability and made its practice a penal office, Legally therefore, untouchability is no longer a part of either Hindu or Indian life... No impartial observer would deny that with the achievement of independence a very great change in the position of the Harijan community has come about."

के०एम० पाणिक्कर 'हिन्दू सोसाइटी ऐट क्रास रोड्स', १९५५ (एसिया पब्लिशिंग हाउस), पृ० २५।

परतंत्र भारत में स्थिति सम्बन्धी दयनीयता में अछूतों के बाद दूसरा स्थान नारी का था । नारी समाज की दलित, अधिकार विहीन प्राणी थी । हिन्दू समाज में न तो उसके लिए पिता के परिवार में स्थान था, न ही पति के परिवार में । दोनों स्थानों पर उसका अस्तित्व केवल काम करके पेट भरने के अलावा कुछ भी नहीं था । दोनों परिवारों की संपत्ति में उसका कानूनी अधिकार भी नहीं था । परिवार में विधवा की स्थिति तो और भी दयनीय थी । परिवार के लोगों की कृपा के आधार पर ही उसका जीवन निर्भर था । समाज के शुभ कार्यों में उसका भाग लेना वर्जित ही नहीं उसकी उपस्थिति अशुभ मानी जाती थी । पुरातन पंथी हिन्दू समाज के बहुत बड़े भाग में उसकी दशा आज भी जैसी की तैसी है । आधुनिक राष्ट्रीय जागरण ने कुछ माने में नारी समाज में जागृति पैदा की है ।[१] आर्थिक दृष्टि से नारी की दयनीय स्थिति का चित्रण करते हुए जवाहर लाल नेहरू ने लिखा है कि आर्थिक निर्भरता के लिए अपने पति या पिता या पुत्र की ओर देखना पड़ता था । उसके अपने सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार नहीं थे ।[२] विधवा नारी की दशा अत्यन्त करुणादायक थी । उसे पुनर्विवाह की अनुमति नहीं थी । १६२४ ई० के आस पास तक हमारे भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद ऐसे राष्ट्र प्रेमी पुरुष के विचार भी इस सम्बन्ध में स्पष्ट नहीं थे ।[३] विदेशी पर्यवेक्षक

१- विस्तार के लिए दे० के०एम० पाणिक्कर : हिन्दू सोसाइटी ऐट क्रास रोड्स १६५५ (बम्बई, कलकत्ता), का अध्याय ४ वीमेन इन द हिन्दू फैमिली, पृ० ३०-३६

२- "A woman by marriage changed her family. In an economic sense she was looked upon as a dependent of her father or husband or son, but she could and did hold property in her own right."

जवाहर लाल नेहरू : 'द डिस्कवरी ऑव इण्डिया', १६६७ (बम्बई कलकत्ता आदि), पृ० २८१

३- "Remarriage of young widows is still not so common. Though on this question I had no clear vies at that times. I later realised the need for it. By giving consent to a few widow-remarriage, I have encouraged this reform."

डा० राजेन्द्र प्रसाद : 'आटोबायोग्रैफी', १६५७ (बम्बई) पृ० २३६

मार्गैरीटी के अनुसार `भारतीय इतिहासकारों के अनुसार उपनिषद काल में स्त्रियां शिक्षा के क्षेत्र में बढ़ी चढ़ी हुई थीं । महिला अध्यापिकाओं और दार्शनिकों के नाम आज भी जाने जाते हैं । मुसलमानों के आ जाने से हिन्दू जीवन बंधन मुक्त हो गया और नारी की स्वतंत्रता समाप्त हो गई । नारियों में पर्दा प्रथा का प्रचलन हुआ और स्त्रियां यह भी न देख सकती थीं न जान सकती थीं कि बाहर क्या हो रहा है ? इसके लिए हिन्दू धार्मिक संहिताएं भी उत्तरदायी हैं ।परन्तु तब भी बहुत सी ऐसी स्त्रियां भी थी जो पर्दे के भीतर से अपने प्रबन्धकों और नौकरों को आदेश देती थीं ।[१] प्रेमचन्द ने समाज में नारी की इस दयनीय स्थिति को समझने का प्रयास किया था । उन्होंने अपने सम्पूर्ण साहित्य में नारी की स्थिति का ध्यान रखा है और नारी की समस्याओं पर विचार किया है ।[२]

जैसा कि इसी अध्याय में हम देख चुके हैं कि प्रेमचन्द को अपने युग के समाज की राजनैतिक, आर्थिक, शिक्षा तथा संस्कृति सम्बन्धी सामाजिक दशाओं का बोध था और उन्होंने उनका चित्रण यथास्थान पर किया भी है । प्रेमचन्द युग की सामाजिक गतिविधियों से भी परिचित थे और उन गतिविधियों के स्वरूप का चित्रण भी उन्होंने अपने साहित्य में यथा सामर्थ्य किया है । प्रेमचन्द ने अपने युग में अछूत और नारी समस्याओं के अलावा समाज की आर्थिक स्थिति और आर्थिक समस्याओं को भी स्पर्श किया है । इन सबका विस्तार से अध्ययन अगले अध्याय में किया गया है । प्रेमचन्द युग में होने वाले धार्मिक-सामाजिक जागरण के कार्यों से भी अनभिज्ञ नहीं थे । वे युगीन समाज में इस होने वाले धार्मिक-सामाजिक सुधार संबंधी कार्यों के मात्र दर्शक ही नहीं रहे बल्कि उसमें सहयोगी भी रहे हैं । तत्कालीन समाज में इस पक्ष पर विचार करने के साथ ही हम प्रस्तुत अध्याय को समाप्त करना उचित समझेंगे ।

धार्मिक-सामाजिक जागरण और प्रेमचन्द

भारतवर्ष की धार्मिक कट्टरता और सामाजिक विषमता ने भारतीय समाज

१- मार्गैरीटा बार्न्स : `इण्डिया टुडे एण्ड टुमारो` १९३७ (लन्दन) पृ० १९४-९५

२- इस संबंध में इसी प्रबन्ध में अध्याय ५ की नारी संबंधी वेश्या, विधवा, दहेज समस्याएं द्रष्टव्य हैं ।

को जर्जर कर दिया था । इस सामाजिक खोखलेपन को आधुनिक काल के अनेक शिक्षित व्यक्तियों ने पहचाना और उसे दूर करने का भरसक प्रयत्न किया । अनेक प्रकार के धार्मिक-सामाजिक सुधार आंदोलनों के माध्यम से समाज की धार्मिक, सामाजिक कुरीतियों, विडम्बनाओं, दयनीय स्थितियों, आडम्बरों को दूर करने का प्रयास किया गया साथ ही राष्ट्रीय रंगमंच के लिए पृष्ठभूमि भी तैयार की गई । उल्लेखनीय पुरुषों में सर्वप्रथम राजा राम मोहनराम (१७७४-१८३३) थे जिन्होंने इस महायज्ञ का शुभारम्भ किया । राजा राममोहन राम ने सरकारी नौकरी छोड़कर जनसेवा का व्रत लिया । उनका महत्वपूर्ण योगदान सती प्रथा को रोकने के लिए वैधानिक नियन्त्रण की सफलता है । उन्होंने १६२४ में कलकत्ते में ब्रह्म समाज की स्थापना की जिसका कार्य क्षेत्र पूरा बंगाल प्रदेश बना । आधुनिक धार्मिक-सामाजिक जागरण में ब्रह्म समाज का योगदान अविस्मरणीय रहेगा । रवीन्द्रनाथ टैगोर के पिता देवेन्द्रनाथ ह टैगोर और प्रसिद्ध प्रगतिशील सुधारक केशवचन्द सेन का सम्बन्ध ब्रह्मसमाज से था । केशवचन्द सेन (१८३८-८४) के प्रयास का ही परिणाम था कि मद्रास में 'देवसमाज' और बम्बई में 'प्रार्थनासमाज' की स्थापना हुई थी । प्रार्थना-समाज की शाखा बम्बई के अलावा मद्रास में भी स्थापित की गई थी । प्रार्थना-समाज का कार्य क्षेत्र अन्य भारतीय शिक्षित व्यक्तियों के मध्य विस्तृत हुवा । इस समाज के प्रमुख सदस्य महादेव गोविन्द रानाडे (१८४२-१६०१) ने समाज के उपकार में विशेष रूप से नारियों के उद्धार में विशेष योग दान दिया । उन्होंने १८६१ ई० में विधवा-विवाह परिषद की स्थापना की जिससे विधवाओं के सुधार में महत्वपूर्ण कार्य किया । इस क्षेत्र में प्रो० कर्वे (१६५८) का योग भी प्रशंसनीय रहा है । धार्मिक-सामाजिक सुधार के संदर्भ में एक दूसरी संस्था आर्य समाज का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योग रहा है । आर्य समाज की स्थापना स्वामी दयानन्द सरस्वती (१८२७-८३) ने १८७५ ई० में की थी । आर्य समाज ने 'वेदों की ओर वापस लौटो' का नारा दिया और धार्मिक आडम्बरों, परम्पराओं और कुरीतियों का भण्डाफोड़ करके उनसे मुक्ति पाने के लिए जनता को जगाया । तत्कालीन सुधारक ईश्वरचन्द्र विद्यासागर (१८२०-६१) का नाम भी सामाजिक सुधार के क्षेत्र में स्मरणीय है ।

आर्य समाज के अलावा रामकृष्ण मिशन का योग भी सराहनीय है। रामकृष्ण परमहंस के परम शिष्य नरेन्द्रनाथ बाद के स्वामी विवेकानन्द (१८६३-१९०२) ने भारतवर्ष में ही नहीं विदेशों में भी भारतीय सिद्धान्तों को फैलाया। उन्होंने भारतीय धर्म में फैले हुए अंधविश्वास और आडम्बर की खुलकर आलोचना की और समाज में सुधार के लिए प्रयत्न किए। भारतवर्ष में थियोसोफिकल सोसाइटी का भी धार्मिक-सामाजिक सुधार आंदोलन में अच्छा स्थान है। इसकी प्रमुख सदस्या श्रीमती एनी बेसेन्ट (१८४७-१९३३) ने न केवल धार्मिक सामाजिक जागृति के कार्य किए बल्कि शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

ब्रह्म समाज-प्रार्थना समाज, आर्य समाज एवं अन्य आंदोलन ऊपर से तो धार्मिक आंदोलन थे परन्तु उनका सामाजिक योगदान धार्मिक योगदान से अधिक महत्वपूर्ण है। वास्तव में ये धार्मिक आन्दोलनों ने नए समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पुराने धर्म को नया रूप दिया।[१] मूल रूप से धार्मिक तथा कार्य रूप से सामाजिक ब्रिटिश प्रशासन काल के ये विभिन्न प्रकार के सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन बढ़ती हुई राष्ट्रीय आत्मजागृति और भारतीय लोगों में पश्चिम के उदारवादी विचारों के विस्तार की अभिव्यक्ति थे। इन आंदोलनों ने सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में पुनर्निमाण के कार्यक्रम तथा राष्ट्र को राष्ट्रीय क्षेत्र प्रदत्त किया।[२]

१- "In fact, there religio-reform movements, the Brahmo Samaj, the Prarthana samaj, the Arya Samaj, and others, were in different degrees endeavours to recast the old religion into a new form suited to meet the needs of the new society".

ए०आर०देसाई : 'सोशल बैकग्राउन्ड ऑव इण्डियन नेशनालिज्म', १९२९ (बम्बई) पृ० २६०

२- ए०आर० आर० देसाई : 'सोशल बैकग्राउन्ड ऑव इण्डियन नेशनालिज्म', १९५९ (बम्बई) पृ० २२१

इन आन्दोलनों का प्रभाव अपनी उत्पत्ति काल के बाद से दिन प्रतिदिन बढ़ता ही गया । प्रेमचन्द जी के समय इनका प्रभाव भारतीय समाज में फैल चुका था । प्रेमचन्द इन आंदोलनों अथवा इनसे संबंधित महापुरुषों के कार्यों से प्रभावित थे । राजाराम मोहनराय की जन्म शताब्दी पर उनके कार्यों की प्रशंसा करते हुए उन्होंने लिखा था - "राजा राममोहनराय भारत के ही नहीं, संसार के महान पुरुषों में हैं और सच्चा सार्वदेशिक इतिहास लिखा जायगा, तो संसार के प्रवर्तकों में उनका नाम भी लिखा जायगा । भारत में आज जो धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, सामाजिक जागृति है, उसका रूपमात्र राजा राम मोहनराय ने ही दिया ।[१] स्वामी दयानन्द सरस्वती के विषय में उन्होंने अपनी पत्नी से कहा था - "मैं धन्यवाद देता हूं दयानन्द को । उन्होंने आर्य समाज का प्रचार करके स्त्रियों का और समाज का बड़ा उपकार किया है ।"[२] आर्य समाज के विषय में उनकी धारणा थी "आर्य समाज ने साबित कर दिया है कि समाज की सेवा ही किसी धर्म के सजीव होने का लक्षण है । सेवा का ऐसा कौन सा क्षेत्र है जिसमें उसकी कीर्ति की ध्वजा न उड़ रही हो । - - - हरिजनों के उद्धार के लिए सबसे पहले आर्य समाज ने कदम उठाया, लड़कियों की शिक्षा की जरूरत को सबसे पहले उसने समझा । वर्ण-व्यवस्था को जन्मगत न मानकर कर्मगत सिद्ध करने का सेहरा उसके सिर पर है । जाति-भेद-भाव और ख खान पान के छूतछात के नाम पर किए जाने वाले हजारों अनाचारों की कब्र उसने खोदी --- समाज के मानसिक और बौद्धिक धरातल (सतह) को आर्य समाज ने जितना उठाया, शायद ही भारत की किसी संस्था ने उठाया हो ।"[३] स्वामी विवेकानन्द के सम्बन्ध में उनका विश्वास था - "आज अपनी समाज व्यवस्था, अपने वेद शास्त्र, अपने रीति व्यवहार और धर्म को हम आदर की दृष्टि से देखते हैं । यह उसी पुन्यात्मा के उपदेशों का सुफल है कि हम अपने प्राचीन आदर्शों की पूजा करने को प्रस्तुत हैं ।"[४] उन्होंने "स्वामी

१- "हंस" सितम्बर " १९३३ ई० विविध प्रसंग, भाग ३ पृ० ४३१

२- शिवरानी देवी : "प्रेमचन्द घर में" इलाहाबाद पृ० ९७

३- प्रेमचन्द : "कुछ विचार" १९६५, वर्तमान संस्करण, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, पृ० ७०-७१

४- प्रेमचन्द : कलम, तलवार और त्याग (भाग १) १९६१ इलाहाबाद का "स्वामी विवेकानन्द" लेख का अंश ई० पृ० ८९

विवेकानन्द नामक लेख में, जिससे प्रस्तुत अंश उद्धृत हैं, विवेकानन्द के कार्यों एवं आदर्शों की भूरि भूरि प्रशंसा की है। एनीबेसेन्ट की मृत्यु पर उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए प्रेमचन्द ने लिखा था - "संसार में बहुत कम प्राणी हैं जिनके जीवन में कर्मयोग का ऐसा आदर्श मिलता है। सत्य को ग्रहण करने में उन्होंने रूढ़ियों की कभी परवाह नहीं की - - - वह इस शताब्दी की सबसे यशस्वी महिला थी और हमें विश्वास है कि उनकी मिसाल बहुत दिनों तक असंख्य स्त्री पुरुषों को सात्विक उद्योग का आदेश देती रहेगी।"[1] एनीबेसेन्ट के चरित्र से प्रभावित होकर प्रेमचन्द ने 'रंगभूमि' की चरित्र चित्रण किया है। उन्होंने दयानारायण निगम के नाम लिखे गए एक पत्र में इस तथ्य को स्वीकार करते हुए लिखा था - "मैंने सोफिया का चरित्र मिसेज एनीबेसेन्ट से लिया है।"[2]

प्रेमचन्द ने अपने साहित्य और सम्पादकीय लेखों के माध्यम से समाज सेवा का और धार्मिक सामाजिक जागरण का जो कार्य किया है वह युग के किसी अन्य साहित्यकार से नहीं बन पड़ा। उनके शुद्ध समाजसुधारक पात्रों में 'वरदान' के बालाजी 'सेवासदन' के पद्मसिंह, विट्ठलदास एवं स्वामी गजानन्द, 'कायाकल्प' के चक्रधर, 'प्रतिज्ञा' के अमृतराय हैं। इनके अलावा 'रंगभूमि' के विनय, सोफिया, प्रभुसेवक, इन्द्रदत्त, रानी जान्हवी, कर्मभूमि' के अमरकान्त, आत्मानन्द, सुखदा आदि पात्री भी समाज सेवा और समाज सुधार का कार्य करते हैं। परन्तु ये कार्यकर्ता समाज सुधारक की अपेक्षा राष्ट्रीय कार्यकर्ता हैं और समाजसुधार की अपेक्षा राष्ट्रीय कार्य अधिक करते हैं। नेहरू ने इस समय की स्थिति के सम्बन्ध में स्वीकार करते हुए लिखा है कि 'कांग्रेस तथा अन्य राजनीतिक संगठन सामाजिक सुधार के कार्यों में गहराई तक नहीं बैठ सके क्योंकि उस समय राष्ट्रीय कार्यकर्ता - राष्ट्रीयता की बीमारी से ग्रसित थे और बिना राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त किए इस तरफ ध्यान

१- 'जागरण' २५ सितम्बर १९३३ ई० विविध प्रसंग भाग ३ पृ० ४३२।
२- 'हंसराज रहबर : 'प्रेमचन्द : जीवन और कृतित्व' १९५२ (दिल्ली), पृ० २३१।

जाना उचित ही नहीं था।"[१] प्रेमचन्द ने समाज सुधारक की भांति युग के समाज की प्रत्येक धार्मिक-सामाजिक, आर्थिक समस्या को ग्रहण किया और एक समाज के प्रतिनिधि समाज सुधारक की भांति उनका समाधान खोजने का प्रयास किया है।[२] युग के धार्मिक-सामाजिक जागरण में साहित्यकार के रूप में प्रेमचन्द का योग सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

१- "But the real reason why the Congress and other non-official organisations cannot do much for social reform goes deeper. We suffer from the disease of nationalism, and that absorbs our attention and it will continue to do so till we get political freedom."

जवाहरलाल नेहरू : `ऐन ऑटोबॉयोग्रैफी` १९६२ (लंदन) पृ० ३८३।

२- सामाजिक समस्याएं, उनके उत्पत्ति के कारण, स्थिति और निराकारण के प्रयास का अध्ययन अगले अध्याय में विस्तार से किया गया है।

पंचम अध्याय -

सामाजिक विकृतियां ! सुधार के प्रयत्न

-:o:-

सामाजिक विकृतियाँ : सुधार के प्रयत्न

ऐतिहासिक बोध इस बात का प्रमाण है कि मानव समाज में परिवर्तन और परिवर्द्धन होता रहा है। यह परिवर्तन और परिवर्द्धन समाज की आचार-परक व्यवस्था, आध्यात्मिक मूल्यों, सांस्कृतिक परम्पराओं से लेकर राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक व्यवस्थाओं तक में होता है। पुराने मूल्यों के विघटन और नए मूल्यों की संक्रांति में कुछ ऐसे तथ्य मिल जाते हैं जो नए और पुराने का मेल बन जाते हैं। समाज की इस विकासमान स्थिति में समाज में अनेक विकृतियां उत्पन्न हो जाती हैं। जब समाज की यही विकृतियां स्थायीत्व ग्रहण कर लेती हैं तब वे समाज की समस्याएं बन जाती हैं। पुरातन काल से लेकर वर्तमान तक विश्व के किसी भाग के मानव-समाज में किसी न किसी रूप में समस्याओं का प्रारूप उपस्थित रहा है। समाज की इन विकृतियों का स्वरूप सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक पहलुओं में से किसी से भी सम्बद्ध रहा हो यह बात अलग है। ऐसी कोई भी विकृति, जिससे समाज के संपूर्ण सदस्य प्रभावित हों वह सामाजिक समस्या के अन्तर्गत आ जाती है। यह निश्चित है कि विकृतियों का मानव-समाज में होना अवश्यम्भावी है। इसी आधार पर हमें यह मानकर चलना चाहिए कि जहां समाज है, वहां समस्याएं हैं। सत्य तो यह है कि समस्या विहीन समाज की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

सामाजिक विकृतियां और समाजशास्त्र

भारतीय समाज की विकृतियां और प्रेमचन्द साहित्य में उनके स्वरूप पर विचार करने के पूर्व विषय को दृष्टि में रखने के कारण हमें समाजशास्त्र के अन्तर्गत समस्याओं के महत्व को जान लेना आवश्यक है। डा० थामस निक्सन कारवर के अनुसार 'समाज-शास्त्र के विद्यार्थी की सबसे महत्वपूर्ण रुझान सामाजिक घटकों के कारण और प्रभाव का सम्बन्ध तथा सामाजिक गतिविधियों का ज्ञान प्राप्त करना है। यह ज्ञान सामाजिक उत्थान के प्रयास के लिए अत्यंत आवश्यक है और सामाजिक उत्थान ही समाजशास्त्र के

विद्यार्थी का सर्वप्रमुख उद्देश्य है ।`[1] जब कि फिलिप एम० स्मिथ के अनुसार `समाज शास्त्र शाश्वत अपने कार्यान्वित रूप में अन्य सामाजिक विज्ञानों की अपेक्षा सामाजिक कार्य क्षेत्र से घनिष्टतम रूप में सम्बद्ध है ।`[2] टी०बी० बाटमूमोर समाजशास्त्र क्या है ? के जवाब में कहना चाहते हैं कि यह हमारे अपने समय, स्थान तथा समाजिक दशाओं के सीमित दायरे से बाहर दूसरे मनुष्यों के प्रति हमारी सहानुभूति तथा कल्पनाओं को विस्तृत करता है तथा हमारी आपसी समझ को बढ़ावा देता है और वह साधारण रूप में वर्तमान बुराइयों से बचने के लिए साधन प्रदान करता है । उनके अनुसार `अधिकतर समाजशास्त्री अपने कार्य में किसी भी क्षेत्र में यह अनुभव करते हैं कि वे सामाजिक जीवन के उत्थान में योगदान दे रहे हैं ।[3]

१- "After all, the student of sociology is most vitally interested in gaining a knowledge of the social processes and the relations of cause and effect among social phenomena, This knowledge is absolutely essential to any intelligent effort at social improvement and social improvement is the only worthy aim of the student."

डा० थामस निक्सन कारवर : `सोशिऑलॉजी ऐण्ड सोशल प्रोग्रेस`, १६०५, (न्यूयार्क) पृ० २

२- "Sociology continues to be more closely related functionally to the field of social work-s than do any at the other social sciences."

फिलिप एम० स्मिथ : सोशिऑलॉजी ऐण्ड सोशल वर्क, दे० राउसेक : कन्टेम्पोरेरी सोशिऑलॉजी`, १६५८ (न्यूयार्क), पृ० ५८३ ।

३- "To the question. "What is the use of sociology ?" I would answer rather that it widens our symatpathies and imagination, and increases our understanding of other human beings outside the narrow circle of our own time, locality,

Contd.....

समाजशास्त्री फ्लौड एन० हाउस ने १६२६ ई० में ही लिखा था कि वर्तमान दशकों में समाजशास्त्र समस्याओं के अध्ययन की और प्रगतिशील हुआ है ।[१] जब कि १६६२ में प्रकाशित बाटममोर की पुस्तक के अनुसार यह स्पष्ट है कि अधिकतर समाजशास्त्री जो सामाजिक कार्यों में व्यस्त है व्यवहारिक समाजशास्त्र को उस शक्ति के रूप में देखते हैं ब जो विशेष सामाजिक बुराइयों का उपचार कर सके कम से कम उपचार के सुझाव दे सके ।"[२] इस प्रकार हम देखते हैं कि समाजशास्त्र सामाजिक नियंत्रण के लिए कटिबद्ध है । और सामाजिक नियंत्रण का सिद्धान्त केवल रीतिबद्ध नियमित प्रयास नहीं है बल्कि सामाजिक पद्धति का उसके तत्वों के आधार पर निर्माण

१- "Now, as a matter of fact the science of sociology has in recent decades made progress towards the establishment of problems which it is more and more clearly identifying as its own."

फ्लौड एन० हाउस : 'जेनरल मैथडालॉजी ', दे० डा० हाहवर्ड डब्लू० औडम ऐण्ड क डा० कैथरीन ओचर : 'ऐन इन्ट्रोडक्सन टू सोशल रिसर्च', १६२६ (न्यूयार्क) पृ० २०६-७

२- "It is plain that many sociologists, and most of those who are engaged in practical social work, think of applied sociology preeminently in terms of its capacity of provide (or at least to suggest) remedies for particular social evils."

टी०बी० बाटमोर : 'सोशियोलॉजी : ए गाइड टू प्राब्लेम्स ऐण्ड लिटरेचर', १६६२ (लन्दन) पृ० ३०८

गत पृष्ठ का शेष :-

and social situation, than that it simply provides means to discover the remedies for present ills. Most sociologists would feel that in all spheres of their work they were making some contribution to the improvement of social life."

टी०बी० बाटमोर : सोशियोलॉजी : ए गाइड टू प्राब्लेम्स ऐण्ड लिटरेचर', १६६२ (लन्दन) पृ० ३१६ ।

है तथा साथ ही परिवेश और पद्धति के मध्य अन्तर्सम्बन्ध भी है।[१] निश्चित रूप से यह नियंत्रण जब तक संभव नहीं है जब तक समाज के तत्कालीन परिवेश का तत्कालीन पद्धति से मेल हो सके। परिवेश और पद्धति का भेद समाज की उन त्रुटियों और रूढ़ियों को मिटाकर संभव होगा जो समाज की विकृतियां है अथवा दूसरे शब्दों में समाज की समस्याएं हैं। समाजशास्त्र सामाजिक नियंत्रण के लिए वैज्ञानिक रीति-बद्धता तथा सामाजिक समस्याओं को दूर करने के लिए कटिबद्ध रहा है जिसके लिए वह दूसरे सामाजिक विज्ञानों से तथ्य तथा विधि सम्बन्धी सहायता लेता रहा है और उन्हें सहायता पहुंचाता रहा है"[२]। इस प्रकार से समाजशास्त्र और सामाजिक सुधारों के बीच घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। फिलिप एम० स्मिथ के अनुसार इन संबंधों

१- **"Theory of social control is systematic not only in the sense of being developed in an orderly procession of self conscious methodological steps but also in the very different sense of undertaking the construction of a social system from its elements, their interrelations, and, to some extent, the interaction between the system and its environment."**

कर्ट एम० उल्फ : 'सोशल कन्ट्रोल', दे० राउसैक : 'कन्टेम्पोररी सोशियोलॉजी' १९५८ (न्यूयार्क), पृ० ११७

२- **'Perhaps the chief current tendencies in the sociological approach is that towards scientific methodology, towards concreteness of attack upon social problems, and the tendency to utilize and to contribute towards the data and technique of other social sciences."**

डा० हावर्ड डब्लू० औडम ऐण्ड डा० कैथरीन जोचर : 'ऐन इन्ट्रोडक्शन टू सोशल रिसर्च', १९२९ (न्यूयार्क), पृ० २०५-२०६

के अनुसार आधार उनकी संयुक्त ऐतिहासिक उत्पत्ति जिसके कारण सामाजिक समस्याओं और सामाजिक सुधारों के संदर्भ में अन्योन्य रूप से सम्बद्ध है, १६ वीं० शताब्दी में सामाजिक समस्याओं के उपचार के लिए प्रयास सम्बन्धी कार्य, इच्छित व्यक्तियों को जो सामाजिक कार्यकर्ता होना चाहते हैं उनको दीक्षा देने की स्वीकृति, समाजशास्त्र की सामाजिक कार्यों के लिए हितकर देन आदि है।[१]

स्पष्ट है समाजशास्त्र सामाजिक समस्याओं के प्रति जागरूक है। ये सामाजिक समस्यायें आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, परिवार आदि से सम्बन्धित हो सकती है। ओडम और ओचर ने समाजशास्त्र के अन्तर्गत जिन समस्याओं का उल्लेख किया है उनमें जनसंख्या, युद्ध, परिवार, शिशु कल्याण, विवाह

१- "Among the factors responsible for the close relationship between sociology and social work are the following : (1) their joint historical origins which involved a mutual interest in social problems and social reform; (2) overlapping of leadership and of functions in their attempts to find solutions to social problems during the late nineteenth century; (3) recognition of the need for special academic training for persons who wished to become social workers, after the turn of the century; (4) the contributions of sociology to social work in terms of social surveys of problems of areas, case studies, and community analyses."

फिलिप एम० स्मिथ : "सोशियोलॉजी एण्ड सोशल वर्क", दे० राउसेक : कन्टेम्पोरेरी सोशियोलॉजी", १६५८ (न्यूयार्क), पृ० ५८३।

विच्छेद तथा सामाजिक विधान (कानून) है ।[१] जब कि टी०बी० बाटममोर के अनुसार समाज की सामाजिक और धार्मिक समस्याओं के अलावा अन्य जो समस्यायें समाजशास्त्र के अन्तर्गत विचारणीय है अथवा जिनके बचत का उपाय खोजा जा सकता है उनमें मनुष्य समाज को गंभीर रूप से प्रभावित करने वाली आर्थिक और खतरनाक युद्ध सम्बन्धी समस्यायें हैं ।[२]

डा० एडवर्ड कैटी हेज के अनुसार समाजशास्त्र मानव कल्याण के लिए सामाजिक समस्याओं का अध्ययन करता है । इन समस्याओं में आर्थिक विभाजन,

---

१- "In this pursuit of method and of scientific status, in the meantime the sociological approach will make valuable contributions. It will achieve new results in the concrete study of many problems .... A large number of concrete problems, such as population, war, the family, child welfare, marriage and divorce, social legislation."

डा० हावर्ड डब्लू० ओडम एण्ड डा० कैथरीन जोचर : 'ऐन इन्ट्रोडक्शन टू सोशल रिसर्च', १९२९ (न्यूयार्क), पृ० १९८

२- There are other social problems which can be solved, or which constitute such a grave danger to human society that a radical solution has to be sought. In the first category comes the problem of poverty in economically developed societies .... In the second category, of supremely dangerous problems, the pre-eminent example, in this age of nuclear weapons, is war. ... Sociologists ought consequently to make an exceptional effort to investigate the problems of war and peace, and to disseminate their findings as widely as possible."

टी०बी० बाटमोर : 'सोशियोलॉजी : ए गाइड टू प्राब्लेम्स एण्ड लिटरेचर', १९६२ (लन्दन) पृ० ३१६

सुअवसर सम्बन्धी समस्यायें, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा जीवन के अन्य आनन्द तथा मूल्य सम्बन्धी समस्यायें आ सकती हैं।[१] कर्नल सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार इस संदर्भ में कहते हैं - "व्यक्ति, परिवार, तथा समूह के अतिरिक्त हमारे समाज की अपनी भी समस्यायें हैं। कहीं धनी वर्ग है, कहीं निर्धन वर्ग है, कहीं समाज का उच्च वर्ग है, कहीं नीच वर्ग, कहीं पुरुषों के अधिकार है, कहीं अधिकारों को छीना जाता है। इन सामाजिक-समस्याओं के अतिरिक्त समाज में अनेक प्रकार के अपराध पाये जाते हैं। चोरी डाका, छल-कपट, वेश्यावृत्ति, शराबखोरी, आदि समाज के विघटन के एक नहीं, अनेक सामान बने हुए हैं। - - - इन बातों पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करने की आवश्यकता है, और यह काम अन्य कोई शास्त्र नहीं, समाजशास्त्र ही कर सकता है।"[२]

विभिन्न समाजशास्त्रियों की विचारधाराओं से स्पष्ट है कि समाजशास्त्र समाज की त्रुटियों, बुराइयों, विसंगतियों का अध्ययन करता है और सामाजिक नियंत्रण के लिए, सामाजिक प्रगति के लिए उनमें सुधार करने का प्रयत्न करता है अथवा उन्हें दूर करने के प्रयत्न के माध्यम से उनसे समाज की रक्षा करना चाहता है।

१- "Social problems are to be discussed with primary reference not to the gains of the wealthy, nor to the stability and strength of states, but to the welfare of all people. From this it results that a set up of problems, once largely neglected, comes into the centre of attention, namely, the problems of the distribution of wealth, opportunity, education, health, and the joys and worth of life."

डा० एडवर्ड कैरी हेज : 'इन्ट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑव सोशियोलॉजी ' १६१८, (न्यूयार्क, लन्दन), पृ० ४

२- कर्नल सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार : 'समाजशास्त्र के मूलतत्त्व', नवीन संस्करण (नई दिल्ली), पृ० २६।

एक शब्द में समाज के ये बुरे अथवा काले पक्ष समाज की विकृतियां होती हैं जो समस्याओं का रूप धारण कर लेती है। समाजशास्त्र इन्हीं विकृतियों अथवा समस्याओं से समाज को छुटकारा दिलाना चाहता है। इस संदर्भ में साहित्यकार भी समाजशास्त्री होता है। प्रेमचन्द जी आधुनिक समाज में अनेक तरह की विकृतियाँ और विसंगतियां देखते हैं। उनकी धारणा है कि इस दूषित समाज, संगठन में उनसे मुक्ति पाने के लिए - "सोशियॉलॉजी के साथ साहित्य भी इसी प्रश्न को हल करने के में लगा हुआ है।"[१] प्रेमचन्द ने भारतीय समाज के विकृत रूप को देखा है, उसकी विसंगतियों को पहचाना है और समाज को उससे मुक्ति दिलाने के लिए साहित्यिक प्रयास भी किया है। भारतीय समाज की यह विकृतियां जो उनके समय की और आज भी है वे हैं अछूत और अछूतपन, सम्प्रदाय और सम्प्रदायिकता, अंधविश्वास, आर्थिक विसंगतियां, नारी की दयनीय स्थिति और अनेक तरह के वैवाहिक प्रश्न और भी अनेक तरह की विकृतियां और उनसे उत्पन्न समस्याएं भी भारतीय समाज में विद्यमान हैं परन्तु प्रेमचन्द जिन पर अपने साहित्य में विचार कर सके हैं वे ये ही हैं। प्रस्तुत अध्याय में हम उन्हीं पर समाजशास्त्रीय आधार पर विचार करेंगे।

अछूत और अछूतपन

पुराणकाल से ही भारतीय समाज का ढांचा अप्रजातांत्रिक हो चुका था। डोम तथा चण्डाल आदि शूद्र जातियों का मुंह देखना भी पाप समझा जाने लगा था। धार्मिक तथा सामाजिक रूप से शूद्र जातियां बहिष्कृत हो गई थीं। यहाँ तक कि धीरे-धीरे शूद्रों को अछूत मान लिया गया। उनका शारीरिक स्पर्श भी अपवित्र माना जाने लगा। यह सिलसिला आज भी उसी रूप में वर्तमान है। कई सहस्त्र शताब्दियों से चली आती हुई इस सामाजिक विकृति का समय-समय पर विरोध किया गया।

२- अमृतराय (सं०) : विविध प्रसंग भाग ३, १९६२, इलाहाबाद, पृ० ५५।

परन्तु महात्मा बुद्ध, रामानुजाचार्य, रामानन्द, कबीर, नानक, चैतन्य, तुकाराम तथा अन्य महापुरुषों द्वारा प्रचलित किए गए मानवतावादी तथा धार्मिक सुधार सम्बन्धी आंदोलन भी इस अमानवीय प्रथा को बहुत अधिक प्रभावित नहीं कर सके ।

कर्म से व्यक्ति को अछूत मानी जाने वाली प्रथम व्यक्ति को जन्म से अछूत मानने लगी । संभवत: वंश से इस प्रथा का सम्बन्ध आर्यों और अनार्यों के युद्ध के बाद बन्दी अनार्यों के साथ जुड़ गया । आगे चल कर इसने सवर्ण और अवर्ण (अछूत) का रूप धारण कर लिया । इस प्रकार से अस्पृश्यता का प्रमुख आधार वंशानुक्रम बन गया । इस तथ्य का उल्लेख करते हुए डा० डी०एन० मजूमदार ने कहा है - "पिछड़ी हुई जातियों की तथाकथित अयोग्यताएं रीतिबद्ध और परम्परागत नहीं है बल्कि उनका आधार वंशीय और सांस्कृतिक भेद है ।"[१] डा० घुरे ने पवित्रता के आधार पर जाति और अस्पृश्यता की उत्पत्ति मानी है । उनके अनुसार "पवित्रता का विचार चाहे वह कर्मगत हो अथवा रीतिगत, जाति की उत्पत्ति अथवा अस्पृश्यता के व्यवहार और विचार की आत्मा के रूप में, एक मुख्य तथ्य रहा है ।"[२]

ब्रिटिश कालीन हिन्दू-समाज में अछूत की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी । वंशानुक्रम ही छूत और अछूत का निर्धारक तत्व था । अछूत सामाजिक तथा कानूनी रूप से बहिष्कृत थे । हिन्दू राज्यों में उनके लिए कड़े सामाजिक और धार्मिक नियम थे जिनके उल्लंघन करने पर कठिन दण्ड की व्यवस्था थी । इन्हीं आधारों

१- "The disabilities of the so called 'depressed' castes are not ceremonial but probably founded on racial and cultural differences."
डी०एन० मजूमदार : रैसेस ऐण्ड कल्चर्स ऑव इण्डिया , १६५८ (बम्बई), पृ० ३२

२- "Idea of purity, whether occupational or ceremonial, is found to have been a factor in the genesis of caste or the very soul of the idea and practice of untouchability."
डा० घुरे : "कास्ट ऐण्ड क्लास इन इण्डिया", १६५७ (बम्बई) पृ० २४१ ।

पर डा० मजूमदार ने अछूत जातियों की परिभाषा देते हुए लिखा है "अछूत जातियां वे हैं जो अनेक प्रकार की सामाजिक तथा राजनीतिक अयोग्यताओं की भोक्ता हैं, जिनमें बहुत सी उच्च जातियों द्वारा परम्परा के रूप में निर्धारित तथा सामाजिक रूप में लादी गई हैं।"१ लाला लाजपतराय अस्पृश्यता के सम्बन्ध में विचार करते हुए कहते हैं "अस्पृश्यता एक विशेष प्रकार केविरोधमय अविचारपूर्ण निर्णय का प्रतिफल है। इनमें से कुछ निश्चित तथ्य धार्मिक तथा सामाजिक अविवेकपूर्ण निर्णयों से भी सम्मिलित हैं।"२

भारतवर्ष में अछूत जातियां विभिन्न प्रान्तों मे विभिन्न नामों से पाई जाती हैं। पंजाब, उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश में भंगी, चमार, पासी, डोम, कोली, महाराष्ट्र में महार, बंगाल में नामशूद्र, मालाबार में शिया तथा मैसूर मे वौक्कीलंग आदि जातियां अछूतों में गिनी जाती हैं। इनअछूतों की धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक असमर्थतायें हैं। मंदिरों में इनका प्रवेश वर्जित था, सार्वजनिक-सामाजिक स्थलों से इनको जाने नहीं दिया जाता था। यद्यपि राजनीतिक रूप से उनकी असमर्थताओं को अब दूर कर दिया गया है परन्तु अन्य स्थितियां अब भी बनी हैं। हिन्दू समाज की इस व्यवस्था ने विदेशी समाजशास्त्रियों को भी चिंतित कर रखा है। अमेरिकन समाजशास्त्री प्रो० आर्नोल्ड के शब्दों में "अछूत "गांवों में हिन्दू मंदिरों में नहीं प्रवेश कर सकते न ही वे गांव के कुओं से पानी ही खींच सकते हैं। उन्हें भूखे रहने वाली श्रम दर के आधार पर गंदे कार्य दिए जाते हैं। उन्हें हाल में संवैधानिक संरक्षण प्रदान किया गया है। परन्तु अमेरिका निवासियों के

१- "The untouchable, castes are those who suffer from various social and political disabilities many of which are traditionally prescribed and socially enforced by higher castes."

डी०एन० मजूमदार :"रेसेस एण्ड कल्चर्स ऑव इण्डिया, १९५८ (बम्बई), पृ० ३२९

२- "Untouchability is the result of prejudice against certain kinds of labour. It may include certain elements of religious and social prejudice."

लाला लाजपतराय दैव्वी०सी० जोशी : "लाला लाजपतराय : राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज" १९६६ (दिल्ली), पृ० ११९

पास मानने योग्य ऐसे कारण नहीं है कि इस प्रकार के संरक्षण ऊँचे-से-ऊँचे न्यायालयों द्वारा तीव्र स्वरों में दुहराये जाने वाले निर्णयों के फलस्वरूप भी यह आवश्यक नहीं है कि मनुष्यों के मस्तिष्क और हृदय परिवर्तित कर दें ।"[१]

१६०३ में मारवाड़ में गोपालकृष्ण गोखले ने अस्पृश्यता के सम्बन्ध में हिन्दुओं की आलोचना करते हुए कहा था : "यह आचरण कितना बुद्धिहीनता का है कि जब तक कि वे लोग (अछूत) हमारे धर्म में रहते हैं - हम उन्हें अपने घरों में प्रवेश नहीं करने देते परन्तु जैसे ही वे हमारे धर्म से अलग होकर कोट-पैंट-हैट पहनकर ईसाई बन जाते हैं तब हम उनसे हाथ मिलाते हैं ।"[२] भारतवर्ष में सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक आंदोलनों के मध्य अछूत समस्या पर विचार किया गया । परतंत्र भारत में अनेक सामाजिक-धार्मिक, राजनीतिक, संगठनों ने अछूतों के शैक्षणिक, धार्मिक, सामाजिक तथा

१- "Untouchables in some villagers may not enter Hindu temples, may not even draw waters at the village well. They are confined to filthy trades at starvation wages. They have been granted recent constitutional guarantees, but Americans have reason to understand that such guarantees even by the highest courts, do not necessarily transform the minds and hearts men!

ड
प्रो० अनौल्ड : सोशियोलॉजी ऐन एनौलेसिस ऑव लाइफ इन माडर्न सोशाइटी : १६६० (न्यूयार्क), पृ० १८६

२- "The practice was most irrational which kept out people from our houses and shut them out from all inter-course with us as long as they remained within the pale of our religion but permitted us to shake hands with them and regard them as quite respectable as soon as they renounced our faith and put on a hat, a coat and a pair of trousers, and began to call themselves christians."

गोपाल कृष्ण गोखले दे० ज्योति प्रसाद सूद : "इण्डिया हर सिविक लाइफ ऐण्ड ऐडमिनिस्ट्रेशन", १६५० (मेरठ), पृ० ३६ ।

तथा सांस्कृतिक अधिकारों की रक्षा के लिए कार्य किया है।"[1] इस युग के प्रमुख सामाजिक साहित्यकार प्रेमचन्द जी ने इस समस्या पर विचार किया है और साहित्य के माध्यम से इस समस्या का समाधान खोजने का प्रयास किया है।

जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है कि अछूत के साथ केवल छूत का ही प्रश्न नहीं जुड़ा हुआ उसके साथ अन्य धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक प्रश्न भी जुड़े हुए हैं। इनमें धार्मिक दृष्टि से उनको नीच माना जाना, मंदिरों में प्रवेश - निषेध सामाजिक बहिष्कार, तथा उनके गंदे पेशे और उनकी आर्थिक दुर्दशा आदि हैं। इन तमाम प्रश्नों के सम्बन्ध में प्रेमचन्द ने अपनी तमाम रचनाओं में विचार करने का प्रयास किया है।

प्रेमचन्द अपने प्रारम्भिक उपन्यास `वरदान ` में अछूतों के प्रति अपनी सामाजिक सहिष्णुता की ओर संकेत मात्र करते हैं। बालाजी (प्रतापचन्द) सामाजिक सुधारक के रूप में जनता की सेवा करते हैं। उनकी `भारत सभा ` अछूतों के बीच में कार्य करती है। पद्मा के पासियों ने ठाकुरद्वारा बनवाया है जहाँ `भारत-सभा ` ने बड़ी धूम-धाम से उत्सव मनाया है। इसी प्रसंग को लेकर विरजन और चन्द्रकुंवरि दो महिलाओं में वाद-विवाद होता है। चन्द्रकुंवरि-गड़रियां अब सिन्दूर लायेंगी। पासी लोग ठाकुरद्वारे बनवायेंगे ?

रुक्मिणी - क्यों, वे मनुष्य नहीं हैं? ईश्वर ने उन्हें नहीं बनाया। आप ही अपने स्वामी की पूजा करना जानती हैं?

१- "The Brahma Samaj, the Arya Samaj, the social Reform conference, even political organizations like the Indian National Congress led by Gandhi, and the All-India Harijan Sangh, a non-political body founded by Gandhi, strove by propaganda, education, and practical measures, to restore equal social, religious, and cultural rights to the untouchables."

ए०आर० देसाई : `सोशल बैकग्राउन्ड ऑव इण्डियन नैशनलिज्म `, १९५९ (बम्बई), पृ० २४४।

चन्द्रकुंवरि - चलो, हटो, मुझे पासियों से मिलाती हो। यह मुझे अच्छा नहीं लगता।

रुक्मिणी - हां, तुम्हारा रंग गोरा है न ? और वस्त्र आभूषणों से सजी बहुत हो। बस इतना ही अंतर है कि और कुछ।[१]

रुक्मिणी के रूप में प्रेमचन्द को अछूत जाति से सहानुभूति है।

इस उपन्यास के बाद 'सिर्फ एक आवाज' कहानी में प्रेमचन्द अछूतपन ऐसी सामाजिक विकृति का निदान खोजने का प्रयास करते है। जमाना, अगस्त सितम्बर १६१३ में छपी इस कहानी में प्रेमचन्द काशी में एक सन्यासी को अछूतोद्धार के लिए प्रयत्नशील दिखाते हैं। अछूतोद्धार के सम्बन्ध में वे महात्मा के भाषण के माध्यम से कहते हैं "यह हमारा और आपका कर्तव्य है। इससे ज्यादा महत्वपूर्ण, ज्यादा परिणामदायक और कौम के लिए ज्यादा शुभ और कोई कर्तव्य नहीं है। हम मानते हैं कि उनके आचार-व्यवहार की दशा अत्यन्त करुण है। मगर विश्वास मानिए यह सब हमारी करनी है। उनकी इस लज्जाजनक सांस्कृतिक स्थिति का जिम्मेदार हमारे सिवा और कौन हो सकता है। अब इसके सिवा इसका और कोई इलाज नहीं है कि हम इस घृणा और उपेक्षा को जो उनकी तरफ से हमारे दिलों में बैठी हुई है, धोयें और खूब मलकर धोयें। यह आसान काम नहीं है। जो कालिख कई हजार वर्षों से जमी हुई है, यह आसानी से नहीं मिट सकती। जिन लोगों की छाया से हम बचते आए हैं, जिन्हें हमने जानवरों से भी ज़लील समझ रखा है, उनसे गले मिलने में हमको त्याग और साहस और परमार्थ से काम लेना पड़ेगा। इस त्याग से जो कृष्णा में था उस हिम्मत से जो राम में थी, उस परमार्थ से जो चैतन्य और गोबिन्द में था। क्या यह भी मुमकिन नहीं कि आप उनके साथ सामान्य सहानुभूति, सामान्य मनुष्यता, सामान्य सदाचार से पेश आयें। क्या सचमुच असम्भव बात है।"[२] सन्यासी अपने भाषण के मध्य समुदाय से इस बात की

१- 'वरदान' पृ० १०७

२- 'सिर्फ एक आवाज' गुप्त धन भाग १, पृ० १४४।

प्रतिज्ञा करने के लिए कहता है कि लोग इस बात का निश्चय करें कि वे `अछूतों के साथ भाई-चारे का सलूक करेंगे, उनके तीज-त्यौहार में शामिल होंगे और अपने व्यवहारों में उन्हें बुलायेंगे -- उनकी खुशियों में खुश और उनके दर्दों में क दर्दमन्द होंगे ।'[१] इस कहानी में दर्शनसिंह नामक एक ग्रामीण के अलावा एक भी व्यक्ति इस व्रत के लिए तैयार नहीं है ।

प्रेमचन्द ने `ठाकुर का कुंआ ' कहानी में अछूतों के कुंओं में पानी न भरने देने के प्रश्न को उठाया है । जोखू की पत्नी गंगी गांव के दूर के कुंएं से पानी लाती थी । कुंएं में किसी जानवर के गिरने से उसके पानी में बदबू आ रही है । बीमार जोखू के लिए पत्नी की आवश्यकता है । गंगी के सामने यह समस्या है कि दूसरा पानी लावें कहां से ? क्योंकि `ठाकुर के कुएं पर कौन चढ़ने देगा । इसरे लोग डांट बतावेंगे । साहू का कुंआ गांव के इस सिरे पर है, परंतु वहां भी कौन पानी भरने देगा।'[२] बीमार पति जोखू को प्यास की तड़पन से विवश गंगी पति के लिए पानी लाने का निश्चय करती है तो जोखू कहता है - "हाथ-पांव तुड़वा आयेगी और कुछ न होगा । बैठ चुपके से । ब्राह्मण देवता आशीर्वाद देंगे, ठाकुर लाठी मारेंगे, साहू जी एक के पांच लेंगे । गरीब का दर्द कौन समझता है । हम तो मर भी जाते हैं तो कोई दुआर पर झांकने नहीं आता, कंधा देना तो बड़ी बात है । ऐसे लोग कुएं से पानी भरने देंगे "[३] कितना कड़ुवा सत्य है ? हिन्दू समाज की व्यवस्था के प्रति । अछूत के सामाजिक और धार्मिक पिछड़ेपन का एक कारण उसकी गरीबी भी तो है नहीं तो उसके पास अपना कुंआ न होता । गंगी ९ बजे रात्रि के पानी भरने के लिए जाती है । उसे जगत की आड़ में बैठकर मौके का इन्तजार करना पड़ता है । उसे इस बात की भी चिन्ता है कि `कहीं (कोई) देख ले तो गजब हो जाय । एक लात भी तो नीचे न पड़े ।'[४] गंगी कुंए से पानी भरती है । उसका घड़ा हाथ की पहुंच तक आता

१- `सिर्फ एक आवाज ' गुप्त धन भाग १ पृ० १४५

२- `ठाकुर का कुंआ ' मा०स० भाग १ पृ० १३९

३- `ठाकुर का कुंआ ' मा०स० भाग१ पृ० १३९

४- `ठाकुर का कुंआ ' मा०स० भाग १ पृ० १४०

है कि उसे मनुष्य की आहट होती है। घड़ा रस्सी सहित कुंए में गिर जाता है, गिरने की आवाज से 'ठाकुर कौन है, कौन है ? पुकारते हुए कुंए की तरफ आ रहे थे और गंगी कुंए से कूद कर भागी जा रही थी।'[१] घर पहुंच कर देखती है कि 'जोखू लोटा मुंह में लगाये वही मैला गंदा पानी पी रहा है।'[२] कहानी का यहीं पर अन्त हो जाता है। इस कहानी में प्रेमचन्द यथार्थ का चित्रण ही कर पाते हैं कोई समाधान नहीं खोजते। दूषित समाज-व्यवस्था में कागजी समाधान खोजने से अच्छा यथार्थ चित्रण ही है।

'ठाकुर का कुंआ' कहानी में यदि अछूतों के कुंए में पानी भरने तक की मनाही का चित्र प्रस्तुत किया गया है तो 'मंदिर' कहानी में मंदिर में प्रवेश की मनाही का दृश्य उपस्थित किया गया है। अछूत विधवा सुखिया का एक मात्र आधार पुत्र जियावन बीमार है। उसने ठाकुर जी की मनौती मान रखी है। बच्चे की बीमारी की गंभीर दशा को देखकर सुखिया घबड़ा उठी और अविलम्ब पूजा करने का निश्चय किया। उसके सामने समस्या है - 'चढ़ाने के लिए कम-से-कम एक आना तो चाहिए ही'[३] वह 'सारा गांव छान आयी, कहीं पैसे उधार न मिले -- आखिर उसने अपने हाथों के चांदी के कड़े उतारे और दौड़ी हुई बनिये की दूकान पर गई, कड़े गिरो रखे।'[४] सुखिया पूजा का समान जुटाकर अपने बालक को गोद में उठाकर मंदिर के पास पूजा करने के लिए आती है। सुखिया ठाकुर जी के मंदिर के सामने जैसे ही खड़ी होती है पुजारी जी कहते हैं - 'तो क्या भीतर आयेगी ? हो तो चुकी पूजा। यहां आकर भरभ्रष्ट करेगी ?'[५] सुखिया पूजा करने का आग्रह करती है तभी एक भक्त जो स्तुति कर चुका था डपटता हुआ कहता है - 'मार के भगा दो चुड़ैल को। भरभ्रष्ट करने आयी है फेंक दो थाली वाली। संसार में तो

१- 'ठाकुर का कुंआ' मा०स० भाग १ पृ० १४२

२- 'ठाकुर का कुंआ' मा०स० भाग १ पृ० १४२

३- 'मंदिर' मा०स० भाग ५ पृ० ७

४- 'मंदिर' मा०स० भाग ५ पृ० ८

५- 'मंदिर' मा०स० भाग ५ पृ० ८

आप ही आप आग लगी हुई है, चमार भी ठाकुर की पूजा करने लगेंगे, तो पिरथी रहेगी कि रसातल को चली जायेगी ।"[१] दूसरे महाशय बोले - "अब दो चार ठाकुर जी को भी चमारों के हाथ का भोजन करना पड़ेगा । अब परलय होने में कुछ कसर नहीं ।"[२] सुखिया ठंड में खड़ी कांप रही थी । बच्चा मौर ठंड के सुखिया की छाती में घुसा जा रहा है और धर्म के ठेकेदार मक समय की गति की आलोचना कर रहे हैं । बच्चे को अधिक अस्वस्थ देखकर सुखिया ३ बजे रात्रि को ठाकुर जी की पूजा करने जाती है । आहट पाकर पुजारी के चिल्लाने से गांव के लोग जमा हो जाते हैं । पुजारी के इतना कहने पर कि "अब अनर्थ हो गया । सुखिया मंदिर में जाकर ठाकुर जी को भ्रष्ट कर आयी"[३] कई आदमी झल्लाये हुए लपके और सुखिया पर लातों और घूसों की मार पड़ने लगी ।"[४] सुखिया का बच्चा एक बलिष्ट ठाकुर की लात की ठोकर से गिरकर मृत्यु को प्राप्त होता है और सुखिया बच्चे के लिए प्राण दे देती है ।

'सद्गति' कहानी अछूतों के सामाजिक पिछड़ेपन, उनके अन्तर्गत स्वत: पिछड़ेपन की भावना, हिन्दू घरों में उनके अप्रवेश, तथा उनके आर्थिक शोषण की कहानी है । दुखी और झुरिया चमार दम्पत्ति पंडित को अपने घर बुलाना चाहते हैं । समस्या पंडित घासीराम के बैठने की है । झुरिया सलाह देती है ठकुराने से मांग लाना तो दुखी कहता है - "ठकुराने वाले मुझे खटिया देंगे । आग तक तो घर से निकलती नहीं, खटिया देंगे । कैथाने में जाकर एक लोटा पानी मांगू तो न मिले । भला खटिया कौन देगा । हमारे उपले, सेंठे, भूसा, लकड़ी थोड़े ही है कि जो चाहें उठा ले जाय । ला अपनी खटोली धोकर रख दें । गरमी के तो दिन हैं । उनके आते आते सूख जायगी ।"[५] लकड़ी की घुली हुई चारपाई में

१- 'मंदिर' मा०स० भाग ५ पृ० ८
२- 'मंदिर' मा०स० भाग ५ पृ० ८
३- 'मंदिर' मा०स० भाग ५ पृ० १२
४- 'मंदिर' मा०स० भाग ५ पृ० १२
५- 'सद्गति' मा०स० भाग ४ पृ० १८

कैसे बैठते विप्र जी । तब महुवे के पत्ते की पत्तल बनाकर बैठने का समाधान खोजा जाता है। सीधा देने का प्रश्न है। थाली में वह सीधा कैसे लेंगे ? दुखी समाधान खोजता है - "पत्तल में सीधा भी देना, हां मुदा तू छूना मत । झूरी गोंड की लड़की को लेकर साह की दूकान से सब चीजें ले आना ।"[1] दुखी घास के गट्ठर के साथ पंडित जी को आमंत्रित करने जाता है क्योंकि खाली हाथ बाबा जी की सेवा में कैसे जाता ।"[2] दुखी चमार पंडित जी को बुलाने आया है पंडित जी अवसर का लाभ क्यों न उठाते ? यह ब उन्होंने दुखी को काम बताते हुए कहा "(घास) इसे गाय के सामने डाल दे । यह बैठक भी कई दिन से लीपी नहीं गई । उसे भी गोबर से लीप दे । तब तक मैं भोजन कर लूं । फिर जरा आराम करके चलूंगा । हां, यह लकड़ी भी चीर देना । खलिहान में खांची भूसा पड़ा है । उसे भी उठा लाना और भुसौल में रख देना ।"[3]

दुखी भूखा प्यासा काम में लग गया । पंडित जी ने उसे पेट के लिए भी न पूछा । गोंड के घर से तम्बाकू मांग कर जैसे ही पंडित जी के बरोठे से वह आग मांगता है तो उसे पंडिताइन की पंडित से कहा गया स्वर सुनाई पड़ता है - "तुम्हें तो जैसे पोथी-पत्रों के फेर में धरम करम किसी बात की सुधि ही नहीं रही । चमार हो, धोबी हो, पासी हो मुंह उठाये घर में चला आये । हिन्दू घर न हुआ, कोई सराय हुई । कह दो, दाढ़ीजार से चला जाय, नहीं तो इसी लुवारी से मुंह झुलस दूंगी । आग मांगने चले हैं ।"[4] पेट के भोजन को कौन कहे अछूत को पेट की आग को तम्बाकू की आग से गरम करने के लिए आग भी मांगने का हक नहीं है ।

प्रेमचन्द ने गोंड से धर्म के ठेकेदारों के आर्थिक शोषण पर व्यंग कराया है । गोंड दुखी से भोजन पाने के सम्बन्ध में पूछता है । दुखी के अनुसार ब्राह्मन

१- 'सद्गति', मा०स० भाग ४ पृ० १८-१६

२- 'सद्गति' मा०स० भाग ४ पृ० १६

३- 'सद्गति' मा०स० भाग ४ पृ० २०

४- 'सद्गति' मा०स० भाग ४ पृ० २१

की रोटी उसे कैसे पचेगी । गोंड कहता है - "पचने को पच जायगी, पहले मिले तो । मूंछों पर ताव देकर भोजन किया और आराम से सोये, तुम्हें लकड़ी फाड़ने को हुकुम दे दिया । जमींदार भी कुछ खाने को देता है । हाकिम भी बेगार लेता है, तो थोड़ी बहुत मजूरी दे देता है । यह उनसे भी बढ़ गये, उस पर धर्मात्मा बनते हैं ।"[१] दुखी पंडित जी की लकड़ी की गांठ फाड़ता हुआ अपनी जान दे देता है । उसकी पत्नी और पुत्री पंडित जी के द्वार पर रोती है । ब्राह्मण दम्पति को सहानुभूति भी नहीं । पंडिताइन के अनुसार 'इन डाइनों ने तो खोपड़ी चाट डाली । और पंडित जी के अनुसार 'रोने दो चुड़ैलों को, कब तक रोयेंगी ।"[२] क्योंकि कोई चमार लाश उठाने नहीं आया इसीलिए पंडित जी मृत लाश के गले पर रस्सी डाल कर घसीट कर खेत में गीदड़, चीलों और कौवों के नोचने के लिए उसे छोड़ देते हैं । इस कहानी में दुखी को जीवित रहने पर तो धर्म, निष्ठा और ब्राह्मण भक्ति का पुरस्कार मिलता ही है मरने के बाद भी उसकी लाश को भी नुचने और खसोटे जाने का पुरस्कार मिलता है । प्रेमचन्द जी के अनुसार - 'यही जीवन पर्यन्त की भक्ति, सेवा और निष्ठा का पुरस्कार था ।"[३]

'दूध का दाम' कहानी में प्रेमचन्द ने हिन्दू समाज की स्वार्थमयी प्रवृत्ति का चित्र प्रस्तुत करते हुए अछूतों की दयनीय और अपमान जनक स्थिति का चित्रण किया है । गांव के जमींदार महेशनाथ के घर लड़का हुआ । उनकी मोटी ताजी मालकिन के दूध नहीं उतरता । अछूत भूंगी के ३ माह का लड़का था । "महेशनाथ के यहां अब भूंगी की खूब खातिरदारियां होने लगीं । सबेरे हरीरा मिलता, दोपहर को पूरियां, और हलवा तीसरे पहर को फिर और रात को फिर । और गूदड़ को भी भरपूर परोसा मिलता था । भूंगी अपने बच्चे को दिन-रात में, एक दो बार से ज्यादा न पिला सकती थी । उसके लिए ऊपर से दूध का प्रबन्ध था । भूंगी का दूध - बाबू साहब का भाग्यवान बालक पीता था ।"[४] दो साल के अन्दर भूंगी का पति

१- 'सद्गति' मा०स० भाग ४ पृ० २३

२- 'सद्गति' मा०स० भाग ४ पृ० २६

३- 'सद्गति मा०स० भाग ४ पृ० २६

४- 'दूध का दाम' मा०स० भाग २ पृ० २०३

गूदड़ प्लेग के चपेट में आ गया । ५ साल के अन्दर एक दिन महेशनाथ का पनाला साफ करते हुए भंगन भूंगी को सांप देवता का शिकार बनना पड़ा । भंगिन भूंगी का लड़का मंगल अब अनाथ था । दिन भर महेश बाबू के यहां मंडराया करता । घर में भूठन इतना बचता था कि ऐसे-ऐसे दस-पांच, बालक पल सकते थे ।"[1] गांव के धर्मात्मा पुरुषों को महेशनाथ की इस उदारता पर आश्चर्य होता था । बाबू जी के द्वार पर भंगी "मंगल का पड़ा रहना उन्हें सोलहों आने धर्म-विरुद्ध जान पड़ता --- समाज की मर्यादा भी कोई वस्तु है । उन द्वार पर जाते हुए संकोच होता है गांव के मालिक हैं, जाना पड़ता है, लेकिन बस यही समझ लो कि घृणा होती है ।"[2] एक दिन सुरेश वही सुरेश जिसे मंगल की मां ने दूध पिला कर बड़ा किया, मंगल के ऊपर घोड़े की सवारी करता हुआ गिर जाता है । सुरेश की मां मंगल का तिरस्कार करती है । मंगल चला जाता है परन्तु पेट की आग उसे वापस आने को विवश करती है । भूख से दीवाना मंगल कहार से भूठा पत्तल लेकर अपने चिर साथी कुत्ते टामी के साथ नितदिन की भांति पत्तल में खाने लग जाता है । मंगल टामी से कहता है - "लोग कहते हैं दूध का दाम कोई नहीं चुका सकता और मुझे दूध का दाम यही मिल रहा है ।"[3] टामी के दुम हिलाने के साथ कहानी का अन्त हो जाता है । इस कहानी में यह दिखाया गया है कि अछूत की स्थिति एक जानवर से अधिक गिरी हुई है ।

"घासवाली" कहानी में प्रेमचन्द ने मर्यादा-हीन हिन्दू समाज की उस स्थिति का चित्र प्रस्तुत किया है जब कि अपनी गरीबी, अपने सामाजिक पिछड़ेपन के कारण अछूत नारी की प्रतिष्ठा का मूल्य भी सवर्णों की दृष्टि में गिर जाता है । ठाकुर चैनसिंह अपने अनुभवों के आधार पर यह जानता है कि "नीची जातियों में सब रूप माधुर्य का इसके सिवा और काम ही क्या है कि वह ऊंची जातिवालों का खिलौना बने । ऐसे कितने ही मौके उसने जीते थे ।"[4] चैनसिंह सुन्दरी चमारिन

१- "दूध का दाम" मा०स० भाग २ पृ० २०५

२- "दूध का दाम" मा०स० भाग २ पृ० २०६

३- "दूध का दाम" मा०स० भाग २ पृ० २१२

४- "घासवाली" मा०स० भाग १ पृ० २९९-३०० ।

मुलिया को भी अपनी वासना का शिकार बनाना चाहता है। विवाहित चैनसिंह मुलिया को घास छीलने के लिए जाते समय मोर में छेड़ता है। मुलिया उसे फटकारती हुई कहती है - 'अगर मेरा आदमी तुम्हारी औरत से उसी तरह बातें करता तो तुम्हें कैसा लगता ? तुम उसकी गरदन काटने पर तैयार हो जाते कि नहीं ? - - मेरा रूप रंग तुम्हे भाता है। क्या घाट के किनारे मुझसे कहीं सुन्दर औरतें नहीं घूमा करतीं ? मैं उनके तलवों की बराबरी भी नहीं कर सकती। तुम उनमें से किसी से क्यों नहीं दया मांगते ? क्या उनके पास दया नहीं है। मगर तुम वहां न जाओगे, क्योंकि वहां जाते तुम्हारी छाती दहलती है। मुझसे दया मांगते हो, इसीलिए कि मैं चमारिन हूं नीच जाति हूं और नीच जाति की औरत जरा सी घुड़की-धमकी या जरा सी लालच से तुम्हारी मुट्ठी में आ जायगी। कितना सस्ता सौदा है। ठाकुर हो न, ऐसा सस्ता सौदा क्यों छोड़ने लगे ?'[१] इस कहानी की मुलिया अपनी मर्यादा की रक्षा कर लेती है। कारण है कि प्रेमचन्द नारी की मर्यादा को लालच या घुड़की - धमकी के बल पर नहीं बेचना चाहते थे। इस कहानी से इस तथ्य की ओर संकेत अवश्य है कि अछूतों की मर्यादा का मूल्य सवर्णों के लिए कुछ नहीं है। सवर्ण उनकी स्त्रियों पर भी अपना अधिकार मानते हैं।

प्रेमचन्द ने उपर्युक्त कहानियों में अछूतों से सम्बन्धित जिन अनेक सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और मर्यादा सम्बन्धी प्रश्नों को उठाया है तथा ज्वलंत यथार्थ का चित्र प्रस्तुत किया है, उनका अनुभव वह कोई भी सहृदय पाठक, समाज सुधारक या समाजशास्त्री कर सकता है जिसे अछूत कही जाने वाली जाति से सहानुभूति है। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास 'गबन' में एक महत्वपूर्ण पक्ष अछूतपन के सम्बन्ध में प्रस्तुत किया है वह है अछूतों में भी छुआ-छूत। रमानाथ खटिक-पत्नी जग्गो से जिद करता है कि 'अब तुम मेरी माता हो गयी, तो फिर काहे का छूत विचार ? मैं तुम्हारे ही हाथ का खाऊंगा।'[२] जग्गो उसका विरोध नहीं कर पाती। परंतु जब जालपा जग्गो से ~~जिद~~-कहती है - कि 'मांजी, मैं भोजन बना दूंगी तो जग्गो आपत्ति करती

१- 'घासवाली' मा०स० भाग १ पृ० २०२-२०३

२- 'गबन' पृ० १८१

हुई कहती है - "हमारी बिरादरी में दूसरों के हाथ का खाना मना है बहू '। अब चार दिन के लिए बिरादरी में नक्कू क्या बनूं ।"[१] जालपा आग्रह करती है जग्गो तैयार नहीं है स्वीकृति देने के लिए । इस समस्या को देवीदीन यह कह कर टाल देता है कि "इसका जवाब फिर सोचकर देना । अभी चलो । इन लोगों को आराम करने दो ।"[२] स्पष्ट है जग्गो सवर्ण जालपा का छुआ नहीं खाना चाहती है । यह इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि एक अछूतों में भी छुआ-छूत का रोग प्रवेश कर गया है ।

प्रेमचन्द ने 'कर्मभूमि' उपन्यास में अछूतों के अन्य दुर्गुणों, मद्यसेवन, गोमांस भक्षण का प्रसंग भी उपस्थित किया है । गूदड़ चौधरी के गांव के तथा आसपास के गांवों के लोग शराब पीते हैं और गोमांस खाते हैं । प्रेमचन्द ने इनका उल्लेख सुधार के संबंध में किया है । परन्तु इन प्रसंगों से उनके दुर्गुणों का बोध भी हो जाता है । अछूतों में मद्यसेवन की आदत का चित्रण प्रेमचन्द 'होली की छुट्टी' कहानी में भी करते हैं । विद्यालय से घर जाते समय वे मार्ग में देखते हैं - एक झोपड़ी में "चार पांच आदमी उकड़ूं बैठे हुए हैं, बीच में एक बोतल है, हर एक के सामने एक एक कुल्हड़ है ।"[३] प्रेमचन्द सोचते हैं - "यह सब आदमी धोबी और चमार होंगे, दूसरा कौन शराब पीता है, देहात में ।"[४]

प्रेमचन्द ने अछूतों की समस्याओं का जहां यथार्थ चित्रण किया है वहीं उनकी समस्याओं का समाधान भी खोजा है या चाहा है । प्रेमचन्द जाति के आधार पर छुआ-छूत का भेद नहीं मानते थे । उनका जागरूक पात्र अमरकान्त सलोनी से कहता है "मैं जात-पांत नहीं मानता, माता जी ! जो सच्चा है, वह चमार भी हो, तो आदर के योग्य है, जो दगाबाज, झूठा, लम्पट हो, वह ब्राह्मण भी हो तो आदर

१- 'गबन' पृ० २३७

२- 'गबन', पृ० २३८

३- 'होली की छुट्टी' गुप्त धन भाग २ पृ० ३१

४- 'होली की छुट्टी' गुप्तधन भाग २ पृ० ३१

योग्य नहीं ।"[१] `गबन` का रमानाथ जग्गो से कहता है - "मैं तो तुम्हारी रसोई में खाऊंगा । - - - जिसकी आत्मा बड़ी हो वही ब्राह्मण है ।"[२] जालपा की भी धारणा है - "मैं उस चमार को उस पण्डित से अच्छा समझूंगी, जो हमेशा दूसरों का धन खाया करता है ।"[३] प्रेमचन्द स्वतः कहते हैं "अछूत इसलिए तो अछूत है कि वे जन-समाज के स्वास्थ्य के लिए उनके घरों की सफाई करते हैं, उनकी सेवा करते हैं । उनके और अछूतों में क्या अन्तर है ? जैसे वे मनुष्य हैं, अछूत भी है ।"[४] लाला लाजपतराय की भी धारणा थी कि "किसी तरह का ऐसा श्रम जो समाज की सेवा करता है गिरा हुआ नहीं है । यदि कोई श्रम व्यक्ति को या व्यक्तियों के समूह को गिराता है तो उसका अन्त होना चाहिए । कोई भी व्यक्ति जो समाज का कार्य कर रहा है उसे परेशान नहीं किया जानाचाहिए ।[५] प्रेमचन्दने शास्त्रीय जीवियों के तर्कों का उत्तर देते हुए ४ नवम्बर १९३२ के जागरण में लिखा था "हिन्दू समाज में इस विषमता के सबसे बड़े समर्थक हमारे शास्त्रीयजीवी लोग हैं । वे अभी तक यही पुरानी लकीर पीटते जाते हैं कि स्मृतियों में कहीं इस तरह की समानता का प्रमाण नहीं मिलता लेकिन जब वेदान्त कहता है कि सम्पूर्ण ब्रह्मांड में केवल एक आत्मा व्याप्त है, तो उसमें इस तरह का भेद कहां से आ सकता है । यह ठीक है कि हरिजनों में अभी बहुत सी गंदी आदते हैं - वे शराब पीते हैं, गंदा काम करते हैं और मुरदार खाते हैं, लेकिन हिन्दू-समाज ज्यों ही उन्हें अपने अन्दर स्थान देगा, वे सारी बुराइयां आप ही आप मिट जायेंगी ।"[६]

प्रेमचन्द ने केवल समाचार पत्र में ही इन आदतों के मिट जाने की आशा नहीं देखी, उन्होंने अपने साहित्य में इन बुराइयों को दूर करने का प्रयास भी किया है । `कर्मभूमि` में अमरकान्त चमारों के बीच जाकर रहता है, अछूतों द्वारा शराब पिए जाने और मुरदार मांस खाए जाने का वह विरोध करता है । अमरकान्त की

१- `कर्मभूमि` पृ० १४२

२- `गबन` पृ० १८१

३- `गबन` पृ० २३८

४- `जागरण` मृ १९ सितम्बर १९३२ दे० विविध प्रसंग भाग २ पृ० ४४१

५- बी०सी० जोशी : `लाला लाजपतराय : राइटिंग्स ऐण्ड स्पीचेज`, १९६६ (दिल्ली) दे० पृ० ११६

६- `विविध प्रसंग, भाग २ पृ० ४४६

बात गूदड़ चौधरी को भा गई है । वह स्वतः स्वीकार करते हुए मुन्नी से कहता है - `अमर भैया की बात आज मेरे मन में बैठ गई । कहते हैं - जहां सौ में अस्सी आदमी भूखों मरते हों, दारू पीना गरीबों का रक्त पीने के बराबर है । कोई दूसरा कहता है, तो न मानता पर उनकी बात न जाने क्यों दिल में बैठ जाती है ।`[१] मुन्नी के यह कहने पर कि बुढ़ापे में दारु पीना अवगुन करेगा, चौधरी अपना दृढ़ निश्चय प्रगट करते हुए कहता है `चाहे दरद हो, चाहे बाई हो, अब पीऊंगा नहीं । जिन्दगी में हजारों रूपये की दारू पी गया । सारी कमाई नशे में उड़ा दी । इतने रूपये से कोई उपकार का काम करता, तो गांव का भला होता और जस मिलता ।`[२] शराब बन्दी में गूदड़ अमरकान्त की सहायता करता है । अमरकान्त गूदड़ की ढिलाई पर कहता है `तुम भी दादा अब काम में ढिलाई कर रहे हो । मैंने कल एक पंचायत में लोगों को शराब पीते पकड़ा । सौ तोड़ की बात है । - - - मैं दिखावा नहीं चाहता, ठोस काम चाहता हूं ।`[३] अमर अनेक गांवों में शराबबन्दी का प्रयास करता है ।

मुरदा मांस के खाए जाने का भी अमरकान्त विरोध करता है । अमर देखता है कि पन्द्रह बीस आदमी बांस की बल्लियों में मृतक गाय को लादे चले आ रहे हैं । अमरकान्त मुन्नी से कहता है कि वह अब इस गांव में नहीं रहेगा । मुन्नी अमर का यह निर्णय गूदड़ चौधरी से कह देती है । अमर के निर्णय को सुनकर चमारों में दो दल हो जाते हैं । एक काशी के नेतृत्व में मुर्दा गाय के काटे जाने का विरोधी दूसरा पयाग के नेतृत्व में अपनी प्रथा का समर्थक । अन्त में काशी समर्थक लोगों की जीत होती है। फल यह होता है कि कई महीने गुजर गये । गांव के में फिर मुरदा मांस न आया । आश्चर्य की बात तो यह थी कि दूसरे गांवों के चमारों ने भी मुर्दा मांस खाना छोड़ दिया ।`[४]

१- `विविध-प्रसंग-भाग-२-पृ० `कर्मभूमि` पृ० १४५-१५५
२- `कर्मभूमि ` पृ० १५५
३- `कर्मभूमि ` पृ० २८४
४- `कर्मभूमि ` पृ० १७२

प्रेमचन्द के युग में मंदिर प्रवेश की समस्या को सर्वप्रथम गांधी ने उठाया था। प्रेमचन्द ने इसका उल्लेख करते हुए लिखा है - 'महात्मा जी नेसबसे पहले हरिजनों के मंदिर प्रवेश का प्रश्न लिया है।'[१] प्रेमचन्दनेहरिजनों के मंदिर प्रवेश के सम्बन्ध में लिखा है - कि हरिजनों को मंदिर प्रवेश का अधिकार केवल शून्य के बराबर मिला है। लाखों मंदिर वाले इस महादेश में, कुछ मुट्ठीभर और केवल साधारण मंदिर, ही ऐसे हैं, जहां वे दर्शनार्थ जा सकते हैं।'[२] प्रेमचन्द ने मंदिर प्रवेश का प्रश्न 'कर्मभूमि' में उठाया है। ठाकुर द्वारे में क्या हो रही है। ब्रह्मचारी जी पिछले सफों में कुछ आदमियों का हाथ पकड़-पकड़ कर उठा रहे हैं। लाला समरकान्त के पूछने पर वे कहते हैं - 'यहां लोग भगवान की कथा सुनने आते हैं कि अपना धर्म भ्रष्ट करने आते हैं। भंगी, चमार, जिसे देखा घुसा चला आता है - ठाकुर जी का मंदिर न हुआ सराय हुई।'[३] इसी मंदिर में सबसे विचित्र बात यह हुई कि 'कई आदमी जूते ले लेकर उन गरीबों पर पिल पड़े। भगवान के मंदिर में, भगवान के भक्तों के हाथों, भगवान के भक्तों पर पादुका-प्रहार होने लगा।'[४] डा० शान्ति कुमार को यह दृश्य पीड़ा पहुंचाता है। नौजवान सभा के तत्वावधान में अछूतों के लिए अलग कथा का निश्चय किया गया। तभी से मंदिर में प्रवेश का निर्णय लिया गया। डा० शान्तिकुमार का निश्चय है - 'मैं देखूंगा कौन नहीं जाने देता। हमारा ईश्वर किसी की सम्पत्ति नहीं है, जो संदूक में बंद करके रखा जाय। इस मुआमले को तय करना है, सदा के लिए।'[५] मंदिर के सामने दंगा होने से शान्तिकुमार घायल हो जाते हैं। सुखदा अछूतों का नेतृत्व करती है। वह भागते हुए अछूतों को ललकारती हुई कहती है - 'भाइयो! क्यों भाग रहे हो? यह भागने का समय नहीं, छाती खोलकर सामने खड़े होने का समय है --- धर्मवीर ही ईश्वर को पाते हैं।

१- 'विविध प्रसंग' भाग २ पृ० ४४५

२- 'मंदिर प्रवेश और हरिजन' विविध प्रसंग भाग २ पृ० ४६६

३- 'कर्मभूमि' पृ० १६६

४- 'कर्मभूमि' पृ० १६६

५- 'कर्मभूमि' पृ० २०५

भागवे वालों की कभी विजय नहीं होती ।"[१] पुलिस की गोलियों के सामने भी समूह नहीं डिगता । अन्त में अछूतों की विजय होती है ।

प्रेमचन्द यह भी मानते थे कि "हरिजनों की समस्या केवल मंदिर-प्रवेश से हल होने वाली नहीं है । इस समस्या की आर्थिक बाधाएं धार्मिक बाधाओं से कहीं कठोर है ।"[२] इनकी कहानियों में आर्थिक दुर्दशा को देखा जा चुका है । मंदिर-प्रवेश की समस्या उठाने के पहले ही प्रेमचन्द अछूत मजदूरों का आंदोलन करा चुके हैं । 'कायाकल्प' उपन्यास में जगदीशपुर रियासत के चमार बेगार के विरुद्ध आन्दोलन करते हैं । चक्रधर उनका नेता है । गोलियों की भी चिन्ता न करके चमार विद्रोह करते हैं ।[३] प्रेमचन्द अछूतों को शिक्षित करना चाहते थे । अछूतों में शिक्षा का प्रचार भी उनको समझदार बना सकता है जिसके कारण वह अपनी गंदी आदतें छोड़ देंगे और अपनी सामाजिक आर्थिक दशा सुधार सकेंगे ऐसा प्रेमचन्द मानते थे । उनके सुधारक पात्र अमरकान्त की अछूतों के गांव में "पाठशाला खुली हुई है । पन्द्रह-बीस लड़के अभिमन्यु की कथा सुन रहे हैं । अमर खड़ा वह कथा कह रहा है ।"[४] यही नहीं "अमर की पाठशाला में अब लड़कियां भी पढ़ने लगीं थीं ।"[५] अमर की पाठशाला लड़के और लड़कियों तक ही सीमित नहीं रही उसकी शाला "अब नई इमारत में आ गई थी । शिक्षा का लोगों को कुछ ऐसा चस्का पड़ गया था कि जवान, नौजवान, बूढ़े भी आ बैठते और कुछ-न-कुछ सीख जाते ।"[६] प्रेमचन्द जी ने अमर के माध्यम से अछूतों के मध्य बालकों, बालिकाओं, जवानों तथा बूढ़ों - सब लोगों की शिक्षा की व्यवस्था करके अछूतों के बीच शिक्षा प्रचार की आवश्यकता पर बल दिया है ।

१- 'कर्मभूमि' पृ० २१०

२- २६ दिसम्बर १९३१ के जागरण - दे० विविध प्रसंग भाग २ पृ० ४५५

३- 'कायाकल्प' पृ० ९७-११२ ।

४- 'कर्मभूमि' पृ० १५४

५- 'कर्मभूमि' पृ० १५५

६- 'कर्मभूमि' पृ० १७३

प्रेमचन्द ने अछूतों की स्थिति उनकी समस्याओं तथा अस्पृश्यता ऐसी भयंकर समस्या पर अपने साहित्य में सजग होकर विचार किया है। उन्हें अछूतों से सहानुभूति थी। यह केवल उनके कथा साहित्य और पात्रों के माध्यम से नहीं, वरन् उनके संपादकीय वक्तव्यों और उनके लेखों से भी सिद्ध होता है।[१] प्रेमचन्द की 'वरदान' में रुक्मिणी और विरजन के माध्यम से अछूतों के प्रति सहानुभूति का वास्तविक स्वरूप उनके उपन्यास 'रंगभूमि' में प्रकट होता है। 'रंगभूमि' के सूरदास की सबसे बड़ी उपलब्धि प्रेमचन्द के शब्दों में छूत और अछूत के भेद का अन्त है। सूरदास की मृत्यु के बाद उसकी प्रतिमा स्थापित करने का निश्चय किया गया। इसी समारोह में 'संध्या-समय प्रीति-भोजन हुआ, छूत और अछूत साथ बैठकर एक पंक्ति में खा रहे थे। यह सूरदास की सबसे बड़ी विजय थी।'[२] 'रंगभूमि' के बाद की रचनाओं में अछूत और उनकी समस्याओं का व्यापक रूप से चित्रण किया गया है।

अंधविश्वास : एक सामाजिक विकृति

धार्मिक रूढ़ियों और स्वार्थ के आधार पर परगठित ब्राह्मणों और धार्मिकों की परम्पराओं का भारतीय समाज अंध भक्त रहा है। जैसे जैसे युग बीता यह रूढ़ियां और परम्पराएं जटिल होती गई। पंडितों, पुरोहितों, साधुओं तथा पण्डों का बोलबाला समाज में बढ़ता गया। प्रेमचन्द ने इस सम्बन्ध में लिखा है - 'हिन्दू समाज में पूजने के लिए केवल एक लंगोटी बांध लेने और देह में राख मल लेने की जरूरत है, अगर गांजा और चरस उड़ाने का अभ्यास भी हो जाय तो और भी उत्तम। यह स्वांग भर लेने के बाद बाबा जी देवता बन जाते हैं। - - - सेठ साहूकार

१- इस सम्बन्ध में उनके लेख 'महातम' 'हमारा कर्तव्य', काशी का कलंक', 'हरिजनों के मंदिर प्रवेश का प्रश्न', अस्पृश्यों की महत्वाकांक्षा', 'मंदिर प्रवेश और हरिजन', द्रष्टव्य है। दे० विविध प्रसंग भाग २ क्रम २० पृ० ४३७, ४४०, ४४२, ४४५, ४४७ तथा ४६६।

२- 'रंगभूमि' पृ० ५३६

फैले, बड़े बड़े घरों की देवियां उनके दर्शनों को आने लगती हैं। --- जिस समाज में विचार मंदता का ऐसा प्रकोप हो, उसको संभालते बहुत दिन लगेंगे।"[1] भारतीय समाज में व्याप्त अंधविश्वास और इसके कारण होने वाले अनर्थ से प्रेमचन्द परिचित थे। अशिक्षित समाज ही नहीं, शिक्षित समाज भी अंधविश्वास की सीमा से परे नहीं है। प्रेमचन्द की कहानी 'मूठ' में अंधविश्वास पर मनोवैज्ञानिक धरातल पर विचार किया गया है। डाक्टर जयपाल की आय का साधन डाक्टरी पेशे के साथ कपड़े और शक्कर के कारखाने के हिस्से है। एक बार पांच सौ रूपये खो जाने के कारण वह पुलिस में रिपोर्ट करने तो नहीं जाते, परन्तु अपराधी को दण्ड देने के लिए वे ओझा के माध्यम से मूठ की सहायता से दण्ड दिलाना चाहते हैं। वेह यह जानते हैं -- 'आजकल के शिक्षित लोगों को तो इन बातों पर विश्वास नहीं है, पर नीच और मूर्ख मण्डली में उसकी बहुत चर्चा है।[2] परन्तु मन कहता है "क्यों न उसी ओझे के पास चलूं? मान लो कोई लाभ न हुआ तो हानि ही क्या हो जायगी। जहां पांच सौ गये हैं। दो-चार रूपये का खून और सही।"[3] ओझा के स्वांग का चित्र प्रस्तुत करते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं - "दरवाजे पर एक नीम का पेड़ था। उसके नीचे एक चौरा। नीम के पेड़ पर एक झंडी लहराती थी। चौरा पर मिट्टी के सैकड़ों हाथी सिंदूर में रंगे हुए खड़े थे। कई लोहे के नोकदार त्रिशूल भी गड़े थे, जो मानो इन मंदगति हाथियों के लिए अंकुश का काम दे रहे थे। -- बुद्धू चौधरी जो एक काले रंग का तोंदीला और रोबदार आदमी था, एक फटे हुए टाट पर बैठा नारियल पी रहा था। बोतल और गिलास भी सामने रखे हुए थे।"[4] घर की महरी जगिया जिसने रूपये चुराये थे हैं मूठ चलाने की बात सुनकर घबड़ा जाती है। बुद्धू चौधरी की मूठ क्यों न प्रभाव डालती, जिसके सम्बन्ध में जगिया की धारणा है 'उसकी मूठ का तो उतार ही नहीं।"[5] जगिया बेहोश हो

१- जागरण २६ मार्च १९३४ विविध प्रसंग भाग ३ पृ० १५७

२- 'मूठ' मा०स० भाग ८ पृ० ११७

३- 'मूठ' मा० स० भाग ८ पृ० ११७

४- 'मूठ' मा०स० भाग ८ पृ० ११८

५- 'मूठ' मा०स० भाग ८ पृ० १२२

जाती है, यद्यपि बुद्दू की मूठ अभी चली नहीं है। डाक्टर साहब पुन: बुद्दू के यहां जाते हैं और मूठ वापस लेने की प्रार्थना करते हैं। बुद्दू डाक्टर के यहां आकर मूठ उतारने का स्वांग भरता है और पांच सौ रूपये डाक्टर साहब से वसूल कर लेता है। यह है हिन्दू समाज की अंधविश्वास की मनोवैज्ञानिक कहानी। डाक्टर का अर्द्ध-विकसित आत्मविश्वास, जगिया की धारणा और तद्नुरूप प्रतिक्रिया तथा ओझा बुद्दू का परिस्थिति से लाभ उठाना ऐसी घटनाएं और स्थितियां भारतीय अंधविश्वास की जड़ें हैं।

अन्धविश्वास ही है जिसके कारण 'प्रेमशंकर' के तेजशंकर और पद्मशंकर बलिदान हो जाते हैं। उनका चिन्तन है - "हम लोग साधु होंगे अवश्य, पर अभी इस 'चीसा' को सिद्ध कर लो, घर में लाख-दो-लाख रूपये रख दो, बस निश्चिन्त होकर निकल खड़े हो।"[1] आकस्मिक घटना ने उनके मन में आस्था पैदा कर दी है कि "लाला जी (प्रभाशंकर) बीस हजार जमानत देते थे, पर मजिस्ट्रेट न लेता था। तीन दिन यहां आसन जमाया और आज वह (प्रेमशंकर) बिल्कुल बरी हो गये। एक कौड़ी भी जमानत न देनी पड़ी।"[2] अकस्मात प्रेमशंकर की वहां उपस्थिति उनकी रक्षा कर लेती है परन्तु हृदय में जमी हुई आस्था दिन प्रतिदिन दृढ़ होती गई। तेजशंकर को विश्वास है - "चलीसा किसी तरह पूरा हो जाय फिर तो हम अमर हो जायेंगे। तलवार तोप का हम पर कुछ असर ही न होगा" और पद्मशंकर को आशा है कि "सैकड़ों बरस तक जीते रहेंगे।"[3] एक दिन रात्रि को वे गंगा के किनारे मंत्र सिद्ध करने चले गये और वहां पर इनका "बलिदान पूरा हो गया।"[4] यदि बालकों के स्वभाव और चरित्र को वातावरण की देन माना जाय तो निश्चित रूप से यह मानने में हिचक नहीं है कि तेजशंकर और पद्मशंकर का मिथ्याविश्वास भारतीय समाज के

१- 'प्रेमाश्रम' पृ० २२५

२- 'प्रेमाश्रम' पृ० २२५

३- 'प्रेमाश्रम' पृ० ३७६

४- 'प्रेमाश्रम' पृ० ३८२

अंधविश्वास का प्रतिफल है । `तेंतर` कहानी के शिक्षा विभाग के नौकर शिक्षित दामोदर दत्त के यहाँ तीसरे बेटे के बाद कन्या जन्म लेती है । उनके परिवार में कन्या के होने से भय व्याप्त है क्योंकि `संस्कारों कैसे मिटा देते, जो परम्परा से हृदय में जमा हुआ था कि तीसरे बेटे की पीठ पर होने वाली कन्या अभागिनी होती है या पिता को लेती है या माता को या अपने को ।`[१] अबोध शिशु की उपेक्षा ने उसकी दशा दयनीय बना दी है । परन्तु जब किसी को कुछ नहीं हुआ तो पंडित दामोदर जी की वृद्धा मां ने नाटक प्रारम्भ किया और बीमार बन गईं क्योंकि यह सिद्ध करना था कि `यह कुशल हुई कि बुढ़िया के सिर गई, नहीं तो तेंतर मां बाप दो में से एक को लेकर तभी शांत होती`[२] फिर ब्राह्मणों को दुर्गापाठ और गोदान के पैसे कैसे मिल पाते ।

`ज्योति` कहानी की बुधिया को लड़के की बीमारी पर यह आशंका है कि `पानी मर लूँ तो चल कर जरा देखूँ, दांत ही है कि कुछ और फसाद है किसी की नजर बजर तो नहीं लगी ।`[३] तो सद्गति कहानी के दुखी को पंडिताइन द्वारा दी गई अग्नि की तिनगी सिर पर गिरने के कारण यह विश्वास है `यह एक पवित्र ब्राह्मण के घर को अपवित्र करने का फल है । भगवान ने कितनी जल्दी फल दे दिया । इसी से तो संसार पंडितों से डरता है और सबके रुपये मारे जाते हैं, बराम्हन के रुपये में भला कोई मार तो ले । घर भर का सत्यानाश हो जाय, पांव गल-गल कर गिरने लगे ।`[४] और `सवा सेर गेहूं` का शंकर इसीलिए तो ब्राह्मण देवता को `सवा सेर गेहूं` का बढ़ा हुआ ऋण आजन्म भरता रहता है और अपने जवान पुत्र को मरने के लिए छोड़ जाता है क्योंकि उसका विश्वास है `बही में नाम रह गया तो सीधे नरक में जाऊंगा`[५] `मंदिर` कहानी की सुखिया को विश्वास है कि ठाकुर जी ही उसके

१- `तेंतर` मा०स० भाग ३ पृ० ११०

२- `तेंतर` मा० स० भाग ३ पृ० ११८

३- `ज्योति` मा०स० भाग ३ पृ० १८६

४- `सद्गति` मा०स० भाग ४ पृ० २२

५- `सवा सेर गेहूं` भाग ४ पृ० ११०

शिशु की रक्षा कर सकते हैं यही कारण है कि दुखिया के दो कच्चों में `एक पहले ही बेचा जा चुका था । दूसरा पुजारी जी को भेंट हो गया ।[१] सुखिया की यह देवनिष्ठा स्पर्श से अपवित्र हो जाने वाले ठाकुर जी के भक्तों के लात जूतों का शिकार बनती है और उसे अपने पुत्र सहित उनके प्रहार का शिकार बनकर आत्मबलिदान करना पड़ता है ।

ये है `प्रेमचन्द साहित्य के अंधविश्वास से सम्बन्धित कुछ उदाहरण । प्रेमचन्द के अनुसार `हमारे इस अंधविश्वास ने अपना मतलब निकालने वालों के बड़े बड़े जत्थे बना लिए हैं, ऐसी कई जातियां पैदा हो गई हैं, जिनका पेशा ही है, इस तरह स्वार्थ से भोले-भाले भक्तों को ठगना ।[२] --- जिन लफंगों को दो आने रोज की मजूरी भी न मिलती, वे ही हिन्दुओं के इस अंधविश्वास के कारण खूब तर माल उड़ाते हैं, खूब नशा पीते हैं और खूब मौज उड़ाते हैं । --- जिस समाज पर इतने मुफ्तखोरों का भार लदा हुआ है वह कैसे पनप सकता है, कैसे जाग सकता है । ये लोग बार-बार यही यत्न करते रहते हैं कि समाज अंधविश्वास के गर्त में मूर्छित पड़ा रहे, चेतने न पावे ।[३]

प्रेमचन्द इस विकृति को हिन्दू समाज का कलंक मानते थे । वे इससे भोले-भाले विचार वाले लोगों की विशेष रूप से अशिक्षित लोगों की रक्षा करना चाहते थे । भगवान् ही सब कुछ करता है जो होता है वह उसी की इच्छा से ही होता है । इस मिथ्या भ्रम को वे दूर करना चाहते थे । `प्रेमाश्रम ` में दुखरन भगत के माध्यम से उन्होंने इस आस्था को उखाड़ने का प्रयास किया है । दुखरन भगत शालिग्राम का पुजारी है उसे विश्वास है कि ये मेरे और मेरी मर्यादा के रक्षक हैं । दौरे में आए हुए तहसीलदार के हुक्म से चपरासी द्वारा जूतों से पीटे जाने पर उसकी आस्था डगमगा जाती है और उसके अनुसार ही `पूछो मैंने इनकी कौन सेवा नहीं की ? आप सत्तू खाता था बच्चे चबेना चबाते थे इन्हें मोहन-भोग का भोग लगवाता था । उनके लिए जाकर कोसों से फूल और तुलसी दल लाता था, अपने लिए चाहे तमाखू न रहे,

---

१- `मंदिर ` भाग ५ पृ० १०

२- `विविध प्रसंग पृ० १५७

३- `जागरण ` २६ मार्च १९३४ दे० विविध प्रसंग, पृ० १५७-१५८ ।

पर इनके लिए कपूर और घूप की फिकिर करता था । --- कोई दिन ऐसा न हुआ कि ठाकुरद्वारे में जाकर चरणामृत न पिया हो, आरती न ली हो, रामायण का पाठ न किया हो । यह भगती और सर्धा क्या इसीलिए थी कि मुझ पर जूते पड़े, हकनाहक मारा जाऊं, चमार बनूं ? धिक्कार है मुझ पर जो फिर ऐसे ठाकुर का नाम लूं, जो इन्हें अपने घर में रखूं, और फिर इनकी पूजा करुं ।"[१] दुखरन ने ठाकुरजी की प्रतिमा फेंक दी । पिटारी का पूजा का समान हवा में उछाल दिया । उसके धार्मिक अंधविश्वास की दीवार हिल उठी । निश्चित रूप से उसके हृदय में ठाकुर जी की शक्ति पर जो मिथ्या भ्रम या विश्वास था उसका पर्दा खुल चुका था और दुखरन के अंधविश्वास का अन्त हो गया था ।

प्रेमचन्द का यह विश्वास था कि यदि अंधविश्वास ऐसे घोरतम सामाजिक विकार को दूर न किया गया तो स्वराज्य भी भारतीय जनता को सुखी और समृद्ध नहीं बना सकता है । प्रेमचन्द के अनुसार अंधविश्वास के कारण "गरीबों पर भी धर्म का जितना बड़ा टैक्स है, उतना शायद सरकार का भी न हो । - - - आज स्वराज्य भी मिल जाय ---- फिर भी अंधविश्वास के सम्मोहन में अपने जनता इतनी ज्यादा सुखी न होगी ।"[२] प्रेमचन्द जानते थे सारी आर्थिक सुविधाएं और राजनैतिक अधिकार जनता को सुखी नहीं रख सकते यदि अंधविश्वास का यह राक्षस उनके हृदय और मस्तिष्क से न उतार दिया जाय । यही कारण है कि वे कह उठते हैं "शिक्षित समाज के सामने जितनी समस्याएं हैं, उनमें शायद सबसे कठिन यही समस्या है । यहां उसे अंधविश्वास की पोषक प्रबल शक्तियों का सामना करना पड़ेगा, जो अनन्त काल से जनता की विचारशक्ति पर कब्जा जमाये हुए है ।"[३] इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रेमचन्द ने अपने कथा-साहित्य में ही इस प्रश्न पर विचार नहीं किया बल्कि वे लेखों के माध्यम से भी जनता को इससे मुक्ति पाने का संदेश दिया है ।"[४]

१- "प्रेमाश्रम" पृ० १८६-१८७

२- विविध प्रसंग भाग ३ पृ० १५६

३- विविध प्रसंग भाग ३ पृ० १५६

४- "जागरण" २६ मार्च १९३४ "हिन्दू समाज के वीभत्स दृश्य - २ अंधविश्वास

दे० विविध प्रसंग भाग ३ पृ० १५०-१६०

सम्प्रदाय और साम्प्रदायिकता

विश्व-मानव-समाज में धर्म का प्रमुख स्थान रहा है। भारतीय समाज तो अति प्राचीन काल से धर्ममूलक रहा है। विश्व में धर्म अथवा सम्प्रदाय के नाम पर संघर्ष होते रहे हैं। इन संघर्षों का आधार शक्ति अर्जन अथवा धार्मिक सत्ता ग्रहण कुछ भी रहा हो परन्तु धर्म के नाम पर ही ऐसे संघर्ष होते रहे हैं। भारत वर्ष का देवासुर संग्राम, अरब का मुहम्मद साहब के विरुद्ध विद्रोह, उनके बाद हसन हुसैन और मजीद का संघर्ष[1], इसके अलावा ईसा मसीह की कुर्बानी ऐसे संघर्षों के उदाहरण हैं। आधुनिक विश्व में भी हिटलर ने जर्मनी को कुलीनता के नाम पर युद्ध के लिए ललकारा था। अमेरिका में गोरों और कालों का संघर्ष कुलगत है जो धर्म का युद्ध न होकर भी कुल (रेस) के आधार पर सम्प्रदायवाद की देन का सीमा के बाहर नहीं है। अरब और इस्रायल के मध्य वर्तमान संघर्ष का मूलभूत कारण धर्म ही है।जो राजनीतिक स्तर पर लड़ा जा रहा है। भारतवर्ष में धार्मिक वैमनस्य की एक परम्परा चली आई है। देवासुर संग्राम के बाद बौद्ध, जैन और हिन्दू धर्म के अनुयायी राजाओं के मध्य अकारण दुराव और एक दूसरे के विरुद्ध शत्रु की सहायता के अनेक उदाहरण इस तथ्य के पोषक हैं। मुसलमानों के आधिपत्य ने भारत में हिन्दू और मुसलमानों के बीच संघर्ष का बीज बोया। औरंगजेब द्वारा गुरु गोविन्द सिंह के बच्चों को दीवाल में चुनवा देना इसका सबल प्रमाण है। आधुनिक युग में अंग्रेजों की कूटनीति ने हिन्दू-मुसलमान के इस संघर्ष को राजनीतिक स्तर के संघर्ष के साथ सामाजिक स्तर के संघर्ष का स्वरूप भी प्रदान कर दिया। आज़ादी के बाद आज भी समय-समय पर भारत के विभिन्न भागों में साम्प्रदायिक दंगे होते रहते हैं।

ब्रिटिश प्रशासन की कूटनीति ने भारतीय जनजीवन में साम्प्रदायिक भावना को बढ़ावा दिया। आज यह समस्या केवल हिन्दू-मुसलमानों के मध्य ही नहीं अल्पसंख्यक ईसाई, बौद्ध, जैन, सिक्ख और पारसी आदि लोगों के मध्य भी

१- इस संघर्ष का विस्तृत रूप से चित्रण प्रेमचन्द के नाटक `कर्बला` में हुआ है।

आपसी तनाव के रूप में फैल रही है। लाला लाजपतराय ने १६२४ में ८, ६, १० जनवरी के ट्रिबून (Tribune) में अपने लेख में इस सम्बन्ध में उल्लेख करते हुए लिखा था - "ब्रिटिश प्रशासन के साथ भारतवर्ष में हिन्दू मुस्लिम की समस्या आई। अब उसका विस्तार हो रहा है। भारत की समस्या केवल हिन्दू मुस्लिम समस्या नहीं है। यह हिन्दू-मुस्लिम-ईसाई, सिक्ख, पारसी, बौद्धों तथा जैनियों की समस्या बन रही है। इसके पूर्व साम्प्रदायिक भावना इतनी प्रखर, उत्तेजनात्मक और तीखी नहीं रही है जैसा कि पिछले ब्रिटिश प्रशासन के ५० वर्षों में रही है।"[१] लाजपतराय की यह घोषणा अपने तथ्य रूप में अभी भी साकार है। प्रेमचन्द ने युग की दशा के अनुरूप अपने युग की साम्प्रदायिक विकृति का स्वरूप अपने साहित्य में ग्रहण किया है। उन्होंने तत्कालीन समाज में प्रखर रूप से व्याप्त हिन्दू और मुसलमानों के मध्य साम्प्रदायिक भावना के आधार उसके प्रतिफल तथा उससे छुटकारा पाने के लिए अपने सांकेतिक सुझाव के साथ साम्प्रदायिकता की समस्या को स्थान-स्थान पर उठाया है।

प्रेमचन्द ने साम्प्रदायिक आंदोलनों के साथ साम्प्रदायिकता पर मुख्य रूप से विचार उपन्यास 'कायाकल्प' तथा कहानी 'मंदिर और मसजिद' में किया है। इनके अलावा उनके कथा-साहित्य में जिन स्थानों में साम्प्रदायिकता का उल्लेख थोड़ी बहुत

१- "With English rule in India, came the Hindu-Muslim problem. Now it is extending. The problem of India is no more a Hindu-Muslim problem. It is becoming a Hindu-Muslim-Christian-Sikh-Parsi Buddhist-Jain Problem. Never before was communal consciousness so keen, so assertive, nay so aggressive as within the last fifty years of British rule. The reason are obvious. British rule has created, fastered and nourshed it."

- लाला लाजपत राय।

दे० वी०सी० जोशी : 'लाला लाजपतराय : राइटिंग्स ऐण्ड स्पीचेज', १६२०-२८ , १६६६ (न्यू देलही), पृ० १५६

मात्रा में हुआ है वे हैं उपन्यासों में `कर्मभूमि ` और कहानियों में `हिंसा परमो धर्मः`
तथा `मंत्र` हैं । अपने साम्प्रदायिक लेखों, टीकाओं और व्यक्तिगत पत्रों में भी
उन्होंने साम्प्रदायिकता के विरुद्ध आवाज उठाई है । `कायाकल्प ` उपन्यास का
रचनाकाल १९२४-२५ है और `मंदिर और मसजिद ` कहानी माधुरी अप्रैल १९२५ ई०
में छपी थी । पिछले अध्याय में धार्मिक स्थिति पर प्रकाश डालते समय इस बीच
साम्प्रदायिक दंगों की प्रबलता पर प्रकाश डाला जा चुका है । तत्कालीन साम्प्रदायिक
दंगों की बहुलता के कारण प्रेमचन्द ने विशद रूप से इन रचनाओं में इस समस्या को
उठाया है । १९१६ ई० में लखनऊ कांग्रेस में हिन्दू-मुस्लिम एकता कायम हुई थी परन्तु
यह स्थाई न रह सकी । १९२१ में अंग्रेजों की साज़िश से मालाबार में मोपले मुसलमानों
का विद्रोह हुआ जिसका संकेत प्रेमचन्द की कहानी `मंत्र ` में किया गया है । इस
कहानी के लीलाधर चौबे हिन्दू महासभा द्वारा हिन्दू मुस्लिम दंगे के संदर्भ में मद्रास
भेजे जाते हैं ।[१] इस विद्रोह के बाद साम्प्रदायिक दंगों का तांता लग गया । इधर
आर्य समाजियों का शुद्धि आन्दोलन प्रखर हो रहा था । प्रेमचन्द ने २२ अप्रैल १९२३
को मुंशी दयानारायण निगम के नाम लिखे गए पत्र में इस शुद्धि आंदोलन का विरोध
करते हुए लिखा था - "मलकाना शुद्धि पर एक मुख्तसर मजमून लिख रहा हूं । मुझे
इस तहरीक से सख्त इख्तिलाफ (विरोध) है । तीन चार दिन में भेज सकूंगा ।
आर्य समाज वाले भिन्नायेंगे लेकिन मुझे उम्मीद है आप जमाना में इस मजमून को जगह
देंगे ।"[२] यह मजमून जमाना २४ फरवरी १९२४ में छपा था । प्रेमचन्द ने इसमें लिखा
था" "हम कहते हैं कि अगर हिंदुओं में एक भी किचलू, मुहम्मद अली या शौकत अली
होता तो हिन्दू-संगठन और शुद्धि की इतनी गर्म बाजारी न होती और इन संग्रामों
में कमी हो जाती जो इस वैमनस्य के कारण दिखाई पड़ते हैं ।"[३] इसी लेख में
प्रेमचन्द ने कहा है हिन्दुओं द्वारा दस-पांच हजार मलकानों की शुद्धि से उनकी प्रसन्नता
व्यर्थ है । हिन्दुओं में राजनीतिक सहिष्णुता की आवश्यकता है ।

१- `मंत्र ` मा०स० भाग ५ पृ० ४९ से ६० तक

२- चिट्ठी पत्री भाग १ पृ० १३२

३- जमाना १९२४ फरवरी दे०वि०पृ० भाग २ पृ० ३५२

`कायाकल्प ` उपन्यास के आगरे के प्रथम दंगे का मूल कारण भावना रूप में शुद्धि आन्दोलन और व्यवहार में इसके विरोध में मुसलमानों द्वारा गौ हत्या की योजना है। ख्वाजा महमूद के शब्दों में "कुरबानी करना हमारा हक है। अब तक हम आपके जज़्बात का लिहाज करते थे, अपने माने हुए हक भूल गये थे, लेकिन जब आप लोग अपने हकों के सामने हमारे जज़्बात की परवाह नहीं करते तो कोई वज़ह नहीं कि हम अपने हकों के सामने आप के जज़्बात की परवा न करें। मुसलमानों की शुद्धि करने का आपको पूरा हक हासिल है, लेकिन कम-से-कम पांच सौ बरसों में आपके यहां शुद्धि की कोई मिसाल नहीं मिलती। आप लोगों ने एक मुर्दा हक को जिन्दा किया है। इसीलिए न कि मुसलमानों की ताकत और असर कम हो जाय।"[१] दूसरी बार के दंगे का कारण होली के दिन एक मियां के वस्त्रों में रंग की छींटे पड़ जाना है। होली के दिन मियां जी के "कपड़े पर दो बार छींटे पड़ गये।"[२] फिर क्या था ? उन्होंने मसजिद मे जाकर बांग दी और "मुसलमानों ने जब ललकार सुनी और उनकी त्यौरियां बदल गईं। दीन का जोश सिर पर सवार हो गया। शाम होते-होते दस हजार आदमी सिरों से कफन लपेटे, तलवारें, लिये, जामें मसजिद के सामने आकर दीन के खून का बदला लेने के लिए जमा हो गये।"[३] और उधर हिन्दू समुदाय में भी "पिचकारी छोड़ छोड़ लोगों ने लाठियां संभालीं।"[४] `मंदिर और मसजिद ` कहानी के साम्प्रदायिक दंगे का कारण मुसलमानों द्वारा ठाकुरद्वारे में आक्रमण है। आधी रात को ठाकुरद्वारे में कृष्ण का जन्मोत्सव मनाया जा रहा था। "सहसा मुसलमानों का एक दल लाठियों लिये हुए आ पहुंचा और मंदिर पर पत्थर बरसाना शुरू किया।"[५] "हिंसा परमो धर्मः" कहानी के साम्प्रदायिक दंगे की संभावना का कारण एक मुसलमान की मुर्गी का एक ब्राह्मण के घर में घुस

१- `कायाकल्प ` पृ० २३

२- `कायाकल्प ` पृ० १८८

३-- `कायाकल्प ` पृ० १८८

४-, `कायाकल्प ` पृ० १८८

५- `मंदिर और मसजिद ` गुप्तधन भाग २ पृ० १६१।

जाना है ।"[१] इस कहानी में दिखाया गया है कि हिन्दू जामिद को शुद्ध करते हैं । एक ब्राह्मण द्वारा मुसलमान को पीटे जाने से बचाने के अपराध में वह हिन्दुओं का कोप भाजन बनता है और फिर एक हिन्दू स्त्री की मुसलमान गुण्डों से रक्षा करने के कारण वह मुसलमानों का शत्रु बनता है ।

साम्प्रदायिक दंगों के तात्कालिक कारण शुद्धि, गोहत्या, मंदिर या मसजिद में आक्रमण, दो सम्प्रदाय के लोगों के व्यक्तिगत झगड़े लेन-देन आदि कुछ भी हो सकते हैं । एक स्थाई कारण की ओर संकेत करते हुए चक्रधर कहता है - "लोगों का यह ख्याल कि मुसलमान लोग हिन्दुओं पर राज्य करने का स्वप्न देख रहे हैं बिलकुल गलत है । मुसलमानों को केवल शंका हो गयी है कि हिन्दू उनसे पुराना बैर चुकाना चाहते हैं और उनकी हस्ती मिटा देने की फिक्र कर रहे हैं । इसी कारण वह जरा-जरा सी बात पर तिनक उठते हैं और मरने-मारने पर आमादा हो जाते हैं ।[२] ख्वाजा महमूद मुसलमानों के ताकत और असर के कम हो जाने की शंका से ग्रस्त हैं ।[३] "कर्मभूमि" के जिला हाकिम मि० गजनवी को स्वराज्य मिल जाने से मुसलमानों की दशा खराब हो जाने का भय है । उनके अनुसार "मुझे अगर स्वराज्य से खौफ है तो यह कि मुसलमान की हालत कहीं और खराब न हो जाय, गलत गलत तवारीखें पढ़ पढ़कर दोनों फिरके एक दूसरे के दुश्मन हो गये हैं । और मुमकिन नहीं कि हिन्दू मौका पाकर मुसलमानों से पुरानी अदावतों का बदला न लें ।"[४]

एक दूसरे सम्प्रदाय के प्रति शंका और स्थाई भय समय पाकर धीरे-धीरे कारणों से साम्प्रदायिक विप्लव का स्वरूप ग्रहण कर लेता है । प्रेमचन्द-साहित्य में इन कारणों के आधार पर प्रारम्भ हुए दंगों की सूचना दी जा चुकी है । अंग्रेज प्रशासक चाहते थे कि भारतवर्ष में साम्प्रदायिक दंगे होते रहें,। उन्होंने दोनों

१- हिंसा परमो धर्मः मा०स० भाग ५ पृ० ६१

२- "कायाकल्प" पृ० ५०

३- "कायाकल्प" पृ० २३

४- "कर्मभूमि" पृ० ३१२ ।

सम्प्रदायों में ऐसे व्यक्ति पैदा कर दिए थे कि जो अपने स्वार्थ के लिए एक-दूसरे सम्प्रदाय को भिड़ाना चाहते थे । गांधी जी के सचिव प्यारे लाल जी ने साम्प्रदायिक समस्या को ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रतिक्रियावादी तत्वों की देन माना है । वे इस संघर्ष को राजनीतिक स्वार्थों के लिए लड़ा जाने वाला संघर्ष मानते हैं ।[१] प्रेमचन्द जी इस सम्बन्ध में लिखते हैं - "हिन्दु मुस्लिम एकता हुक्काम की नजरों में कांटे की तरह खटकती थी इसलिए जब धनी-मानी लोग किसी ऐसे आंदोलन का उत्साह के साथ स्वागत करें जिससे एकता को नुकसान पहुंचने का यकीन हे तो जाहिर है कि उनका उसमें शरीक होना उनके मन की बात नहीं, बल्कि किसी की प्रेरणा से होने वाली बात है"[२] प्रेमचन्द यह भी जानते थे कि दोनों वर्गों मे ऐसे लोग हैं - जो अपने स्वार्थों की पूर्ति से सम्प्रदायवाद को जीवित रखना चाहते हैं । ख्वाजा महमूद के शब्दों में वे कहते हैं - "दोनों कौमों में कुछ लोग हैं जिनकी इज्जत और सरवत दोनों कार लड़ाते रहने पर भी कायम है । बस, वह एक-न-एक शिगूफा छेड़ा करते हैं ।"[३] प्रेमचन्द यह मानते थे कि लोग अपने स्वार्थ के लिए साम्प्रदायिकता का आधार लेते हैं ।[४]

१- "The communal problem was the creation of the reactionary forces represented by the British Imperialism in alliance with the conservative and the bourgeois sections in India. They captured communalism in their struggle for political power, to disrupt the nationalist movement which threatened their security." 72.

प्यारे लाल : 'महात्मा गांधी : लास्ट फेज़' प्रथम भाग १९५८, (अहमदाबाद), पृ० ७२

२- विविध प्रसंग, भाग २ पृ० ३५६

३- जमाना २४ फरवरी १९२४ 'कायाकल्प' पृ०३१३

४- दे० 'साम्प्रदायिकता और स्वार्थ', विविध प्रसंग भाग २, पृ० ४३-५१

प्रेमचन्द ने इस समाज की इस विकृति को मात्र इसलिए नहीं उठाया कि इसका चित्रण मात्र हो जाय बल्कि इसे उठाने का उनका उद्देश्य इसके लिए हल खोजना था। 'कायाकल्प' में प्रथम बार चक्रधर अपनी जान पर खेलकर दंगा बचा लेता है। वह गाय की गर्दन पकड़ कर प्रखर स्वर कह उठता है - 'आज आपको इस गौ के साथ एक इन्सान की कुर्बानी करनी पड़ेगी।'[१] चक्रधर का आत्मत्याग सारा मामला शांत कर देता है। प्रेमचन्द ने गाय की रक्षा इसलिए नहीं कराई कि उन्हें गाय से प्रेम था या वे गाय के भक्त थे अथवा वे हिन्दुओं के पक्षपाती थे। आत्म त्याग को वे समस्या के सुलझने का जरिया मानते थे। गांधी जी की धारणा थी कि 'एक गाय की रक्षा के लिए किसी मनुष्य की हत्या हिन्दूपन नहीं है।'[२] प्रेमचन्द का चक्रधर भी यही कहता है 'अहिंसा का नियम गौवों के लिए ही नहीं मनुष्यों के लिए भी तो है।'[३] गाय के सम्बन्ध में गांधी का कहना था कि 'हमें अपनी कमियों को पूरा करना होगा क्योंकि हम गाय की पूजा करते हैं परन्तु बूढ़ा होने पर उन्हें कसाई को दे देते हैं। उनके बछड़ों को भूखा मारते हैं और गाय को भूखा मरने के लिए छोड़ देते हैं।'[४] प्रेमचन्द जी का भी यही कहना था 'जो रक्षा के

१- 'कायाकल्प' पृ० २७

२- "It is not Hinduism to kill a fellow man even to save the cow".

महात्मा गांधी : 'यंग इण्डिया', २८ जुलाई १६२१, दे० प्यारे लाल : 'महात्मा गांधी : लास्ट फेज' द्वितीय भाग १६५८ (अहमदाबाद) पृ० १२६

३- 'कायाकल्प' पृ० २४

४- "It is far better to use our energies to eradicate our own shortcomings than to be picking holes in others. ... We worship the cow by adorning her person but we rob her calf of the last drop of milk and become stingy when it comes to feeding her properly, and when mother cow becomes old and decrepit, we send her to the slaughter house by selling her, or else turn her out of doors to die of starvation..... We are brave only in denunciation of others and complacent in regard regard to our own failings. Pounder well what I have said today, turn the search light inward and you will get the true answer as to who the real enemy of the cow is and against whom your crusading spirit to be directed." - महात्मा गांधी

दे प्यारे लाल : 'महात्मा गांधी : लास्ट फेज' द्वितीय भाग, १६५८ (अहमदाबाद) पृ० १२०

सारे-हो-हल्ले के बावजूद क हिन्दुओं ने गो-रक्षा का ऐसा कोई सामूहिक प्रयत्न नहीं किया जिससे उनके दावे का व्यवहारिक प्रमाण मिल सके। गौ दक्षिणी समायें कायम करके धार्मिक झगड़े पैदा करना गौ रक्षा नहीं है। इस सूबे में अधिकांश जमींदार हिन्दू हैं। उन्होंने गोचर जमीन का कोई इन्तजाम किया या जहां पहले से इन्तजाम था वहां उसे खत्म नहीं किया है : ---- हम देखते हैं कि बैलों के लिए चारा मयस्सर नहीं तो गायों के लिए (वह ही जब बुड्ढी, मरियल, कमजोर हो जाय) चारा इकट्ठा करने की दिक्कत किसी किसान से पूछिए। वह गायों को भूख से एड़ियां रगड़-रगड़ कर मरने के बदले उन्हें कसाई के हवाले कर देना ज्यादा अच्छा समझता है।'[१] स्पष्ट है प्रेमचन्द गांधी की भांति गौ के नाम पर साम्प्रदायिक दंगे के प्रबल विरोधी थे।

मंदिर और मसजिद' कहानी का दंगा मुसलमानों द्वारा मंदिर में आक्रमण से होता है। चौधरी इतरअली का राजपूत चपरासी मंदिर में चौधरी साहब के दामाद की हत्या में कर देता है। इकलौते दामाद और जायदाद के वारिस शाहिद हुसैन कीहत्या के बाद भी चौधरी साहब का मत है 'मैं अगर खुद शैतान के बहकाने में आकर मंदिर में घुसता और देवता की तौहीन करता, और तुम मुझे पहचान कर भी कत्ल कर देते, तो मैं अपना खून माफ कर देता। किसी दीन पर तौहीन करने से बड़ा और कोई गुनाह नहीं है।'[२] स्पष्ट है प्रेमचन्द किसी के धर्म की तौहीन पसंद नहीं करते थे चाहे वह हिन्दू का हो या मुसलमान का। चौधरी साहब भजनसिंह की रक्षा ही नहीं करते मुकदमें में उसकी पैरवी करते हैं और उसे बचा लेते हैं। चौधरी की धारणा है - 'मंदिर भी खुदा का घर है और मसजिद भी। मुसलमान किसी मंदिर को नापाक करने के लिए जिस सजा के लायक है, क्या हिन्दू मसजिद को नापाक करने के लिए उसी सजा के लायक नहीं।'[३]

१- 'जमाना' फरवरी १६२४ ई० विविध प्रसंग भाग २ पृ० ३५२।
२- 'मंदिर और मसजिद' गुप्तधन भाग २ पृ० १६३
३- 'मंदिर और मसजिद' गुप्त धन भाग २ पृ० १६७।

प्रेमचन्द साहित्य की साम्प्रदायिकता ऐसे प्रश्न के हल का साधन मानते थे। उसको बढ़ावा देने वाले साहित्य के वे विरोधी थे। चतुरसेन शास्त्री द्वारा `इस्लाम का विषवृक्ष` का विरोध करते हुए उन्होंने जैनेन्द्र जी को लिखा था - "इस चतुरसेन को क्या हो गया है कि "इस्लाम का विषवृक्ष" लिख डाला। इसकी आलोचना तुम लिखो और वह पुस्तक मेरे पास भेजो - इस कम्युनल प्रोपोगंडा का जोरों से मुकाबला करना होगा।[1] बनारसीदास जी को भी इसी सम्बन्ध में लिखते हैं - "यह साम्प्रदायिकता फैलाने की एक बेहद शरारत भरी और नीच कोशिश है और उसका पर्दाफास करना होगा।"[2] यही नहीं इन्होंने २४ जुलाई १६३२ को `जागरण` मे `इस्लाम का विषवृक्ष` शीर्षक से लेख लिखकर चतुरसेन शास्त्री की साहित्य मण्डल देहली से प्रभावित - इस पुस्तक का घोर विरोध किया था।[3,4] उन्होंने `माधुरी` १ जनवरी १६२५ में `कर्बला` भौर `भजमाना` दिसम्बर १६30 में "उर्दू में फिर औनियत" ऐसे लेख लिखकर साहित्य को साम्प्रदायिकता के पोषक के रूप में नदेखकर उसे इस प्रश्न के सुधारक के रूप में देखा था।[4]

प्रेमचन्द ने पत्रकार की हैसियत से हिन्दू-मुस्लिम एकता सम्बन्धी प्रस्तावों का समय समय पर सहर्ष स्वागत किया है। उनके अनेक लेखों में इस तरह की भावना के दर्शन होते हैं।[5] उन्होंने अनेक लेखों के माध्यम से साम्प्रदायिक वैमनस्य को दूर करने, सहिष्णुता और एकता को बनाए रखने का, आपस में दोनों सम्प्रदायों के सद्भावी

१- `चिट्ठी पत्री` भाग २ पृ० ३२

२- `चिट्ठी पत्री भाग २ पृ० ८२

३- दे० `इस्लाम का विषवृक्ष` विविध प्रसंग भाग २ पृ० ४१४-४१६

४- "इस्लाम का विषवृक्ष" विविध प्रसंग भाग२ पृ० ३५७-२६३

५- इस सम्बन्ध में हंस नवम्बर १६३१ मे के हंस का हिन्दू मुस्लिम एकता, १६ अक्तूबर १६३२ के जागरण का मुस्लिम सर्व-दल-सम्मेलन, ३१ अक्तूबर १६३२ के जागरण का एकता सम्मेलन, दिसम्बर १६३२ के हंस का `प्रयाग सम्मेलन` तथा १२ दिसम्बर १६३२ के जागरण के `मुस्लिम जनता में एकता सम्मेलन का समर्थन` लेख दृष्टव्य है।

बनने पर बल दिया है ।[१] साम्प्रदायिकता का सबसे बड़ा हल मानवता के पुजारी प्रेमचन्द हीरीलाल के शब्दों में खोजते हैं । उनका कहना है - "यहां तो मानवता के पुजारी हैं, चाहे इसलाम कहो या हिन्दू धर्म में या बौद्ध में या ईसाईमत में । अन्यथा मैं विधर्मी ही भला । मुझे किसी मनुष्य से इसलिए द्वेष तो नहीं कि वह मेरा सहधर्मी नहीं है ।"[२] व्यक्तिगत जीवन में प्रेमचन्द हिन्दू-मुसलमान में भेद नहीं मानते थे। उन्होंने एक बार अपनी पत्नी से कहा था - "मैं एक इंसान हूं, और जो इंसानियत रखता हो, इंसान का काम करता हो, मैं वही हूं, और उन्हीं लोगों को चाहता हूं । मेरे दोस्त अगर हिन्दू हैं, तो मेरे कम दोस्त मुसलमान नहीं हैं । और इन दोनों में मेरे नजदीक कोई खास फर्क नहीं है, मेरे लिए दोनों बराबर हैं ।"[३] प्रेमचन्द इन्सान को इन्सान के रूप में देखना चाहते थे ।

प्रेमचन्द राष्ट्रीय स्तर पर साम्प्रदायिक भेद भाव को मिटा देना चाहते थे । उन्होंने अक्तूबर १९३१ के हंस में कहा था "धर्म का सम्बन्ध-मनुष्य से और ईश्वर से है । उसके बीच में देश, जाति और राष्ट्र किसी को भी दखल देने का अधिकार नहीं है । हम इस विषय में स्वाधीन हैं । हम मसजिद मे जायें या मंदिर में । हिन्दी पढ़ें या उर्दू, धोती बांधे या पाजामा पहने, हम स्वाधीन हैं, लेकिन धर्म के नाम राष्ट्र को भिन्न भिन्न दलों में विभक्त करना, ईश्वर और मनुष्य के सम्बन्धों को राष्ट्रीय मामलों में घसीट लाना, राष्ट्रीय भारत कभी गंवारा न करेगा --- मुट्ठी भर पढ़े-लिखे आदमियों को कोई अधिकार नहीं कि वह अपने हलवे-माड़े के लिए सम्पूर्ण राष्ट्र का जीवन संकटमय बनावें --- हां, वह समय अब दूर नहीं है जब भारत इस नकली आदर्श से, विद्रोह करेगा और पृथकता के मकड़ी के से जाल को छिन्न भिन्न कर देगा ।"[४] प्रेमचन्द यह जानते थे कि "राष्ट्र को परस्पर ईर्षा और द्वेष के घातक प्रभाव से बचाने के लिए केवल एक ही उपाय है - साम्प्रदायिक मनोवृत्ति का शमन ।"[५] इस प्रकार

१- इस सम्बन्ध में जमाना, फरवरी १९२४ का 'मनुष्यता का अकाल', हंस मार्च १९३१ का 'नवयुग', 'जागरण' २६ अक्तूबर १९३२ का 'राष्ट्रीय विजय' तथा 'जागरण' १८ दिसम्बर १९३३ का 'साम्प्रदायिक समस्या का राष्ट्रीय समन्वय' आदि विशेष रूप से दृष्टव्य हैं ।

२- तथा अन्य - देखिए आगामी पृष्ठ ।

हम देखते हैं कि प्रेमचन्द ने इस महत्वपूर्ण सामाजिक प्रश्न का धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक और मनोवैज्ञानिक हल खोजने का प्रयत्न किया है ।

आर्थिक विसंगतियां : कुछ आर्थिक प्रश्न

अध्याय चार में 'युग के सामाजिक बोध' पर विचार करते समय हम समाज के आर्थिक ढांचे पर विचार कर चुके हैं । यहां पर संक्षेप में यह कहना पर्याप्त होगा कि आधुनिक युग में आजादी के पहले भारतवर्ष म की आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय थी । भूमि का बहुसंख्यक बहुमत आर्थिक दृष्टि से शोषित और पीड़ित था । एक तरफ सामन्तवाद यदि इस बहुसंख्यक समुदाय को शक्ति के बल पर चूस रहा था तो दूसरी तरफ नया महाजनवाद या पूंजीवाद अपने नए हथकण्डों के साथ उसका शोषण करने के लिए जबड़ा फैलाए हुए था । तीसरी ओर साम्राज्यवाद का अपना अलग शोषण, उत्पीड़न और अनर्थ चल रहा था । उन परिस्थितियों के बीच आर्थिक विषमता, आर्थिक शोषण, आर्थिक उत्पीड़न आदि का होना स्वाभाविक था जिन्हें हम दो शब्दों में आर्थिक विसंगतियां कह सकते हैं । प्रेमचन्द इन आर्थिक विसंगतियों और नए उभरते हुए आर्थिक प्रश्नों से भलीभांति परिचित थे । यही कारण है कि प्रेमचन्द ने राष्ट्रीय आन्दोलनों के मध्य किसान और मजदूर की दशा पर विचार करते हुए किसान और मजदूर आन्दोलनों का चित्रण किया है । राष्ट्रीय आन्दोलन और आर्थिक जागरण के मध्य अध्याय चार में हम इन पर प्रकाश डाल चुके हैं । यहां पर यह कह देना पर्याप्त होगा कि 'प्रेमाश्रम' और 'कर्मभूमि' में किसान-जागरण और किसान-आन्दोलन तथा 'रंगभूमि' और 'गोदान' में मजदूरों की स्थिति का चित्रण और मजदूर संघ इसके उदाहरण हैं ।

गत पृष्ठ का शेष :

२- 'स्मृति का पुजारी', मानसरोवर भाग ४, पृ० २९८

३- शिवरानी देवी : 'प्रेमचन्द : घर में' (इलाहाबाद) पृ० ९६

४- विविध प्रसंग भाग २ पृ० ३७४

५- जागरण' २९ अगस्त १९३२ ई० विविध प्रसंग, भाग २, पृ० ३८२

इन आर्थिक प्रश्नों तथा उनसे सम्बन्धित आर्थिक विसंगतियों को पुन: दुहराया जाना उचित नहीं है। परन्तु कुछ ऐसे आर्थिक प्रश्न और उनसे सम्बन्धित अनेक तरह की आर्थिक स्थितियों का विस्तृत चित्रण संभव नहीं हो सका। अत: उन पर विचार करना आवश्यक है। यह इसलिए भी आवश्यक है कि वे समाजशास्त्र के विवेचन के प्रमुख विषय हैं और उनको छोड़ देने का तात्पर्य होगा प्रेमचन्द-साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन को अधूरा छोड़ देना। प्रेमचन्द-साहित्य के ये आर्थिक महत्वपूर्ण सामाजिक प्रश्न हैं आवास, ऋण तथा आभूषण के प्रश्न। भारतवर्ष में इनसे समाज प्रभावित होता रहा है। प्रेमचन्द के समय, उनसे पूर्व तथा आज भी। उपशीर्षकों के रूप में हम आगे इन पर विचार करेंगे।

<u>आवास</u> -- भारतवर्ष में औद्योगीकरण तथा नगरीकरण का सीधा प्रभाव आवास-व्यवस्था पर पड़ा है। नागरिकरण से नगर क्षेत्र की भूमि पर जनसंख्या का दबाव भ बढ़ा है। इस दबाव का कारण फैक्टरियों, गोदामों तथा दफ्तरों का प्रचुरता से निर्माण है। इस अव्यवस्था के कारण नगरों में अनेक प्रकार के अपराध, बाल-अपराध तथा चोरियां आदि सामाजिक बुराइयां पाई जाती हैं। वास्तव में आवास की दुर्व्यवस्था एक प्रकार का समाजिक विघटन है, इससे मनुष्य के स्वास्थ्य और मस्तिष्क पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। भारतवर्ष में आवास का प्रश्न गांव जीवन की अपेक्षा यह शहर जीवन का महत्वपूर्ण प्रश्न है।[१]

१- **The problem of housing in India is more an urban than a rural problem. This does not, however, mean that the rural people enjoy better dwelling facilities. They are rather far from it. Inspite of the fact of inadequacy of housing in rural areas, the problem of housing in the urban set-up has attracted the attention of everybody alike.**

कैलाशचन्द्र गुप्त : "कन्टेम्पोरेरी सोशल प्राब्लेम्स इन इण्डिया", १९६४ (कलकत्ता), पृ० २७

ब्रिटिश ट्रेड यूनियन कांग्रेस के भारत आने वाले प्रतिनिधिमण्डल ने १६२८ ई० में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करते हुए मजदूरों के निवास के सम्बन्ध में कहा था `हम मजदूरों के निवास स्थानों में गये जहां यदि न गये होते तो हमें विश्वास ही न होता कि इतने बुरे स्थान भी संभव हैं --- प्रत्येक घर में कच्ची दीवालों और खपरैलों वाला एक अंधेरा कमरा है जो कि केवल ६ फीट लम्बाई-चौड़ाई का सम्पूर्ण कार्यों - सोने, रहने तथा भोजन बनाने - के लिए प्रयोग होता है। कमरे के सामने छोटा सा खुला स्थान है जिसका एक भाग शौच के लिए प्रयुक्त होता है। केवल टूटी छत अथवा द्वार खुलने पर प्रवेश द्वार से आने वाली वायु के अलवा वायु की कोई व्यवस्था नहीं है। मकानों के बाहर लम्बा संकरा रास्ता है जहां पर सब तरह का गंदा समान फेंका जाता है जिस पर मक्खियां और कीड़े उड़ते रहते हैं। बाहर की तरफ गलियों में मैले तथा अन्य गंदे समानों के कारण चारों तरफ कष्ट पहुंचाने वाली दुर्गन्ध फैलती रहती है।`[१]

१- "We visited the workers' quarters wherever we staged and had we not seen them we could not have believed that such evil places existed... Each house, consisting of one dark room used for all purposes, living, cooking and sleeping, is I feel by 9 feet, with mud walls and loose-tiled roof, and has a small open compound in front, a corner of which is used as a latrine. There is no ventilation in the living room except by a broken roof or that obtained through the entrance door when open outside the dwelling is a long narrow channel which receives the waste matter of all descriptions and where flies and insects abound... outside all the houses on the edge of each side of the strip of land between the 'lines' are the exposed gulleys, at some places stopped up with garbage, refuse and other waste matter, giving forth horrible smells repellent in the extreme.

आर०पी० दत्त, `इण्डिया टुडे` १६४६ (बम्बई), पृ० ८-६ पर उद्धृत।

इसी रिपोर्ट में मकानों में भीड़-भाड़ तथा दुर्व्यवस्था के लिए सम्बन्धित अधिकारियों को उत्तरदायी ठहराया गया है।[१] पंडित जवाहरलाल नेहरू ने जो कि १९२५ ई० के आसपास इलाहाबाद म्यूनिसिपैलिटी के चेयरमैन थे, वे भी धनी और शहर की गरीब बस्ती की अधिकारियों द्वारा उपेक्षा की ओर संकेत करते हुए अपनी आत्मकथा में लिखा है - `अधिकतर भारतीय नगर दो भागों में विभक्त किये जा सकते हैं। एक तो शहर का मुख्य घना बसा हुआ भाग और दूसरा सुन्दर मैदान और बगीचों से सुसज्जित बंगलों और मकानों वाला भाग जो कि `सिविल लाइन` कहा जाता है। नेहरू ने आगे कहा है कि म्यूनिसिपैलिटी की आय शहर के मुख्य भाग से बंगले वाले भाग की अपेक्षा अधिक होती है परन्तु व्यय अधिकतर सिविल लाइन वाले भाग में किया जाता है। शहर का मुख्य भाग सदैव उपेक्षित रहता है।[२] युग के अमर साहित्यकार प्रेमचन्द ने भी अपने उपन्यास कर्मभूमि ` में इसी तथ्य

१- "The overcrowding and insanitary conditions almost everywhere prevailing demonstrate the callousness and wanton neglect of their obvious duties by the authorities concerned."

आर०पी० दत्त : `इण्डिया टुडे ` १९४९ (बम्बई), पृ० ६ पर उद्धृत।

२- "Most Indian cities can be divided into two parts : the densely crowded city proper, and the widespread area with bungalows and cottages, each with a fairly extensive compound or garden, usually referred to by the English as the 'Civil Lines'. ... The income of the municipality from the city proper is greater than that from the civil Lines, but the expenditure on the latter far exceeds the city expenditure. For the far wider area covered by the Civil Lines requires more roads, and they have to be repaired,

Contd....

की ओर संकेत किया है। शहर के एक गरीब मोहल्ले गोबर्धनसराय का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं - "गली में दुर्गन्ध थी। गंदे पानी के नाले दोनों तरफ बह रहे थे। घर प्राय: कच्चे थे। गरीबों की मोहल्ला था। शहरों के बाजारों और गलियों में कितना अन्तर है। एक फूल है - सुन्दर स्वच्छ सुगन्धमय, दूसरी जड़ है - कीचड़ और दुर्गन्ध से भरी, टेढ़ी-मेढ़ी, लेकिन क्या फूल को मालूम है कि उसकी हस्ती जड़ से है?"[१]

पं० नेहरू और प्रेमचन्द के कथनों में राजनीतिज्ञ और साहित्यकार की भाषामात्र का भेद है। नेहरू के अनुसार घने और उपेक्षित भाग से धन संग्रह करके उच्च तथा उच्च मध्य वर्ग एवं अधिकारियों तथा व्यापारियों वाले शहर के भाग में उसे व्यय किया जाता है और उसे व्यवस्थित और हरा-भरा रखा जाता है। प्रेमचन्द के अनुसार शहर के धनिकों और बड़े लोगों वाला भाग फूल है जिसकी हस्ती जड़ अर्थात शहर के उपेक्षित भाग से है। दोनों के कथनों का तात्पर्य ह एक ही है वह यह कि यद्यपि शहर की गरीब बस्ती वाले लोगों पर कर का अस भार अधिक पड़ता है और लाभ उठाते हैं रईस, धनी और अधिकारी।

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास "कर्मभूमि" में शहर जीवन में आवास के प्रश्न को उठाया है। सुखदा जो अछूतों के मंदिर प्रवेश आंदोलन की नेत्री थी सार्वजनिक जीवन में उतर आने बाद शहर के उस घिनौने और उपेक्षित भाग को भी देखती है जिसका उल्लेख ब्रिटिश ट्रेड यूनियन कांग्रेस के प्रतिनिधिमंडल के प्रतिवेदन में किया गया

१- कर्मभूमि " पृ० ४०

गत पृष्ठ का शेष :-

cleaned-up, watered, and lighted; and the drainage, the water supply, and the sanitation system have to be more widespread. The city part is always grossly neglected, and of course, the poorer parts of the city are almost ignored; it has few good roads, and most of the narrow lanes are ill-lit and have no proper drainage or sanitation system.

जवाहर लाल नेहरू: ऐन आटोबायोग्रैफी, १९६२ पृ० १४३।

से तो एक व्यक्ति के सिवा और किसी का कुछ फायदा नहीं होता --- ।"[१] यहां पर इन्दु जनहित की भावना से प्रेरित होकर बंगले वालों को सचेत करती है। 'कर्मभूमि' में भी प्रेमचन्द की दृष्टि बंगले वालों की ओर है। जमीन की समस्या सामने आने पर डा॰ शान्तिकुमार सुखदा से कहते हैं - "मुश्किल क्या है। दस बंगले गिरा दिये जायं, तो जमीन ही जमीन निकल आयेगी।"[२] क्योंकि बंगलों का गिराना आसान नहीं था इसलिए सुखदा और शान्तिकुमार शहर के दक्खिन की तरफ म्युनिसिपैलिटी के खाली प्लाटों में ही मकानों का निर्माण करना चाहते हैं। परन्तु सलीम के अनुसार "उन प्लाटों की तो शायद बातचीत हो चुकी है। कई मेम्बर खुद बेटों और बीबियों के नाम से खरीदने को मुंह खोले बैठे हैं।"[३]

शहर की स्थानीय संस्थाओं का उत्तरदायित्व होता है कि वे शहर में आवास, सफाई, रोशनी और पानी आदि की उचित व्यवस्था का प्रयास करें। पश्चिमी देशों में आवास व्यवस्था के प्रति स्थानीय संस्थाओं की उत्तरदायित्वपूर्ण स्थिति का उदाहरण देते हुए बेलादत्तगुप्त ने भारतवर्ष में आवास-समस्या को सुलझाने के लिए स्थानीय संस्थाओं का सहयोग आवश्यक बताया है।[४] प्रेमचन्द भी मकानों की समस्या को सुलझाने की जिम्मेदारी म्युनिसिपैलिटी की ही मानते थे। परन्तु ऐसी म्युनिसिपैलिटी, जिसके प्रधान शहर के रईस हाफ़िज सलीम और उपप्रधान धनीमानी धनीराम हों, इस काम को क्यों हाथ में लेती ? प्रेमचन्द ने 'कर्मभूमि' की मकान समस्या को उठाते हुए लिखा है कि सुखदा के "सुधार प्रोग्राम में एक बात और आ गयी थी। वह थी गरीबों के लिए मकानों की समस्या अब यह अनुभव हो रहा था कि जब तक जनता के लिए मकानों की समस्या हल न होगी, सुधार का कोई प्रस्ताव सफल न होगा, मगर यह काम चन्दे का नहीं, इसे तो म्युनिसिपैलिटी ही हाथ में ले

१- 'रंगभूमि' पृ० १७३

२- 'कर्मभूमि' पृ० २३५

३- वही पृ० २३६

४- **Public bodies like Municipalities and Improvement Trusts can, if they will, besides building new houses, may convert old ones and alter, enlarge or improve them and may provide**

Contd.....

सकती थी । पर यह संस्था इतना बड़ा काम हाथ में लेते हुए भी घबराती थी । हाफ़िज सलीम प्रधान थे । लाला धनीराम उप-प्रधान । ऐसे दकियानूसी महानुभावों के मस्तिष्क में इस समस्या की आवश्यकता और महत्व को जमा देना कठिन था ।'[१]

'प्रेमचन्द ने 'कर्मभूमि ' की आवास-समस्या को समाजशास्त्री की भांति सामाजिक धरातल पर उठाया है । डा० शान्तिकुमार के शब्दों में 'जिस समाज में गरीबों के लिए स्थान नहीं, वह उस घर की तरह है जिसकी बुनियाद न हो । कोई हल्का सा धक्का भी उसे जमीन पर गिरा सकता है । --- क्या यही न्याय है कि एक भाई तो बंगले में रहे, दूसरे को फोपड़ा भी नसीब न हो ? --- जब समाज का संचालन स्वार्थ-बुद्धि के हाथ में आ जाता है, न्याय-बुद्धि गद्दी से उतार दी जाती है तो समझना चाहिए कि समाज में कोई विप्लव होने वाला है । --- मानवता हमेशा कुचली नहीं जा सकती । समता जीवन का तत्व है । यही एक दशा है जो समाज को स्थिर रख सकती है ।'[२] स्पष्ट है कि प्रेमचन्द के आवास-

---

१- 'कर्मभूमि ' पृ० २३४

२- 'कर्मभूमि ' पृ० ३८१

गत पृष्ठ का शेष :

lodging houses. In western countries the responsibilities of the Local Authorities in housing problems is immerse. "The most important branch of administration upon which Local Authorities are now engaged is that of housing. The task to which the nation has set its hands, through the instrumentality of Local Autherities is that of providing every family in the country proper and sufficient housing.

बेलादत्त गुप्त : 'कन्टेम्पोरेरी सोशल प्राब्लेम्स इन इण्डिया, १९५९ (कलकत्ता), पृ० ४५

आंदोलन का आधार केवल आर्थिक न्याय की मांग न होकर सामाजिक न्याय की मांग भी है। लाला समरकान्त को म्युनिसिपैलिटी के सदस्यों का स्वार्थ और उनकी नीति अमान्य है। उनके अनुसार -"जहां भी अंधेरी दुर्गन्धपूर्ण गलियों में जनता पड़ी कराह रही हो, वहां इन विशाल भवनों से क्या होगा ? यह तो वही बात है कि कोई देह के कोढ़ को रेशमी वस्त्रों से छिपाकर इठलाता फिरे।"[१] लाला जी ऐसा अन्याय सहने के लिए तैयार नहीं है। दस हजार मजदूरों के रहने के योग्य जगह को चार-पांच बंगलों के लिए बेचा जाना श्रेयस्कर नहीं मानते। निश्चित रूप से समरकान्त की यह भावना प्रेमचन्द की भावना का प्रतिनिधित्व करती है। अल्पसंख्यक धनियों के स्वार्थ के सामने बहुसंख्यक गरीब मजदूरों का बलिदान होना नहीं देख सकते थे। शहर की आवास के प्रश्न को उन्होंने शहर के गरीब कारीगरों और मजदूरों की समस्या के रूप में उठाया है। मकान की समस्या पर विचार करते समय यह अनिवार्य भी था।[२]

प्रसिद्ध समाजशास्त्री और शहर जीवन के विशेषज्ञ लेनिस मम्फोर्ड ने शहरों के गरीब बस्ती के घरों (House of ill-fame) शीर्षक के अन्तर्गत) तथा गरीबी के वातावरण को अनेक बीमारियों का घर बताया है।[३] उनके अनुसार अन्य सम्पूर्ण स्थितियों के सामान्य होने पर भी नगरीकरण ही जीवनशक्ति की संभावित

१- कर्मभूमि " पृ० ३७६

२- In discussing the problem of housing in India attention should be focussed on the condition of housing of the working class......

बेलादत्त गुप्त : "कन्टेम्पोरेरी सोशल प्राब्लेम्स इन इण्डिया" १९६४ (कलकत्ता) पृ० २३

३- Poverty and the environment of poverty produced organic modifications : rickets in children, due to the absence of sunlight, malformations of the bony structure and organs, defective functioning of the endocrins, through a vile diet;

Contd....

वृद्धि में रोक है ।[१] स्वास्थ्य और जीवन को प्रभावित करने वाली समस्या समाज-शास्त्रियों के लिए चिन्ता का विषय रही है । बेलादत्त गुप्त के अनुसार यही कारण है कि समाजशास्त्रीय खोजों ने समाज की व्यवस्था करने वालों को गृह-निर्माण का स्तर प्रदान किया है । घरों के स्तर निर्माण का आधार विभिन्न देशों की सामाजिक व्यवस्था, वातावरण और जलवायु पर निर्भर करता

१- "Had other factors remained the same, Urbanization by itself would have been sufficient to lip off part of the potential gains in vitality. Farm labourers, though they remained throughout the nineteenth century a depressed class in England, showed a much longer expectation of life than the higher grades of town mechanics, even after Municipal sanitation and medical care had been introduced.

लेविस मम्फोर्ड : 'द कल्चर ऑव सिटीज' १६३८, पृ० १७१

गत पृष्ठ का शेष :

skin diseases for lack of the elementary hygiene of water; small pox, typhoid, scarlet fever, septic sore throat, through dirt and excrement; tuberculosis, encouraged by a combination of bad diet, lack of sunshine, and room overcrowding, to say nothing of the occupational b disease also partly environmental.

लेविस मम्फोर्ड : 'द कल्चर ऑव सिटीज' १६३८ (न्यूयार्क) पृ० १७०

है ।[१] प्रेमचन्द जी ने भी `कर्मभूमि` में मकानों के निर्माण के लिए एक योजना का प्रारुप तैयार किया था । इस प्रारूप को भारतवर्ष की आर्थिक स्थिति, सामाजिक व्यवस्था और वातावरण के अनुरूप माना जाय तो अनुचित न होगा । डा० शान्ति-कुमार ने मकानों के निर्माण की योजना बना रखी है । उन्होंने मकानों के नक्शे भी तैयार करवा रखे हैं । "एक नक्शा आठ आने महीने के मकान का था, दूसरा एक रूपये के किराये का और तीसरा दो रूपये का । आठ आने वालों में एक कमरा, एक रसोई, एक बरामदा सामने एक बैठक और छोटा सा सहन । एक रूपये वाले में भीतर में दो कमरे थे और दो रूपये वालों में तीन कमरे । कमरों में खिड़कियां थीं, फर्श और दो फीट ऊंचाई तक दीवारें पक्की । ठाठ खपरैल का था ।

दो रूपये वालों में शौच-गृह भी थे । बाकी दस-दस घरों के बीच में एक शौच-गृह बनाया गया ।[२]

मकानों के अन्दर कमरों, खिड़कियों, खुले सहन का होना स्वास्थ्य और स्वच्छ वायु की दृष्टि से उपयोगी तो है ही गुजारे के लिए भी पर्याप्त स्थान होना आवश्यक है । मजदूरों और निम्न आय वाले व्यक्तियों के लिए उनकी आय के अनुकूल मकानों की व्यवस्था का होना आवश्यक है । प्रेमचन्द ने मकानों की समस्या के बीच

१- The sociological consequences of bad and inadequate housing facilities have prompted social planners to set up a housing standard. Such standards are, it is easily understood, never absolute. The standard of housing varies according to the temperature, climate and social pattern of a particular country.

बेलादत्त गुप्त : `कन्टेम्पोरेरी सोशल प्राब्लेम्स इन इण्डिया` १९६४ (कलकत्ता) पृ० ३८-३९

२- कर्मभूमि पृ० २३४-३५ ।

इस बात का ध्यान रखा है। गरीब भी खुले, साफ-सुथरे, हवादार, प्रकाशयुक्त घरों में रहना चाहती है, यह उसकी विवशता होती है कि वह सड़े, बदबूदार, अंधेरेघरों में रहती है। ऐसे लोगों की हार्दिक इच्छा की ओर संकेत करते हुए प्रेमचन्द ने लिखा है "महीनों से जनता को आशा हो रही थी कि नये नये घरों में रहेंगे, साफ सुथरे हवादार-घरों में, जहां धूप होगी, हवा होगी, प्रकाश होगा। सभी एक नये जीवन का स्वप्न देख रहे थे।"[१]

आज भी शहर की जिन्दगी में स्वास्थ्य, रहन-सहन तथा अच्छे सामाजिक वातावरण के लिए अच्छे और स्वच्छ घरों की आवश्यकता है। प्राय: अधिकतर शहरों में मकानों की समस्या बनी हुई है। अमेरिकी विचारक लेविस मम्फोर्ड ने 'नई शहरी व्यवस्था का सामाजिक आधार' (**Social basis of the new urban order**) अध्याय में मकानों की समस्या पर विचार करते हुए कहा है कि किसी भी शहरी समुदाय में लगभग १० प्रतिशत घर ढांचे मात्र हैं। व्यवहारिक पक्ष की दृष्टि से शहरों के उत्थान के लिए मकानों की प्रचुरता की ओर दृष्टि डालनी होगी। उनके अनुसार अच्छी से अच्छी शहरी व्यवस्था में उसका अधिक से अधिक भाग पुराना है जो शरण पाने के लिए भले ही पर्याप्त हैं परन्तु रहने की दृष्टि से बेकार है। इसी कारण उन्होंने सामाजीकृत आवास व्यवस्था (सोशिअलाइज्ड प्राविजन ऑव हाउसिंग) शहरों के लिए आवश्यक बताया है।[२] प्रेमचन्द के आवास-व्यवस्था के लिए आन्दोलन का आधार ऐसी ही सामाजीकृत आवास-व्यवस्था है जिसके द्वारा वह गरीबों के रहने के लायक खुले मकानों की व्यवस्था करवाते हैं।

ऋण :- भारतीय अर्थव्यवस्था में महाजनों और कर्जदाताओं की महत्वपूर्ण स्थान है। कर्ज देकर उस पर ब्याज लेना आमदनी का सीधा सादा साधन है। प्रेमचन्द के इस सम्बन्ध में लिखते हैं - 'भारतवर्ष में जितने व्यवसाय हैं, उन सबमें

१- कर्मभूमि पृ० २७५

२- लेविस मम्फोर्ड : 'द कल्चर ऑव सिटीज' १९३८ (न्यूयार्क) अध्याय ७ दृष्टव्य है। पृ०

लेन-देन का व्यवसाय सबसे लाभदायक है। आम तौर पर सूद की दर २५ रू० सैकड़ा सालाना है। प्रचुर स्थावर व जंगम सम्पत्ति पर १२ रू० सैकड़े सालाना सूद लिया जाता है। इससे कम ब्याज पर रूपया मिलना प्राय: असंभव है। बहुत कम ऐसे व्यवसाय हैं जिनमें १५ रू० सैकड़े से अधिक लाभ हो और वह भी बिना किसी झंझट के उस पर नजराने की रकम अलग, लिखाई, दलाली, दलाली का अलग, अदालत का खर्च अलग। ये सब रकमें भी किसी न किसी तरह महाजन ही की जेब में जाती है। यही कारण है कि यहां लेन-देन का धंधा इतनी तरक्की पर है। वकील, डाक्टर, सरकारी कर्मचारी, जमींदार कोई भी जिसके पास कुछ फालतू धन हो, यह व्यवसाय कर सकता है।"[1] प्रेमचन्द ने कर्ज के प्रश्न को अपने साहित्य में अनेक स्थलों में स्थान दिया है। 'सेवासदन' का ठेकेदार भगतराम सेठ चिम्मनलाल से रूपया उधार लेकर अपना व्यवसाय चलाता है। पदमसिंह से भगतराम अपनी असमर्थता दिखाते हुए कहता है "आप जानते होंगे, मेरा सारा कारबार सेठ चिम्मनलाल की मदद से चलता है। --- बतलाइए, शहर में कौन है जो केवल मेरे विश्वास पर हजारों रूपये बिना सूद के दे देगा।"[2] और यही वह स्थिति है जिसके कारण भगतराम अपनी राय का मालिक नहीं है, मात्र सेठ साहब के ग्रामोफोन का रिकार्ड है। इसी कारण वह पदमसिंह के वेश्या सम्बन्धी सामाजिक सुधार के प्रश्न में अपनी सहायता की असमर्थता प्रकट करते हुए स्पष्ट कह देता है - "जाति के लिए मैं स्वयं कष्ट झेलने के लिए तैयार हूं, पर अपने बच्चों को कैसे निरावलम्ब कर दूं ?"[3] महाजन और ऋणदाता के दबाव के कारण पूंजीपति-व्यापारी, भगतराम अपनी राय नहीं दे सकता। आर्थिक विसंगति का यह प्रभाव है कि सामाजिक प्रश्न पर भी राय देने की स्वतंत्रता नहीं है। इस विसंगति का दूसरा उदाहरण 'गबन' में मिलता है। 'गबन' में मध्यम वर्गी रमानाथ का जीवन ऋण के कारण संकटमय बन जाता है। 'गबन' की समस्या मुख्य रूप से आभूषण की समस्या है परन्तु आभूषण के साथ कर्ज भी जुड़ा हुआ है।

१- 'मुक्तिधन' मा०स० भाग ३ पृ० १७५

२- 'सेवासदन' पृ० १५१

३- 'सेवासदन' पृ० १५१।

मध्यवर्गीय रमानाथ अपनी समर्थ से बाहर की कीमत के आभूषण उधार लेता है, जिसके परिणाम स्वरूप उसे म्यूनिसिपैलिटी के रुपये चोरी करने पड़ते हैं और शहर छोड़कर भागना पड़ता है। रमानाथ की पत्नी जालपा तथा मित्र रमेश रमानाथ को कर्ज लेने से रोकने का प्रयास करते हैं। जालपा रमानाथ से कहती है - "नहीं, मेरे लिए कर्ज लेने की आवश्यकता नहीं है। --- मुझे तुम्हारे साथ जीना और मरना है। अगर मुझे सारी उम्र बेगहनों के रहना पड़े, तो भी मैं कर्ज लेने को न कहूंगी?"[1] मित्र रमेश उसे परिस्थिति के प्रति सचेत करता हुआ कहता है -- "मैं जानता हूं तुम्हारी आमदनी अच्छी है, पर भविष्य के भरोसे पर और चाहे जो काम करो, लेकिन कर्ज कभी मत लो।"[2] रमानाथ को कर्ज लेकर संकट में पड़ना था सो पड़ा। भारतीय समाज में ऋण लेकर झंझट में पड़ते हुए मध्यवर्गीय यथार्थ को प्रेमचन्द कैसे झुठला देते ?

भारतीय समाज में ऋण का सबसे विषम और गंभीर प्रश्न ग्रामीण जीवन का प्रश्न है। प्रेमचन्द ग्रामीणों के इस आर्थिक प्रश्न के प्रति साहित्य के प्रथम चरणों से ही चिंतित थे। १६०५ ई० में वे जमाना में लिखते हैं - "पाठक जानते हैं कि देहाती किसानों की ज्यादातर जरूरतें कर्ज लेकर पूरी हुआ करती हैं। अगर आज आप किसी किसान को पचास रुपये की चीज उधार दे दीजिए तो वह बिना यह सोचे कि मुझमें इस चीज के खरीदने की योग्यता है या नहीं, फौरन मोल ले लेता है।और फिर किसी न किसी तरह रो धोकर उसकी कीमत अदा करता है। किसान अपनी हालत से बिल्कुल बेखबर है। उसमें दूरदर्शिता नहीं होती।"[3] गांव का किसान प्राय: गरीब होता है। इसके साथ ही वह समाज और समुदाय में अपनी प्रतिष्ठा का निर्वाह करना चाहता है, जिसके लिए वह अपने सीमित साधनों से अधिक शादी-विवाह तथा अन्य सामाजिक उत्सवों में व्यय कर देता है। अन्त में इसे कर्ज का सहारा लेना पड़ता है। डा० आर०एस० शर्मा ने ग्रामीण जीवन में कर्ज के प्रश्न

१- 'गबन' पृ० ४८

२- 'गबन' पृ० ५०

३- 'जमाना', मई १९०५ ई० विविध प्रसंग भाग १ पृ० १२८

पर विचार करते हुए लिखते हैं - "भारतीय किसान की निर्धनता और अशिक्षा के कारण ग्रामीण लोगों में ऋण की समस्या गंभीर रूप में विद्यमान है। सामाजिक और आर्थिक दशाओं के प्रतिफलस्वरूप किसानों की संख्या कम हुई और भूमिहीन मजदूरों की संख्या देश में बढ़ रही है। साहूकारों और महाजनों ने किसानों को हर संभव प्रयासों द्वारा शोषित किया है।"[१] १८६४ के "रजिस्ट्रेशन ऑव डाकूमेन्ट ऐक्ट" तथा १८८२ के ट्रान्सफर ऑव प्रापरटी ऐक्ट" ने भूमि को रेहन रख कर कर्ज लेने की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया। धीरे-धीरे ऋण दाता धनी होता गया और किसान की भूमि उसके हाथ मे जाने लगी। १९११ में भारत मे अनुमानित ग्रामीण ऋण ३ करोड़ था। १९२४ ई० में यह ६ करोड़ तथा १९३० ई० में यह बढ़कर ९ करोड़ हो गया। १९३८ में केवल ब्रिटिश भारत में ग्रामीण ऋण १८ करोड़ था।[२]

प्रेमचन्द ग्रामीण अंचलों में ऋण की इस भयंकरता से परिचित थे। जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है कि १९०५ ई० के जमाना में वह इस सम्बन्ध में चिंता व्यक्त कर चुके थे। इसके बाद वह अपने साहित्य में तथा लेखों में इस प्रश्न पर विचार करते रहे। अपने अन्तिम प्रसिद्ध उपन्यास "गोदान" (१९३६) के ग्रामीण कथानक की मुख्य समस्या उन्होंने किसान जीवन की ऋण समस्या बताई। इस प्रश्न से संबंधित

१- "As a consequence of Numerous causes like the poverty and illiteracy of the Indian Farmer the problem of indebtedness exists in the rural areas in very serious proportion. As a result the social and economic conditions of the farmers have been declining and the number of landless labourers in the country increasing. The moneylenders exploited the farmers in every way possible."

डा०आर०एन० शर्मा: "इण्डियन रूरल सोशियोलॉजी", १९६७ (कानपुर) पृ० १२३

२- डा० आर०एन०शर्मा: "इण्डियन रूरल सोशियोलॉजी": १९६७ (कानपुर) पृ० ११७

कहानियाँ `मुक्तिधन `, `दो भाई ` `अलग्योझा ` तथा `सवा सेर गेहूं ` आदि हैं। मुक्तिधन ` कहानी में रहमान के हाथों महाजन दाऊदयाल एक गाय मोल लेते हैं। रहमान कसाइयों के हाथ गाय को बेचकर उन्हें दे देता है। रहमान अपने परिचित दाऊदयाल से आवश्यकता पड़ने पर ऋण लेता है। परन्तु उसे "२००) के १८० रू० मिले। कुछ लिखाई कट गई, कुछ नजराना निकल गया, कुछ दलाली में आ गया।"[१] रहमान आवश्यकता पड़ने पर अनेक बार सेठ जी से कर्ज लेता है यहाँ तक कि उसकी रकम ५०० रू० पहुँच जाती है। इस कहानी में सेठ धर्म का एहसान मानकर रहमान का कर्ज माफ कर देते हैं। धार्मिक मेल के लिए प्रेमचन्द ऐसा कराते हैं। किसान द्वारा अधिक लिखवाकर कम रूपये पर ऋण लेना और उसके अदाई के लिए चिंतित रहना यह तथ्य इस कहानी में उमर कर आया है। इसी प्रकार `अलग्योझा` कहानी का रघू पारिवारिक विघटन के कारण गरीब होगया है। उसके ऊपर कुछ ऋण भी हो गया था। " यह चिंता और भी मारे डालती थी।"[२] `गोदान का होरी भी आजन्म ऋण चुका देने की चिन्ता में घुलता रहता है।

`दो भाई ` कहानी में माधव की दशा सोचनीय थी। खर्च अधिक था और आमदनी कम। उस पर कुल मर्यादा का निर्वाह। --- दो भाई जमीन पहली कन्या के विवाह में भेंट हो गई। शेष दूसरी कन्या के विवाह में निकल गई। साल भर बाद दूसरी कन्या का विवाह हुआ, पेड़ पत्ते भी न बचे। हाँ अब भी डाल भरपूर थी। परन्तु दरिद्रता और धरोहर में वही सम्बन्ध है जो मांस और कुत्ते में।[३] ब्याह में चढ़ाए गए कन्या के गहने पांच बीस से कुछ ऊपर ही रहेन रख दिए गए और ब्याज सहित कोई सवा सौ रूपये हो गए। भाई की ईर्ष्या ने इसकी सूचना कन्या के ससुराल वालों को दे दी। संकट की स्थिति में छोटा भाई माधव केदार से सहायता लेने गया। केदार माधव को रूपया देने के लिए तैयार है परन्तु चार बीस में उसका

१- `मुक्तिधन ` मा०स० भाग ३ पृ० १७८

२- `अलग्योझा ` मा० स० भाग १ पृ० २६

उसका बचा हुआ घर रेहन रख कर और २० रू० माई की सहायता रूप में ऋण देकर वह भी लिखा पढ़ी के साथ ।[१]

ऊपर उल्लेख किए तथ्यों से स्पष्ट है कि निर्धन किसान अपनी मर्यादा निर्वाह के लिए ऋण लेता है और उस ऋण को चुका देने के लिए प्रयास करता है । जमींदारों, साहूकारों के कुचक्रों का यह शिकार भी बनता है तथा आपसी ईर्ष्या द्वेष का भुक्तभोगी भी । ग्रामीण जब एक बार ऋणग्रस्त हो जाता है तब फिर उससे छुटकारा पाना कठिन हो जाता है । डा० आर० एन० शर्मा ने इस सम्बन्ध में लिखा है "किसान बहुत थोड़ा साधन उधार लेता है । कुछ भी वर्षों में निश्चित नियमों के अन्तर्गत वह दुगना और तिगुना हो जाता है यहां तक कि उसका सूद भी अदा करना कठिन हो जाता है । अपने धार्मिक विश्वास के कारण ग्रामीण अपने पूर्वजों द्वारा असाध्य रूप से लादे गए ऋण का भुगतान भी आवश्यक समझते हैं । फलस्वरूप ऋण पीढ़ियों तक चलता है ।"[२] डा० शर्मा द्वारा कथित ग्रामीण जीवन में ऋण की यथार्थता का बोध हमें प्रेमचन्द की कहानी 'सवा सेर गेहूं' में अक्षरश: हो जाता है । किसान शंकर अपने द्वार पर आए हुए अतिथि महात्मा की भोजन व्यवस्था के लिए मात्र 'सवा सेर गेहूं' विप्र महाराज के यहां से उधार लेता है । चैत्र में विप्रजी को डेढ़ पसेरी गेहूं खलिहानी में देकर शंकर ने मान लिया कि वह गेहूं चुकता कर चुका है । सात वर्ष शान्त रहने के बाद विप्र जी एक दिन हिसाब सुनाते हुए कहते हैं - "तेरे यहां साढ़े पांच मन गेहूं कब से बाकी पड़े हुए हैं और तू देने का नाम नहीं लेता, क्या हजम करने का मन है क्या ?"[३] खलिहानी की याद

१- 'दो भाई' मा०स० भाग ७ पृ० २१६-१७

२- "The farmer receives a very small amount of money. In a few years the loan would be doubled and trebled with the result that, principal aside, it became difficult to pay even the interest. As a result of the religious tendency most of the rural people felt it necessary to repay even the loans incurred by their predecessors. Consequently the loan continued through generations."

डा० आर० एन० शर्मा : 'इण्डियन रूरल सोशियोलॉजी' १९६७ (कानपुर) पृ०११८

३- 'सवा सेर गेहूं' मा०स० भाग २ पृ० १८९

दिलाने पर विप्र जी उसे खबीस मानते हैं और निर्णय देते हैं - "मैं छटांक भर भी न छोड़ूंगा , यहां न दोगे, भगवान के घर तो दोगे ?"[१] धर्म भीरु शंकर नरक के भय से कांप उठता है । इस जनम में तो वह ठोकर खा ही रहा है अगले जनम के लिए क्यों वह कांटे बोये । वह दस्तावेज लिख कर गेहूं का मूल्य अदा कर देना चाहता है "हिसाब लगाया गया तो गेहूं का दाम ६० रु० हुए । ६० रु० का दस्तावेज लिखा गया, ३० रु० सैकड़े सूद । साल भर में न देने पर सूद का दर ३।। रु० सैकड़े ।।।) का स्टाम्प, १ रु० दस्तावेज की तहरीर शंकर को ऊपर से देनी पड़ी ।"[२] साल भर कठिन परिश्रम से शंकर ६०) जोड़ सका परंतु तब तक १५) सूद के बढ़ चुके थे । विप्र महाजन चाहते हैं उसका पूरा रूपया तत्काल अदा कर दिया जाय । ऋण मुक्त होने के लिए "शंकर ने सारा गांव छान मारा, मगर किसी ने रूपए न दिये, इसलिए नहीं कि उसका विश्वास न था, या किसी के पास रूपये न थे, बल्कि इसलिए कि पंडित जी के शिकार को किसी के छेड़ने की हिम्मत न थी ।"[३] निराश शंकर बेपरवाह हो गया और ३ वर्ष बाद " ६० रु० जो जमा थे वह मुजरा करने पर अब भी शंकर के जिम्मे १२० रु० निकले ।"[४] विप्र महाजन शंकर का बैल बछिया भी नहीं चाहते वह तो ब्याज के बदले शंकर को नौकर रखना चाहते हैं जिसके लिए उन्होंनेयह सारा जाल रचा है । शंकर के बच्चे और घरवाली भूखों मरते हैं, वस्त्रविहीन रहते हैं परन्तु शंकर सूद के बदले विप्र जी की नौकरी करता है । प्रेमचन्द लिखते हैं - "शंकर ने विप्र जी के यहां २० वर्ष तक गुलामी करने के बाद इस दुस्सार संसार से प्रस्थान किया । १२० रु० अभी तक उसके सिर पर सवार थे । पंडित जी ने इस गरीब को ईश्वर के दरबार में कष्ट देना उचित न समझा, इतने अन्यायी, इतने निर्दयी न थे । उसके जवान बेटे की गरदन पकड़ी । आज तक वह विप्र जी के यहां काम करता है । उसका उद्धार कब होगा, होगा भी या नहीं ईश्वर जाने ।"[५] पुश्त-दर-पुश्त तक चलेवाली

१- "सवा सेर गेहूं" मा० स० भाग ३ पृ० १६०

२- "सवा सेर गेहूं " मा०स० भाग ३ पृ० १६१

३- "सवा सेर गेहूं "मा०स० भाग ३ पृ० १६२

४- "सवा सेर गेहूं " मा०स० भाग २ पृ० १६३

५- "सवा सेर गेहूं " मा०स० भाग २ पृ० १६५

धर्मभीरू किसान की कर्ज की कहानी यहीं समाप्त हो जाती है। प्रेमचन्द कहानी के अंत में यह लिखकर - 'पाठक ! इस वृतान्त को कपोल कल्पित न समझिये। यह सत्य घटना है। ऐसे शंकरों और ऐसे विप्रों (महाजनों) से दुनिया खाली नहीं है।'[1] इस कटु यथार्थ का बोध करा देना चाहते हैं जो निर्धन ग्रामीणों का जीवन दूभर किए रहता है।

१९२६ के बाद राष्ट्रीय आंदोलन के साथ किसान आंदोलन भी उसका अंश बन गया। किसानों के कर्ज की समस्या की ओर सरकार ने सोचना शुरू किया। १९३० ई० में पंजाब में 'एकाउन्ट्स रेगुलेशन ऐक्ट' पास हुआ जिसका उद्देश्य ऋणदाताओं के व्यवसाय में कुछ प्रतिबन्ध लगाना था। अन्य प्रान्तों में भी ऐसे प्रस्ताव आए। संयुक्त प्रान्त में भी किसानों की इस समस्या पर विचार करने के लिए सरकारी और गैर सरकारी सदस्यों की एक समिति नियुक्त की गई जिसकी रिपोर्ट अक्तूबर १९३२ के आस-पास आई। इसमें किसानों को राहत देने की सिफारिश की गई थी।[2] १९३४ में 'एग्रीकल्चरिस्ट रिलीफ ऐक्ट' पास हुआ जिसमें किसानों की कर्जा समस्या पर विचार किया गया था। अकेले संयुक्त प्रान्त में पांच डेब्ट रिलीफ ऐक्ट पास किए गए।[3] इन सम्बन्धित विधानों के प्रति प्रेमचन्द जागरूक थे। उन्होंने ८ मई, ३ जुलाई तथा १० जुलाई १९३३ के जागरण में किसानों को कर्ज से मुक्ति दिलाने के लिए सिफारिश की थी ?

१- 'सवा सेर गेहूं' मा०स० भाग २ पृ० १९५

२- 'जागरण' १२ अक्तूबर १९३२ 'किसानों की कर्जा कमेटी के प्रस्ताव' दे० वि०पृ० भाग २१०

३- "In the U.P., five Debt Reliefs Acts were passed in 1934; in the Punjab, the Regulation of Accounts Act was passed in 1934; in Bengal, the moneylenders Act was passed in 1933 and the Relief of Indebtedness Act in 1935. Since even this legislation did not appreciably improve the position of the Kisans, their discontent continued to grow and find expression in the Kisan movement."

ए०आर०देसाई, 'सोशल बैकग्राउन्ड ऑव इण्डियन नैशनालिज्म' १९५९ (बम्बई) प० २०६

प्रेमचन्द लेखों के माध्यम से किसानों के कर्जे के सम्बन्ध में आवाज उठाते रहे साथ ही उन्होंने 'गोदान' उपन्यास में कर्ज की समस्या को महत्वपूर्ण समस्या के रूप में गृहण किया । जमाना जून १६०५ में जो उन्होंने लिखा था - "गांव में महाजन की तरफ से कुछ लोग नौकर होते हैं । उनका काम यह है कि देहातियों को रूपया कर्ज म- दें और उनसे एक निश्चित अवधि के भीतर एक सवाया वसूल कर लें"[१] वह अब भी गोदान के रचना काल तक चालू ही नहीं था उसका विस्तार क्षेत्र शहर के महाजनों तक फैल चुका था । शहर के महाजनों में गांव में अपने नौकर रख छोड़े थे । 'गोदान' में महाजनों के इस फैले हुए जाल का उल्लेख करते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं "पंडित दातादीन और दुलारी सहुवाइन भी लेन-देन करते थे । सबसे बड़े महाजन थे झिंगुरीसिंह । वह शहर के एक बड़े महाजन के एजेन्ट थे । उनके नीचे कई आदमी और थे, जो आस-पास के देहातों में घूम-घूम कर लेन-देन करते थे । इनके उपरान्त और भी कई छोटे मोटे महाजन थे, जो दो आने रूपये पर बिना लिखा पढ़ी के रूपये देते थे ।"[२]

गांव के महाजन तो रोने-धोने, हाथ पांव जोड़ते मान जाते परन्तु शहर के महाजनों को गांव के लोगों से क्या सहानुभूति । गांव के किसानों की ईख तैयार होने पर - "तौल शुरू होते ही झिंगुरीसिंह ने मिल के फाटक पर आसन जमा लिया । हर-एक की ऊख तौलाते थे । दाम का पुरजा लेते थे । खजांची से रूपये वसूल करते थे और अपना पावना काटकर असामी को दे देते थे । असामी कितनी ही रोये, चीखे, किसी की न सुनते थे । मालिक का यही हुक्म था । उनका क्या बस ?"[३] होरी से भी रूपये ले लिए शेष २५) बचे थे सो नोखेराम ने वसूल किया । शोभा को रूपये मिले तो पटेश्वरी ने आ घेरा गिरधर ने भी ऊख बेची थी । गिरधर के अनुसार "झिंगुरीया ने सारे का सारा ले लिया होरी काका । चबेना को भी एक पैसा न छोड़ा । -- बड़ा अच्छा हुआ काका, बेबाकी हो गई । बीस लिये,

---

१- विविध प्रसंग, भाग १ दे० पृ० २०

२- 'गोदान' पृ० १०६

३- 'गोदान' पृ० १८७ ।

उसके एक सौ साठ भरे, कुछ हद है।'[१] यही नहीं होरी के अनुसार 'जिस खन्ना बाबू का मिल है, उन्हीं खन्ना बाबू की महाजनी कोठी में है।'[२]

होरी का 'पहले का अनुभव यही बता रहा था कि 'कर्ज वह मेहमान है जो एक बार आकर जाने का नाम नहीं लेता।'[३] कैसी विसंगति है कैसी विडम्बना है ? गाय होरी की मरी दरोगा के लिए पैसे भी उसी को देते हैं। गांव के लोग इस कार्य के लिए कर्ज देने को तैयार हैं[४] बिरादरी का डण्ड उसे भरना है। खलिहान का अनाज दण्ड में स्वाहा हो गया। घर में खाने को नहीं। भूख से परिवार तड़प रहा है।' कमाऊ किसान की की क्या दयनीय परिस्थिति है। 'छोटा बच्चा रो रहा है। मां को भोजन न मिले, तो दूध कहां से निकले ? सोना परिस्थिति समझती थी, मगर रूपा क्या समझे ? बार बार रोटी रोटी चिल्ला रही थी। दिन भर तो कच्ची अमिया से जी बदला, मगर अब तो कोई ठोस चीज चाहिए।'[५] ऐसी परिस्थिति में बेचारा होरी क्या करता ? वह 'दुलारी सहुआइयन से अनाज उधार मांगने गया था, पर वह दुकान बन्द करके बैठ चली गयी थी। मंगरू साहू ने केवल इन्कार ही न किया, लताड़ भी दी थी - उधार मांगने चले हैं, तीन साल से धेला सूद नहीं दिया, उस पर उधार दिए जाओ।'[६] रूवांसे किसान होरी को पुनिया से सहायता मिलती है। होरी को ईख से सौ रूपये की आशा थी। 'लेकिन महाजनों को क्या करे ? दातादीन, मंगरू, दुलारी, झिंगुरीसिंह सभी तो प्राण खा रहे थे। अगर महाजनों को देने लगेगा, तो सौ रूपये सूद भर को भी न होंगे।'[७] होरी की ईख १२० रू० की बिकती है परन्तु वह खाली हाथ घर लौटता है।[८]

१- 'गोदान', पृ० १८८
२- वही, पृ० १८५
३- वही, पृ० १०७
४- वही, पृ० ११७
५- वही, पृ० १५१-१५२
६- वही, पृ० १५२
७- वही, पृ० १८४
८- वही, पृ० १८७

होरी पहले से ही कर्ज से बोझिल है। जीवन के प्रारम्भिक अवस्था में ही उसके ऊपर इतना कर्ज है कि "खलिहान में तौल देने पर भी अभी उस पर कोई तीन सौ कर्ज था जिस पर कोई सौ रूपये सूद के बढ़ते जाते थे। मंगरू साह से आज से पांच साल हुए बैल के लिए रूपये लिए थे, उसमें साठ दे चुका था, पर वह साठ रूपये ज्यों-के-त्यों बने हुए थे। दातादीन पंडित के तीस रूपये लेकर आलू बोये थे। आलू तो चोर खोद ले गए थे और उस तीस के इतने तीन बरसों में सौ हो गये थे। दुलारी साहुआइन थी, --- बंटवारे केसमय उससे चालीस रूपये लेकर भाइयों को देना पड़ा था, उसके भी लगभग सौ रूपये हो गए थे।"[१] होरी की कहानी कर्ज से चलती है। अंत में कर्ज की तबाही से ही उसका अन्त होता है। वह जीवन में "कितना चाहता है कि किसी से एक पैसा कर्ज न ले, जिसका आता है उसका पाई-पाई चुका दे, लेकिन हर तरह का कष्ट उठाने पर भी गला नहीं छूटता।"[२] सरकार के नियम बनते बिगड़ते रहते हैं परन्तु महाजन पर असर नहीं। झिंगुरी जानता है - "तुम्हें गरज पड़ेगी तो सौ बार हमसे रूपये उधार लेने आओगे और हम जो ब्याज चाहेंगे, लेंगे। सरकार अगर असामियों को रूपए उधार देने का कोई बन्दोबस्त न करेगी, तो हमें इस कानून से कुछ न होगा।"[३] वह यह भी जानता है - "कानून और न्याय उसका है जिसके पास पैसा है। कानून तो है कि महाजन किसी असामी के साथ कड़ाई न करे --- और महाजन लात और जूते से बात करता है।"[४]

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रेमचन्द ने महाजनों के गोल, उनकी मनोवृत्ति तथा उनके जाल का चित्र भी प्रस्तुत किया है। महाजन सशक्त है "पुलिस, सरकार और अदालत भी उनसे अलग नहीं है। किसान ऋण लेने के बाद केवल सूद, सूद भी नहीं देता बल्कि ऋण लेते समय वह दलाली, दस्तूरी, पेशगी और कर्ज में कटौती

१- 'गोदान' पृ० ३६
२- वही, पृ० ४०
३- वही, पृ० २५८
४- वही, पृ० २५६

भी देने केलिए विवश है। प्रेमचन्द ने उन परिस्थितियों और जीवन की बाधाओं का भी चित्रण किया है जिनके कारण न चाहकर भी ग्रामीण को ऋण लेने की वाध्यता है। महाजनी हथकण्डों के साथ ग्रामीणों के संकटग्रस्त जीवन का जो चित्र कर्ज के प्रश्न के संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है वह प्रेमचन्द ऐसे किसानों के अन्तरंग साथी से ही संभव था। प्रेमचन्द कर्ज के प्रश्न का स्वरूप सफलतापूर्वक प्रस्तुत कर सके चुके हैं। कोई भी समाजशास्त्री इस कर्ज के प्रश्न का अध्ययन करके गणनाकार विधि से जो भी निष्कर्ष निकालेगा हमें विश्वास है कि उसका वह निष्कर्ष प्रेमचन्द-साहित्य के ऋण के कारण ऋण की परिस्थितियां, ऋण दाताओं के कुचक्र, ऋण के बोझ के कारण किसानों की दुर्दशा आदि से सम्बन्धित निष्कर्षों से भिन्न नहीं होगा।

आभूषण :- भारतवर्ष में आभूषण पहनने का रिवाज समस्त देशों की अपेक्षा अधिक है। अमीर-गरीब, किसान-मजदूर, बड़े छोटे, उद्योगपति, मध्यवर्ग के व्यक्ति सब लोगों के यहां आभूषण का प्रचलन है। सामाजिक धार्मिक उत्सवों में सामाजिक सम्मान के लिए स्त्रियों का आभूषण पहनना अनिवार्य माना जाता है। आभूषण पहनना उतना अनुचित न होगा यदि आभूषण का रिवाज अनेक तरह की समस्याएं न उत्पन्न करता। जिसके पास गहनों के लिए सामर्थ्य नहीं है वह भी चाहता है उसके घर की औरतों के लिए आभूषण कहीं से बन जायं। यही चाह उसे विपत्ति में डाल देती है। यही कारण है कि प्रेमचन्द ने गहनों से सम्बन्धित महत्वपूर्ण आर्थिक प्रश्न को अपने साहित्य में स्थान दिया है। इस प्रश्न का महत्वपूर्ण पक्ष समाज का आर्थिक पक्ष है।

गहनों के प्रचलन और उसके फलस्वरूप आर्थिक और नैतिक परिणामों की समस्या को वे देवीदीन खटिक के माध्यम से सुंदर ढंग से प्रस्तुत करते हैं - देवीदीन के शब्दों में वे कहते हैं - "सब घरों का यही हाल है। जहां देखो हाय गहने। हाय गहने। गहने के पीछे जान दे दें, घर के आदमियों को भूखों मारें, घर की चीजें बेचें और कहां तक कहूं, अपनी आबरू तक बेच दें। छोटे-बड़े, अमीर गरीब सबको यही रोग लगा हुआ है।"[1] पत्नियां आभूषण के लिए आग्रह करती हैं और पुरुष

१- "गबन" पृ० १२६-३०

विवश हो जाता है गहनों की व्यवस्था के लिए । प्रेमचन्द ने `कौसल' कहानी में इस प्रश्न को उठाते हुए लिखा है - "पंडित बालकराम शास्त्री की धर्मपत्नी माया को बहुत दिनों से एक हार की लालसा थी और वह सैकड़ों ही बार पंडित जी से उसके लिए आग्रह कर चुकी थी, किन्तु पंडित जी हीला-हवाला करते रहते थे । यह तो साफ साफ न कहते थे कि मेरे पास रूपये नहीं है - इससे उनके पराक्रम में बट्टा लगता था । तर्कनाओं की शरण लिया करते थे ।"[१] उनकी पत्नी माया पड़ोसिन का हार उससे चोरी जाने की घटना गढ़ करके पंडित जी से हार ले लेती है । स्त्री की आभूषण लालसा और पुरुष का अपनी स्थिति को छिपाना यही वह दो विषम स्थितियाँ हैं जिसके कारण मनुष्य आर्थिक संकट के साथ अन्य संकट मोल ले लेता है । `गबन' उपन्यास में रमानाथ के संकट का कारण आभूषण ही है । रमानाथ के विवाह में पिता दाननाथ बाजार से गहने उधार लेकर चढ़ावे में ले जाते हैं । वापस आने पर चोरी से गहने उड़ाकर दूकान में वापस कर देते हैं ।"[२] जालपा को रमानाथ के धनी होने का विश्वास है । इस चोरी के बाद जालपा को गहने नहीं बनवाए जाते तो उसकी स्थिति का हाल लिखते हुए प्रेमचन्द कहते हैं - "इस आभूषण मंडित संसार में पली हुई जालपा का यह आभूषण प्रेम स्वाभाविक ही था । महीने भर से ऊपर हो गया, उसकी दशा ज्यों की त्यों है, न कुछ खाती पीती है, न किसी से हंसती-बोलती है । खाट पर पड़ी शून्य नेत्रों से शून्याकाश की ओर ताकती रहती है । --- वह यह समझती है सारा घर मेरी उपेक्षा करता है । सबके सब मेरे प्राण के ग्राहक हो रहे हैं । जब उनके पास इतना धन है तो फिर मेरे गहने क्यों नहीं बनवाते ?"[३] रमानाथ अपनी आर्थिक स्थिति छिपाता है । वह उधार गहने ला लाकर देता जाता है यहां तक कि वह रतन के रूपये भी दुकानदार को दे देता है परन्तु कर्ज के बोझ से लदा हुआ है । अन्त में उसे म्यूनिसिपैलिटी के रूपये ही उड़ाने पड़ते हैं और घर छोड़कर भागना पड़ता है । इसी समस्या की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि

१- `कौसल' मा०स० भाग ३, पृ० ६८

२- `गबन' पृ० २५

३- वही, पृ० २७

में वह मुकदमें का झूठा गवाह बनता है। देवीदीन के अनुसार - 'गबन के हजारों मुकदमें हर साल होते हैं। तहकीकात की जाय तो उसका कारण एक ही होगा - गहना।'[1]

'चमत्कार' कहानी का प्रकाश अपनी पत्नी के लिए आभूषणों की चोरी करता है प्रेमचन्द प्रकाश की मनस्थिति के सम्बन्ध में लिखते हैं - 'उस चम्पा का आभूषण हीन अंग देखकर दया आयी। यही तो खाने पहनने की उम्र है और उम्र में इस बेचारी को हर एक चीज के लिए तरसना पड़ रहा है।'[2] वही दया भाव उसे चोरी की प्रेरणा देता है और वह रात्रि में छत से उतरकर आभूषणों की चोरी करता है।[3] इस चोरी से उसकी पत्नी सोचती है - 'इनकी इतनी हिम्मत पड़ी कैसे? यह दुर्भावना इनके मन में आयी ही क्यों? मैंने कभी आभूषणों के लिए आग्रह नहीं किया। अगर आग्रह भी करती, तो क्या उसका आशय यह होता कि वह चोरी करके लाये। चोरी आभूषणों के लिए। इनका मन इतना क्यों दुर्बल हो गया?[4] निश्चित रूप से प्रेमचन्द चम्पा के माध्यम से इस समस्या का समाधान खोजते हैं। चम्पा गहनों के लिए अनैतिक कार्य का हृदय से विरोध करती है और स्त्री के आग्रह करने पर भी वह नहीं चाहती कि कोई पुरुष अनुचित ढंग से आभूषण चुराकर पत्नी को प्रसन्न रखे। 'गबन' में भी प्रेमचन्द इस समस्या के समाधान का एक पक्ष जालपा के रूप में सुरक्षित रखते हैं। जालपा को यदि ज्ञान हो जाता कि उसका पति कर्ज लेकर संकट में पड़ रहा है तो वह रमानाथ को संकट से उबार लेती। वह स्पष्ट रमानाथ से कहती है - 'मेरे लिए कर्ज लेने की आवश्यकता नहीं। मैं वेश्या नहीं कि तुम्हें नोच खसोट कर अपना रास्ता लूं। मुझे तुम्हारे साथ जीना और मरना है। अगर मुझे सारी उम्र बेगहनों के रहना पड़े तो मैं कर्ज लेने को न कहूंगी।'[5]

१- 'गबन' पृ० १६३

२- 'चमत्कार' मा०स० भाग २ पृ० ६२

३- वही ,, पृ० ६३

४- वही ,, पृ० ६८

५- 'गबन' पृ० ५८

रमानाथ के भागने पर वह म्यूनिसिपैलिटी के कर्ज चुकता के लिए हार बेचने का निश्चय करती है। "जिस हार को उसने चाव से खरीदा था, जिसकी लालसा उसे बाल्यकाल से- ही में उत्पन्न हो गई थी, उसे आज आधे दामों में बेचकर उसे जरा भी दुख नहीं हुआ, बल्कि गर्व का अनुभव हो रहा था।"[१] जालपा पति की रक्षा के लिए प्रयत्नशील है। सारे संकट की जड़ मध्यवर्गीय रमानाथ का आर्थिक वस्तुस्थिति का छिपाना ही है। इस समस्या का समाधान भी यही है कि पुरुष नारी से अपनी स्थिति स्पष्ट रखे और स्त्री पुरुष की स्थिति के अनुसार ही व्यय का आग्रह करे।

नारी की अधोगति : रक्षा का यत्न

अध्याय चार में सामाजिक युग बोध पर दृष्टि डालते समय धार्मिक-सामाजिक अवस्था पर विचार करते समय समाज में नारी की स्थिति पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया परन्तु वेश्या और विधवा रूपों में उसकी हीन और दयनीय स्थिति पर विस्तार से विचार नहीं किया जा सका है। भारतीय समाज में नारी जहां वैदिक सभ्यता के पूर्व पुरुष से श्रेष्ठ स्थान रखती थी और वैदिक कालीन समाज में पुरुष की सहभागिनी और समान स्थिति वाली मानी जाती थी। प्रेमचन्द के युग में उसका स्तर गृहदेवी और पुरुष की विलास-साधिका के अलावा कुछ भी नहीं था। आर्थिक दृष्टि से दूसरों पर निर्भर शारीरिक दृष्टि से कमजोर नारी को भारतीय समाज में विलास का खिलौना बना लिया। वह या तो कोठे की देवी बन गई अथवा किसी होटल, थियेटर की काल गर्ल अथवा सोशल गर्ल। यही नहीं यदि वह विधवा हो गई तो सामाजिक दृष्टि से हेय, शुभ कार्यों में असगुन, परिवार का भार और लम्पटों की काम-वासना का शिकार बनने लगी। नारी के साथ और भी अनेक तरह के सामाजिक-आर्थिक प्रश्न रूढ़िवादी समाज में जुड़ गए। दहेज का आर्थिक प्रश्न ऐसा जुड़ा कि वह अनमेल विवाह तलाक, बहुविवाह तथा उपेक्षा की शिकार बन गई। उसका रूप-सौंदर्य मात्र पुरुष की श्रृंगार-भावना का खिलौना मात्र रह गया। यह थी भारतीय नारी की आधुनिक युग(स्वतंत्रता के पूर्व) की विषम और दयनीय स्थिति

१- 'गबन' पृ० १४२

प्रेमचन्द हिन्दी के प्रथम साहित्यकार हैं जिन्होंने समाज में नारी की इस अधोगति को देखा और उसको मुक्ति दिलाने के लिए भरसक साहित्यिक प्रयास किया। प्रेमचन्द म की लेखनी ने नारी जीवन के अनेक पक्षों को स्पर्श किया, उसका यथार्थ चित्र खींचते हुए उसको उबारने का प्रयत्न किया। वैवाहिक जीवन से सम्बन्धित नारी की स्थिति और इस दिशा में प्रेमचन्द के साहित्यिक प्रयासों का अध्ययन हम अगले शीर्षक 'वैवाहिक प्रश्न : समाधान की खोज में करेंगे। प्रस्तुत शीर्षक के अन्तर्गत हम उपशीर्षकों में प्रेमचन्द-साहित्य में नारी के वेश्या और विधवा रूपों को देखने के साथ प्रेमचन्द जी द्वारा उसकी रक्षा के लिए किए गए प्रयत्नों पर विचार करेंगे।

वेश्या :- नारी प्राचीन काल से ही शोषित होती आ रही है। उसकी असहाय स्थिति का लाभ पुरुष समाज प्राचीन काल से उठाता रहा है। नारी का सौन्दर्य और पुरुष की अपेक्षा शारीरिक शक्ति का अभाव नारी के नैतिक शोषण का कारण रहा है। शक्तिशाली प्रशासकों तथा धार्मिक महन्तों ने भी अपनी काम तृष्णा को तृप्त करने के लिए नारी का उपभोग उसे कोई न कोई स्वरूप प्रदान करके किया है। बेलादत्त गुप्त ने इसी आधार पर प्राचीन काल से सभी सभ्य समाजों में वेश्यावृत्ति के होने का उल्लेख किया है। उनके अनुसार विश्व की अनेक प्राचीन तथा मध्यकालीन सभ्यताओं में वेश्या-वृत्ति किसी न किसी रूप में प्रचलित थी।[१]

१- "Prostitution, the oldest profession on earth, is condemned today on social, moral and economic grounds. But amazingly, this institution existed in all the civilized societies from the earliest times. In ancient Egypt, Phoenicia, Assgria, Chaldea, Canaan and Persia prostitution prevailed. In the temples of Gris, Moloch, Baal, Astarte, Mylitta sexual vices were rampant. In Babylon some degree of prostitution was even compulsory and imposed upon all woman in honour of the goddess Mylitta. Athensian hetairai had freer participation in public life than their legally married sisters, Asparia, mistress of pericles was one of these 'fallen' women. In

Contd....

भारतवर्ष में भी वेश्यावृत्ति का प्राचीन इतिहास है। वेदों में भी `गणिका` का उल्लेख मिलता है। समाज में गणिका का एक निश्चित स्थान था। मत्स्यपुराण में `वेश्या` का महत्वपूर्ण स्थान है। उसके अनुसार मार्ग में किसी `वेश्या` के मिलने से कार्य में सिद्धि होती है। कौटिल्य के `अर्थशास्त्र` में वेश्या वृत्ति को सरकारी आय का साधन माना गया है। भारतवर्ष में `देवदासी प्रथा` का वेश्या प्रथा से घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। प्रारम्भ में उनका मुख्य पेशा देवता के समक्ष नृत्य प्रदर्शन था। परन्तु इसके बाद इनका अनैतिक उपभोग भी प्रारम्भ हुआ। Dubois abbe ने अपनी पुस्तक `हिन्दू मैनर्स, कस्टम्स एण्ड सेरीमनीज`, में देवदासियों का उल्लेख करते हुए कहा है कि प्रसिद्ध मंदिरों में नृत्य के लिए नियुक्त युवतियों को देवदासी कहा जाता था जिन्हें सामान्य जनता के बीच वेश्या नाम से पुकारा जाता था। उनका कार्य प्रात: और सायंकाल मंदिरों में तथा जन-उत्सवों में नृत्य करना था। इन देवदासियों की उपलब्धि के सम्बन्ध में उल्लेख करते हुए कहा है कि इस अनैतिक कार्य के लिए विभिन्न वर्गों तथा जातियों से यहां तक कि सम्मानित परिवारों से युवतियों को प्राप्त किया जाता था जिन्हें निश्चित धनराशि प्रदान की जाती थी। इस धनराशि की कमी के कारण वे अन्य विभिन्न ढंगों से सम्भव लाभ के लिए अपना पक्ष बेचती हैं।`[१] दक्षिण भारत के मंदिरों में

१- "The Courtesans or dancing girls attached to each temple... are called deva-dasis (servants or slaves of the gods), but the public call them by the more vulgar name of prostitutes .. Every temple of any importance has in its service a band of eight, twelve or more. Their official duties consist in

Contd... on next page.

गत पृष्ठ का शेष :-

medieval times the church shared the earnings of lupanaria, houses of prostitution. The institution of prostitution was no less important in the countries of the East. In Chinese literature we get plenty of reference of prostitution."

बैजनाथ गुप्त : `कन्टैम्पोरेरी सोशल प्राब्लेम्स इन इण्डिया, १९६४(कलकत्ता) पृ० ६१-६२

एक समय यह प्रमुख पेशा था। बेलादत्त गुप्त के अनुसार अब भी महाराष्ट्र की 'मुरलियों', कर्नाटक की 'बैस्वी' तथा गोवा की 'नाइकाओं' के रूप में इस प्रथा के प्रचलन को देखा जा सकता है।'[१]

आधुनिक युग में वेश्या वृत्ति विश्व के प्रत्येक राष्ट्र में सामाजिक प्रश्न के रूप में प्रकट हो रही है। वेश्यावृत्ति का प्रभाव राष्ट्र के स्वास्थ्य के साथ उसकी नैतिकता पर भी पड़ता है और राष्ट्र का नैतिक पतन राष्ट्र की सर्वोन्मुखी विकास में

१- "Devdasi now is rather a euphemistic term referring to a women prastiting in the name of religion. In south India devdasi or temple prostitution was once a very important institution. We still get survivals of this practice in the murlis of Maharashtra, Basvis of Karnatak and Naikas in Goa."

बेलादत्त गुप्त : 'कन्टेम्पोरेरी सोशल प्राब्लेम्स इन इण्डिया', १९६४ (कलकत्ता), पृ० ६३।

गत पृष्ठ का शेष :

dancing and singing within the temple twice a day, morning and evening, and also at public ceremonies. They are brought up in this shameful licentiousness from infancy, and are recruited from variows castes, some among them belonging to respectable families. The devdasis receive a fixed salary for the religious duties which they perform : but as the amount is small they supplement it by selling their favours in as profitable a manner as possible.

हिन्दू मैनर्स, कस्टम्स एण्ड सेरीमनीज, । १९०६ (अक्सफोर्ड), पृ० ५८४-८५

बाधा डालता है। डा० ए०फ्लेक्सनर (A.Flexner) ने वेश्या की परिभाषा देते हुए कहा है कि `कोई भी व्यक्ति जो आदत अथवा पारी-पारी से कम या अधिक मात्रा में मिश्रित रूप से धन अथवा अन्य भौतिक स्वार्थ के विचार से काम सम्बन्ध रखता है (वह वेश्या है)।`[१] आधुनिक वेश्याओं के सम्बन्ध में वाइनबर्ग (Weinberg) ने लिखा है कि आधुनिक वेश्या अर्थ प्राप्ति के लिए एक व्यक्तित्व शून्य कार्य-व्यापार के रूप में काम-सम्बन्धों में संलग्न रहती है। वह असम्बद्ध रुचि के रूप में अपने ग्राहक की व्यक्तिगत रुचि पर ध्यान देती है क्योंकि उसका मुख्य सम्बन्ध काम क्रिया की शुल्क से है। अपनी व्यवसायिक भूमिका में वह एक सामूहिक युक्तिपूर्ण योजना रखती है और व्यवसायिक जालसाजी में अपने ग्राहकों और दूसरों से सामाजिक सम्बन्धों के आदर्शों में सामाजिक एकरूपता का व्यवहार करती है।`[२] वेश्याओं की परिभाषा से स्पष्ट है कि वेश्यावृत्ति का मुख्य आधार भौतिक या आर्थिक स्वार्थ है। आधुनिक

१- "Any person ...... who habitually or intermittently has sex relations more or less promiscuously for money or other mercenary considerations."

ए० फ्लेक्सनर : प्रास्टीट्यूशन इन यूरोप : १६२०, (न्यूयार्क), पृ० ११

२- "A contemporary prostitute, "engage in sex relations as an impersonal transactions for financial gain, She regards the personal attraction of her client as of extranious concern because her chief concern is with fee for the sex act. From her occupational role, she acquires a scheme of collective rationalization and practices as well as a social identity from the models of social relationship with her clients and with others in her occupational net work."

के०एस० वाइनबर्ग :`सोशल प्राब्लेम ऑव अवर टाइम`, १६६१ (न्यूयार्क), पृ० २४४

युग में मूल रूप में बड़े शहरों में स्त्रियाँ धन के लिए ही अपना शरीर बेचती हैं भले ही यह उनकी मजबूरी है। आज के युग में कोठों में बैठने के अलावा अन्य अनेक प्रकार के उपाय भी खोज निकाले गये हैं। होटलों और विश्रामगृहों में कालगर्ल्स और सोशल गर्ल्स के रूप में वेश्या वृत्ति का प्रचलन हो गया है। निश्चित रूप से विश्व समाज में के सामने वेश्या सम्बन्धी प्रश्न एक ज्वलंत समस्या है। यह नारी की अधोगति की चरम सीमा है।

मूल रूप से सामाजिक साहित्यकार प्रेमचन्द ने अपने साहित्य में वेश्या समस्या को मात्र स्पर्श ही नहीं किया बल्कि सम्पूर्ण भारतीय संदर्भ में उसके कारणों पर प्रकाश डालते हुए उसके निराकरण का मार्ग भी खोजा है। सामान्य रूप से वेश्या वृत्ति के कारणों तथा इस समस्या के निराकरण के लिए किए जाने वाले संभव उपायों पर विचार करने के साथ प्रेमचन्द-साहित्य में उल्लिखित वेश्या-वृत्ति के कारणों और सुझाए गए उपायों पर विचार करेंगे।

भारतवर्ष में वेश्या वृत्ति का मुख्य कारण आर्थिक नहीं बल्कि भारतीय सामाजिक पृष्ठभूमि है। भारतीय समाज जाति-प्रथा पर आधारित है। जब एक युवती का सम्बन्ध किसी दूसरे जाति के युवक से हो जाता है परन्तु सामाजिक भय से वे खुलकर विवाह नहीं कर पाते तो वे घर से भागकर शहरों में आते हैं और वहां पर युवक अनेक कठिनाइयों के कारण युवती को छोड़ देता है। युवती को वेश्या वृत्ति के अलावा कोई उपाय नहीं सूझता। रूढ़िवादी समाज ने कभी कभी पुरुष स्त्री को प्रलोभन देकर एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाता है और कुछ दिनों के बाद उसे असहाय छोड़ देता है। बंगाल में ६२ वेश्याओं के सामाजिक पृष्ठभूमि का अध्ययन किया गया तो पता चला कि ६२ में २३ किसान घरों, ६ छोटे व्यापारियों के घरों से, ६ नौकरों के घरों से, ७ वेश्या परिवारों से, ४ बढ़ई गीरी ऐसे व्यवसाय वाले घरों से, २ क्लर्कों से,-२ के घरों से, २ धनी तथा जमींदार परिवारों से, १ बीड़ी का काम करने वाले के घर से, १ बाइन्डर परिवार से, १ पन्डा के घर से तथा १ पुलिस के सिपाही के परिवार से आई हुई वेश्याएं हैं।[१] सबसे बड़ा प्रतिशत किसानों के

१- दे० वेलादव गुप्त : कन्टेम्पोरेरी सोशल प्राब्लेम्स इन इण्डिया, १६६४ (कलकत्ता), पृ० ६८।

घर से आई हुई वेश्याओं का है। इसके बाद छोटे व्यापारियों एवं नौकरों के घरों का स्थान है। इससे स्पष्ट है कि इसका प्रमुख कारण आर्थिक आवश्यकता और गरीबी नहीं है बल्कि सामाजिक रूढ़िवादिता, समाज के कठोर बंधन, और किसी छोटी सी त्रुटि के कारण समाजिक लांछन का भय है।

१६५७-५८ में 'सेन्ट्रल सोशल वेलफेयर बोर्ड' द्वारा वेश्या समस्या पर विचार किया गया था। १३० वेश्याओं के उदाहरणों में वेश्यावृत्ति के पेशे को अपनाने के कारणों में ज्ञात हुआ था कि १३० में ४२ मनुष्यों के प्रलोभन से आईं, ३३ गरीबी के कारण, १८ स्त्री एजेण्टों द्वारा लाई गईं, १५ परिवार तथा पति के अमानवीय व्यवहार से, ८ वेश्या परिवार में जन्म लेने से, ६ पतियों द्वारा त्यागी हुईं, ३ गृहविहीन, २ पतियों के अनैतिक आचरण, २ पतियों द्वारा वेश्यावृत्ति में भेजी गईं तथा १ सौतेली माँ के कठोर व्यवहार के कारण वेश्यावृत्ति को अपनाया था।[१] इनमें यदि गरीबी, गृहविहीनता तथा पति द्वारा वेश्यावृत्ति के लिए भेजी गईं स्त्रियों के आर्थिक कारणों के अन्तर्गत मान लिया जाय तब भी इस कारण से वेश्यावृत्ति अपनाने का प्रतिशत २६.३ ही होता है जब कि ५६.७ प्रतिशत वेश्याओं का कारण सामाजिक दुर्व्यवस्था तथा मानुषिक व्यवहार म ही है। आर्थिक तंगी को भी सामाजिक व्यवस्था के कारणों से अलग नहीं माना जा सकता है।

१-

	Causes	Number	%
1.	Enticed by men	42	32.3
2.	Poverty	33	25.5
3.	Brought by women Agents	18	14
4.	Cruel treatment by Husband or family	15	11.5
5.	Belonging to professional prostitute family	8	6
6.	Deserted by Husband	6	4.6
7.	Broken Homes	3	2.3
8.	Husband's immorality	2	1.5
9.	Induced by Husband to enter into prostitution	2	1.5
10.	Cruelty to by step mother	1	.8

बेलायत गुप्त : 'कन्टेम्पोरेरी सोशल प्राब्लेम्स इन इण्डिया' १६६४ (कलकत्ता), पृ० ६६ से उद्धृत

प्रेमचन्द वेश्यावृत्ति के प्रमुख कारण सामाजिक व्यवस्था को मानते हैं। उनके अनुसार "हिन्दू धर्म सबसे ज्यादा स्त्रियों को चौपट कर रहा है। ज़रा-सी गलती स्त्रियों से हुई, उन्हें हिन्दू समाज ने बहिष्कृत किया। सबसे ज्यादा हिन्दू स्त्रियां चकले खाते में है --- थोड़ी थोड़ी गलतियों में अपनी बेटी-बहनों को निकाल ख देते हैं। फिर वह कहीं न कहीं तो ज़रूर जायेगी।"[१] वेश्यावृत्ति का उत्तरदायित्व समाज पर लादते हुए पद्मसिंह कहते हैं "यह हमारी ही कुवासनायें, हमारे ही सामाजिक अत्याचार, हमारी ही कुप्रथायें हैं जिन्होंने वेश्याओं का रूप धारण किया। यह दालमण्डी हमारे जीवन का कलुषित प्रतिबिम्ब, हमारे ही पैशाचिक अधर्म का साक्षात् स्वरूप है।"[२]

भारतीय समाज में आडम्बर और ढकोसले का महत्वपूर्ण स्थान है परन्तु समाज का नैतिक पतन हो चुका है। अच्छे से अच्छे तिलकधारी महात्मा तथा अल्ला-ताला के भक्त मौलवी भी वेश्याओं के पीछे भागने में झिझकते नहीं है। यह तथ्य भोली के कथन से स्पष्ट है। भोली सुमन से कहती है "आज यहां कौन रईस, कौन महाजन, कौन मौलवी, कौन पंडित ऐसा है, जो मेरे तलुवे सहलाने में अपनी इज्जत न समझे? मंदिरों में ठाकुर द्वारों में मेरे मुजरे होते हैं। लोग मिन्नतें करके ले जाते हैं।"[३] जहां के धर्म में सती साध्वी नारी की उपेक्षा हो परन्तु वेश्याओं का सम्मान हो ऐसे समाज में यदि वेश्या-वृत्ति को बढ़ावा मिले तो कोई आश्चर्य नहीं। सुमन के वेश्या बनने में भोली के ऐसे तर्क सहायक होते हैं।

भारतवर्ष में सामंती तथा पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था ने वेश्या-वृत्ति को बढ़ावा दिया है। सामन्त वर्ग के राजे महाराजे और ताल्लुकेदार जमींदारों ने वेश्याओं को भोग का साधन बनाया। "राजहठ" कहानी में अचलगढ़ के राजसाहब के दरबार में चुनी हुई अप्सराएं हैं। दशहरे के दिन अचलगढ़ में "दरबारे आम में राज्य के मंत्रियों के स्थान

१- शिवरानी देवी : प्रेमचन्द : घर में (इलाहाबाद), पृ० ११४

२- "सेवासदन" पृ० १७८

३- वही, पृ० ४१

पर अप्सरायें शोभायमान हैं ।"[१] ताल्लुकेदार राय कमलानन्द जो जनता के प्रतिनिधि हैं और एसेम्बली के सदस्य भी हैं, के यहां "तनी कोमलांगी रमणियां वस्त्राभूषण से सजी हुई विराज रही थीं ।"[२] जब कि राय अमरपाल सिंह के अनुसार - "हमारे पास इलाके, महल, सवारियों, नौकर-चाकर, वेश्यायें क्या नहीं है ?"[३] सामंतवर्ग के अलावा पूंजीवादी व्यवस्था को चन्द्र प्रकाश खन्ना की साध्वी पत्नी घर में रोती और "खन्ना दीवानखाने में मुजरे सुनता था ।"[४] `सेवासदन` सेठ बलभद्रदास, कारखाने के मालिक अबुलवफा, व्यापारियों के नेता पं० दीनानाथ वेश्याओं के आस पास चक्कर लगाते फिरते हैं । पूंजीवादी व्यवस्था के इन महापुरुषों के अलावा शासक वर्ग के लोग भी इस रोग से मुक्त नहीं है । `गबन` में दरोगा साहब जोहरा के यहां रात बिताना चाहते हैं । वे कहते हैं - "नहीं अब न जाऊंगा, जोहरा सुबह देखी जायगी ।" "जोहरा उत्तर देती है - "आप मानते नहीं है । शायद डिप्टी साहब आते हों । आज उन्होंने कहला भेजा था ।"[५] स्पष्ट है दरोगा से लेकर डिप्टी तक इस कुकर्म में फंसे हुए हैं है । आश्चर्य तो यह कि इन्हीं सामंतों, पूंजी-पतियों और राज्याधिकारियों का समाज में सम्मान है । इन लोगों का बिना परिश्रम का धन वेश्यावृत्ति ऐसे कुकर्मों में ही व्यय होता है । कुंवर अनिरुद्धसिंह के अनुसार - "जिस समाज में अत्याचारी जमींदार, रिश्वती, राज्य अधि कर्मचारी, अन्यायी महाजन, स्वार्थी बन्धु आदर और सम्मान के पात्र हैं, वहां दालमण्डी क्यों न आबाद हो ? हराम का धन हरामखोरी के सिवा और कहां जा सकता है ।"[६]

`वेश्या` कहानी में वेश्यागामी सिंगारसिंह का मित्र दयाकृष्ण सिंगारसिंह की पत्नी से पूछता है कि यह लत इन्हें कैसे पड़ गई । लीला व्यथित स्वर में उत्तर देती

१- गुप्तधन, भाग१, `राजहठ` पृ० ६३
२- `प्रेमाश्रम` पृ० १७८
३- `गोदान` पृ० १६
४- वही, पृ० १६२
५- वही, पृ० ३११
६- `सेवासदन` पृ० १६५ ।

हुई कहती हैं - `रूपये की बलिहारी है और क्या । ---- पापा ने लाखों रूपये की सम्पत्ति न छोड़ी होती, तो आज यह महाशय किसी काम में लगे होते, कुछ घर की चिंता होती, कुछ जिम्मेदारी होती नहीं तो बैंक से रूपये निकाले और उड़ाए ।`[१] मेहता के अनुसार `जब तक दुनिया में दौलत वाले रहेंगे, वेश्याएं रहेंगी ।`[२] औद्योगीकरण और नगर जीवन में बढ़ते हुए कल-कारखानों से भी वेश्या-वृत्ति को बढ़ावा मिला है । इसका संकेत प्रेमचन्द-साहित्य में `रंगभूमि` उपन्यास में मिलता है । जॉनसेवक के सिगरेट के कारखाने के आस-पास मजदूरों का जमघट लग गया है जिससे वहां पर `एक छोटा-मोटा चकला आबाद हो गया था ।`[३]

प्रेमचन्द यह मानते थे कि पुरुष समाज ही स्त्रियों को वेश्या बनाने का एक मात्र उत्तरदायी है । `वेश्या` कहानी में माधुरी सिंगारसिंह को पत्र में लिखती है - `यह समझो रानी, नारी अपना बस रहते हुए कभी पैसों के लिए अपने को समर्पित नहीं करती । यदि वह ऐसा कर रही है तो समझ लो कि उसके लिए और कोई आश्रय, और कोई आधार नहीं है और पुरुष इतना निर्लज्ज है कि उसकी दुरवस्था से अपनी वासना तृप्त करता है और इसके साथ ही इतना निर्दय कि उसके माथे पर पतिता का कलंक लगा कर उसे उसी दुरवस्था में मरते देखना चाहता है ---- खैर पुरुष समाज जितना अत्याचार चाहे, कर ले । हम असहाय हैं, अशक्त हैं ।`[४] पद्मसिंह भी स्त्रियों के सतीत्व को नष्ट करने वालों तथा उन्हें वेश्यावृत्ति के लिए प्रोत्साहित करने वाले पुरुष समाज के सम्बन्ध में बैजनाथ से कहते हैं - `आप यह जानते हैं कि बाजार में वही वस्तु दिखायी देती है कि जिसके ग्राहक होते हैं और ग्राहकों के न्यूनाधिक होने पर वस्तु का न्यूनाधिक होना निर्भर है । --- इस विचार से किसी वस्तु के ग्राहक ही मानों उसके बाजार में आने के कारण होते हैं । यदि कोई मांस न खाय तो बकरे की गर्दन पर छुरी क्यों चले --- ऐसी अवस्था में यह समझना कठिन

१- `वेश्या` मा०स० भाग २ पृ० ४१

२- `गोदान` पृ० २३१

३- `रंगभूमि` पृ० ४३६

४- `वेश्या` मा०स० भाग २ पृ० ५३-५४ ।

है कि सैकड़ों स्त्रियां जो हर रोज बाजार में भरोखों में बैठी दिखाई देती हैं, जिन्होंने अपनी लज्जा और सतीत्व को भ्रष्ट कर दिया है, उनके जीवन का सर्वनाश करने वाले हमीं लोग हैं।"[१] गांधी जी इस सम्बन्ध में पुरुष को दोषी ठहराते हुए कहते हैं -"यह बड़े दुख और अपमान की बात है कि मनुष्य की वासना की तृप्ति के लिए स्त्रियों को अपनी इज्जत बेचनी पड़े। पुरुष ने, जो नियामक हैं, स्त्रियों का जो अपमान किया है, उसके लिए उसको कठिन दण्ड भोगना पड़ेगा। ---- मैं यह नहीं सुनना चाहता कि अपने सतीत्व की विक्री में इसी प्रकार एक वेश्या जिम्मेदार है, जिस प्रकार कि घुड़दौड़ में जाने वाला एक लखपति एक पेशेवर जेब काटने वाले द्वारा अपनी जेब के काटे जाने का जिम्मेदार है। --- क्या पुरुष पहले अपनी बारीक आदतों से स्त्री की उत्तम भावनाएं नष्ट करके फिर उसके विरुद्ध पाप करने में भागी नहीं बनता?[२] दूसरे स्थान पर वे कहते हैं ---"मुझे मंजूर है कि पुरुष जाति का नाश हो जाय, मगर यह मंजूर नहीं कि भगवान की पवित्रतम सृष्टि को अपनी वासना का शिकार बनाकर हम पशुओं से भी गये-बीते बन जायें।"[३]

'गोदान' में प्रेमचन्द ने वेश्यावृत्ति के दो प्रमुख कारण माने हैं। मिर्जा खुर्शेद म के शब्दों में वे कहते हैं - "रूप के व्यवहार में वही स्त्रियां आती हैं जिन्हें या तो अपने घर में किसी कारण से सम्मानपूर्ण आश्रय नहीं मिलता, या तो आर्थिक कारणों से मजबूर हो जाती हैं।"[४] 'सेवासदन' की सुमन को अपने घर में सम्मान नहीं मिल पाता। केवल पद्मसिंह के घर जाने के कारण उसे तिरस्कृत होना पड़ता है और वही तिरस्कार उसे घर से बाहर कर देता है। 'लांछन' कहानी में गृहिणी देवी को उसके पति श्यामकिशोर इसलिए अपमानित करते हैं - क्योंकि वह मुन्नू मेहतर से बात करते हुए उसे देख लेते हैं। उसका यह अपमान उसे यह सोचने के लिए विवश करता है - "वाह री तकदीर! अब मैं इतनी नीच हो गई कि मेहतरों से, जूतेवालों

१- 'सेवासदन' पृ० ११६-११७

२- 'मोहन करमचन्द गांधी', 'महिलाओं से', १९४६ (बनारस) पृ० २००९२०१

३- एम०डी० जैन (सं०): 'गांधी विचार रत्न', (१९६३) नृ दिल्ली, पृ० २६७

४- 'गोदान' पृ० ३३१

से, आशनाई करने लगी । ---- जहां इज्जत नहीं, मर्यादा नहीं, प्रेम नहीं, विकास नहीं, वहां रहना बेहयाई है ।"[1] देवी घर से निकल पड़ती है । परिणाम की सहज ही कल्पना की जा सकती है । आर्थिक तंगी के कारण किसी नारी को वेश्या बनने का संकेत प्रेमचन्द ने नहीं किया । संभवत: वे चाहते थे कि नारी मात्र धन के लिए अपने को न बेचे यही कारण है कि वे पाठकों को ऐसा अवसर नहीं देना चाहते थे कि वे उनके साहित्य में किसी ऐसी नारी का स्वरूप देखे जो केवल चन्द पैसों के लिए वेश्या के रूप में उनके सामने आए । यह बात अवश्य है कि वे आर्थिक तंगी को वेश्या-वृत्ति का एक कारण मानते थे । वेश्यायें अपना खानदानी पेशा इसलिए ही चलाती रहती है क्योंकि उनके पास कोई दूसरा साधन नहीं है । शरीफ हुसन के शब्दों में वे इस ओर संकेत करते हुए कहते हैं - "उनके गुजर की इसके सिवा कोई दूसरी सूरत नहीं रहती कि वे अपनी लड़कियों से दूसरों को दामें मुहब्बत में फंसाये और इस तरह यह सिलसिला हमेशा जारी रहता है ।"[2] पारिवारिक विरासत के रूप में वेश्यावृत्ति के चलते रहने के सामाजिक कारण भी है । प्रेमचन्द की "आगा-पीछा" और "दो कब्रें" कहानियों में इन सामाजिक कारणों की ओर संकेत है । "आगा पीछा" कहानी में शिक्षित युवक भगतराम एम०ए० कोकिला वेश्या की पुत्री श्रद्धा से प्रेम तो करता है परन्तु विवाह नहीं कर पाता बल्कि मृत्यु का आलिंगन कर लेता है ।[3] उसके इस विवाह में सामाजिक रुकावट है । इस कहानी की श्रद्धा को प्रेमचन्द ने प्रेम के नाम पर जीवित रख कर आदर्श की प्रतिस्थापना कर दी है परंतु वेश्या समाज जिन्हें कोई भी वरण करने के लिए तैयार नहीं, जिनके लिए कोई आर्थिक आश्वासन नहीं अपने घेरे से कैसे उबर सकता है । "दो कब्रें" कहानी में वेश्या पुत्री सुलोचना और प्रो० रमेन्द्र विवाह सूत्र में तो बंध जाते हैं परन्तु सुलोचना का अंत ही उसे शान्ति दे पाता है ।[4]

१- "लांछन" मा०स० भाग ५ पृ० १५२

२- "सेवासदन" पृ० १२७

३- "आगा पीछा" दे० मा०स० भाग ४ पृ० १११-१३१

४- दे० मा० स० भाग २ ।

पति द्वारा परित्यक्त नारी जिसे अपना घर छोड़ना पड़ता है वह `निर्वासिन` कहानी की मर्यादा है जो गंगा स्नान करने के लिए पति के साथ जाती है परंतु बिछुड़ जाती है। साल दिन बाद वापस आने पर उसका पति परशुराम उसका भरण पोषण तो करने के लिए तैयार है परन्तु पत्नी के रूप में नहीं स्वीकार कर सकता और मर्यादा का निर्णय है - `चलो मन। अब इस घर में तुम्हारा निर्वाह नहीं है। चलो जहां भाग्य ले जाय।`[1] उसका भाग्य उसे कहां ले जायगा यह छिपा नहीं। पति के अनैतिक आचरण के कारण कोठे पर बैठने वाली नारी `इज्जत का खून` कहानी की नायिका सईद की पत्नी है। सईद का अनैतिक सम्बन्ध विवाह के बाद जरीना से हो जाता है उसकी पत्नी के लिए यह असह्य हो जाता है उसके अनुसार ही `मैं अनजान में ही संदेह से नैतिक रूप से बदला लेने पर आमादा हो गयी। रात भर मैं वहीं पड़ी कभी दर्द से कराहती और कभी इन्हीं ख्यालात में उलझती रही। यह घातक इरादा हर क्षण मजबूत से और भी मजबूत होता जाता था। --- पौ फटते ही मैं बगीचे से बाहर निकल आयी मालूम नहीं मेरी लाज शर्म कहां गायब हो गयी थी। -- इस वक्त शहर की गलियों में बेधड़क चली जा रही थी - और कहां ? वहीं जहां जिल्लत की कद्र है, जहां किसी पर कोई हंसने वाला नहीं, जहां बदनामी का बाजार सजा हुआ है, जहां हया बिकती है और शर्म लुटती है। इसके तीसरे दिन रूप की मण्डी के एक अच्छे हिस्से में एक ऊंचे कोठे पर बैठी हुई मैं उस मण्डी की सैर कर रही थी।`[2] बहकाकर स्त्रियों को ले जाना और उन्हें इस घिनौने पैसे में डालने वालों का एक गैंग होता है। `निर्वासिन` कहानी की मर्यादा को स्टेशन से एक युवक बहकाकर ले जाता है और एक घर के अंदर बंद कर देता है। मर्यादा के ही शब्दों में `अब मुझे विदित हुआ कि मुझे धोखा दिया गया। --- वह आदमी थोड़ी देर बाद चला गया और एक बुढ़िया आकर मुझे प्रलोभन देने लगी।`[3] मर्यादा तो बच निकली परन्तु `नरक का मार्ग` कहानी की विधवा नारी एक बुढ़िया के चक्कर में पड़कर सब कुछ खो बैठी। नारी के ही शब्दों में उसके पतन का उल्लेख इस

१- `निर्वासिन` मा० स० भाग १ पृ० ५३

२- इज्जत का खून` गुप्त धन भाग २ पृ० २५-२६

३- `निर्वासिन` मा०स० भाग १ पृ० ५१।

प्रकार है - 'आह ! वह बुढ़िया जिसे मैं आकाश की देवी समझती थी, नरक की डाइन निकली । मेरा सर्वनाश हो गया । मैं अमृत खोज रही थी, विष मिला, निर्मल स्वच्छ प्रेम की प्यासी थी, गंदे विषाक्त नाले में गिर पड़ी ।'[१]

सेन्ट्रल वेलफेयर बोर्ड द्वारा वेश्या-वृत्ति के जिन कारणों का उल्लेख किया गया है उनमें केवल दो को छोड़कर प्रेमचन्द-साहित्य में समस्त कारणों की ओर संकेत किया जा चुका है । पति द्वारा पत्नी को वेश्या वृत्ति के लिए प्रेरित करना तथा सौतेली माँ का दुर्व्यवहार ही ऐसे वे दो कारण हैं जिनका स्वरूप प्रेमचन्द-साहित्य में नहीं उभर सका । सम्भवत: प्रेमचन्द ऐसे पुरुष को अपने साहित्य में स्थान न देना चाहते रहे हों जो अपनी पत्नी की वेश्या-वृत्ति से जीवन चलाये । सौतेली माँ के दुर्व्यवहार से सम्बन्धित चित्रण उनके साहित्य में स्थान स्थान पर हुआ है परन्तु इसके कारण कोई बालिका वेश्या बने प्रेमचन्द की आत्मा इसे स्वीकार नहीं कर सकती थी । प्रेमा के शब्दों में वे कहते हैं - "स्त्री हारे दर्जे ही दुराचारिणी होती है । अपने सतीत्व से अधिक उसे संसार की और किसी वस्तु पर गर्व नहीं होता, न वह किसी चीज को इतना मूल्यवान समझती है ।"[२] प्रेमचन्द नहीं चाहते थे कि मात्र सौतेली माँ के दुर्व्यवहार से, किसी स्त्री को वेश्या बनना पड़े और पवित्र सतीत्व बेचना पड़े ।

प्रेमचन्द ने एक कुशल समाजशास्त्री की भाँति भारतीय सौर्य में वेश्यावृत्ति के समस्त संभव प्रमुख कारणों ~~स~~ को समझने का प्रयास किया था । उनके साहित्य में स्थान-स्थान पर उन कारणों की ओर संकेत किया गया है । कुशल समाजशास्त्री केवल समस्या का कारण ही खोजता है ऐसा नहीं बल्कि उसके समाधान का उपाय भी सुझाता है । साहित्यकार भी अपने इन दोनों दायित्वों के प्रति जागरूक रहता है । प्रेमचन्द ने वेश्यावृत्ति के कारणों को खोजने के साथ ही समाधान भी खोज निकाला है ।

१- 'नरक का मार्ग' मा०स० भाग ३, पृ० ३०

२- 'प्रतिज्ञा' पृ० ८८

वेश्या-समस्या उनके उपन्यास `सेवासदन` की प्रमुख समस्या है। प्रेमचन्द ने इस उपन्यास में जहां उन कारणों और परिस्थितियों की ओर संकेत किया है जिनकी पृष्ठभूमि में सुमन को कोठे पर बैठना पड़ता है वहीं उन्होंने स्त्रियों को इस घृणित कार्य से बचाने का भी यत्न किया है। विट्ठलदास के रूप में वेश्याओं का उद्धार करना चाहते हैं। भटकती हुई सुमन को वापस बुलाने के लिए विट्ठलदास और पद्मसिंह प्रयत्नशील हैं। सुमन के लिए किया जाने वाला प्रयास इस उपन्यास में सुधार आंदोलन का स्वरूप ग्रहण कर लेता है। पद्मसिंह म्युनिसिपैलिटी में एक प्रस्ताव द्वारा इस समस्या का समाधान खोजने का प्रयत्न करते हैं।

प्रेमचन्द इस समस्या को सहानुभूतिपूर्वक हल करना चाहते थे। यही कारण है कि "पद्मसिंह को अब यह निश्चय होता जाता था कि वर्तमान सामाजिक दशा के होते हुए इस प्रस्ताव से जो आशायें की गयीं थीं उनके पूरे होने की संभावना नहीं है।"[१] यद्यपि म्यूनिसिपैलिटी ने वेश्याओं के लिए शहर से हटकर मकान बनवाने का निश्चय किया[२] तथा उधर प्रभाकरराव और उनके मित्रों ने उस प्रस्ताव के शेष भागों को फिर बोर्ड में उपस्थित किया[३] परन्तु पद्मसिंह को इससे संतोष नहीं है वे साधु गजाधर के साथ वेश्याओं में सुधार का प्रयत्न सामाजिक ढंग से करने में प्रयत्नशील हुए। और पंडित पद्मसिंह के चार पांच मास के सदुद्योग का यह फल हुआ कि २०-२५ वेश्याओं ने अपनी लड़कियों को अनाथालय में भेजना स्वीकार कर लिया। तीन वेश्याओं ने अपनी सारी सम्पत्ति अनाथालय के निमित्त अर्पण कर दी, पांच वेश्यायें निकाह करने पर राजी हो गयीं।"[४]

जिस समाज में आचरण ही निर्धारित हो गया है। मंदिर और देवालय, मस्जिद और गिरजा पाप के अड्डे बन गए हों। जिस समाज का मनुष्य नारी को गिद्ध की दृष्टि से देखता है। उस समय के झूठे आदर्शवादी साहित्य में समस्या के

१- `सेवासदन` पृ० २१८
२- `सेवासदन` पृ० २१४
३- `सेवासदन` पृ० २३४
४- `सेवासदन` पृ० २३३

कि लिखित सुधार से क्या प्रभाव पड़ सकता है ? यह प्रेमचन्द अच्छी तरह मानते थे। यही कारण है कि उनके अन्तिम जीवन के पूर्ण उपन्यास 'गोदान' में उनकी आत्मा ने उस सामाजिक यथार्थ की ओर संकेत कर दिया है जो इस समस्या के मूल में है।

प्रेमचन्द के समय से अब तक भारतवर्ष में किए गए वेश्या सम्बन्धी कानूनी सुधारों में - द० यू०पी० माइनर गर्ल्स प्रोटेक्शन ऐक्ट १६२६, द मद्रास सप्रेसन ऑव इममारल ट्रैफिक एक्ट १६३०, बंगाल सप्रेसन ऑव इममारल ट्रैफिक ऐक्ट, १६३३, यू०पी० सप्रेसन ऑव इम्मारल ट्रैफिक ऐक्ट, १६३३, द बाम्बे देवदासी प्रोटेक्शन ऐक्ट १६४७, द बिहार सप्रेसन ऑव इम्मारल ऐक्ट १६४८, द यू०पी० नाइक गर्ल्स प्रोटेक्शन ऐक्ट, १६५०, द सौराष्ट्र प्रीवेन्शन ऑव प्रास्टीट्यूट ऐक्ट १६५२, हैदराबाद सप्रेशन ऑव इममारल ट्रैफिक ऐक्ट १६५२, द ट्रवेनकोर-कोचीन ट्रैफिक सप्रेसन ऑव इममारल ट्रैफिक ऐक्ट १६५२, द एम०पी० सप्रेशन ऑव इममारल ट्रैफिक ऐक्ट १६५३ तथा आल इण्डिया सप्रेशन ऑव इममारल ट्रैफिक इन वीमेन ऐण्ड गर्ल्स ऐक्ट १६५६ है। आश्रम व्यवस्था सम्बन्धी सुधारों के अन्तर्गत जो महत्वपूर्ण संस्थाएँ कार्य कर रही हैं उनमें सुन्दरबाई मूलचन्द मेहता होम, हावड़ा, आल बंगाल वीमेन्स यूनियन होम, कलकत्ता, अबला आश्रम, हावड़ा, कुसलनाथ मिशन आफनेज, गोरखपुर (बिहार), श्री सदन, मद्रास, द गुड शिफर्ड्स होम, मद्रास, क्रिश्चियन्स होम, पूना तथा श्रद्धानन्द अनाथ महिला आश्रम, बम्बई आदि हैं। प्रेमचन्द ने पद्मसिंह के म्यूनिसिपैलिटी के प्रस्ताव द्वारा नियम सम्बन्धी व्यवस्था का प्रयास किया है तथा सेवासदन की स्थापना करके आश्रम व्यवस्था को सुधार का आधार बनाया है। इनके अलावा तीसरी बात श्री प्रेमचन्द ने इस समस्या के निदान के लिए सोची है वह है वेश्याओं में स्वतः का सुधार या आत्म परिवर्तन। आलोचक आलोचना के लिए भले ही प्रेमचन्द को इस समस्या के सम्बन्ध में सफल अथवा असफल घोषित करें परन्तु युग और परिस्थिति को देखते हुए निश्चित रूप से प्रेमचन्द ने जो कुछ निदान सोचा है इससे अधिक कुछ भी संभव नहीं था। प्रेमचन्द ने युग के अनुरूप इस समस्या के सम्बन्ध में जिन कारणों की ओर संकेत किया है और निदान के लिए जिन उपायों को स्वरूप दिया है उनके युग विशेष में कोई भी समाज शास्त्री अथवा समाज सुधारक इससे अधिक कुछ नहीं कर सकता था।

विधवा : विधवा भारतीय समाज में उपेक्षिता रही है । वैधव्य ही उसे स्त्री पुरुष दोनों की दृष्टियों में हीन बनाने के लिए पर्याप्त है । वह सदाचारिणी, परिश्रमी, सहयोगिनी, कर्मठ तथा शीलवान भले ही हो परन्तु क्योंकि वह विधवा है इसलिए समाज की दृष्टि से वह पतिता और अमंगलकारिणी है । भारतीय समाज में विशेष रूप से हिन्दू-समाज में यह स्थिति आज भी अपने स्वरूपों में विद्यमान है । विधवा को निम्न दृष्टि से देखा जाना, उसे अमंगलकारी समझना, शुभ कार्यों में उसकी उपस्थिति अशुभ मानना आदि वह तथ्य जो विधवा की गिरी हुई दशा के प्रतीक है । प्रेमचन्द के समय में विधवा को पति की मृत्यु के बाद कानूनी रूप से आर्थिक संरक्षण भी नहीं प्राप्त था । केवल १८५८ ई० में हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम पारित हुआ था, परन्तु उसका प्रभाव समाज में नगण्य था । इस प्रकार से विधवा समस्या के दो प्रमुख पक्ष थे - (१) सामाजिक दृष्टि से उसे हेय माना जाना तथा समाज में उसकी दयनीय स्थिति (२) आर्थिक दृष्टि से असहाय अथवा वैधव्य काल की आर्थिक विफलता । यद्यपि आज के युग में विधवा को आर्थिक दृष्टि से कानूनी-संरक्षण मिल चुका है परन्तु विधवा की आर्थिक स्थिति में सुधार या परिवार में उसके सम्मान की स्थिति पर विशेष अन्तर नहीं पड़ा । भारतवर्ष में समाजशास्त्रियों ने स्वतंत्र रूप से इस समस्या पर अभी तक विचार नहीं किया परन्तु आगे चल कर इस समस्या पर विचार किया जायगा ऐसी आशा है । ऐसे प्रगतिशील देशों में जहां जीवन को समाजशास्त्रीय अध्ययन विस्तृत रूप से सम्पन्न हुआ है वहां नारी-दशा की सम्पूर्ण स्थितियों पर विचार किया गया है । प्रेमचन्द इस महत्वपूर्ण समाज के प्रश्न पर सामाजिक आर्थिक दोनों पहलुओं पर विचार किया है और उनका समाधान खोजने का प्रयास किया है ।

समाज में विधवा की दयनीय स्थिति पर प्रेमचन्द टीका करते हुए लिखते हैं - 'विधवा पर दोषारोपण करना कितना आसान है । जनता को उसके विषय में नीची-से-नीची धारणा करते देर नहीं लगती मानों कुवासना ही वैधव्य की स्वाभाविक वृत्ति है , मानो विधवा हो जाना, मन की सारी दुर्वासनाओं, शारीदुर्बलताओं का उमड़ आना है ।'[१] विधवा पूर्णा के सामने एक प्रश्न चिन्ह है -

---

१- 'प्रतिज्ञा' पृ० ५४ ।

'वैधव्य क्या कलंक का दूसरा नाम है।'[1] समाज की व्यवस्था ही ऐसी है जिसके कारण पूर्णा को यह सोचना पड़ रहा है। 'वरदान' की विरजन विधवा हो गई है। कमलाचरण की की अकाल मृत्यु वृजरानी के लिए मृत्यु से कम न थी। 'उसके जीवन की आशाएं और उमंगे सब मिट्टी में मिल गईं।'[2] दुख के भार से बोझिल विधवा को परिवार में अपमानित होना पड़ रहा है क्योंकि उसकी सास प्रेमवती को 'यह भ्रम हो गया था कि ये सब आपत्तियां इसी बहू की लाई हुई है। यही अभागिन जब से घर में आई, घर का सत्यानाश हो गया। इसका पौरा बहुत निकृष्ट है।'[3] और कई बार उसने खुलकर विरजन से कह भी दिया कि 'तुम्हारे चिकने रूप ने मुझे ठग लिया। मैं क्या जानती थी कि तुम्हारे चरण ऐसे अशुभ है।'[4]

'धिक्कार' कहानी की मानी भरी जवानी में विधवा हो गई है। पितृ-मातृ विहीन मानी को चाचा की शरण लेनी पड़ती है। 'विधवा के लिए हमारे समाज में स्थान कहां है?' वंशीधर ने अब तक जो व्यवहार किया था, उससे यह आशा न हो सकती थी कि वहां वह शांति के साथ रह सकेगी, पर वह सब कुछ सहने और सब कुछ करने को तैयार थी। वह गाली, झिड़की, मार-पीठ सब सह लेगी, कोई उस पर संदेह तो न करेगा, उस पर मिथ्या लांछन तो न लगायेगा, शोहदों और लुच्चों से तो उसकी रक्षा होगी।'[5] यह है समाज की वह परिस्थितियां जिनके कारण विधवा युवती मानी को चाचा के यहां शरण लेनी पड़ती है। सब कुछ सह लेने की इच्छा रखने वाली मानी को निर्वाह होने की आशा नहीं है। 'वह घर का सारा काम करती, इशारों पर नाचती, सबको खुश रखने की कोशिश करती, पर न जाने क्यों चाचा और चाची दोनों उससे जलते रहते। उसके आते ही महरी अलग कर दी गयी। नहलाने, धुलाने के लिए एक लौंडा था, उसे भी जवाब दिया गया, पर मानी से इतना

१- 'प्रतिज्ञा' पृ० ५४
२- 'वरदान' पृ० ८७
३- वही, पृ० ८६
४- वही, पृ० ८६
५- 'धिक्कार' मा०स० भाग १ पृ० २०६

उबार होने पर भी चाची और चाची न जाने क्यों उससे मुंह फुलाये रहती । कभी चाचा घुड़कियां जमाते, कभी चाची कोसती, यहाँ तक कि उसकी चचेरी बहन ललिता भी बात बात पर उसे गालियां देती ।"[1] परिवार में विधवा नारी की दयनीय स्थिति का चित्र 'निर्मला' उपन्यास में रुक्मिणी के माध्यम से किया गया है । विधवा रुक्मिणी भाई तोताराम के यहाँ शरण लेती है । भाई की दृष्टि में वह फालतू है । तोताराम निर्मला से कहते हैं "मैंने सोचा था कि विधवा है, अनाथ है, पाव भर आटा खाएगी, पड़ी रहेगी । जब और नौकर-चाकर खा रहे हैं तो वह तो अपनी बहन ही है । लड़कों की देख-भाल के लिए औरत की जरूरत भी थी, रख ली लेकिन इसके माने नहीं कि वह तुम्हारे ऊपर शासन करे ।"[2]

सामाजिक शुभ कार्यों में विधवा की हीन दशा का चित्र प्रेमचन्द जी ने 'धिक्कार' कहानी में प्रस्तुत किया है । ललिता के विवाह में सभी स्त्रियां वस्त्राभूषणों से सुसज्जित है । "मानी की देह पर कोई आभूषण नहीं है और न उसे सुंदर कपड़े ही दिये गये हैं ।"[3] मानी का हृदय सजी हुई ललिता को देखना चाहता है । "वह मुसकराती हुई कमरे में घुसी । सहसा उसकी चाची ने भिड़ककर कहा - तुम्हें यहाँ किसने बुलाया था, निकल जा यहाँ से ।"[4] मानी ने सब कुछ तो सहा था परन्तु यह तिरस्कार उसके हृदय के मर्म को स्पर्श करने वाला था । विधवा का मन "उसे धिक्कारने लगा । तेरे छिछोरेपन का यही पुरस्कार है, यहाँसुहागिनों के बीच में तेरे आने की क्या जरूरत थी ।"[5] भारतीय समाज के हाथों में नियमों और व्यवस्थाओं का एक चिट्ठा होता है जिसके आधार पर विधवा के कर्तव्य का निर्धारण किया जाता है । 'कर्मभूमि' की विधवा "रेणुका देवी रूप और अवस्था से नहीं, विचार और व्यवहार से वृद्धा थी । दान और व्रत में उनकी आस्था न थी, लेकिन

१- 'धिक्कार' मा०स० भाग १ पृ० २०८
२- 'निर्मला' पृ० ६२
३- 'धिक्कार' मा०स० भाग १, पृ० २१०
४- वही,
५- वही,

लोकमत की अवहेलना न कर सकती थी । विधवा का जीवन तप का जीवन है । लोकमत इसके विपरीत कुछ नहीं देख सकता । रेणुका को विवश होकर धर्म का स्वांग करना पड़ता था ।"[1] "नैराश्य लीला" कहानी में प्रेमचन्द ने विधवा कैलाश कुमारी के संदर्भ में विधवा के लिए भारतीय समाज में लोकसम्मति की स्थिति का चित्रण करते हुए लिखा है - "लोक सम्मति किसी का रिआयत नहीं करती । किसी ने सिर पर टोपी टेढ़ी रखी और पड़ोसियों की आँखों में खुबह, कोई जरा अकड़कर चला और पड़ोसियों ने आवाजें कसीं । विधवा के लिए पूजा-पाठ है, तीर्थ-व्रत है, मोटा खाना है, मोटा पहनना है, उसे विनोद और विलास, राग और रंग की क्या जरूरत ? विधाता ने उसके सुख के द्वार बंद कर दिये हैं ।"[2]

"प्रतिज्ञा" तथा "प्रेमाश्रम" उपन्यास में प्रेमचन्द ने विधवाओं की स्थिति को सामाजिक आर्थिक पक्ष से देखने का प्रयास किया म है । "प्रतिज्ञा" की पूर्णा अनाथ और निस्संतान विधवा है जब कि "प्रेमाश्रम" की गायत्री सम्पन्नशालिनी नि:संतान विधवा है । एक के पास जीविका के ा साधन नहीं है और दूसरे के पास ऐश्वर्य के सारे सुख हैं परन्तु समाज के जन्तु दोनों के जीवन को दूभर करने के लिए प्रयत्नशील हैं । एक को आश्रय देकर कमलाप्रसाद उसकी आर्थिक निरीहता और संकटमय स्थिति का लाभ उठाकर उसकी मर्यादा के साथ खिलवाड़ करना चाहता है । दूसरे को ज्ञानशंकर अपनी वासना और आर्थिक भूख का शिकार बनाना चाहता है । पुरुष की वासना विधवा की निराश्रयता और उसकी दीनता के कारण किस प्रकार स्वरूप ग्रहण करती है उसका चित्र प्रस्तुत करते हुए प्रेमचन्द ने लिखा है - "कमला प्रसाद लम्पट न था । सबकी यही धारणा थी कि उसमें चाहे और कितने ही दुर्गुण हों, पर यह ऐब न था । किसी स्त्री पर ताक-झांक करते उसे किसी ने न देखा था । फिर पूर्णा के रूप ने उसे कैसे मोहित कर लिया, यह रहस्य कौन समझा सकता था । कदाचित पूर्णा की सरलता, दीनता और आश्रयहीनता ने उसकी कुप्रवृत्ति को जगा

१- "कर्मभूमि" पृ० २२-२३

२- "नैराश्यलीला" म०स० भाग ३, पृ० ५७

दिया ।'[1] असहाय अबला विधवा 'पूर्णा' के विषय में उसे कोई भय न था ---
उसने समझा था, अब मार्ग में कोई बाधा नहीं रही । केवल घरवालों की आंख
बचा लेना बाकी था और यह कुछ कठिन न था ।'[2] वह पूर्णा से लुक-छिप कर
मिलने का प्रयास करता उसे प्रलोभन देता और चाटुकारिता करता । एहसान के
मार से दबी पूर्णा सब कुछ समझती हुई नासमझ बन जाती । कमला प्रसाद ने
बलात्कार की योजना बना ली है और बगीचे में पूर्णा को ले जाकर बलात्कार करना
चाहता है । पूर्णा किसीतरह अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा कर लेती है । यह है
'प्रतिज्ञा ' की अर्थविहीन, आश्रय विहीन विधवा की मर्यादा की कहानी ।

'प्रेमाश्रम ' का ज्ञानशंकर अपनी विधवा साली गायत्री को अपने वश में करने
के लिये मायाजाल रचता है । ज्ञानशंकर कृष्ण का मक्त बन जाता है । गायत्री को
मी वह कृष्णमक्तों की परम्परा में ले आता है । रासलीला का आयोजन करके
गायत्री के साथ वृन्दावन की यात्रा का रास्ता साफ कर लेता है ।[3] गायत्री
ज्ञानशंकर के मायाजाल में फंसती जाती है । इस प्रेमकथा का अंत ज्ञानशंकर की पत्नी
विद्या की आत्महत्या और गायत्री के गृहत्याग से होता है । ज्ञानशंकर के झूठे
प्रेम का चित्र प्रस्तुत करते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं - 'उन्हें गायत्री से सच्चा प्रेम न
सही, लेकिन वह प्रेम अवश्य था जो शराबियों को शराब से होता है ।'[4] ज्ञानशंकर
गायत्री का सतीत्व और उसकी सम्पत्ति दोनों चाहता है । सम्पत्ति तो मिल गई
परन्तु प्रेमचन्द ने गायत्री के सतीत्व की रक्षा कर ली ।

विधवा जीवन का शुद्ध आर्थिक पक्ष मी है व जहां पर वह असहाय और
किंकर्त्तव्यविमूढ़ है । यह किंकर्तव्यविमूढ़ता सामाजिक विषयों की देन है । 'निर्मला '
की कल्याणी विधवा हो गई है । कल्याणी के सामने जीविका का प्रश्न है इसके
साथ ही युवा पुत्री निर्मला के ब्याह का मी । 'दरिद्र विधवा के लिए इससे बड़ी

१- 'प्रतिज्ञा' पृ० ५८

२- 'प्रतिज्ञा ' पृ० ५८

३- 'प्रेमाश्रम ' पृ० २३५-३७

४- 'प्रेमाश्रम ' पृ० ३५४ ।

और क्या विपत्ति हो सकती है कि जवान बेटी सिर पर सवार हो ? लड़के नंगे पांव पढ़ने जा सकते हैं, चौका बर्तन भी अपने हाथ से किया जा सकता है, झोपड़े में दिन काटे जा सकते हैं, लेकिन युवती कन्या घर में नहीं बैठाई जा सकती ।'[1] विधवा कल्याणी को अपनी प्रिय दुहिता को वृद्ध तोताराम के गले मढ़ना पड़ता है । निर्मला का संकटमय जीवन कल्याणी के असहाय वैधव्य की ही तो देन है ।

भारतीय कानून-व्यवस्था के अन्तर्गत नारी को सम्पत्ति अधिकार नहीं मिले थे । विधवा होने पर घर से उसका स्वामित्व उठ जाता था । इसका चित्रण प्रेमचन्द की कहानी 'बेटों वाली विधवा' में मिलता है । फूलमती विधवा हो गई है । विधवा होते ही घर में उसका अस्तित्व नगण्य हो गया है । ब्रह्म-भोज का समान घर आ रहा है । विधवा को चिन्ता है 'नियमानुसार ये सब समान उसके पास आने चाहिए थे । वह प्रत्येक वस्तु को देखती, उसे पसंद करती, उसकी मात्रा में कमी-बेशी का फैसला करती, तब इन चीजों को भण्डारे में रखा जाता । क्यों दिखाने और उसकी राय लेने की जरूरत नहीं समझी गई ।'[2] लड़के बहन के ब्याह में एक हजार से अधिक खर्च नहीं करना चाहते । विधवा माँ ५ हजार से कम नहीं । जब इस पर विवाद होता है तो पुत्रों से सुनना पड़ता है - 'कानून यही है कि बाप के मरने के बाद जायदाद बेटों की हो जाती है । माँ का हक केवल रोटी-कपड़े का है ?'[3] पुत्रों के इस तरह के वाक्य सुनकर फूलमती की आत्मा दुखी होती है और उसके मुख से जलती हुई चिनगारियों की भाँति ये शब्द निकल पड़े हैं - मैंने घर बनवाया, मैंने सम्पत्ति जोड़ी, मैंने तुम्हें जन्म दिया, पाला और मैं इस घर में गैर हूं ? मनु का यही कानून है और तुम उसी कानून पर चलना चाहते हो --- मुझे तुम्हारी आश्रिता बनकर रहना स्वीकार नहीं । इससे यही अच्छा है कि मर जायं --- मैंने पेड़ लगाया और और उसी की छांह में खड़ी नहीं हो सकती : अगर यही कानून है, तो इसमें आग

१- 'निर्मला' पृ० ५४ ।

२- 'बेटों वाली विधवा' मा०स० भाग १ पृ० ८८

३- 'बेटों वाली विधवा' मा०स० भाग १ पृ० ८२

जाय ।"[१] पुत्रों पर विधवा माँ के इन वाक्यों की प्रतिक्रिया का उल्लेख करते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं - "चारों युवकों पर माता के इस क्रोध और आतंक का कोई असर न हुआ । कानून का फौलादी कवच उनकी रक्षा कर रहा था ।"[२] "गबन" उपन्यास की विधवा रतन से उसका भतीजा मणिभूषण कहता है - "आप तो पढ़ी लिखी हैं, एक बड़े वकील की धर्मपत्नी हैं, कानून की बहुत सी बातें जानती होंगी । सम्मिलित परिवार में विधवा का अपने पुरुष की सम्पत्ति पर कोई अधिकार ही नहीं होता ।"[३] रतन चिन्तामग्न है - "मगर ऐसा कानून बनाया किसने ? क्या स्त्री इतनी नीच, इतनी तुच्छ, इतनी नगण्य है ?"[४] पति की लाखों की संपत्ति मणिभूषण ने हथिया लिया । रतन की आत्मा चीत्कार करती रह गयी । वह सोचती है अगर "वाणी में इतनी शक्ति होती और "देश में इसकी आवाज पहुँचाती, तो मैं सब स्त्रियों से कहती, बहनों, किसी सम्मिलित परिवार में ब्याह मत करना, और अगर करना तो जब तक अपना घर अलग न बना लो, चैन की नींद मत सोना -- परिवार तुम्हारे फूलों की सेज नहीं, कांटों की शैय्या है, तुम्हारा पार लगाने वाली नौका नहीं, तुम्हें निगल जाने वाला जन्तु है ।"[५] रतन के यह वाक्य सम्मिलित परिवार व्यवस्था में उस समय की नारी की पति के बाद अधिकार हीन व्यवस्था के उद्घोष हैं ।

प्रेमचन्द ने समाज में विधवा की दशा उससे सम्बन्धित अनेक प्रश्नों पर मात्र विचार ही नहीं किया बल्कि साथ ही विधवा समस्या का समाधान भी सुझाया है । पहली बात जो प्रेमचन्द-साहित्य में विधवाओं की दशा में सुधार से सम्बन्धित मिलती है वह है विधवा में आत्मबल और आत्माभिमान का होना । प्रेमचन्द ने विधवा हो जाने पर "निर्मला" उपन्यास में यह आत्मबल और आत्माभिमान सुधा में देखा है ।

१- "बेटों वाली विधवा" मा०स० भाग १ पृ० ८२-८३

२- वही, पृ० ८३

३- "गबन" पृ० २६२

४- वही, पृ० २६३

५- वही, पृ० २६६ ।

सुधा के पति डा० भुवनमोहन सिनहा निर्मला से गुप्त प्रेम करना चाहते हैं। वे एक दिन निर्मला से प्रणय निवेदन कर बैठते हैं। रहस्य खुलने पर आत्मग्लानि के कारण वह आत्महत्या कर लेते हैं। सुधा के शब्दों में "ईश्वर को जो मंजूर था, वह हुआ। ऐसे सौभाग्य से मैं वैधव्य को बुरा नहीं समझती। `दरिद्र प्राणी उस धन से कहीं सुखी है जिसे उसका धन सांप बनकर काटने दौड़े। उपवास कर लेना आसान है, विषैला भोजन करना उससे कहीं मुश्किल।"[1] सुधा के इस कथन में जहां आत्माभिमान और अपने पति के प्रति भर्त्सना है वहीं आत्मबल और आत्मनिर्भरता का भी संकेत है। विधवा नारी का आत्मसम्मान और आत्मजागृति उसे पथभ्रष्ट होने से बचा सकती है। `प्रतिज्ञा` के पूर्णा के सतीत्व की रक्षा उसके आत्मसम्मान और आत्मजागृति का प्रतिफल है। पूर्णा का स्पष्ट कथन है - "क्या तुम इतने निर्लज्ज हो कि मुझ पर बलात्कार करने के लिए भी तैयार हो? लेकिन तुम धोखे में हो। मैं अपना धर्म छोड़ने के पहले या तो प्राण दे दूंगी या तुम्हारे प्राण ले लूंगी।"[2] कमला प्रसाद की कामलिप्सा उसे हिंसक बना देती है। कमला के आगे बढ़ते ही "सहसा पूर्णा ने दोनों हाथों से कुर्सी उठा ली और उसे कमला के मुंह पर फेंक दिया। कुर्सी का एक पाया पूरे जोर से कमला के मुंह पर पड़ा, नाक में गहरी चोट आयी और एक दांत भी टूट गया। कमला इस झोंके से न संभल सका। चारों खाने चित जमीन पर गिर पड़ा नाक से खून जारी हो गया। उसे मूर्च्छा आ गई। उसे इसी दशा में छोड़कर पूर्णा लपक कर बगीचे से बाहर निकल आयी।"[3] और पूर्णा का सतीत्व बच गया। `नैराश्य लीला` की विधवा कैलाशकुमारी को समाज किसी तरह भी नहीं रहने देना चाहता। अन्त में उसे अपने पिता से कहना पड़ता है - "मैं तो कुछ मालूम भी तो हो कि संसार मुझसे क्या चाहता है। मुझमें जीव है, चेतना है, जड़ क्यों कर बन जाऊं। मुझसे यह नहीं हो सकता कि अपने को अभागिनी, दुखिया समझूं और एक टुकड़ा रोटी खाकर पड़ी रहूं। ऐसा क्यों करूं? संसार मुझे जो चाहे समझे, मैं अपने

१- `निर्मला` पृ० २०४

२- `प्रतिज्ञा` पृ० ११६

३- `प्रतिज्ञा` पृ० ११६

म को अमागिनी नहीं समझती । मैं अपने आत्म सम्मान की रक्षा आप कर सकती हूं ।"[१]

दूसरा समाधान प्रेमचन्द पुरुष के माध्यम से खोजना चाहते हैं । पुरुषों को चाहिए कि वह नारियों के सम्मान की रक्षा करें और आवश्यकता पड़ने पर वह विधवा को विवाह लेने में हिचके नहीं । वास्तव में यह समाधान विधवा विवाह द्वारा समाधान का एक माग है । इसमें पुरुष के आत्मबल और साहस की आवश्यकता पर बल दिया गया है । अमृतराय का यह निर्णय - "एक बार जो बात ठान ली, वह ठान ली । अब ब्रह्मा भी उतर आये तो मुझे विचलित नहीं कर सकते । पण्डित अमरनाथ की युक्ति मेरे मन में बैठ गई । मुझे ऐसा जान पड़ता है कि प्रेम ही नहीं, किसी कुंवारी कन्या से विवाह करने का अधिकार मुझे नही है ।"[२] अमृतराय विधवा विवाह की प्रतिज्ञा का निर्वाह विधवा विवाह करके तो नहीं कर पाते, परन्तु विधुर रह कर वह विधवा समस्या के समाधान के लिए अपना तन-मन-धन अर्पित कर देते हैं । `नागपूजा ` कहानी में प्रेमचन्द ने एक ऐसे युवक की सृष्टि की है जो विधवा तिलोत्तमा से ब्याह करने के लिए राजी हो जाता है । उन्होंने लिखा है - "कई महीने के लगातार के प्रयास के बाद एक कुलीन सिद्धांतवादी, सुशिक्षित वर मिला । उसके घरवाले भी राजी हो गये ।"[३] इस प्रकार के शिक्षित युवक और उनके समझदार परिवार बाल विधवाओं और युवा विधवाओं के पुनर्विवाह की समस्या को सुलझा सकते हैं ।

प्रेमचन्द विधवा नारी के पुनर्विवाह को समस्या का समाधान मानते थे । उन्होंने स्वत: एक बाल विधवा से विवाह किया था और उसके साथ सुखी जीवन की सूचना देते हुए उन्होंने डा० इन्द्रनाथ मदान को लिखा था - "मैंने एक बाल विधवा से विवाह किया है और उसके साथ काफी सुखी हूं ।"[४] प्रेमचन्द `सुभागी ` कहानी की ११ वर्ष की अवस्था में विधवा होने वाली सुभागी का विवाह करवा देते हैं ।[५]

१- `नैराश्यलीला` मा० स० माग ३ पृ० ६४

२- `प्रतिज्ञा ` पृ० ३६

३- `नागपूजा ` मा०स० माग ७ पृ० २९२

४- चिट्ठी पत्री माग २ पृ० २३५

५- `सुभागी ` मा०स० माग १ पृ० २६२

`धिक्कार` कहानी में युवक इन्द्रनाथ विधवा मानीसे विवाह कर लेता है परन्तु मानी को अपने चाचा की फटकार से आत्महत्या कर लेनी पड़ती है।[१] "नैराश्य लीला" कहानी के पं० हृदयनाथ यह समझ गए हैं कि कैलाशकुमारी का समाज के प्रति विद्रोह नैराश्य की अंतिम अवस्था है। पत्नी द्वारा उपाय पूछे जाने पर उनका उत्तर है - "बस, एक ही उपाय है, पर उसे जबान पर नहीं ला सकता।"[२] हृदयनाथ ने पुनर्विवाह की अनिवार्यता को मन से मान लिया है। प्रेमचन्द ने `नागपूजा` कहानी में विधवा विवाह सम्पन्न करा दिया है। विधवा तिलोत्तमा के पिता `जगदीश चन्द्र पक्के धर्मावलम्बी आदमी थे, पर तिलोत्तमा का वैधव्य उनसे न सहा गया। उन्होंने तिलोत्तमा के पुनर्विवाह का निश्चय किया।"[३] समाज में उंगली उठी लोगों ने तालियां बजाईं पर जगदीश बाबू अपने निश्चय पर अटल रहे। विवाह के लिए एक युवक और उसका परिवार भी राजी हो गया। प्रेमचन्द इस पर अपनी प्रतिक्रिया लिखते हैं। "यह केवल तिलोत्तमा का पुनर्संस्कार न था, बल्कि समाज सुधार का एक क्रियात्मक उदाहरण था। समाज सुधारकों के दल दूर से विवाह में सम्मिलित होने के लिए आने लगे, विवाह वैदिक रीति से हुआ - पत्रों में खूब आलोचनाएं हुईं बाबू जगदीशचन्द्र के नैतिक साहस की सराहना होने लगी।"[४] `स्वामिनी` कहानी की गांव की विधवा प्यारी अपने निर्वाह के लिए जोखू को अपना जीवन साथी चुन लेती है।"[५]

प्रेमचन्द विधवाओं को आर्थिक संरक्षण भी देना चाहते थे। उनकी इस हार्दिक इच्छा का बोध `हंस` अक्तूबर १९३३ के लेख `विधवाओं के गुजारे का बिल` से होता है जहां पर वह लिखते हैं - "श्री हरविलास शारदा ने अपनी सामाजिक सेवा से भारत के इतिहास में अमर पद प्राप्त कर लिया है। अब उन्होंने हिन्दू महिलाओं के गुजारे का बिल एसेम्बली में पेश करके समाज की जो सेवा की है, उसके लिए समाज को उनका कृतज्ञ होना चाहिए। हिन्दू समाज के पतन का मुख्य कारण अगर जाति भेद

१- `धिक्कार` मा०स० भाग १ पृ० २०२

२- `नैराश्य लीला` मा० स० भाग ३ पृ० ६०

३- `नागपूजा` मा०स० भाग ७ पृ० २६२

४- वही, पृ० २६३

५- `स्वामिनी` मा०स० भाग १ पृ० १३८

है तो विधवाओं की दुर्दशा भी उसका खास सबब है।"[1] इसी लेख में उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि वह स्त्री जिसने जीवन में सब कुछ अर्पित करके घर को संभाला है पति की मृत्यु के बाद वह परिवार में ही अपमानित होती है। "इस दशा में कितनी ही घर से निकल जाती है कितनी ही अपमान और कठिनाइयों से तंग होकर पतिता हो जाती है।"[2] लेख स्मृतियों की शरण लेकर इस बिल को रद्द कराने की चेष्टा न करें, विधवाओं के साथ समाज ने बड़ा अन्याय किया है, और अन्याय को पाल कर कोई समाज सरसब्ज नहीं हो सकता।"[3]

प्रेमचन्द ने विधवाओं के सामने निर्वाह और रक्षा के प्रश्न के हल का उपाय सुझाया है। अमृतराय विधवाओं के संरक्षण के लिए आश्रम की स्थापना करना चाहते हैं। उन्होंने असीसंगम के निकट ५० एकड़ जमीन ले ली थी वहीं पर आश्रम की स्थापना करना चाहते हैं। अपना कैण्टोमैण्ट वाला बंगला बेच डाला है।[4] प्रेमा के शब्दों में "वह अमृतराय जिसके पास कल लाखों की जायदाद थी, आज भिखारी बन कर अन्य से भिक्षा मांग रहा है।"[5] इसलिए क्योंकि विधवाओं को शरण मिल सके। प्रेमा अपने इसी भाषण में चन्दे की अपील करती हुई कहती है "यह सभा आज इसलिए बुलाई गई है कि आपसे इस नगर में एक ऐसा स्थान बनाने के लिए सहायता मांगी जाय, जहां हमारी अनाथ, आश्रयहीन बहनें अपनी मान-मर्यादा की रक्षा करती हुए शान्ति से रह सकें। कौन ऐसा मुहल्ला है, जहां ऐसी दस पांच बहनें नहीं हैं। उनके ऊपर जो बीतती है, वह क्या आप अपनी आंखों से नहीं देखते। जिधर आंखें उठती हैं उधर ही उन्हें पिशाच खड़े दिखाई देते है, जो उनकी दीनावस्था को अपनी कुवासनाओं के पूरा करने का साधन बना लेते हैं। हमारी लाखों बहनें इस भांति केवल जीवन निर्वाह के लिए पतित हो जाती हैं। क्या आपको उन पर दया नहीं आती ?

१- १६ अक्तूबर १९३३ दे० विविध प्रसंग भाग ३ पृ० २६४

२- वही, दे० वि० प्र० भाग३ पृ० २६४

३- वही दे० वि० प्र० भाग३ पृ० २६४

४- 'प्रतिज्ञा' दे० पृ० १४३

५- वही, दे० पृ० ८८

मैं विश्वास से कह सकती हूं कि अगर उन बहनों को सूखी रोटियां और मोटे कपड़ों का भी सहारा दे, तो अन्त समय तक अपने सतीत्व की रक्षा करती रहें।'[१] प्रेमा के इस कथन से वनिता आश्रम के उद्देश्य के ज्ञान के साथ उसके निर्माण के प्रयास का बोध होता है। 'प्रतिज्ञा' उपन्यास में प्रेमचन्द विधवा आश्रम की स्थापना करवा देते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रेमचन्द ने एक समाजशास्त्री की भांति समस्या के विभिन्न पहलुओं पर विचार करके सुझाव देने का प्रयास किया है। उन्होंने समाज सुधारक की भांति सुधार का प्रयत्न भी किया है।

वैवाहिक प्रश्न : समाधान की खोज

प्रस्तुत अध्याय की भूमिका में हम देख चुके हैं कि प्रसिद्ध समाजशास्त्री बौहम और जोधर ने सामाजिक विकृतियों से संबंधित प्रश्नों के अध्ययन के संदर्भ में विवाह-विच्छेद के प्रश्नों को समाजशास्त्र का अध्ययन विषय माना है। निश्चित रूप से पश्चिमी देशों में विवाह-विच्छेद की समस्या समाज की एक प्रमुख समस्या बन गई है। यही कारण है कि उन्होंने विवाह विच्छेद को सामाजिक प्रश्नों के अध्ययन में स्थान दिया है। परन्तु उल्लेखनीय यह है कि विभिन्न देशों में किसी भी संदर्भ में विभिन्न दशाओं के कारण प्रश्न सम्बन्धी विभेद अनिवार्य है। पूर्व में जापान को छोड़कर अन्य देशों में पश्चिमी देशों से सांस्कृतिक भेद है। अत: वैवाहिक परम्परा और उससे सम्बन्धित अनेक तरह के सामाजिक प्रश्नों में भेद होना अनिवार्य है। भारतवर्ष में विवाह के सम्बन्ध में पश्चिमी देशों की अपेक्षा भिन्न दृष्टिकोण और मान्यताएं हैं। अत: यहां की वैवाहिक प्रश्नों से सम्बन्धित समस्याओं का स्वरूप भी भिन्न भिन्न है। बौहम और जोधर के संकेतों ने हमें इस बात की स्वतंत्रता प्रदान कर दी है कि समाजशास्त्र के अन्तर्गत वैवाहिक प्रश्नों का अध्ययन संभव है। प्रेमचन्द-साहित्य में हम विवाह से सम्बन्धित प्रश्नों और समस्याओं का अध्ययन भारतीय संदर्भ में ही करेंगे। भारतवर्ष में विवाह संबंधी जो प्रमुख वैवाहिक प्रश्न और समस्याएं हैं, रीति

१- 'प्रतिज्ञा' पृ० ८७-८८

परम्परा और आधुनिक परिस्थितियों के फलस्वरूप उत्पन्न हुई है वे हैं दहेज, वैवाहिक चयन, अनमेल विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, अवैध प्रेम तथा विवाह विच्छेद या तलाक आदि। प्रस्तुत शीर्षक के अन्तर्गत हम इन्हीं का अध्ययन करेंगे।

दहेज : प्रेमचन्द युग में दहेज की समस्या अपने उग्र रूप में विद्यमान थी। भारतवर्ष में प्राचीन काल से कन्या को पवित्र माना जाता रहा है। पिता उसके विवाह में अपनी सामर्थ्य के अनुसार कुछ न कुछ देता रहा है परन्तु उस समय इस प्रथा में के अनिवार्यता का स्वरूप नही ग्रहण किया था। धीरे धीरे यह प्रथा विवाह का अनिवार्य अंग बन गई। निर्धन माता-पिता के लिए कन्या का विवाह एक समस्या बन गई। हिन्दू समाज में इसका स्वरूप अत्यन्त जटिल और परिणाम् अत्यन्त भयावह बन गई। हिन्दू समाज में इसका स्वरूप-बन चित्रण करते हुए उद्धार कहानी में लिखा है - "हिन्दू समाज की वैवाहिक प्रथा, इतनी दूषित, इतनी चिन्ताजनक, इतनी भयंकर हो गई है कि कुछ समझ में नहीं आता, उसका सुधार क्यों कर हो ? विरले ही ऐसे माता पिता होंगे, जिनके सात पुत्रों के बाद भी एक कन्या उत्पन्न हो जाए, तो वे सहर्ष उसका स्वागत करें। इसका कारण यही है कि दहेज की दर दिन दूनी, रात चौगुनी, पावस के जल वेग के समान बढ़ती चली जा रही है, जहां दहेज की सैकड़ों में बातें होती थीं वहां अब हजारों तक नौबत पहुंच गई है। ---- कितने ही माता पिता इसी चिन्ता में घुल घुल कर अकाल मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। कोई सन्यास ग्रहण कर लेता है, कोई बूढ़े के गले कन्या को मढ़ कर अपना गला छुड़ाता है, पात्र-कुपात्र के विचार करने का मौका कहां, ठेलमठेल है।"[1] विवाह में दहेज को आय का साधन मान लिया गया है। वे लोग जो इस संकट को झेल चुके हैं अपने लड़कों के विवाह में लड़की के माता-पिता के संकट पर विचार न करके अपना घाटा पूरा करना चाहते हैं। इसी कहानी में प्रेमचन्द ने इस तथ्य का उद्घाटन करते हुए लिखा है - "लुत्फ तो यह है कि जो लोग बेटियों के विवाह में कठिनाइयों को भोग चुके होते हैं वही अपने बेटों के अवसर पर बिलकुल भूल जाते हैं कि हमें कितनी ठोकरें खानी पड़ी थी, जरा भी सहानुभूति नहीं प्रकट करते, बल्कि कन्या के विवाह

१- 'उद्धार' मा०स० भाग ३ पृ० ३८-३९

में जो तवान उठाया था उसे चक्रवृद्धि व्याज के साथ बेटे के विवाह में वसूल करने पर कटिबद्ध हो जाते हैं।"[१] सीधी बात तो यह है कि दहेज अधिक मांगने का यह सीधा बहाना हो जाता है। `सेवा सदन` के दरोगा कृष्णचन्द्र से एक ऐसे ही महाशय सुमन के विवाह के सम्बन्ध में कहते हैं - "मैं स्वयं इस कुप्रथा का जानी दुश्मन हूं, लेकिन करूं क्या, अभी पिछले साल लड़की का विवाह किया, दो हजार रुपये केवल दहेज में देने पड़े, दो हजार और खाने-पीने में खर्च पड़े, आप ही कहिए यह कमी कैसे पूरी हो ?"[२] दहेज लेने के बहानों की चर्चा प्रेमचन्द ने "एक आंच की कसर` कहानी में किया है। दूसरे लोगों की आड़ लेकर दहेज मांगने वालों के सम्बन्ध में वे लिखते हैं - `साहब हमें तो दहेज से सख्त नफरत है। यह मेरे सिद्धान्त के विरुद्ध है, पर करूं क्या, बच्चे की अम्मी जान नहीं मानती। कोई अपने बाप पर फेंकता है, कोई और किसी सुरटि पर।"[३] इसी संदर्भ में वे एक पत्र से कहलवाते हैं - `अजी, कितने तो ऐसे बेहया हैं, जो साफ साफ कह देते हैं कि हमने लड़के की शिक्षा दीक्षा में जितना खर्च किया है, हमें मिलना चाहिए। मानों यह रुपये किसी बैंक में जमा किये थे।"[४] प्रेमचन्द ने सेवासदन में एक ऐसे बेहया का चित्रण किया है। ऐसे सज्जन के विषय में वे लिखते हैं - "दूसरे महाशय इनसे (लड़के के विवाह की पूर्ति के बदले दहेज मांगने वाले से) अधिक नीति कुशल थे। बोले, दरोगा जी, मैंने लड़के को पाला है, सहस्त्रों रुपये उसकी पढ़ाई में खर्च किये हैं। आपकी लड़की को इससे उतना ही लाभ होगा जितना मेरे लड़के को। तो आप ही न्याय कीजिए कि यह सारा भार मैं अकेले कैसे उठा सकता हूं।"[५]

शिक्षित समुदाय जिससे इस समस्या के निदान के सम्बन्ध में आशा की जा सकती है वहां पर यह रोग अधिक प्रबल है। शिक्षा के साथ वर का मूल्य बढ़ता

१- `उद्धार` मा०स० भाग३ पृ० ३६

२- `सेवासदन` पृ० ७

३- `एक आंच की कसर` मा०स० भाग ३ पृ० ६१

४- `वही`, ,, पृ० ६१

५- `सेवासदन` पृ० ७

जाता है। सेवासदन के दारोगा कृष्णचन्द्र - "शिक्षित परिवार चाहते थे। वह समझते थे कि ऐसे घरों में लेन देन की चर्चा न होगी, पर उन्हें यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि बेटों का मोल उनकी शिक्षा के अनुसार है कोई चार हजार सुनाता, कोई पांच हजार और कोई इससे भी आगे बढ़ जाता।"[1] शिक्षित समुदाय के लोग स्वांग रचते हैं वह धूर्तता आसानी से कर लेते हैं। 'एक आंच की कसर' के महाशय यशोदानन्दन समाजसुधारक और दहेज प्रथा के विरोध में भाषण देते घूमते हैं। पुत्र के विवाह में २५ हजार रूपया चुपके से तय कर रखा है।"[2] 'निर्मला' उपन्यास के सुशिक्षित आबकारी विभाग के ऊंचे ओहदे के अधिकारी बाबू मालचन्द्र दहेज के कारण ही अपने पुत्र भुवनमोहन की सगाई छोड़ देते हैं क्योंकि मृत उदयभानुलाल की पत्नी कल्याणी से दहेज मिलने की आशा नहीं है। बाबू मालचन्द्र जी दहेज लेने वालों को कोसते हुए कहते हैं - "मेरा बस चले, तो दहेज लेने वालों और दहेज देने वालों दोनों को गोली मार दूं, फिर चाहे फांसी क्यों न हो जाय। पूछो आप लड़के का ब्याह करते हैं या उसे बेचते हैं। अगर आपको लड़के की शादी में दिल खोल कर खर्च करने का अरमान है तो शौक से खर्च कीजिए, लेकिन जो कुछ कीजिये, अपने बल पर। यह क्या कि कन्या के पिता का गला रेतिए। नीचता है, घोर नीचता है। मेरा बस चले तो इन पाजियों को गोली मार दूं।"[3] परन्तु यह नीचता और पाजीपन वह स्वतः करते हैं। एक अनाथ विधवा की कन्या से पुत्र का विवाह नहीं कर सकते। बहाना है - "ईश्वर को मंजूर ही न था कि यह लक्ष्मी मेरे घर आती, नहीं तो क्या यह वज्र गिरता?"[4] विवाह की मनाही के रहस्य का उद्घाटन प्रेमचन्द ने इनकी पत्नी रंगीलीबाई से कराया है। रंगीलीबाई कहती है - "क्यों जी, तुम मुझसे भी उड़ते हो, दाई से पेट छिपाते हो? - - - जब वकील साहब जीते थे, तो तुमने सोचा था कि 'ठहराव की जरूरत भी क्या है, वह खुद ही जितना उचित समझेंगे

१- 'सेवासदन' पृ० ६

२- 'एक आंच की कसर' मा०स० भाग ३ दे०

३- 'निर्मला' पृ० ४१-४२

४- वही, पृ० ४२

देंगे, बल्कि बिना ठहराव के और भी ज्यादा मिलने की आशा होगी। अब तो वकील साहब का देहान्त होगया तो तरह तरह के हीले-हवाले करने लगे।"[1] पुत्र भुवनमोहन तो पिता से भी २० कदम आगे हैं। उसकी इच्छा है - "कहीं ऐसी जगह शादी करवाइए कि खूब रूपये मिले। और न सही, एक लाख का तो डौल हो, वहां अब क्या रखा है।"[2]

प्रेमचन्द ने समाज की इस विषम समस्या के परिणामों की ओर भी संकेत किया है। दारोगा कृष्णचन्द्र के सामने सुमन के विवाह का प्रश्न है। उनके पास दहेज के लिए रूपये नहीं है। दारोगा साहब के सामने "अब दो ही उपाय हैं या तो सुमन को किसी कंगाल के पल्ले बांध दूं या कोई सोने की चिड़िया फंसाऊं।"[3] कृष्णचन्द्र अपनी सामर्थ्य रहते अपनी लाडली सुमन को कंगाल के यहां कैसे झोंकते। कोई पिता लड़की को जान-बूझकर ऐसे स्थान में नहीं झोंकेगा जहां पर जीवन भर उसे दुख झेलना पड़े। दारोगा कृष्णचन्द्र पहली बार दहेज के लिए रूपयों के खातिर घूस लेते हैं और नौकरी से अलग होने के साथ ही ५ साल की कैद की सजा काटते हैं। सुमन के मामा उमानाथ के सामने भी दहेज प्रश्न के रूप में उपस्थित है। "बाहर वालों की लम्बी चौड़ी बातें सुनी तो उनके होश उड़ गये, बड़े आदमियों का तो कहना ही क्या, दफ्तरों के मुसद्दी और क्लर्क भी हजारों का राग अलापते।"[4] सुमन का विवाह गजाधर ऐसे दरिद्र युवक से होता है और समाज का वेश्या बनने का उसका परिणाम किसी पाठक से छिपा नहीं। इसी प्रकार विधवा कल्याणी भी अपनी पुत्री निर्मला के लिए सुयोग्य वर नहीं खोज पाती क्योंकि उसके पास धन नहीं है दहेज के लिये। "अभागिनी को अच्छा घर वर कहां मिलता। अब तो किसी भांति सिर का बोझा उतारना था, किसी भांति लड़की को पार लगाना था उसे कुंए में झोंकना था। वह रूपवती है, गुणशीला है, चतुर है, कुलीन है तो हुआ करे,

---

१- "निर्मला" पृ० ४६-४७

२- वही, पृ० ५८

३- "सेवासदन" पृ० १५

४- वही, पृ० १५

दहेज हो तो सारे दोष गुण हैं। प्राणों का कोई मूल्य नहीं केवल दहेज का मूल्य है।"[१] कल्याणी को अपनी पुत्री को वृद्ध तोताराम के गले बांधना पड़ता है और निर्मला आजन्म कुढ़न-पीड़ा और संत्रास्त के बीच जीवन बिताकर अपना प्राण निछावर कर देती है। 'सेवासदन' और 'निर्मला' उपन्यासों की 'सुमन' और 'निर्मला' का अस्त-व्यस्त और असंतुलित जीवन दहेज के लिए माता-पिता के पास धन के अभाव का परिणाम है।

यह तो प्रकट ही है कि प्रेमचन्द दहेज प्रथा को अत्यन्त निंद्य मानते थे। और इस प्रथा को हेय दृष्टि से देखते थे। प्रेमचन्द इस समस्या का कोई स्पष्ट समाधान नहीं दे सके। उस समय की स्थिति में समाधान देना झूठी आदर्शवादिता ही होगी। इस प्रथा के सुधारक यशोदानन्दन का भण्डा फोड़कर तथा उनकी सामाजिक अवहेलना कराकर प्रेमचन्द ने 'एक आंच की कसर' कहानी में थोथे समाज सुधारकों को सचेत किया है। 'निर्मला' उपन्यास की सुधा वर और वर के पिता दोनों को दहेज के सम्बन्ध में अपराधी करार करते हुए कहती है कि "वर को इस समस्या के सुलझाने में आत्मबल का परिचय देना चाहिए। उसके अनुसार "वर और उसके पिता दोनों अपराधी हैं, किन्तु वह अधिक। बूढ़ा आदमी सोचता है - मुझे सारा खर्च संभालना पड़ेगा। कन्यापक्ष से जितना ऐंठ सकूं, अच्छा, मगर यह वर का धर्म है कि यदि वह स्वार्थ के हाथों बिलकुल बिक नहीं गया है तो अपने आत्मबल का परिचय दे।"[२] इसके अलावा आत्मनिर्णय और विद्रोह के रूप में उन्होंने इस प्रथा के विरुद्ध अपने पात्रों के माध्यम से आवाज उठाई है। 'कुसुम' कहानी का वर अपनी पत्नी ब कुसुम को इसलिए नहीं बुलाता क्योंकि उसके श्वसुर ने उसके विलायत जाने की व्यवस्था नहीं की। रहस्य खुलने पर माता-पिता दामाद को रुपया देना चाहते हैं, परन्तु 'कुसुम' का निर्णय है - "ऐसे देवता का रूठे रहना ही अच्छा। जो आदमी इतना स्वार्थी, दम्भी, नीच है उसके साथ मेरा निर्वाह न होगा। मैं कहे देती हूं, वहां रुपये गये, तो मैं जहर खा लूंगी। इसे दिल्लगी न समझना। मैं ऐसे आदमी का मुंह नहीं देखना चाहती।"[३] नारी का यह स्वाभिमान और उसकी

१- 'निर्मला' पृ० ५५

२- वही, पृ० १२८

३- 'कुसुम' मा०स० भाग २ पृ० २४

दृढ़ता पुरुष को लालचपन से बचा सकती है। इसी भाँति `विद्रोही` कहानी का नायक दहेज प्रथा के विरुद्ध विद्रोह करता है। उसका विवाह तय हो चुका है परन्तु `उधर एक दूसरा ही गुल खिल गया। शहर के एक नामी रईस ने चाचा जी से मेरे विवाह की बात छेड़ दी और आठ हजार रूपये दहेज का वचन दिया। चाचा जी के मुँह से लार टपक पड़ी।`[१] पहले विवाह का तय रिश्ता तोड़ दिया जाता है परन्तु इधर युवक का निर्णय विवाह न करना है। `कायाकल्प` उपन्यास का सुशिक्षित समझदार पात्र चक्रधर भी दहेज प्रथा का विरोध करता है। उसकी माँ निर्मला चक्रधर से विवाह के लिए आए हुए यशोदानन्दन के आगमन पर कहती है - `कुछ देंगे दिलायेंगे कि वही ५१ रूपये वालों में है।` चक्रधर का उत्तर है - `अगर तुम मेरे सामने देने दिलाने का नाम लोगी तो जहर खा लूँगा।` माता पिता द्वारा अधिक दबाव डालने पर वह कहता है - `तो बाजार में खड़ा करके बेच क्यों नहीं लेतीं? बैलो के टके मिलते हैं।`[२] इस प्रकार प्रेमचन्द युवक और युवतियों के स्वतंत्र समझदार दृढ़ निश्चयों के माध्यम से इस प्रथा के दुष्परिणाम को रोकने का प्रयत्न करते हैं। प्रेमचन्द इस प्रथा के साथ डाल, गहने और जोड़ी की प्रथा का भी उन्मूलन चाहते हैं तभी दहेज प्रथा में सुधार संभव है। उनका एक समझदार पात्र कहता है - `दहेज प्रथा के साथ ही डाल, गहने और जोड़ों की प्रथा क भी त्याज्य है केवल दहेज को मिटाने का प्रयत्न करना व्यर्थ है।`[३] ऐसा वह इसलिए चाहते हैं कि लड़के वाले के सामने भी विवाह के समय अपव्यय का प्रश्न नहीं होना चाहिए। यदि उसे उपर्युक्त सामग्रियाँ ले जाने के लिए धन की आवश्यकता होगी तो वह चाहेगा लड़की वाले कुछ दें।

<u>वैवाहिक चयन और अनमेल विवाह</u> :- भारतीय समाज में लड़कियों का विवाह अनिवार्य है। यदि किसी की लड़की अविवाहित रह गई या उसके विवाह में विलम्ब हुआ तो समाज के लोग उस पर ऊँगली उठाते हैं और उसकी अमकर

१- `विद्रोही` मा०स० भाग २ पृ० २०३

२- `कायाकल्प` पृ० ११

३- `एक आँच की कसर` मा०स० भाग ३ पृ० ६१

आलोचना करते हैं । लड़की के विवाह की अनिवार्यता और माता पिता की चिन्ता का बोध कराते हुए प्रेमचन्द `उद्धार` कहानी में लिखते हैं - `कन्या का जन्म होते ही उसके विवाह की चिंता सिर पर सवार हो जाती है और आदमी उसी में डुबकियां खाने लगता है । ---- बेटे एक दरजन भी हों तो माता-पिता को चिंता नहीं होती । वह अपने ऊपर उनके विवाह भार को अनिवार्य नहीं समझता, यह उसके लिए `कम्पलसरी` विषय नहीं, `आप्सनल` विषय है । ---- लेकिन कन्या का विवाह तो करना ही पड़ेगा, उससे भाग कर कहां जायेंगे ?`[1] `प्रतिज्ञा` उपन्यास की प्रेमा की बस चलती, तो वह अविवाहित ही रहना पसन्द करती, पर जवान लड़की बैठी रहे, यह कुल के लिए घोर अपमान की बात थी ।`[2] `नरक का मार्ग` कहानी की नायिका भी प्राचीन वैवाहिक प्रथा की शिकार है । उसके अनुसार `कदाचित मैं जीवन-पर्यन्त अपने घर आनन्द से रह सकती थी लेकिन इस लोक-प्रथा का बुरा हो, जो अभागिनी कन्याओं को किसी न किसी पुरुष के गले बांध देना अनिवार्य समझती है ।`[3]

विवाह की यह अनिवार्यता माता-पिता को विवश करती है कि वह अपनी लड़की का विवाह किसी न किसी पुरुष से कर दें, चाहे वह खूसट हो, दुहाजू हो, वृद्ध हो, लम्पट हो, शराबी हो, व्यभिचारी हो अथवा निर्दयी हो । विवाह की इस अनिवार्यता ने विवाह से सम्बन्धित दहेज की गंभीर समस्या को तो जन्म दिया ही है इसके अलावा अनमेल विवाह की समस्या को भी उत्पन्न कर दिया है । विवाह की अनिवार्यता और चली आती हुई परिपाटी वैवाहिक चयन ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्न को झुठलाती रही है और जिसका परिणाम जीवन में घातक सिद्ध होता रहा है । परम्परागत मोह ने भारतीय समाज में कुल, जाति, वंश के नाम पर विवाह करने के कारण विवाह के भयावह परिणाम दिखाए हैं । `निर्मला` उपन्यास की कल्याणी के सामने एक लड़का है `रेल के सीगे में ५०रू० महीना पाता है । मां बाप नहीं है ।

१- `उद्धार` मा०स० भाग ३ पृ० ३८

२- `प्रतिज्ञा` पृ० ३३

३- `नरक का मार्ग` मा०स० भाग३ पृ० २४ ।

बहुत रूपवान, सुशील और शरीर से हृष्ट-पुष्ट, कसरती जवान है। मगर खानदान अच्छा नहीं है ---- उम्र कोई २० साल होगी।"[१] कल्याणी का निर्णय है - खानदान में दाग न होता तो मंजूर कर लेती। देखकर तो मक्खी नहीं निगली जाती।"[२] और निर्मला का विवाह पैंतालीस साल के तोताराम से कर देती है।[३] इन्हीं सब कारणों से 'दो सखियां' कहानी का एक सुशिक्षित पात्र विनोद प्रचलित विवाह प्रणाली का दोष बताता हुआ कहता है --- मैं वर्तमान वैवाहिक प्रथा को पसन्द नहीं करता। इस प्रथा का आविष्कार उस समय हुआ था, जब मनुष्य सभ्यता की प्रारम्भिक दशा में था। तब से दुनिया बहुत आगे बढ़ी है। मगर विवाह प्रथा में जौ भर भी अंतर नहीं पड़ा। यह प्रथा वर्तमान काल के लिए उपयोगी नहीं है।"[४] पंडित उमानाथ कई स्थान पर - "कुल मर्यादा का हाल सुनकर विवाह के लिए उत्सुक हुए पर कहीं तो कुण्डली न मिली और कहीं मन न भरा। वह अपनी कुल मर्यादा से नीचे न उतरना चाहते थे।"[५] इसी कारण 'सेवासदन' की सुमन का विवाह कुलीनता के आधार पर गजाधर से होता है। उसके मामा उमानाथ ने "मान, विद्या, रूप और गुण की ओर आंखें बंद करके केवल कुलीनता को पकड़ा। इसे वह किसी भांति न छोड़ सकते थे।"[६]

'वरदान' उपन्यास के मुंशी संजीवन लाल अपनी पुत्री विरजन का प्रतापचन्द्र जैसे होनहार, कुशल और उदार चिरपरिचित नवयुवक के साथ विवाह न करके कुल और पिता के ऐश्वर्य को देखकर लम्पट, दुष्ट, दुश्चरित्र और आवारा कमलाचरण से कर देते हैं। कमलाचरण के दुर्गुणों को सुनकर मुंशी जी सारा दोष पत्नी पर मढ़ते हुए कहते हैं - "यह सब तुम्हारी ही करतूत है, तुम्हीं ने कहा था, घर वर दोनों अच्छे हैं, तुम्हीं रीझी हुई थीं।"[७] पत्नी पर वे व्यर्थ ही आरोप लगाते हैं। वह उनका

१- 'निर्मला' पृ०५६-५७

२- वही, पृ० ५७

३- वही, पृ० ५८

४- 'दो सखियां', मा०स० भाग ४, पृ० २३८-२३९

५- 'सेवासदन' पृ० १५

६- वही, पृ० १६

७- 'वरदान' पृ० ३५

आलसपन है और अकर्मण्यता थी जिसके कारण विरजन को कमला के गले मढ़ा गया था। प्रेमचन्द इस सम्बन्ध में स्पष्ट लिखते हैं - "मुंशी जी ने तो अकर्मण्यता और आलस्य के कारण छान-बीन न की, यद्यपि उन्हें अनेक अवसर प्राप्त थे।"[१] प्रेमचन्द इस आलस्य औरर असावधानी को पूरे समाज में देखते हैं। इसी कारण वे लिखते हैं - "मुंशी जी के अगणित बान्धव इसी भारतवर्ष में अब भी विद्यमान हैं जो अपनी प्यारी कन्याओं को इसी प्रकार नेत्र बन्द करके कुएं में ठकेल दिया करते हैं।"[२] 'निर्मला' उपन्यास की कल्याणी से मोटे राम शास्त्री आग्रह करते रह गए कि "हजार का मुंह न देखिए, छापे खाने वाला लड़का रत्न है। उसके साथ कन्या का जीवन सफल हो जायगा।"[३] कल्याणी का निर्णय है - "आप ईश्वर का नाम लेकर वकील साहब को टीका कर आइए। --- अगर लड़की के भाग्य में सुख भोगना पड़ा है, तो जहां जायगी, सुखी रहेगी, दुख भोगना है तो वहां जायगी दुख भोगेगी।"[४] कल्याणी के पास मकान था, कुछ नकद था, कई हजार के गहने थे।"[५] परन्तु "उसे अपने लड़के लड़कियों से कहीं ज्यादा प्यारे थे --- इसलिए कोई बड़ी रकम दहेज में न दे सकती थी"[६] यह है समाज में कन्या का स्थान और उसके भाग्य का खेल।

कुल प्रतिष्ठा के साथ वैवाहिक चयन को धन भी प्रभावित करता है। निर्मला के वैवाहिक चयन में कल्याणी की आर्थिक असमर्थता और भविष्य की बेटों की चिन्ता का महत्वपूर्ण स्थान है। 'गोदान' का गांव का किसान होरी आर्थिक रूप से जर्जर हो चुका है। "अब वह उस अन्तिम दशा में पहुंच गया, जब उसमें आत्म विश्वास भी न रहा था।"[७] इसी समय पं०दातादीन का प्रस्ताव है "मेरा जजमान है। बड़ा अच्छा जमाना है उसका। खेत अलग, लेन-देन अलग। --- कई महीने हुए उसकी औरत मर गई है। सन्तान कोई नहीं, अगर रुपिया का

१- 'वरदान' पृ० ३५
२- वही, पृ० ३५
३- 'निर्मला' पृ० ५८
४- वही, पृ० ५८
५- वही, पृ० ५६
६- वही, पृ० ५५-५६
७- 'गोदान' पृ० २५१

ब्याह उससे करना चाहो, तो मैं उसे राजी कर दूं ।"[1] रामसेवक अधेड़ है । होरी इस प्रश्न पर जितना ही विचार करता, उतना ही उसका दुराग्रह कम होता जाता था । कुल मर्यादा की लाज उसे कुछ कम न थी, लेकिन जिसे असाध्य रोग ने ग्रस लिया है, वह साध-असाध की परवाह कब करता है ।"[2] अन्ततः होरी को अपनी कन्या का हाथ रामसेवक को देना पड़ता है । ये रहे आर्थिक अवस्था के दयनीय पक्ष । इसके अलावा धन का बाहुल्य भी अयोग्य वर का चयन करा देता है । 'कर्मभूमि' की सरला नैना का विवाह उसके पिता समरकान्त लाला धनीराम के पुत्र मनीराम से उनकी दौलत देखकर तय करते हैं । नैना ने सुन रखा है कि मनीराम "शराबी है, व्यभिचारी है, मूर्ख है, घमण्डी है, लेकिन पिता की इच्छा के सामने सिर झुकाना उसका कर्तव्य था ।"[3]

स्पष्ट है वैवाहिक चयन की त्रुटिपूर्ण व्यवस्था ने भारतीय समाज में अनमेल विवाह ऐसी समस्या को भी जन्म दिया है । अतः हमारे लिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम चयन की समस्या के साथ अनमेल विवाह और उसके प्रतिफलों पर भी दृष्टि डालते चले । 'रंगभूमि' की इन्दु का विवाह राजा चतारी महेन्द्रकुमार से कुल प्रतिष्ठा और धन वैभव के आधार पर होता है । राजा साहब यश के लोभी और पद लोलुप हैं । इन्दु और राजा साहब में विचारों का मेल नहीं है । वे इन्दु की चिन्ता नहीं करते । इन्दु का कथन है - "अगर मेरा अपना वश होता, तो उन्हें कभी न वरती, चाहे कुंवारी ही रहती । मेरे स्वामी मुझसे प्रेम करते हैं, धन की कोई कमी नहीं । पर मैं उनके हृदय की केवल चतुर्थांश की अधिकारिणी हूं । --- एक के बदले चौथा पाकर कौन संतुष्ट हो सकता है । मुझे तो बाजरे की पूरी बिस्कुट के चौथाई हिस्से से कहीं अच्छी मालूम होती है । क्षुधा तो तृप्त हो जाती है, जो भोजन का यथार्थ उद्देश्य है ।"[4] वैभव और प्रतिष्ठा के आधार

१- 'गोदान' पृ० ३५२

२- वही, पृ० ३५३

३- 'कर्मभूमि' पृ० २३३

४- 'रंगभूमि' पृ० ३६

किया गया यह वैवाहिक चयन अन्तत: वैचारिक अनमेल के आधार पर दम्पति विच्छेद तक की स्थिति ला देता है । `कर्मभूमि ` में सुखदा और अमरकान्त का विवाह भी धन को देखकर हुआ था । अमरकान्त की अवस्था १६ वर्ष की है परन्तु वह उस वृक्ष के समान निर्बल है जिसे प्रकाश नहीं मिला है किन्तु विवाह के लिए यह बातें नहीं देखी जातीं । देखा जाता है धन विशेषकर उस बिरादरी में जिसका उद्यम ही व्यवसाय हो । लखनऊ के एक धनी परिवार से बात चल पड़ी । समरकान्त की लार टपक पड़ी । `कन्या के घर में विधवा माता के सिवा निकट का सम्बन्धी न था, और धन की कहीं थाह नहीं ।`[१] स्वाभाविक अनमेल की कहानी कहने वाला यह विवाह धन के आधार पर सम्भव हो गया । प्रेमचन्द के अनुसार - `युवक प्रकृति की युवती ब्याही गयी युवती प्रकृति के युवक से, जिसमें पुरुषार्थ का कोई गुण नहीं । अगर दोनों के कपड़े बदल दिए जाते, तो एक दूसरे के स्थानापन्न हो जाते ।`[२] इस अनमेल विवाह का परिणाम है - `विवाह हुए दो साल हो चुके थे, पर दोनों में कोई सामंजस्य न था । दोनों अपने अपने मार्ग पर चले जाते थे । दोनों के विचार अलग, व्यवहार अलग, संसार अलग । जैसे दो भिन्न जलवायु के जन्तु एक पिंजरे में बन्द कर दिये गये हों ।`[३] अमरकान्त और सुखदा का स्वाभाविक अनमेल दोनों को अलग अलग राह का पथिक बना देता है । अमर सकीना की ओर आकृष्ट होता है और उसे घर छोड़कर भागना पड़ता है । `कायाकल्प` उपन्यास में वैभव और धन से युक्त अधेड़ राजा विशालसिंह के अनेक विवाह हुए हैं । उनकी एक पत्नी रोहिणी अपने माता-पिता इस चयन के लिए कोसती हुई कहती है - `मैं जिस दिन मर जाऊंगी, उस दिन घी के चिराग जलेंगे । ---- अपने मां बाप को क्या कहूं । ईश्वर उन्हें नरक में भी चैन न दे । सोचे थे, बेटी रानी हो जायगी, तो हम राज करेंगे । यहां जिस दिन डोली से उतरी उस दिन से सिर पर विपत्ति सवार हुई । पुरुष रोगी हो, बूढ़ा हो, दरिद्र हो, पर नीच न हो । ऐसा नीच और निर्दयी आदमी संसार

१- `कर्मभूमि ` पृ० ११

२- वही, पृ० ११

३- वही, पृ० ११

में न होगा ।'[१] 'प्रतिज्ञा' की सुमित्रा की भी यही समस्या है । उसका पति कमला प्रसाद व्यभिचारी और लम्पट है । उसे भी अपने माता पिता से शिकायत है । पूर्णा से वह स्पष्ट कहती है -- 'अपने माता पिता की धन लिप्सा का प्रायश्चित कर रही हूं बहन, --- मेरा विवाह तो महल से हुआ है । लाला बदरीप्रसाद की बहू हूं इससे बड़े सुख की कल्पना कौन कर सकता है ? भगवान ने किसलिए मुझे जन्म दिया, समझ में नहीं आता । इस घर में मेरा कोई नहीं है बहन । --- हम दोनों दुखिया हैं ।'[२] स्पष्ट है सुमित्रा अपने को विधवा पूर्णा की तरह असहाय और दुखी मानती है ऐसा क्यों ? इसलिए न -क्योंकि उसका पति ही उसका अपना नहीं है । न तो चरित्रगत मेल है और न ही स्वभाव गत ।

त्रुटिपूर्ण चयन के कारण हुए अनमेल विवाहों में 'वरदान' की विरजन को वैधव्य का तपस्यामय जीवन काटना पड़ रहा है । 'कर्मभूमि' की नैना को मनीराम की गोली का शिकार होना पड़ता है । सुखदा को पति वंचिता होकर अनेक वर्ष बिताने पड़ते हैं और 'प्रतिज्ञा' की सुमित्रा को व्यथा से भरा कष्टपूर्ण जीवन यापन करना पड़ता है । 'निर्मला' के निर्मला की दशा सबसे शोचनीय है क्योंकि 'अब तक ऐसा ही आदमी उसका पिता था जिसके सामने वह सिर झुकाकर, देह चुराकर निकलती थी अब उसी अवस्था का एक आदमी उसका पति था । वह उसे प्रेम की वस्तु नहीं सम्मान की वस्तु समझती थी । उनसे भागती फिरती, उनको देखते ही उसकी प्रफुल्लता क पलायन कर जाती थी ।'[३] 'निर्मला' को 'अपनी माता पर क्रोध आता, पर सबसे अधिक क्रोध बेचारे निरपराध तोताराम पर आता ।'[४] निराश और हताश निर्मला रूबि का मन सोचने के लिए विवश ही हो जाता है कि 'उस कठिन भार से चाहे आंखों में अंधेरा आ जाय, चाहे गर्दन टूटने लगे, चाहे उठाना दुस्तर हो जाय, लेकिन वह गठरी ढोनी पड़ेगी । उम्र भर का कैदी कहां तक रोयेगा ?

१- 'कायाकल्प' पृ० ७२

२- 'प्रतिज्ञा' पृ० ३१

३- 'निर्मला' पृ० ५१

४- वही, पृ० ६०

रोये भी तो कौन देखता है ? किसे उस पर दया आती है ? रोने से काम में हर्ज होने के कारण उसे और यातनायें ही तो सहनी पड़ती है ?[1] निर्मला का सम्पूर्ण जीवन घुटन और पीड़ा का जीवन बन जाता है। अपने अंतिम समय में वह अपने जीवन के अनुभव समेटे हुए है। उसे सबसे बड़ी चिन्ता अपनी पुत्री के लिए है जिसके लिए वह रुक्मिणी से याचना करती है - "बच्ची को आपकी गोद में छोड़े जाती हूं। अगर जीती जागती रहे तो किसी अच्छे कुल में विवाह कर दीजियेगा। मैं तो इसके लिए जीवन में कुछ न कर सकी। केवल जन्म देने भर की अपराधिनी हूं। चाहे क्वांरी रखियेगा, चाहे विष देकर मार डालियेगा, पर कुपात्र के गले न मढ़ियेगा इतनी ही आप से विनय है।"[2]

निर्मला के अनुभवों के माध्यम से प्रेमचन्द जी अनमेल विवाह का जबरदस्त विरोध करते हैं। 'नरक का मार्ग' कहानी में भी वह एक अनुभवी महिला से कहलाते हैं "यह मेरी आत्मकथा पढ़कर लोगों की आंखें खुलें, मैं फिर कहती हूं, अपनी बालिकाओं के लिए मत देखो धन, मत देखो जायदाद, मत देखो कुलीनता, केवल वर देखो। अगर उसके लिए जोड़ का वर नहीं पा सकते तो लड़की को क्वांरी रख छोड़ो, जहर देकर मार डालो, पर किसी बूढ़े खूसट से मत ब्याहो।"[3] प्रेमचन्द की अनमेल विवाहों के प्रति निषेधात्मक प्रवृत्ति का पता ऊपर के कथन से चलता है। प्रेमचन्द ने अस्वाभाविक अनमेल विवाहों को रोकने तथा चयन की समस्या की त्रुटिपूर्णता को रोकने के लिए सुझाव भी प्रस्तुत किए हैं। प्रेमचन्द यह जानते थे कि "आदि काल में स्त्री पुरुष की भी उसी तरह सम्पत्ति थी जैसे गाय बैल या खेती बारी। पुरुष को अधिकार था स्त्री को बेचे, गिरो रखे या मार डाले। --- आज कई हजार वर्षों के बीतने पर भी पुरुष के उस मनोभाव में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। सभी पुरानी प्रथाएं कुछ विकृत या संस्कृतिक रूप में मौजूद हैं।"[4] वह स्त्रियों के बदलते हुए रुख को

१- 'निर्मला' पृ० ७२

२- वही, पृ० २०६

३- 'नरक का मार्ग' मा०स० भाग ३ पृ० २०

४- 'कुसुम' मा०स० भाग ३ पृ० १६

भी पहचानते थे । यही कारण है कि उनके पास सनातन धर्मी बदरीप्रसाद प्रेमाऔर दाननाथ के सम्बन्ध में प्रेमा से पूछ लेना उचित समझते हैं । वे देव की से कहते हैं - "मैं एक बार उससे पूछूंगा । इन पढ़ी लिखी लड़कियों का स्वभाव कुछ और हो जाता है । अगर उनके प्रेम और कर्तव्य के विरोध हो गया तो उनका समस्त जीवन दुखमय हो जाता है ।"[१] इस सम्बन्ध में सबसे बड़ा समाधान प्रेमचन्द 'कायाकल्प में देते हैं । यशोदानन्दन चरित्र को महत्व देते हुए चक्रधर से कहते हैं - "अगर मुझे धन या जायदाद की परवा होती, तो यहाँ न आता । मेरी दृष्टि में चरित्र का जो मूल्य है, वह किसी और वस्तु का नहीं ।"[२] ~~प्रतिस्थापित करते हुए कहते~~ यशोदानन्दन स्त्री पुरुष के स्वाभाविक और वैचारिक मेल की अनिवार्यता को प्रतिस्थापित करते हुए कहते हैं - "मैं समझता हूं कि यदि स्त्री और पुरुष के विचार और आदर्श एक से हों, तो स्त्री, पुरुष के कामों में बाधक होने के बदले सहायक हो सकती है । मेरी पुत्री का 'स्वभाव' विचार, सिद्धान्त सभी आपसे मिलते हैं और मुझे पूरा विश्वास है कि आप दोनों एक साथ रहकर सुखी होंगे ।"[३] विवाह के पहले वह लड़के और लड़की को एक दूसरे को परखने का समर्थन करते हुए कहते हैं - मैं तो यहाँ तक कहता हूं कि वर और कन्या में दो चार बार मुलाकात भी हो जानी चाहिए । कन्या के लिए तो वह अनिवार्य है पुरुष को स्त्री पसन्द न आई तो वह और शादियां कर सकता है । स्त्री को पुरुष पसन्द न आया, तो उसकी सारी उम्र रोते ही गुजरेगी ।"[४] वे चक्रधर को अहिल्या से भेंट कराने आगरे भी ले जाते हैं । स्त्री पुरुष को प्रेमचन्द अवसर देना चाहते हैं जिससे उन्हें जीवन भर दूसरे के द्वारा लादे गए भार को ढोना न पड़े ।

भारतीय समाज में वैवाहिक चयन तथा अनमेल विवाह की समस्याएं समाज शास्त्र के अध्ययन की महत्वपूर्ण समस्याएं हो सकती हैं । अच्छे वैवाहिक चयन के अभाव

१- 'प्रतिज्ञा' पृ० ४३

२- 'कायाकल्प' पृ० १०

३- 'कायाकल्प' पृ० १०

४- 'कायाकल्प' पृ० ११

में दम्पति का जीवन कष्टसाध्य हो जाता है। अनमेल विवाह जीवन को दूभर बना देते हैं। समाजशास्त्री इन विषयों पर अध्ययन करके भटके हुए भारतीय समाज को दिशा दे सकते हैं। कुछ ऐसे सुझाव या उपाय भी प्रस्तुत किए जा सकते हैं जिससे इनमें सहायता मिले। प्रेमचन्द-साहित्य ऐसे अध्ययनों में पूर्ण रूप से सहायक हो सकता है।

प्रेम एवं अन्तर्जातीय विवाह :- भारतीय समाज में शक्ति सम्पन्न लोगों के मध्य प्राचीन काल में भी प्रेमविवाह एवं अन्तर्जातीय विवाह का प्रचलन था। राजा शान्तनु ने मत्स्योदरी से विवाह किया था। इसके बाद भी राजे-महराजे ऐसे विवाह करते रहे। आज भी छोटी जातियों में अन्तर्जातीय विवाह सम्पन्न हो जाते हैं और कुछ सामाजिक दण्ड देकर दम्पति को बिरादरी में मिला लिया जाता है। उच्चवर्ण और मध्य वर्ग में अन्तर्जातीय प्रेम विवाह को अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता है। यहां पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि प्रेम विवाह एक ही जाति में भी हो सकता है। यह प्रश्न भी सामाजिक होते हुए भी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा का प्रश्न बनकर समाज के सामने आता है। पश्चिमी देशों में प्रेम-विवाह एक साधारण बात है। भारतीय जीवन में अन्तर्जातीय प्रेम विवाह सामाजिक प्रश्नों के रूप में देखे जाते हैं। प्रेमचन्द ने अपने साहित्य में अन्तर्जातीय एवं प्रेम विवाहों पर दृष्टि डाली है।

प्रारम्भिक कृति 'वरदान' में प्रेमचन्द प्रतापचन्द और विरजन का सजातीय प्रेमविवाह नहीं करा सकते हैं। प्रतापचन्द के सम्बन्ध में प्रेमचन्द लिखते हैं - 'उसी समय से जब से उसने होश संभाला, विरजन के जीवन को अपने जीवन में शर्करा क्षीर की भांति मिला लिया था। उन मनोहर और सुहावने स्वप्नों का उस कठोरता और निर्दयता से धूल में मिलाया जाना उसके कोमल हृदय को विदीर्ण करने के लिए काफी था, वह, जो अपने विचारों में विरजन को सर्वस्व समझता था, कहीं का न रहा।'[1] और विरजन की स्थित यह है कि वह 'सूख कर कांटा हो गयी है।'[2] परन्तु न तो प्रतापचन्द में साहस है और न विरजन में अपनी बात कह सकने की सामर्थ्य

१- 'वरदान' पृ० ३५

२- वही, पृ० ३५

है। केवल घुटन और मर्मान्तिक पीड़ा है उनके जीवन में। प्रेमचन्द ने 'रंगभूमि' उपन्यास में अन्तर्जातीय प्रेम के प्रश्न को उठाया है। यह प्रेम है सोफिया और विनय का। 'विनय सिंह से सोफिया की स्थिति को बताती हुई इन्दु कहती है — 'सोफिया तुम्हारा इतना सम्मान करती है जितना कोई सती अपने पुरुष का भी न करती होगी। वह तुम्हारी भक्ति करती है। तुम्हारे संयम, त्याग और सेवा ने उसे मोहित कर लिया है।'[१] और विनय का उत्तर है 'बहन, जब तुम सब कुछ जानती हो तो तुमसे क्या छिपाऊं। अब मैं सचेत नहीं हो सकता'[२] यह प्रेम विवाह के रूप में नहीं परिवर्तित हो सकेगा इसकी सूचना भी प्रेमचन्द इन्दु के माध्यम से दे देते हैं। इन्दु के अनुसार 'यद्यपि तुम्हें सलाह देना व्यर्थ है, क्योंकि तुम इस मार्ग की कठिनाइयों को खूब जानते हो, तथापि मैं यही अनुरोध करती हूं कि तुम कुछ दिन के लिए कहीं चले जाओ। तब तक कदाचित सोफी भी अपने लिए कोई न कोई रास्ता ढूंढ निकालेगी। संभव है, इस समय सचेत हो जाने से दो जीवनों का सर्वनाश होने से बच जाय।'[३] इस प्रेम में सबसे बड़ी बाधा विनय की मां रानी जान्हवी है जिसके आदेश से विनय को राजस्थान जाना पड़ता है। प्रेम की यह कहानी चलती रहती है। विनय का अलगाव प्रेम सूत्र को तोड़ नहीं पाता। रानी जान्हवी भी अन्त में यह सोचने के लिए विवश होती है कि यह विवाह सम्पन्न करा दिया जाय। परन्तु प्रेमचन्द सामाजिक मानदण्ड की सीमा नहीं तोड़ना चाहते। सोफिया विनय से कहती है - 'मैं कभी कोई ऐसा कर्म न करूंगी जिससे तुम्हारा अपमान, तुम्हारी अप्रतिष्ठा, तुम्हारी निंदा हो। मेरा यह संयम अपने लिए नहीं तुम्हारे लिए है। आत्मिक मिलाप के लिए कोई बाधा नहीं होती, पर सामाजिक संस्कारों के लिए अपने सम्बन्धियों और समाज की स्वीकृति अनिवार्य है, अन्यथा वे लज्जास्पद हो जाते हैं।'[४] ईसाई कन्या से इस तरह के वचन कहलाकर प्रेमचन्द 'रंगभूमि' की रचना के समय तक विवाह के संदर्भ में सामाजिक मूल्यों की रक्षा करते हुए दिखाई देते हैं, परन्तु समय की गति को देखकर

१- 'रंगभूमि' पृ० ८३

२- वही, पृ० ८३

३- वही, पृ० ८३

४- वही, पृ० ४२५

'गोदान' के रचनाकाल तक अन्तर्जातीय प्रेमविवाह सम्पन्न कराने की स्थिति तक आ जाते हैं। मिस्टर कौल भी बी०ए० पास पुत्री मालती की बहन सरोज और अमरपाल सिंह के पुत्र रुद्रपाल आपस में 'सिविल मैरेज' कर लेते हैं। राय साहब के विरोध करने पर रुद्रपाल स्पष्ट कहता है - कि विवाह हो चुका है। "प्रमाण पत्र मौजूद है।"[1] बिना पिता की चिन्ता किए वह सरोज के साथ इंगलैण्ड की राह लेता है।

प्रेमचन्द की 'दो कब्रें' कहानी का मुख्य विषय वेश्या समस्या है परन्तु उनमें अन्तर्जातीय विवाह की भी ध्वनि है। 'दो कब्रे' कहानी के प्रोफेसर रमेन्द्र एक ऐसी कन्या से विवाह करते हैं जिसकी मां पहले वेश्या थी और फिर एक सम्भ्रान्त कुल के रईस कुंवर राठौर सिंह के प्रेमपाश में फंस जाती है। उसकी पुत्री सुलोचना और रमेन्द्र प्रेम-सूत्र में बंधकर विवाह सूत्र में बंध जाते हैं। सुलोचना का दुखद अन्त होता है जिसके लिए समाज के वे लोग जिम्मेदार हैं जो लोग होटलों में सब कुछ खाते, अंडे शराब उड़ाते थे।"[2] परन्तु रमेन्द्र के यहां आने में झिझकते हैं। 'कायर' कहानी का युवक "केशव ब्राह्मण होकर भी वैश्य कन्या से विवाह करके अपना जीवन सार्थक करना चाहता था।"[3] युवती प्रेमा ने अपने माता पिता से आग्रह किया। युग को पहचानने वाले उसके पिता का निर्णय है - "कुल मर्यादा के नाम पर मैं प्रेमा की हत्या नहीं कर सकता। दुनिया हंसती हो, हंसे, मगर वह जमाना बहुत जल्द आने वाला है, जब ये सभी बंधन टूट जायेंगे, आज भी सैकड़ों विवाह जात पांत के बंधनों को तोड़ चुके हैं अगर विवाह का उद्देश्य स्त्री और पुरुष का सुखमय जीवन है, तो हम प्रेम की अब उपेक्षा नहीं कर सकते।"[4] यद्यपि केशव की कायरता ह से यह विवाह संभव नहीं हो पाता परन्तु युग में क्या हो रहा है या होने वाला है प्रेमचन्द इस कहानी में उसकी संभावना प्रकट कर देते हैं।

१- 'गोदान' पृ० ३२२
२- 'दो कब्रें' मा०स० भाग ४ पृ० ४२
३- 'कायर' मा० स० भाग १ पृ० २२७
४- 'कायर' मा०स० भाग १ पृ० २३३

प्रेमचन्द के प्रेम विवाहों के संदर्भ में 'सोहाग का शव' और 'उन्माद' कहानी का उल्लेख भी आवश्यक है। ये विवाह पत्नियों के होने पर भी विदेश में जाकर किए गए दूसरे प्रेम विवाह हैं। 'सोहाग का शव' कहानी का नायक केशव अपनी पहली पत्नी सुभद्रा को भारतवर्ष में छोड़कर विदेश जाता है और वहां पर भारतीय युवती उर्मिला से प्रेम विवाह कर लेता है। इसी प्रकार 'उन्माद' कहानी का युवक मनहर जो अपनी पत्नी की प्रशंसा करते नहीं थकता था विदेश जाकर जेनी नामक अंग्रेज युवती से प्रेम विवाह कर लेता है। 'सोहाग का शव' कहानी की सुभद्रा अपनी सौत उर्मिला को अपने 'सोहाग का शव' टेम्स नदी में विसर्जित करने के लिए पत्र लिखकर चली जाती है।[१] 'उन्माद' कहानी की जेनी और मनहर का प्रेम सम्बन्ध टूट जाता है। "मनहर और उसकी पत्नी वागेश्वरी के मध्य जेनी की उपस्थिति मनहर की आत्महत्या करा देती है।"[२] इन कहानियों के प्रेम विवाहों को प्रेमचन्द ने हेय दृष्टि से देखा है।

प्रेम और अन्तर्जातीय विवाह की समस्या भारतीय जीवन में बढ़ती जा रही है। पाश्चात्य प्रभाव ने इस प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया है। प्रारम्भ में प्रेमचन्द प्रेम-विवाहों के विरोधी थे। वे सामाजिक मान्यता को नहीं तोड़ना चाहते थे। अपने आदर्श रूप में वे अन्त तक दृढ़ रहे। 'गोदान' में यद्यपि सरोज और रुद्रपाल का विवाह सम्पन्न हो जाता है परन्तु मालती और मेहता ऐसे सुविज्ञ जागरूक पात्र प्रेम-पथ पर चलते अवश्य हैं परन्तु विवाह सूत्र में बंध नहीं पाते।

<u>विवाह विच्छेद अथवा तलाक :</u> पश्चिमी समाज में विवाह विच्छेद अथवा तलाक की प्रश्न समाजशास्त्री अध्ययन का प्रमुख विषय बन गया है। भारतवर्ष में भी तलाक और विवाह विच्छेद की दिन प्रतिदिन अधिकता के कारण इस संबंध में समाज शास्त्रीय अध्ययन की आवश्यकता बलवती होती जा रही है। प्रेमचन्द-साहित्य में इस प्रश्न को विस्तृत रूप से तो नहीं उठाया गया परन्तु अनेक स्थलों पर इस विषय को

१- 'सोहाग का शव' मा०स० भाग ५ पृ० २३१

२- 'उन्माद' मा०स० भाग २ पृ० १३४

स्पर्श किया गया है अथवा इसकी संभावनाओं की ओर संकेत किया गया है। विवाह विच्छेद या तलाक के कारण दम्पति कलह, स्त्री या पुरुष का दूसरे से अवैध प्रेम, आर्थिक दुरुहता और स्वच्छंद प्रवृत्ति के साथ पारिवारिक कलह और पाशविक व्यवहार आदि होते हैं।

प्रेमचन्द-साहित्य में दम्पति कलह के उदाहरण `प्रतिज्ञा` के कमलाप्रसाद और सुमित्रा `रंगभूमि` के महेन्द्रकुमार और इन्दु, `कर्मभूमि` के अमरकान्त और सुखदा `गोदान` के कुंवर दिग्विजयसिंह और मीनाक्षी आदि हैं। म इन्दु और महेन्द्र को छोड़कर अन्य स्थानों में अवैध प्रेम की समस्या भी जुड़ी हुई है। कमला प्रसाद और दिग्विजयसिंह में चारीत्रिक व्यभिचारिता और छिछोरापन है जो उनकी पत्नियों को विद्रोही क बनाता है। कमला प्रसाद और सुमित्रा में पारिवारिक मेल हो जाता है जब कि अमरकान्त और सुखदा त्याग के धरातल पर पुन: मिल जाते हैं परन्तु राजा महेन्द्र और इन्दु का मनमुटाव बढ़ता ही जाता है और एक दिन स्थिति यह आ जाती है कि एक दिन इन्दु को कह देना पड़ता है "आपके साथ विवाह हुआ है, कुछ आत्मा नहीं बेची।"[1] अन्तत: इन्दु अपने माता पिता के साथ आकर रहने लग जाती है इसके बाद महेन्द्र और इन्दु का मेल नहीं दिखाया गया। `गोदान` की मीनाक्षी अपने व्यभिचारी पति दिग्विजयसिंह के आचरण से दुखी और क्षुब्ध है। वह ऐसे व्यक्ति का सम्मान दिल से न कर सकती थी।"[2] दिग्विजयसिंह, एक दिन मीनाक्षी पति पर हाथ उठा देती है और परिणाम होता है - "तब से स्त्री पुरुष दोनों एक दूसरे के खून के प्यासे थे।"[3] मीनाक्षी अपने पति पर गुजारे का दावा करती है क्योंकि `वह अब उसके घर में न रहना चाहती थी।"[4] मीनाक्षी की गुजारे के मुकदमें में जीत होती है। दिग्विजय सिंह का मीनाक्षी पर दुश्चरित्रता का आरोप खारिज हो जाता है। तब से पति पत्नी अलग अलग रहते हैं। `गोदान का

१- `क रंगभूमि` पृ० ५३४।

२- `गोदान` पृ० ३२७

३- वही, पृ० ३२६

४- वही, पृ० ३२८

शव ` कहानी की सुभद्रा को पतित्याग का निश्चय करना पड़ता है । उसकी विचार धारा है - `विवाह का सबसे ऊंचा आदर्श उसकी पवित्रता और स्थिरता है । पुरुषों ने सदैव इस आदर्श को तोड़ा है, स्त्रियों ने निबाहा है । अब पुरुषों का अन्याय स्त्रियों को किस और ले जायगा नहीं कह सकती ।`[1] केशव का दूसरी युवती से विवाह उसे अलगाव के निर्णय के लिए बाध्य करता है । प्रेमचन्द स्थिति की उस यथार्थता का बोध करा देते हैं जहां पर पति पत्नी एक साथ नहीं रह सकते परन्तु वह विवाह विच्छेद कानूनी स्थिति से बचाते हैं । संभवत: वे इस बात के लिए आशान्वित है कि आपसी मनमुटाव और अलगाव की स्थिति शायद भविष्य में समाप्त हो जाय और पति पत्नी एक हो सकें ।

प्रेमचन्द का वैवाहिक आदर्श प्रारम्भ में शुद्ध रूप से भारतीय रहा है । वरदान उपन्यास में वे लिखते हैं - `यह कच्चे धागे का कंगन पवित्र धर्म की हथकड़ी है, जो कभी हाथ से न निकलेगी और मण्डप उस प्रेम और कृपा की छाया का स्मारक है । जो जीवन पर्यन्त सिर से न उठेगी ।`[2] प्रेमाश्रम ` की गायत्री के शब्दों में `विवाह स्त्री पुरुष के अस्तित्व को संयुक्त कर देता है । उनकी आत्माएं एक दूसरे में समाविष्ट हो जाती हैं ।`[3] ज्ञानशंकर पश्चिमी देशों में धार्मिक मतभेदों के कारण जब तलाक की बात करते हैं तो गायत्री कहती है - `वहां के लोग तो विवाह को केवल सामाजिक सम्बन्ध समझते हैं --- उनके विचार में स्त्री पुरुषों की अनुमति ही विवाह है, लेकिन भारतवर्ष में कभी इन विचारों का आदर नहीं हुआ ।`[4] `गोदान` उपन्यास में प्रेमचन्द मेहता के शब्दों में विवाह को सामाजिक समझौता तो मान लेते हैं परन्तु तलाक का विरोध करते हैं, मेहता कहते हैं - `विवाह को मैं सामाजिक समझौता समझता हूं और उसे तोड़ने का अधिकार न पुरुष को है न स्त्री को । समझौता करने के पहले आप स्वाधीन हैं, समझौता हो जाने के बाद आपके हाथ कट जाते हैं ।`[5]

१- `सोहाग का शव` मा० स० भाग ५ पृ० २२८

२- `वरदान ` पृ० २७

३- `प्रेमाश्रम ` पृ० १७४

४- प्रेमाश्रम ` पृ० १७४

५- `गोदान ` पृ० ६५

अपने एक पत्र में प्रेमचन्द इन्द्रनाथ मदान को इस सम्बन्ध में लिखते हैं - "अपने अच्छे से अच्छे रूप में विवाह एक प्रकार का समझौता और समर्पण है अगर कोई दम्पत्ति सुखी होना चाहते हैं तो उन्हें एक दूसरे का लिहाज करने के लिए तैयार रहना चाहिए । --- जब यह निश्चय नहीं है कि तलाक से हमारे वैवाहिक जीवन की बुराइयों का इलाज हो जायगा तो ऐसी हालत में मैं उस चीज को समाज में लादना नहीं चाहता । --- समता पर आधारित समाज में इस चीज़ के लिए कोई जगह नहीं है ।"[1] इस प्रकार स्पष्ट है प्रेमचन्द साहित्यकार के रूप में तथा व्यक्ति के रूप में तलाक का विरोध करते हैं वे आपसी समझौते के मध्य वैमनस्य की खाई पाटना चाहते हैं ।

१- 'चिट्ठी पत्री' भाग २ पृ० २३७-२३८ ।

अष्टम अध्याय -

समाजशास्त्रीय अध्ययन के अन्य पक्ष

-:0:-

समाजशास्त्रीय अध्ययन के अन्य पक्ष

प्रस्तुत प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में साहित्य, समाज और समाजशास्त्र के सम्बन्धों के अध्ययन के बाद दूसरे,तीसरे, चौथे तथा पांचवें अध्यायों में क्रमश: प्रेमचन्द-साहित्य और उनके सामाजिक दर्शन, प्रेमचन्द-साहित्य में ग्राम तथा नगर की समाजशास्त्रीय व्याख्या, युग का सामाजिक बोध तथा सामाजिक विकृतियों से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया गया है । इन विविध पक्षों के अध्ययन के बाद भी प्रेमचन्द-साहित्य में कुछ ऐसे पक्ष अवशेष रह गए हैं, जिनका समाजशास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया जा सकता है । शोध-प्रबन्ध के समापन के पूर्व इन पक्षों पर समाजशास्त्रीय दृष्टि डाल लेना अनिवार्य है । ऐसे विभिन्न पक्ष जिनको इस अध्ययन के लिए चुना जा सकता है उनमें सामाजिक वर्ग एवं जाति, परिवार और पारिवारिक विघटन, अपराध और अपराधी, भीड़ और प्रतिक्रिया तथा प्रेमचन्द की भाषा आदि है । इन अध्ययनों के पूर्व यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि शोध-प्रबन्ध के विभिन्न अध्यायों के अन्तर्गत इनमें से कुछ को आंशिक रूप से स्पर्श किया जा चुका है । प्रस्तुत अध्याय में ऐसे अंशों के दुहराए जाने की अपेक्षा उचित होगा कि हम आवश्यकतानुसार उन अंशों की ओर संकेत कर दें ।

सामाजिक वर्ग एवं प्रजाति

प्रेमचन्द-साहित्य में सामाजिक वर्ग और प्रचलित जाति-व्यवस्था के अध्ययन के पूर्व हमें सामाजिक वर्ग और जाति-व्यवस्था के स्वरूप, विभाजन के आधार तथा उनके अन्तर्सम्बन्धों पर दृष्टि डाल लेना चाहिए । सामाजिक वर्ग और जाति समाजशास्त्र के प्रभावशाली विषय रहे हैं । विश्व के किसी भी भाग के मानव-समाज में विभिन्न स्तरों के लोग रहते हैं । इस भेद का आधार सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक अथवा आर्थिक कुछ भी हो सकता है । इस अन्तर के निर्धारण में वर्ण, वंश और जन्म का महत्वपूर्ण योग है । प्रोफेसर फ्रान्सिस के अनुसार 'सामाजिक विभाजन के प्रमुख स्वरूप वर्ग और जाति हैं । उनकी धारणा है कि 'तुलनात्मक रूप में वर्ग सम्पूर्ण युगों और दोनों लिंगों के व्यक्तियों का एक स्थाई समूह है जो किसी समाज के अन्तर्गत वर्ग सम्बन्धी श्रेणी में एक सामान्य/

सामाजिक स्थिति रखते हैं। जाति किसी कठोर दृढ़ सामाजिक ढांचे में एक स्थिर समूह है जिसमें श्रेणी पूर्णत: वंशानुक्रमीय आधारों पर आधारित है। किसी वर्ग के सदस्य जन्म से ही सामाजिक स्तर को प्राप्त करते हैं जिसे वे अपने व्यवहार से खो सकते हैं अथवा परिवर्तित कर सकते हैं। जाति के सदस्य भी जन्म से ही सामाजिक स्तर को प्राप्त करते हैं परन्तु अपने व्यवहारों के फलस्वरूप भी वह स्तर प्राय: स्थिर रहता है।[1] मैकाइवर सामाजिक वर्ग का आधार सामाजिक स्तर को मानते हैं। उनके अनुसार सामाजिक वर्ग किसी समुदाय का भाग है जो कि भाषा, क्षेत्र, कार्य और विशेषीकरण आदि से उत्पन्न सीमाओं से नहीं बल्कि प्रमुख रूप से सामाजिक स्तर से आबद्ध है।[2] मैकाइवर की यह भी धारणा है कि यद्यपि विभयात्मक पद्य कार्यगत अन्तर, आय सम्बन्धी स्तर, पेशागत भेद, जन्म, वंश तथा संस्कृति सम्बन्धी अन्तर की उच्चता और निम्नता को निर्धारित करते हैं, परन्तु उनका अभिमत है कि स्तर की ही भावना

- -

१-- "The principal forms of social stratification are class and caste . A class is a comparatively permanent group of persons of all ages and both sexes who occupy a common social position in a hierarchical ranking within a given society, A caste is a fixed group in a rigid social structure, in which rank is based almost entirely upon hereditary grounds, Members of a class receive their status at birth, but they may lose or alter it by subsequent behaviour. Members of a caste also receive their status at birth, but it usually remains fixed regardless of later achievements."

प्रो० फ्रान्सिस ई० मेरिल : `सोसाइटी ऐण्ड कल्चर`, १९५२ (यूनाइटेड स्टेट्स ऑव अमेरिका), पृ० २४०

२-- "We shall then mean by a social class any portion of a community which is marked off from the rest, not by the limitations arising out of language, locality, function or specialization, but primarily by social status."

आर० एम० मैकाइवर: `सोसायटी`, १९३७ (न्यूयार्क), पृ० १६६-६७

है जो आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा अन्य अन्तरों को स्पष्ट करती है। मैकाइवर की स्पष्ट घोषणा है कि 'सामाजिक वर्ग को पूर्ण रूपेण कार्यगत आय के आधार पर अथवा पेशेगत कार्यों के आधार पर निर्मित माना गया तो वह अपना समाजशास्त्रीय अभिप्राय खो देता है। वर्ग मनुष्यों को दूसरों से न तो एक करता है और न अलग कर सकता है जब तक कि वे एकता अथवा अलगाव का अनुभव न करें। जब तक वर्ग चेतना नहीं है तब तक कोई भी विभाजन सम्बन्धी सिद्धान्त हम ग्रहण करें वह सामाजिक वर्ग नहीं होगा बल्कि मात्र तार्किक श्रेणी या भेद होगा।'[१] इस प्रकार से सामाजिक वर्ग का स्वरूप समाजशास्त्र के अन्तर्गत तभी पूर्ण माना जायगा जबकि उसमें वर्गगत सामाजिक चेतना हो। समाज के अन्य भौतिक पक्ष राजनीति, शिक्षा, धर्म, आर्थिक अवस्था आदि सामाजिक वर्ग के निर्माण में सहायक अवश्य हैं परन्तु वर्ग चेतना ही सामाजिक वर्ग को पूर्णता प्रदान करती है। मैकाइवर की भांति प्रो० मैरिल भी सामाजिक वर्ग के लिए सामाजिक स्तर की सामान्यता को महत्त्व देते हैं। उनके अनुसार 'सामाजिक वर्ग समाज का एक खण्ड या भाग है जिसके सदस्य एक ही सामान्य सामाजिक स्तर रखते हैं।'[२] परन्तु वे मैकाइवर की भांति सामाजिक वर्ग को चेतना के साथ दृढ़तापूर्वक नहीं जोड़ते। वह सामाजिक वर्गों के निर्माण में धर्म, संस्कृति, शिक्षा,

- -

१— "...........The concept of class loses its sociological significance if it is defined by any purely objective criterian, such as income level or occupational function. Class does not unite people and separate them from others unless they feel their unity or separation. Unless class consciousness in present, then no matter what criterion we take, we have not a social class but a mere logical category or type."
आर० एम० मैकाइवर: 'सोसाइटी', १९३७ (न्यूयार्क), पृ० १७७

२— "A social class is therefore a segment of a society whose members share the same general status."
प्रो० फ्रान्सिस ई० मैरिल: 'सोसायटी ऐण्ड कल्चर', १९५२ (यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ अमेरिका), पृ० ३५२

शक्ति, प्रतिष्ठा, धन आदि पक्षों की भूमिका को स्वीकार करते हैं। इसी आधार पर उन्होंने परिभाषित वर्ग (डिफाइन्ड क्लासेस), सांस्कृतिक वर्ग (कल्चरल क्लासेस), आर्थिक वर्ग (इकोनामिक क्लासेस), राजनीतिक वर्ग (पोलिटिकल क्लासेस), स्व-स्वीकृत वर्ग (सेल्फ आइडेन्टीफाइड क्लासेस) तथा साझे वाले वर्ग (पार्टीसिपेशन क्लासेस) आदि सामाजिक वर्ग के उपभेद माने हैं। इसके साथ ही वह मोटे रूप में उच्च वर्ग (अपर क्लास), मध्य वर्ग (मिडिल क्लास) तथा निम्न वर्ग (वर्किंग क्लास) को भी मान्यता देते हैं।[1] अपनी एक पुस्तक में मैकाइवर और पेग सामाजिक वर्ग के विभाजन में स्तर को (स्टेट्स एज़ द क्राइटेरियन ऑव सोशल क्लास) तथा आर्थिक विभाजन (क्लास एज़ इकोनामिक डिवीजन) को मान्यता देते हुए दिखाई देते हैं। परन्तु वहीं पर वह अर्थ को भी स्तर के अन्तर्गत मान लेते हैं। यहाँ तक वह पेशे को भी आधुनिक समाज में वर्ग का सूचीपत्र (अक्यूपेशन एज़ ऐन इनडेक्स ऑव क्लास इन माडर्न सोसायटी) मानते हैं। इसके साथ ही वे सामाजिक वर्गों के अन्तर को स्पष्ट करने के लिए स्तर का आधार (द बेसिस ऑव स्टेट्स) तथा धन्य और धन का आधार (द क्राइटेरिया ऑव वर्थ ऐण्ड वैल्थ) को भी स्वीकार करते हैं।[2] प्रो० आर्नोल्ड डब्ल्यू० ग्रीन सामाजिक वर्ग का विभाजन प्राणिशास्त्रीय विभाजन की तरह स्वाभाविक नहीं मानते हैं बल्कि उसे भौतिक ढांचे में निर्मित मानते हैं।[3] वे सामाजिक विभाजन में निवास, पेशे, वंश, वर्ण, धन तथा जीवन में रहने के ढंग को महत्व देते हुए यह मानते हैं कि प्रतिष्ठा और

- -

१-- प्रो० फ्रान्सिस ई० मेरिल: `सोसायटी ऐण्ड कल्चर`, १९६२ (यूनाइटेड स्टेट्स ऑव अमेरिका) का दे० अध्याय १४ `क्लास`, पृ० २८०-३००

२-- आर० एम० मैकाइवर ऐण्ड चार्ल्स एच० पेग: `सोसायटी : ऐन इन्ट्रोडक्टरी एनालिसिस` (लन्दन), १९६२, को दे० अध्याय १४ सोशल क्लास ऐण्ड कास्ट` के पृ० ३४८-३५५

३-- "The concept of social class does not permit a natural classification like the biologist's classification of the animal kingdom, the latter is so securely founded in physical structure that there is universal agreement about what the divisions are, the number of them, and where the lines are drawn."
प्रो० आर्नोल्ड डब्ल्यू० ग्रीन: `सोशियोलॉजी: ऐन एनालिसिस ऑव लाइफ इन माडर्न सोसायटी`, १९६० (लन्दन, न्यूयार्क), पृ० १९८

शक्ति के निर्धारण में इनका योग है। तथा वर्ग के विभाजन में आय सम्बन्धी स्तर तथा पेशे सम्बन्धी वर्गीकरण का खुलकर प्रयोग किया जाता है।[1] इस प्रकार से आज के भौतिक युग में सामाजिक वर्गों के निर्धारण में प्रमुख रूप से शक्ति और स्तर का महत्वपूर्ण स्थान है। यह शक्ति अथवा स्तर राजनैतिक, शैक्षिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, पेशेगत किसी भी रूप में हो सकता है।

जहाँ तक जाति का सम्बन्ध है जैसा कि हम उल्लेख कर चुके हैं प्रो० मेरिल ने जाति को जन्म से सम्बद्ध माना है और जाति के सदस्य की प्राप्त स्तर को अपरिवर्तित माना है। जाति की सामान्य विशेषताओं का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा है कि (१) जाति की सदस्यता वंशगत है जो आजन्म अपरिवर्तित होती है (२) जाति के आधार पर विवाह की अनिवार्यता होती है (३) दूसरी जातियों अथवा उपजातियों से सम्बन्ध कठोरता से रूढ़ियों द्वारा प्रचलित होते हैं (४) प्रत्येक जाति के अपने रीति रिवाज और प्रायः अपने पेशे होते हैं जिनमें सदस्यों को लगना अनिवार्य सा होता है (५) जाति का धर्मशास्त्रीय विधान स्थानीय विभिन्नताओं के आधार पर सदस्यपर कड़ाई से लागू होता है।[2] मेकाइवर और पेज भी जाति के सिद्धान्त को जन्म के स्तर, विवाह, समूहों में सामाजिक सम्बन्धों की सीमा और जन्म से कुछ निश्चित पेशों की आवद्धता से सम्बन्धित मानते हैं।[3]

- -

१— प्रो० आर्नाल्ड डब्ल्यू० ग्रीन: `सोशियोलॉजी : ऐन एनालेसिस ऑव लाइफ इन माडर्न सोसायटी`, १९६० (लन्दन, न्यूयार्क) के दे० अध्याय १० `क्लास ऐण्ड कास्ट` का पृ० १७३ तथा १७६

२— प्रो० फ्रान्सिस ई० मेरिल: `सोसायटी ऐण्ड कल्चर`, १९६२ (यूनाइटेड स्टेट्स ऑव अमेरिका) का दे० अध्याय १३ `कास्ट` का पृ० २६०

३— "For the caste principle, assigning status strictly in terms of birth, enforcing endogamous marriage, vastly limiting social contacts between groups and restricting certain occupations to the "right - born" is one that, in some degree, is manifested in all societies, including our own."

आर० एम० मेकाइवर ऐण्ड चार्ल्स एच० पेज: "सोसायटी" ऐन इन्ट्रोडक्टरी ऐनालेसिस, (लन्दन), पृ० ३६८

वर्ग और जाति में कोई भेद नहीं था । दोनों एक ही थे । समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्णों का कर्मगत विभाजन व्यक्तियों के सामाजिक स्तर का निर्धारक बना और आगे चलकर जाति-व्यवस्था के निर्धारण का आधार भी । भारतीय आर्यों की वर्ण-व्यवस्था ईरानी आर्यों में भी अथर्वन, रथैस्त्र-वैस्त्रिय तथा हुइति (उपदेशक, योद्धा, कृषक और कामगर) के रूप में विद्यमान थी। उनके अपने अलग-अलग पेशे और कार्य थे ।[१] कालान्तर में यह वर्ण-व्यवस्था जटिलतम जाति-व्यवस्था में बदल गई । कर्म के स्थान पर जन्म के आधार पर वर्ण और पेशे का निर्धारण हुआ । आगे चलकर अनेक जातियां और उपजातियां बनीं जिनका स्वरूप आज भारतवर्ष में विद्यमान है ।

<u>सामाजिक वर्ग</u> : प्रेमचन्द-साहित्य बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध का साहित्य है । प्रेमचन्द-साहित्य में इस सदी के सामाजिक वर्ग और जातियों का स्वरूप उभर कर आया है । उल्लेखनीय यह है कि आज के सामाजिक वर्गों के निर्धारक के रूप में

- -

१-- "The division among three functions-Brahma, indicative of priesthood; Kshetra, of military force; Vis, of productive and economic activity is recognised. This division corresponds with the similar division among the Aryans of Iran - Atharvan, Rathaestara, Vastriay fshuyant (priest, warrior and cultivator). The fourth class, namely, the Shudras are the Huiti of Iran. Among the three there existed differences of ritual. The Kshatriya was the royal sacrificer, who aspired to identification with the divine principle through the rite. The Brahmana was the officiant who was an expert in the procedure of rites and their conduct without mistakes. The Vaishya was the retainer of the king who participated in the State ceremonial and fed the sacrifice with the produce of land and cattle."

डा० तारा चन्द: "हिस्ट्री ऑव द फ्रीडम मूवमेन्ट इन इण्डिया", १९६१ (नई दिल्ली), पृ० ८८

परीक्षा में भले ही वंश और जन्म का स्थान हो परन्तु प्रत्यक्षतः उसके स्वरूप निर्धारण में शक्ति और धन का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है । भौतिकवादी सामाजिक व्यवस्था में धन और शक्ति ही व्यक्ति के मूल्य का निर्धारण करते हैं और उसका सामाजिक स्तर निश्चित करते हैं । स्पष्ट है यही सामाजिक स्तर उसका सामाजिक वर्ग निर्धारण करता है । वास्तव में आधुनिक भारत में नए सामाजिक वर्गों के उदय का कारण ब्रिटिश प्रशासन काल में नए तरह की सामाजिक आर्थिक-व्यवस्था, नए तरह की राज्य व्यवस्था और प्रशासन-व्यवस्था तथा नए ढंग की शिक्षा का प्रसार है ।[१] भारतीय समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के रूप में जो सामाजिक व्यवस्था विद्यमान थी वह जाति के रूप में बदल गई और राजे महाराजों, जागीरदारों, सरकारी कर्मचारियों, महाजनों, साहूकारों, किसानों तथा काम करने वाले अछूत मजदूरों के रूप में सामाजिक वर्गों का अभ्युदय हुआ । लेकिन ब्रिटिश प्रशासन काल में अनेक तरह के नए वर्गों ने जन्म लिया । इनमें ग्रामीण क्षेत्रों में (१) ब्रिटिश सरकार द्वारा निर्मित जमींदार, (२) पाही वाले भूमिधर, (३) जमींदारों एवं पाही भूमिधरों के किरायेदार (एक तरह के अस्थाई किसान), (४) उच्च, मध्य तथा निम्न वर्ग के किसान, (५) खेतिहर मजदूर, (६) आधुनिक दूकानदार तथा (७) महाजनों का आधुनिक वर्ग तथा शहरी क्षेत्रों में प्रमुख रूप से (१) आधुनिक पूंजीपति, उद्योगपति, व्यापारी और ऋणदाता, (२) उद्योगों, व्यापार, खान तथा अन्य व्यापारिक व्यवसायों में लगा आधुनिक मजदूर वर्ग, (३) आधुनिक पूंजीवादी व्यवस्था से बंधा हुआ साधारण दूकानदार और व्यवसायी तथा (४) बुद्धिजीवी मध्यवर्गीय पेशे वाले तकनीक से सम्बन्धित कर्मचारी, डाक्टर, वकील, अध्यापक, सम्पादक या पत्रकार, मैनेजर, क्लर्क तथा अन्य

- -

१-- "The emergency of new social classes in India was the direct consequence of the establishment of a new social economy, a new type of a state system and a state administrative machinery, and the spread of new education during the British rule."
ए० आर० देसाई: 'सोशल बैकग्राउन्ड ऑव इण्डियन नेशनलिज्म', १९५९ (बम्बई), पृ० १९९

लोग हैं।[१] यद्यपि पश्चिमी समाज में नारी और पुरुष में विभेद नाम की कोई वस्तु नहीं है परन्तु भारतवर्ष में नारी का एक विशिष्ट स्थान है धर्म की दृष्टि से भी और समाज की दृष्टि से भी, आर्थिक दृष्टि से भी वह प्रेमचन्द के युग में विपन्न और असहाय अवस्था में थी। यद्यपि पश्चिमी समाजशास्त्र नारी को सामाजिक वर्ग के रूप में मान्यता नहीं देता परन्तु भारतीय समाजशास्त्र के अन्तर्गत उसके इस महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता, चाहे वर्ग का आधार धर्म को माना जाय चाहे आज के युग की परिस्थितियाँ, शक्तियाँ विशेष रूप से अर्थ को माना जाय।

प्रेमचन्द-साहित्य में इन विविध सामाजिक वर्गों का चित्रण किया गया है सम्भवत: कोई भी ऐसा वर्ग नहीं है जिसका चित्रण प्रेमचन्द-साहित्य में न किया गया हो। जमींदारों और भारी भूमिधरों की उत्पत्ति होने पर पुराने वर्ग के राजे-महाराजे ब्रिटिश प्रशासन काल के अन्त तक वर्तमान थे। प्रेमचन्द-साहित्य में इन राजे-महाराजों का चित्रण अनेक स्थानों में किया गया है। 'रंगभूमि' के कुंवर भरतसिंह, राजा महेन्द्रकुमार सिंह तथा महाराजा जसवन्तनगर, 'कायाकल्प' के राजा विशालसिंह, रानी देवीप्रिया, 'गोदान' के राजा सूर्य प्रताप सिंह आदि इस वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनमें कुंवर भरतसिंह जो एक राष्ट्रीय चरित्र के रूप में प्रारम्भ में स्वीकृत किए गए हैं, के अलावा सब-के-सब ब्रिटिश-प्रशासन के गुलाम और ब्रिटिश अधिकारियों के इशारों पर नाचने वाले हैं। प्रेमचन्द ने इनके विलासी जीवन तथा ठाट-बाट का वास्तविक चित्रण किया है। यहां तक कि कुंवर भरतसिंह भी विलासिता और ठाट-बाट को छोड़ने में असमर्थ है। जमींदारों में ताल्लुकेदारों का एक अलग वर्ग उत्पन्न हो रहा था ये बड़े जमींदार ही होते थे। 'प्रेमाश्रम' के राय कमलानन्द ताल्लुकेदार हैं और जमींदार ज्ञानशंकर ताल्लुकेदार बनने के लिए हर तरह के नैतिक-अनैतिक कार्य करने के लिए तत्पर हैं। 'प्रेमाश्रम' में ताल्लुकेदार गायत्री रानी गायत्री और 'गोदान' के अमरपाल सिंह राजा अमरपालसिंह बनते हैं वह उनकी राजभक्ति और अंग्रेज अधिकारियों की चापलूसी का प्रतिफल है।

- -

१-- ए० आर० देसाई: 'सोशल बैकग्राउन्ड ऑफ इण्डियन नेशनलिज्म', १९५९ (बम्बई) पृ० पृ० १६०-१६१

जमींदारों से तो प्रेमचन्द का सम्पूर्ण उपन्यास और कहानी-साहित्य भरा पड़ा है। इनके अत्याचार, इनकी कुवासनाओं और जीवन का चित्रण प्रेमचन्द ने स्थान-स्थान पर किया है। प्रेमचन्द-साहित्य में जमींदारों के विभिन्न वर्गों की ओर संकेत भी किया गया है जिनमें महन्त और सन्यासी भी सम्मिलित हैं।[1]

प्रेमचन्द आधुनिक युग के बढ़ते हुए पूंजीवाद और व्यावसायिक गतिविधि की तीव्रता से भी परिचित थे। उनके उपन्यास `रंगभूमि` के जॉन सेवक और `गोदान` के चन्द्रप्रकाश खन्ना पूंजीपतियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। जॉन सेवक शुद्ध उद्योगपति है परन्तु खन्ना उद्योगपति होने के साथ ही ऋण देने वाला महाजन भी है। राय अमरपालसिंह और राजा सूर्य प्रताप सिंह ऐसे सामन्त वर्ग के लोग उसके यहां ऋण के याचक हैं। `सेवासदन` के सेठ चिम्मन लाल भी ऋणदाता हैं। भगतराम का "सारा कारबार सेठ चिम्मनलाल की मदद से चलता है।"[2] शहर के मध्य वर्ग के व्यवसायियों में `कर्मभूमि` के लाला धनीराम, मनीराम तथा लाला समरकान्त हैं। प्रेमचन्द ने समाज के इस व्यवसायी वर्ग का विस्तार से चित्रण किया है। उनकी बढ़ती आर्थिक शक्ति, राजनीति में हस्तक्षेप, तिकड़म और धोखे की जिन्दगी, मध्य वर्ग से विकसित होकर उच्च वर्ग में पहुंचने की दशा, समाज में उनके असर आदि सबका चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।[3]

किसानों, ग्रामीण जीवन के मजदूरों, शहर के औद्योगिक क्षेत्रों के मजदूरों तथा शहर में फुटकर मजदूरी करने वाले मजदूर वर्ग का भी चित्रण प्रेमचन्द-साहित्य में हुआ है। प्रेमचन्द का समस्त साहित्य ग्रामीण जीवन की गाथाओं से भरा पड़ा है। इसमें ग्रामीण जीवन के किसान और मजदूरों के जीवन के साथ ही उनसे सम्बन्धित अन्य लोगों का भी चित्रण हो गया है। ऐसे लोगों में जमींदार, उनके कारिन्दे तथा देशी महाजन आदि हैं। प्रेमचन्द-साहित्य में शहरी मजदूरों का

- -

१-- राजे-महाराजों और जमींदारों के सम्बन्ध में विस्तार के लिए इसी शोध प्रबन्ध का दे० अध्याय ४ `युग का सामाजिक बोध` के अंश `आर्थिक जीवन` के अन्तर्गत शीर्षक `भूपति अथवा भूस्वामी`।

२-- `सेवासदन`, पृ० १५१

३-- इस सम्बन्ध में विस्तार के लिए दे० अध्याय ४ के आर्थिक जीवन के अन्तर्गत शीर्षक `पूंजीपति-व्यवसायी-उद्योग और व्यवसाय`।

चित्रण `रंगभूमि` और `गोदान` उपन्यासों में हुआ है। जॉन सेवक के सिगरेट के कारखाने और खन्ना की चीनी मिल के मजदूरों के चित्रण के मध्य शहर में मजदूर वर्ग के जीवन, उसके रहन-सहन और उनकी कठिनाई का चित्रण सम्भव हो सका है। `गोदान` में फुटकर काम करने वाले मजदूरों की ओर भी संकेत किया गया है।[1] ग्रामीण जीवन के बैंकरों या देशी महाजनों का सफल चित्रण प्रेमचन्द ने `गोदान` उपन्यास और `सवा सेर गेहूं` कहानी में किया है। `गोदान` में होरी के महाजनों में दातादीन, नोखेराम, झिंगुरीसिंह, दुलारी सहुआइन आदि की एक खासी भीड़ है। `सवा सेर गेहूं` में विप्र महाजन ही इन्हीं महाजनों का प्रतिनिधित्व करते हैं।[2]

पेशेवर बुद्धिजीवी मध्यवर्ग के लोगों में प्रेमचन्द-साहित्य में वकील, डाक्टर, अध्यापक और पत्रकार या सम्पादक आदि का भी चित्र मिलता है। यह वर्ग आधुनिक अर्थ-व्यवस्था, राजनैतिक व्यवस्था और शिक्षा तथा जागरण की देन है। प्रेमचन्द के वकील पात्रों में `सेवासदन` के पद्मसिंह, डा० श्यामाचरण, रुस्तम भाई, शाकिर बेग, शरीफ हसन, `प्रेमाश्रम` के इर्फानअली, `प्रतिज्ञा` के अमृतराय, `गोदान` के श्याम बिहारी तंखा आदि हैं। स्त्री वकीलों में `गोदान` की मिस सुल्तान तथा `पद्मा` कहानी की मिस पद्मा है। इन समस्त वकील पात्रों में पूर्ण रूपेण अपने पेशे में रत व्यक्ति `प्रेमाश्रम` के बैरिस्टर इर्फान अली है। `सेवासदन` के पद्मसिंह भी अपनी जीविका के लिए पूरी तरह से वकालत पेशे पर आधारित हैं। यद्यपि वे सार्वजनिक कार्य भी करते हैं। अन्य लोगों के वकील होने का संकेत मात्र ही किया गया है। उनका चरित्र चित्रण या तो किसी समस्या के संदर्भ में किया गया है अथवा किसी घटना क्रम को आगे बढ़ाने के लिए उनके चरित्र को किसी कथा प्रसंग में जोड़ा गया है। बैरिस्टर इर्फान अली उच्च मध्य वर्ग के वकीलों का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा पद्मसिंह मध्यवर्गीय वकीलों के प्रतिनिधि हैं। एक तीसरे तरह के वकील पेशे वाले मुख्तारों का प्रतिनिधित्व `दुस्साहस` कहानी के

- -

१— विस्तार के लिए अध्याय ४ का दे० शीर्षक `किसान और मजदूर`।

२— महाजनों के सम्बन्ध में विस्तार के लिए दे० अध्याय ५ का आर्थिक विसंगतियां और आर्थिक प्रश्न शीर्षक का अंश `ऋण`।

मुंशी मैकूलाल करते हैं ।[१] बैरिस्टर ईर्फान अली की सलाह की फीस २०० रु० तथा किसी शंका के समाधान के लिए ५०० रु० अलग से फीस के साथ ही उनके मुंशी की फीस ५ रु० थी ।[२] ईर्फान अली को पैसे की धुन है । लखनपुर के अभियुक्तों का मुकदमा लेकर उन्हें पछतावा है । वे जो कुछ याद है, उसी के आधार पर 'नमक-मिर्च और मिलाकर'[३] इस मुकदमें की बहस कर देना चाहते हैं। अन्त में गायत्री द्वारा अधिक फीस पर बुलावा आने पर वे बहस भी नहीं करते । बड़े वकील छोटे मुकदमों की किस तरह उपेक्षा करते हैं ईर्फान अली के चरित्र से यह बात स्पष्ट होती है । पद्मसिंह ईमानदारी से वकालत करना चाहते हैं । उनकी आमदनी इतनी कम है कि खर्च मुश्किल से चल पाता है ।[४] प्रेमचन्द वकालत पेशे को अच्छी दृष्टि से नहीं देखते । उनके अनुसार "वर्तमान सामाजिक-व्यवस्था का अन्याय है जिसने इस पेशे (वकालत पेशे) को इतना उच्च स्थान प्रदान कर दिया है।"[५] वह चाहते हैं - 'जो अन्याय से घृणा करता हो, वह वकालत करे ।'[६]

डाक्टर के रूप में प्रेमचन्द जी ने 'प्रेमाश्रम' के डाक्टर प्रियनाथ चोपड़ा का चित्रण प्रस्तुत किया है । प्रियनाथ चोपड़ा सरकारी अस्पताल के डाक्टर हैं । डाक्टर चोपड़ा अन्य डाक्टरों की भांति सरकारी सामान, रोगियों के हिस्से की शाक-भाजी, दूध-मक्खन, उपले ईंधन आदि का उपयोग करने में संकोच नहीं करते हैं ।" उनके भाग का यह सब सामान उनके घर पहुंच जाता है । फर्नीचर आदि भी सब सरकारी थे और नौकर भी सरकार ने उन्हें दे रखे थे ।"[७] डा० चोपड़ा ज्ञानशंकर के कुचक्र से बाहर नहीं आ पाते । गायत्री द्वारा व्यक्तिगत चिकित्सक नियुक्त किए जाने पर वह अपनी आत्मा की पुकार के विरुद्ध लखनपुर के सभी अभियुक्तों को फंसाने

- -

१-- 'दुस्साहस', मानसरोवर भाग ८

२-- 'प्रेमाश्रम', पृ० २२८

३-- 'प्रेमाश्रम', पृ० २५२

४-- 'सेवासदन', पृ० ३१

५-- 'मृत्यु के पीछे', मानसरोवर भाग ६, पृ० ११८

६-- 'पशु से मनुष्य', मानसरोवर भाग ८, पृ० १११

७--'प्रेमाश्रम', पृ० २३०-२३१

का प्रयत्न करते हैं।[१] आधुनिक डाक्टरों की घूसखोरी, सरकारी सामान के अनाधिकार प्रयोग और कर्तव्य से विलगाव की स्थिति का बोध प्रियनाथ के चरित्र से होता है। प्रेमचन्द अन्त में प्रियनाथ को जनसेवक डाक्टर के रूप में प्रेमशंकर के प्रेमाश्रम में ले जाते हैं यही उनके डाक्टर का आदर्श है।

प्रेमचन्द के अध्यापक चरित्रों के रूप में `वरदान` के प्रो० दाननाथ, `कर्मभूमि` के डा० शान्तिकुमार और `गोदान` के प्रोफेसर मेहता हैं। दाननाथ और डाक्टर शान्तिकुमार कालेज के अध्यापक और प्रो० मेहता विश्वविद्यालय के दर्शन-विभाग के अध्यापक हैं। दाननाथ सामान्य अध्यापकों, डाक्टर शान्तिकुमार राष्ट्रीय अध्यापकों तथा प्रो० मेहता विद्वान अध्यापकों का प्रतिनिधित्व करते हैं। सम्पादक या पत्रकार के रूप में प्रेमचन्द ने उपन्यासों में `गोदान` के ओंकारनाथ, `सेवासदन` के प्रभाकर राव तथा कहानियों में `जीवन का शाप` के `कावस जी` तथा `मृत्यु के पीछे` के ईश्वरचन्द का चित्रण किया है। पत्रकारिता अथवा सम्पादक का पेशा मशीन युग की देन है। `गोदान` के सम्पादक ओंकार नाथ डींगे तो बहुत हांकते हैं परन्तु अपने सिद्धान्तों को व्यवहार में नहीं ला पाते। वह मजदूरों की हड़ताल के लिए उकसाते हैं परन्तु संघर्ष के मैदान से हट जाते हैं। प्रेमचन्द के समय तक भारतवर्ष में न तो पत्रकारिता की प्रगति हुई थी और न ही सामान्य पत्रकार की आर्थिक स्थिति ही अच्छी थी। ओंकार नाथ के अनुसार `सम्पादक का जीवन एक दीर्घ विलाप है`[२] पत्नी द्वारा पत्रकार `कावस जी से लाख बार यह प्रश्न किया जा चुका था कि तुम्हें समाचार पत्र निकालकर अपना जीवन बर्बाद करना था तो तुमने विवाह क्यों किया`[३]? `मृत्यु के पीछे` कहानी में सम्पादक ईश्वरचन्द की भी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है परन्तु वे अपने कर्तव्य का निर्वाह ईमानदारी और सच्चाई से करते हैं। जीवनपर्यन्त वह अपने पेशे को नहीं छोड़ते हैं।[४] यदि उन्होंने `गोदान` के ओंकारनाथ ऐसे पलायनवादी, `सेवासदन`

- -

१-- `प्रेमाश्रम`, पृ० २३२

२-- `गोदान`, पृ० ६१

३-- `जीवन का शाप`, मानसरोवर भाग २, पृ० २२३

४-- `मृत्यु के पीछे`, मानसरोवर भाग ६

के प्रभाकर राव ऐसे ईर्ष्यालु पत्रकार का चित्रण किया है तो ईश्वरचन्द ऐसे ईमानदार और सच्चे तथा `गबन` के कलकत्ते के `प्रजामित्र` के "हिम्मत के धनी दो बार जेल हो आने वाले"[1] पत्रकार का भी चित्रण किया है। पत्रकार के सम्बन्ध में प्रेमचन्द की अपनी मान्यता थी कि "पत्र का सम्पादक परम्परागत नियमों के अनुसार जाति का सेवक है। वह जो कुछ देखता है, जाति की विराट दृष्टि से देखता है"[2] क्लर्क के रूप में प्रेमचन्द ने `सेवासदन` के गजाधर और `गबन` के रमानाथ दोनों के चरित्र का प्रारम्भिक रूप लिया है। दोनों के सामने आर्थिक संकट है। यही आर्थिक संकट उनके जीवन में संकट पैदा करता है। दफ्तर के बाबू के लिए प्रेमचन्द की उक्ति है `दफ्तर का बाबू बे जबान जीव है ----- संतोष का पुतला, सब्र की मूर्ति, सच्चा आज्ञाकारी ----- इसके लिए सूखा सावन है कभी भरा भादों नहीं।"[3] ब्रिटिश प्रशासन में क्लर्क की यही स्थिति थी।

भारतीय सामाजिक जीवन में नारी का समाज में एक विशिष्ट स्थान रहा है। धर्म की दृष्टि से वह पुरुष की अर्द्धांगिनी और सहभागी होती थी। परन्तु कालान्तर में उसको पुरुष की दासी के रूप में मान लिया गया। पूजा अनुष्ठान में भले ही उसे पुरुष के बगल में बिठा दिया जाता रहा हो परन्तु आर्थिक दृष्टि से वह पुरुष की गुलाम हो गयी। भारतीय समाज के इस वर्ग की ओर भी प्रेमचन्द का ध्यान गया और उन्होंने नारी जीवन को परखा और देखा है, उनकी समस्याओं पर गहन रूप से विचार किया है और उनके समाधान का प्रयास भी किया है।[4]

<u>पूजाति</u> : सामाजिक वर्गों के अलावा जहां तक जाति का प्रश्न है आधुनिक उत्तर भारतीय समाज में जाति का जो स्वरूप विद्यमान है यदि गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाय और प्रेमचन्द-साहित्य का सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण किया जाय तो वह उनके साहित्य में साकार हो उठता है। उच्च से उच्च जाति से लेकर निम्न से निम्न जातियों और उपजातियों के पात्र प्रेमचन्द-साहित्य में मिलते हैं। इनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य से लेकर चमार, पासी, भील, भंगी या मेहतर आदि अन्य

- -

१-- `गबन`, पृ० १८०

२-- `विक्री के रूप में`, मानसरोवर भाग ३, पृ० २५६

३-- `इस्तीफा`, मानसरोवर भाग ५, पृ० ३२

४-- इस सम्बन्ध में देखिए अध्याय ५ का `सामाजिक विकृतियां : सुधार का प्रयत्न` का नारी जीवन से सम्बन्धित अंश।

निम्न जातियों के साथ कायस्थ, अहीर, बढ़ई, लुहार आदि जातियों के या तो पात्र हैं अथवा इन जातियों का उल्लेख किया गया है। चिन्तामणि और मोटेराम शास्त्री के रूप में न केवल ब्राह्मण जाति के पात्र का ही चयन किया गया है बल्कि इस जाति के पेशे पुरोहितों का भी उल्लेख किया गया है। `निर्मला` उपन्यास में पुरोहित मोटेराम शास्त्री कल्याणी का विवाह का संदेशा लेकर लखनऊ भालचन्द सिनहा के पास जाते हैं।[1] वहां पर विवाह सम्बन्ध न हो सकने की स्थिति में पुरोहित मोटेराम शास्त्री कल्याणी की सहायता लड़का खोजने में भी करते हैं। यह कार्य पंडित और पुरोहित कालान्तर से करते चले आ रहे हैं। `रंगभूमि` के भरतसिंह, विनय, महेन्द्रकुमार सिंह, `कायाकल्प` के राजा विशालसिंह, हरिसेवक सिंह एवं गुरु सेवक `गोदान` के अमरपाल सिंह, राजा सूर्य प्रताप सिंह तथा दिग्विजय सिंह एवं `सेवासदन` के कुंवर अनिरुद्ध सिंह क्षत्रिय पात्र हैं। वैश्य पात्रों में `कर्मभूमि` के लाला समरकान्त, धनीराम, मनीराम आदि हैं जो अपने जातीय परम्परागत पेशों में संलग्न हैं शूद्रों में `कायाकल्प` के बेगार के विरुद्ध आंदोलन करने वाले चमार तथा `कर्मभूमि` के पहाड़ी गांव के गूदड़ चौधरी उनका परिवार तथा आस-पास के गांवों के लोग हैं। इसके अलावा `रंगभूमि` में जॉन सेवक के कारखाने में झाड़ू का काम करने वाले चमारों का उल्लेख भी है।[2] `रंगभूमि` उपन्यास के भीलों का उल्लेख पहाड़ी गांवों में किया गया है जहां पर विनय और सोफी आकर उनके बीच रहते हैं। प्रेमचन्द इन गांवों का चित्रण करते हुए लिखते हैं - "भीलों के छोटे-छोटे झोपड़े, जिन पर बेलें फैली हुई थीं, अप्सराओं के खिलौनों की भांति सुन्दर लगते हैं।"[3] यहां के भीलों में आतिथ्य, मंत्र-तंत्र और जड़ी-बूटी पर आस्था है जिनसे विनयसिंह भी प्रभावित है।[4] `विध्वंस` कहानी में भुनगी नाम की गोंड स्त्री का उल्लेख है जो भाड़ झोंक कर अपना निर्वाह करती है।[5]

- -

१-- `निर्मला`, पृ० ३६

२-- `रंगभूमि`, पृ० ४०६-४०७

३-- `रंगभूमि`, पृ० ४२१

४-- `रंगभूमि`, पृ० ४२४

५-- `विध्वंस`, मानसरोवर भाग ८

प्रेमचन्द-साहित्य में बहुत से कायस्थ पात्र भी है। `वरदान' उपन्यास के मुंशी शालिग्राम, प्रतापचन्द, मुंशी संजीवन लाल आदि `कायाकल्प' के मुंशी `वज्रधर', `चक्रधर' तथा यशोदानन्दन कायस्थ जाति के पात्र हैं। `गोदान' के पटवारी पटेश्वरी भी कायस्थ हैं और परम्परागत पटवारी पेशे को अपनाए हुए हैं। अहीरों में `कर्मभूमि' की उस अहीर बस्ती का उल्लेख किया जा सकता है जहां पर लगान आंदोलन के समय मिस्टर घोष के सिपाही एक अहीर युवती के साथ बलात्कार करना चाहते हैं और सलीम उसकी रक्षा करता है।[1] पंडे के रूप में `रंगभूमि' के नायकराम की चर्चा की जा सकती है। `वरदान' उपन्यास में भी बाला जी का विरोध करते हुए प्राग्वालों और पंडों का उल्लेख किया गया है। बाला जी का विरोध करने के लिए बदलू शास्त्री पंडों और प्राग्वालों के दल के साथ गोशाले के पास आते हैं।[2] `कायाकल्प' उपन्यास में दूसरों पर आधारित कामगर जातियों का उल्लेख है। इनमें राजा विशालसिंह के रियासत के `बढ़ई, मिस्त्री, दर्जी, चमार, कहार'[3] आदि हैं जो तिलकोत्सव के समय बेगार में राजा साहब के यहां काम कर रहे हैं। `गबन' उपन्यास में देवीदीन खटिक का चरित्र-चित्रण हुआ। यह जाति प्रायः शाक-भाजी का काम करती है। बिहार का रहने वाला देवीदीन खटिक अपनी पत्नी जग्गो के साथ कलकत्ते में अपना जातीय पेशा अपनाए हुए है। `त्रिया-चरित्र' कहानी में प्रेमचन्द ने मालिन का उल्लेख किया है जो माले फूल का काम करती है।[4] `दोहनी' कहानी में पान का काम करने वाली `तम्बोलिन' का उल्लेख किया गया है।[5] इस प्रकार से प्रेमचन्द-साहित्य में उत्तरी भारत की लगभग समस्त जातियों का उल्लेख मिलता है। ध्यान से देखने पर इन जातियों अथवा जातीय पात्रों के लिए हुए उनके जातीय गुण अथवा जातीय विशेषताएं भी स्पष्ट हो जाती हैं।

- -

१-- `कर्मभूमि', पृ० ३६६-६७

२-- `वरदान', पृ० १२३

३-- `कायाकल्प', पृ० ६१

४-- `त्रिया चरित्र', गुप्तधन भाग १,

५-- `दोहनी', गुप्तधन भाग २

परिवार और पारिवारिक विघटन

परिवार समाज की एक महत्वपूर्ण ईकाई है। परिवार समाज की वह शाखा है जो व्यक्ति को सामाजीकृत करती है तथा उसे राष्ट्र के लिए निर्मित करती है। जब हम समूह या समाज की दृष्टि से परिवार पर विचार करते हैं तब हम परिवार को सामाजिक संस्था के रूप में पाते हैं। यही कारण है कि समाज के अन्तर्गत परिवार के महत्व को प्लेटो और अरस्तू के समय आंका जाने लगा था। दोनों ने परिवार को मानव जीवन पर मूल प्रभाव (फन्डामेन्टल इनफ्लूएन्स) डालने वाला माना था।[१] अर्नेस्ट आर० ग्रोवस् की धारणा है कि "परिवार की सामाजिक अर्थपूर्णता इतनी महत्वपूर्ण और प्रमाणिक है कि समाज-शास्त्र के आधुनिक विज्ञान को अपनी प्रारम्भिक अवस्था से परिवार ने सामाजिक संस्था और पारिवारिक अनुभव के समूह के रूप में आकृष्ट और प्रभावित किया है।[२] मैकाइवर के अनुसार "परिवार वह समूह है जिसमें स्त्री-पुरुष का यौन सम्बन्ध सुनिश्चित होता है और यहां तक निभाया जाता है कि सन्तानोत्पत्ति हो जाय और उसका पालन-पोषण किया जाय।"[३] एबनन्द अन्सेल मानते हैं कि "परिवार

- -

१-- "If we extend sociological interests backward so as to include classic philosophy, we discover that both plato and Aristotle thought of the family as the fundamental influence over human life."
अर्नेस्ट आर० ग्रोव्स: 'द फेमिली ऐण्ड इट्स सोशल फंक्शन्स', १९४० (शिकागो) पृ० ६

२-- "The social significance of the family is so great and so evident that from the beginning of the modern science of sociology the family, both as a social institution and as a grouping of domestic experience, has had attention and emphasis."
अर्नेस्ट आर० ग्रोव्स: 'द फेमिली ऐण्ड इट्स सोशल फंक्शन्स', १९४० (शिकागो) पृ० ६

३-- "The family is a group defined by a sex relationship sufficiently precise and enduring to provide for the procreation and upbringing of children."
आर० एम० मैकाइवर: 'सोसाइटी', १९३७ (न्यूयार्क) पृ० १९६

को अपने वास्तविक रूप में अनुकरण के उदाहरण और मानव जीवन के साथ मानव विचारों की मूल श्रेणी निर्धारक के रूप में जानना चाहिए। यह आचार नीति अथवा नीतिशास्त्र और नैतिकता का सार है, यह शिक्षा में अनुमित है।"[१] रैल्फ लिन्टन परिवार को सबसे प्राचीनतम सामाजिक संस्था मानते हैं। उनका अभिमत है कि "विश्वास के लिए अनेक कारण हैं कि परिवार मनुष्य की सबसे प्राचीन सामाजिक संस्था है और यह अपने एक या दूसरे रूप में जीवित रहेगी जब तक हमारी जाति का अस्तित्व रहेगा।"[२] परिवार की इस सार्वभौमिकता को प्रो० मैरिल भी स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार - "परिवार एक सार्वभौमिक संस्थान है। उनकी यह भी धारणा है कि यद्यपि हमारे समाज में अन्य संस्थाओं द्वारा उसके बहुत से कार्य ग्रहण कर लिए गए हैं परन्तु फिर भी वह सम्पूर्ण संस्थाओं में अपने कार्यक्रम में बहुउद्देशीय है। बहुत से समाजों में परिवार अब भी प्रमुख सामाजिक ढांचा है जिसे संस्थागत कहा जा सकता है। सामाजिक नियंत्रण, शिक्षा, धर्म, संरक्षण, मनोरंजन और भी दूसरे संस्थागत कार्य इन समाजों में परिवार द्वारा प्रचालित हैं।[३] प्रो० अर्नाल्ड के अनुसार "यद्यपि परिवार पूर्णरूपेण

- -

१-- "The family, in its essential meaning, must be considered as an example for imitation, constituting a fundamental category in human life and thought. It is the essence of ethics and morality, it is implicit in education."

रुथनन्द अन्सेन: 'द फैमिली: इट्स फंक्शन्स ऐण्ड डिस्टनी', १९५९ (न्यूयार्क) पृ० ३

२-- "There is every reason to believe that the family is the oldest of human social institutions and that it will survive, in one form or another, as long as our species exists."

रैल्फ लिन्टन: 'द नेचुरल हिस्ट्री ऑव द फैमिली', द्वे० रुथनन्द अन्सेन: 'द फैमिली: इट्स फंक्शन्स ऐण्ड डिस्टनी', १९५९ (न्यूयार्क) पृ० १८

३-- "The family in the universal institution. It is the most multi functional of all the institutions, even though in our society many of its former functions have been partially taken over by other institutions. In many societies, the family is

(शेष अगले पृष्ठ पर)

विभिन्नता से युक्त परिवर्तित सामाजिक संस्था है, परन्तु यह अपने सार्वभौम स्वरूपों के पुष्ट अन्तर्भाग को सुरक्षित रखता है।"[1] इस सार्वभौमिकता के लिए उन्होंने दो तथ्य बताए हैं। प्रथम मनुष्य जीवन में व्यक्ति की अपेक्षा समूह का महत्व तथा दूसरा विभिन्नताओं के मध्य मनुष्य के व्यवहार में निश्चित बंधन की आवश्यकता ऐसे पक्ष हैं जो परिवार की सार्वभौमिकता को बनाए रखते हैं।[2]

इस प्रकार से स्पष्ट है कि परिवार एक सामाजिक संस्था है जो अपने स्वरूप में सर्वाधिक प्राचीन है। परिवार एक सार्वभौम संस्था है जो सम्पूर्ण कालों में सम्पूर्ण देशों के समाजों में अपने सार्वभौम स्वरूप व्यक्तियों के सामूहिकता की महत्वपूर्ण स्थिति एवं जीवन की विविधता में व्यवहारों को सीमित करने की आवश्यकता पूर्ति के लिए - विद्यमान है और रहेगी। परिवार सामाजिक मूल्यों के निर्धारण अथवा मानव के सामाजीकरण के लिए समाज का एक अनिवार्य अंग है। परिवार अपने किन रूपों में अपने कार्यों एवं दायित्वों का किस मात्रा में निर्वाह कर रहा है, समाज में उसकी क्या आवश्यकता है? और समाज की आवश्यकताओं की वह अपने देश-काल और परिस्थिति की सीमा के मध्य कहां तक पूर्ति कर रहा है? इस परिवर्तन के क्या परिणाम होंगे? आदि सबका अध्ययन समाजशास्त्र करता है। परिवार के सामाजिक मूल्य के अलावा उसका राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय क्या मूल्य है? राज्य से वह किस तरह सम्बन्धित है आदि

- -

still the principal social pattern that can be called institutional. Social control, education, protection, recreation and the rest of the institutional functions are conducted by the family in these societies."

फ्रांसिस ई० मैरिल: 'सोसाइटी ऐण्ड कल्चर', १९५२ (अमेरिका) पृ० ३५६

१-- "Although the family is an extremely varied social institution, it does possess a solid core of universal features."
अर्नाल्ड डब्ल्यू० ग्रीन: 'सोशियोलॉजी: ऐन ऐनालिसिस ऑफ लाइफ इन माडर्न सोसाइटी', १९६० (न्यूयार्क, लन्दन), पृ० ३६०

२-- अर्नाल्ड डब्ल्यू ग्रीन: 'सोशियोलॉजी: ऐन ऐनालिसिस ऑफ लाइफ इन माडर्न सोसाइटी', १९६० (न्यूयार्क, लन्दन) दे० पृ० ३६०

आदि भी परिवार के सम्बन्ध में समाजशास्त्र के अध्ययन विषय हैं ।

प्रश्न यह उठता है कि क्या प्रेमचन्द ने अपने साहित्य में पारिवारिक विविधता या उनके विविध स्वरूपों का ध्यान रक्खा है ? क्या उन्होंने परिवार के सामाजिक राष्ट्रीय और मानवीय मूल्यों का आंकलन किया है ? क्या उन्होंने व्यक्ति के विकास में पारिवारिक मूल्य को समझने का प्रयास किया है ? क्या वे अपने युग और देश की पारिवारिक स्थिति से सम्बन्ध बनाए रखने का प्रयास करते रहे हैं ? अथवा क्या वे परिवार के बदलते हुए स्वरूप अर्थात विघटनकारी प्रवृत्ति से परिचित थे ? यदि इन प्रश्नों का उत्तर हां में मिल सके तो हम दावे के साथ कह सकते हैं कि प्रेमचन्द-साहित्य में चित्रित परिवार की सुन्दर समाजशास्त्रीय व्याख्या हो सकती है ।

प्रेमचन्द जी के लगभग सभी कथानक किसी न किसी परिवार की कहानी कहते चलते हैं । उनका प्रत्येक कथानक पारिवारिक जीवन से जुड़ा हुआ है । यह स्थिति केवल उनके उपन्यास साहित्य में ही नहीं है बल्कि उनकी अधिकतर कहानियां भी इस विशेषता से युक्त हैं । क्योंकि प्रेमचन्द-साहित्य का विस्तार उनके साहित्य को सैकड़ों कथानक प्रदान कर सका है और लगभग प्रत्येक कथानक किसी न किसी रूप में किसी परिवार से सम्बद्ध है । अत: पारिवारिक विविधता आप से आप उनके साहित्य में आ गई है । समाजशास्त्र के अनुसार परिवारों के जो प्रकार बताए गए हैं उनमें पितृ-सत्तात्मक, मातृ-सत्तात्मक, संयुक्त, अर्द्ध संयुक्त, आशाधिक, एकाकी, एक विवाही, बहुविवाही, विधुर विवाही, विधवा-प्रधान परिवार, आदि अनेक प्रकार के भेद हैं । भारतवर्ष में पितृ-सत्तात्मक परिवार व्यवस्था है । सिंधु-घाटी की सभ्यता के समय मातृ-सत्तात्मक परिवार का उल्लेख मिलता है परन्तु वैदिक काल के बाद यह स्थिति नहीं रही । प्रेमचन्द के समस्त परिवार जहां पुरुष हैं वह परिवार पितृ-सत्तात्मक या पुरुष प्रधान परिवार हैं । परिवार में नारी की प्रधानता भारतीय संस्कृति में नहीं स्वीकृति की गई है । अत: प्रेमचन्द-साहित्य में कहीं भी पुरुष के रहते हुए नारी-प्रधान परिवार के दर्शन नहीं होते ।

भारतवर्ष में संयुक्त परिवार की प्रथा अति प्राचीन है । विदेशी भी भारतवर्ष के संयुक्त परिवार की विशेषता को जानते हैं । डेविड जी० मैनडेलबम के अनुसार "भारतीय परिवार का प्राचीनतम स्वरूप संयुक्त परिवार है । जहां तक

कि शहरी और पाश्चात्यीकृत और मुस्लिम परिवारों में भी संयुक्त परिवार के अन्तर्सम्बन्ध उपेक्षित नहीं किए जा सके हैं। पुराने रूढ़िवादी तरीके के संयुक्त परिवारों का प्रभाव सम्पूर्ण भारत में अब भी है।[१] प्रेमचन्द जी के प्रमुख संयुक्त परिवारों में `सेवासदन` में पद्मसिंह, मदनसिंह और सदनसिंह का परिवार, `प्रेमाश्रम` में जटाशंकर, प्रभाशंकर, ज्ञानशंकर, प्रेमशंकर आदि का परिवार, `रंगभूमि` में ताहिर अली एवं माहिर अली के संयुक्त परिवार हैं। `निर्मला` में मुंशी तोताराम, मंसाराम, निर्मला तथा विधवा बहन रुक्मिणी का परिवार तथा `गोदान` में होरी, धनिया, हीरा, पुनिया, शोभा, गोबर और झुनिया, रूपा और सोना का परिवार आदि हैं। इनमें संयुक्त परिवार की सम्पूर्ण विशेषताओं के साथ जिन परिवारों का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है उनमें `सेवासदन` का पद्मसिंह और मदनसिंह, `प्रेमाश्रम` का प्रभाशंकर एवं जटाशंकर तथा `गोदान` के होरी के संयुक्त परिवार हैं।

`सेवासदन` के पद्मसिंह अपनी पत्नी सुभद्रा के साथ शहर बनारस में रहते हैं। उनका पेशा वकालत है। वह गांव के रहने वाले हैं और शहर में आकर बस गए हैं। `पद्मसिंह के एक बड़े भाई मदनसिंह थे। वह घर का काम काज देखते थे। थोड़ी सी जमींदारी थी, कुछ लेन-देन करते थे। उनके एक ही लड़का था, जिसका नाम सदनसिंह था स्त्री का नाम भाम्या था।`[२] पद्मसिंह का घर का सम्बन्ध अब भी बना हुआ है अर्थात् भाई-भाई में अलगाव नहीं हुआ है। वे तीज त्यौहार और विशेष कामों में घर जाते रहते। `होली के दिन पद्मसिंह अवश्य घर आया

- -

१-- "The classic form of the family in India is that of the joint family.........even among urban and westernized and Muslim families the patterns of interpersonal relationships set by the joint family are not wholly ignored, and the model of the orthodox, scriptural joint family still has influence everywhere in India."

डेविड जी० मैनडेल्बम: `द फैमिली इन इण्डिया`, रूथ नन्दा अन्शेन: `द फैमिली इट्स फंक्शन ऐण्ड डेस्टिनी`, १९४९ (न्यूयार्क) पृ० ४२

२-- `सेवासदन`, पृ० ३४

करते थे ।"[१] देहात से शहर में आ बसने वाले प्राणी का देहात के परिवार से जैसा सम्बन्ध सम्भव है वह इस परिवार में उपलब्ध है । पद्मसिंह को वह दिन अब भी याद है जब भाई आटे-दाल की गठरी लाद कर उन्हें स्कूल पहुंचाया करते थे आप नंगे पांव रहकर उन्हें वार्निश के जूते पहनाते थे, स्वत: फटा कुर्ता पहने दिन काटकर उन्हें रेशमी कुर्ते पहनाते थे ।[२] यही कारण है कि वे सदन के शहर आने पर अपनी पत्नी से स्पष्ट कह देते हैं - "सदन के लिए मैं प्रत्येक कष्ट सहने को तैयार हूं । उसके लिए यदि मुझे पैदल कचहरी जाना पड़े, उपवास करना पड़े, अपने हाथों से उसके जूते साफ करने पड़े तब भी इन्कार न होगा, नहीं तो मुझ जैसा कृतघ्न संसार में न होगा ।"[३] पद्मसिंह को खर्चे की तंगी है फिर भी वे संयुक्त परिवार की परम्परा को सुरक्षित रखने के लिए सब कुछ सहने के लिए तैयार हैं । 'प्रेमाश्रम' के ज्ञानशंकर और प्रभाशंकर का संयुक्त परिवार काशी में औरंगाबाद के निकट रहता है । बड़े भाई जटाशंकर को धार्मिक कार्यों से रुचि थी । घर का सारा प्रबन्ध छोटे भाई प्रभाशंकर के ऊपर था । "दोनों भाइयों में इतना प्रेम था कि उनके बीच में कभी कटु वाक्यों की नौबत न आयी थी । स्त्रियों में तू-तू, मैं-मैं होती थी किन्तु भाइयों पर इसका असर न पड़ता था । प्रभाशंकर स्वयं कितना ही कष्ट उठायें अपने भाई से कभी भूल करके शिकायत न करते । जटाशंकर भी उनके किसी काम में हस्तक्षेप न करते थे ।"[४] जीवन पर्यन्त जटाशंकर और प्रभाशंकर एक साथ अपने लड़के, पुत्रियों और बहुओं के साथ बिना किसी संघर्ष और वैमनस्य के रहे । इस संयुक्त परिवार में भारतीय परिवार की सांस्कृतिक विशेषता आतिथ्य-सत्कार विद्यमान थी । प्रभाशंकर के शब्दों में - "हमने जो कुछ किया, नाम के लिए किया, घर में उपवास हो गया है, लेकिन जब कोई मेहमान आ गया तो उसे सिर और आंखों पर लेते थे ।"[५] 'गोदान' के होरी के परिवार के सम्बन्ध में यह संकेत मिलता है कि वह अपने प्रारम्भिक रूप में एक संयुक्त परिवार था जो अब

१— 'सेवासदन', पृ० ३६

२— 'सेवासदन', पृ० ५५

३— 'सेवासदन', पृ० ५५

४— 'प्रेमाश्रम', पृ० ६

५— 'प्रेमाश्रम', पृ० ११

टूट गया है। इसके संयुक्त स्वरूप में होरी की पत्नी घर में लेने-देने, धरने-उठाने, संभालने सहेजने का काम करती थी। बेचारी अपनी देवरानियों के फटे-पुराने कपड़े पहनकर दिन काटती थी, खुद भूखी सो रही होगी, लेकिन बहुओं के लिए जलपान तक का ध्यान रखती थी। अपनी देह में गहने के नाम पर कच्चा धागा भी न था, देवरानियों के लिए दो-दो चार-चार गहने बनवा दिये।'[1] यद्यपि होरी का परिवार अब बिखर चुका है। भाई हीरा ने ईर्ष्यावश होरी की गाय को विष दे दिया है और इसी ग्लानि और लज्जा के कारण वह भाग भी गया है, परन्तु होरी अब भी उसके परिवार का पालन-पोषण, काम-काज कर रहा है। वह मौत के सन्नाटे में, जाड़े की रात्रि में शीत से कांपता हुआ पैरों को पेट में डालकर हाथों को जांघों के बीच दबाकर कम्बल में मुंह छिपाकर माघ की घघावट भरी अंधेरी रात्रि में 'पुनिया के मटर के खेत की मेड़ पर अपनी मड़ैया में लेटा हुआ'[2] खेत की रखवाली करता है। धनिया को भी पुनिया से ईर्ष्या या जलन नहीं है। वह होरी से कहती है - 'गाय गयी सो गयी, मेरे सिर पर एक विपत्ति डाल गई। पुनिया की फिकर मुझे मारे डालती है।'[3] यह फिकर है हीरा का भागना और अब पुनिया की संरक्षा और जीवन यापन का प्रश्न। संकट के समय संयुक्त परिवार सहायक का कार्य करता है। वह सामाजिक कल्याण की एजेन्सी होता है। इसमें संकटग्रस्त व्यक्ति को सहायता मिलती है।[4] होरी के टूटे हुए परिवार में संयुक्त परिवार के यह गुण विद्यमान हैं। पुनिया भी अब झगड़ालू पुनिया नहीं रही। कभी धनिया पर भी बकझकते हुए होरी के बच्चों को वह नहीं देख सकती। जब से गोबर भागा, अब धनिया से उसकी बोल-चाल हो गयी है। अपनी फसल

- -

१-- 'गोदान', पृ० २८

२-- 'गोदान', पृ० १२१

३-- 'गोदान', पृ० १२१

४-- "The joint family also acted as a social welfare agency, a co-operative for its members. In cases of unemployment, illness of one of the members of the family, one could fall back on the joint family for help and succour."

[illegible]: 'कन्टेम्पोरेरी सोशल प्राब्लेम्स इन इण्डिया', १९६४ (कलकत्ता), पृ० ७२

अच्छी होने पर वह होरी के प्रति एहसान मानती है। होरी के घर में अनाज के अभाव को देखकर वह अपना अनाज पहुंचाती है। वह होरी का एहसान चुका देना चाहती है। एहसान के बदले एहसान नहीं करना चाहती बल्कि एक पारिवारिक सद्भाव से।[१] टूट जाने पर भी इस परिवार में भारतीय संयुक्त परिवार की समस्त विशेषताएं विद्यमान हैं।

संयुक्त परिवार में पिता-पुत्र, भाई-भाई तथा उनकी पत्नियां और बच्चे आते हैं। अर्द्ध संयुक्त परिवार की परिभाषा के अन्तर्गत माता-पिता, पुत्र और पुत्र की संतान आते हैं। प्रेमचन्द-साहित्य में ऐसे अर्द्ध संयुक्त परिवारों में 'वरदान' के मुंशी शालिग्राम, सुवामा और प्रतापचन्द का परिवार, 'रंगभूमि' में ईश्वर सेवक, जॉन सेवक, प्रभुसेवक और सोफी तथा कुंवर भरतसिंह, रानी जाह्नवी एवं विनय के परिवार, 'प्रतिज्ञा' में लाला बदरी प्रसाद, देवकी, कमला प्रसाद और सुमित्रा का परिवार 'कर्मभूमि' में समरकान्त, अमरकान्त और सुखदा का परिवार 'गबन' में दयानाथ, रमानाथ और जालपा का परिवार आदि है। एकाकी अथवा आणविक परिवार के सदस्यों के रूप में पति-पत्नी के साथ उनकी संतान हो सकती है। परन्तु संतान अविवाहित अवस्था में ही रहे। प्रेमचन्द-साहित्य में ऐसे परिवारों में 'सेवासदन' के गजाधर और सुमन का परिवार 'प्रतिज्ञा' में बसंतकुमार और पूर्णा 'रंगभूमि' में राजा महेन्द्रकुमार और इन्दु का परिवार, 'गोदान' में चन्द्र प्रकाश खन्ना और गोविंदी के परिवारों का उल्लेख किया जा सकता है। एक विवाही परिवार के अनेक उदाहरण प्रेमचन्द-साहित्य में विद्यमान हैं। बहुविवाही परिवार के रूप में हम 'कायाकल्प' के राजा विशाल सिंह को देख सकते हैं उनकी तीन पत्नियां वसुमति, रामप्रिया और रोहिणी है तथा चौथा विवाह मनोरमा से करते हैं।[२] भारतवर्ष के राजे-महाराजाओं और सामन्तवर्ग के अन्य लोगों में बहुविवाह की प्रथा थी। यह परिवार उसी का द्योतक है। विधुर विवाही परिवार के रूप में 'निर्मला' का मुंशी तोताराम और निर्मला का परिवार है। यह अनमेल विवाह की कहानी भी कहता है। विधवा-प्रधान परिवार में 'कर्मभूमि' का पठानिन का परिवार है। इस परिवार के गुजारा के स्रोत सकीना की सिलाई और समरकान्त

- -

१— 'गोदान' दे० पृ० १९२-९३

२— 'कायाकल्प', पृ० ३६

द्वारा दिए गए महीने भर में पांच रुपए हैं। यह परिवार बनारस शहर के गोवर्धन सराय मोहल्ले की दुर्गन्धपूर्ण गलियों के बीच एक कच्ची कोठरी और खपरैल के एक सायबान में टाट के पर्दे के भीतर दो-चार टीन के बर्तनों और एक मिट्टी के घड़े के साथ निर्वाह कर रहा है।[१] प्रेमचन्द के इन परिवारों को किसानों, मजदूरों, व्यवसायियों, उद्योगपतियों, वकीलों, सामन्तों, जमींदारों, राजाओं, महाराजाओं के परिवारों के रूप में भी विभक्त किया जा सकता है। उपर्युक्त विवेचन के बाद प्रेमचन्द-साहित्य में पारिवारिक विविधता और उनके स्वरूपों के सम्बन्ध में संदेह नहीं रह जाता है।

पारिवारिक विविधता को जान लेने के बाद दो प्रश्न ऐसे हैं जिनका हम एक साथ उत्तर दे सकते हैं वे हैं क्या उन्होंने परिवार के सामाजिक, राष्ट्रीय और मानवीय मूल्यों का आकलन किया है ? क्या उन्होंने व्यक्ति के विकास में पारिवारिक मूल्य को समझने का प्रयास किया है ? इस संदर्भ में हमें यह कहना है कि प्रेमचन्द प्राय: अपने चरित्रों की नींव पारिवारिक जीवन में ही डाल देना चाहते हैं। ऐसे उनके अनेक सामाजिक, राष्ट्रीय और मानवीय मूल्यों के लिए संघर्ष करने वाले पात्र हैं, जिनके चरित्र का निर्माण प्रेमचन्द ने पारिवारिक जीवन में ही कर लिया है। उदाहरण के लिए हम 'वरदान' से ही प्रारम्भ करते हैं। माता सुवामा विन्ध्याचल की देवी की आराधना करती है और देवी से वरदान स्वरूप ऐसा पुत्र चाहती है जो "अपने देश का उपकार करे।"[२] आगे चलकर उसका पुत्र प्रतापचन्द्र बाला जी के रूप में जनता की सेवा करता है और गरीबों की सहायता करता है। 'रंगभूमि' के विनय, प्रभुसेवक और सोफिया का चरित्र भी पारिवारिक धरातल पर ही विकसित हुआ है। पारिवारिक जीवन में ही उनमें देश-सेवा की भावना के दर्शन हो जाते हैं। माता जान्हवी चाहती है कि उसका पुत्र विनय देश-सेवी पुत्र हो। पारिवारिक जीवन से ही वह सार्वजनिक हित में लगा है। उसने अपने पिता के घर ही "एक सेवा-समिति बना रखी है। जब शहर में कोई मेला होता है या कहीं से किसी दुर्घटना का समाचार आता है, तो समिति वहां पहुंचकर

- -

१— 'कर्मभूमि', पृ० ८६

२— 'वरदान', पृ० ६

सेवा सहायता करती है।'[1] रानी जान्हवी विनय को सोफिया के प्रेम-पाश में नहीं बंधने देना चाहती। सोफिया की ओर उसे आकर्षित हुआ देखकर और राजस्थान जाने का हीला-हवाला समझकर विनय को आदेश देती हुई कहती है - 'मैं बहुत जल्द का आशय यह समझती हूं कि तुम कल प्रातःकाल ही प्रस्थान करोगे।'[2] सोफिया द्वारा राजपूताने की गर्मी की ओर संकेत किए जाने पर जान्हवी निश्चयात्मक भाव से कहती है - 'कर्तव्य कभी आग और पानी की परवा नहीं करता।'[3] मां की ही प्रेरणा है जिसके कारण विनय जन-सेवी के रूप में प्रकाश में आता है। प्रभुसेवक और सोफिया का चरित्र परिवार की प्रतिकूल अवस्था में निर्मित हुआ है। प्रभुसेवक को जॉनसेवक की व्यापारिक स्वार्थपरता और शोषण की प्रवृत्ति पसंद नहीं है। वह जानता है - 'यहाँ सफलता प्राप्त करने के लिए जितनी स्वार्थपरता और नर हत्या की जरूरत है, वह मुझसे नहीं हो सकती।'[4] यही कारण है कि वह घर के विषाक्त, साम्प्रदायिक और सामाजिक बंधनों के बीच नहीं रहना चाहता है। वह स्पष्ट शब्दों में कुंवर भरतसिंह से कहता है - 'मैं तो खुद इन झगड़ों से इतना तंग आ गया हूं कि मैंने दृढ़ संकल्प कर लिया है, घर से अलग हो जाऊं। घर के साम्प्रदायिक जलवायु और सामाजिक बंधनों से मेरी आत्मा दुर्बल हुई जा रही है। घर से निकल जाने के सिवा अब मुझे और कुछ नहीं सूझता। मुझे व्यवसाय से पहले ही बहुत प्रेम न था और अब इतने दिनों के अनुभव के बाद तो मुझे घृणा हो गयी है।'[5] इसके बाद से प्रभुसेवक क्रांतिकारी बन जाता है। सेवक-दल में सोत्साह भाग लेता है जिससे सेवक-दल में सजीवता का संचार होता है।[6] प्रभुसेवक राष्ट्रीय कवि के रूप में सामने आता है। 'प्रभुसेवक की रचनाएं इन दिनों क्रांतिकारी भावों से परिपूर्ण होती थीं। राष्ट्रीयता, द्वन्द्व, संघर्ष के भाव प्रत्येक छन्द से टपकते थे।'[7] इसी प्रकार सोफिया घर वालों द्वारा

- -

१-- 'रंगभूमि', पृ० ३२

२-- 'रंगभूमि', पृ० ६४

३-- 'रंगभूमि', पृ० ६४

४-- 'रंगभूमि', पृ० २०५

५-- 'रंगभूमि', पृ० २०७

६-- 'रंगभूमि', पृ० ३२३

७-- 'रंगभूमि', पृ० ३६८

चर्च जाने की जिद को पूरा नहीं करना चाहती क्योंकि वह कर्म के विषय में कर्म को वचन के अनुरूप रखना चाहती है।[1] उसे दिखावे के कर्म से घृणा है। उसे विश्वास है कि "मेरी मुक्ति, अगर मुक्ति से हो सकती है, तो मेरे कर्मों से होगी।"[2] घर के कलह से ऊबकर वह घर से निकल जाती है और विनय के साहचर्य में आती है। वह माता-पिता द्वारा दबाव दिए जाने पर भी क्लार्क से विवाह नहीं करती और विनय के देश सेवा के कार्यों में सहायता पहुंचाना चाहती है। प्रभुसेवक और सोफिया की भांति 'कर्मभूमि' में अमरकान्त का चरित्र भी पारिवारिक वातावरण के प्रतिकूल निर्मित हुआ है। "महाजनी के हथकन्डे और षड्यन्त्र उसके सामने रोज ही रचे जाते थे। उसे उस व्यापार से घृणा होती थी।"[3] जीवन में त्याग का जो स्वरूप अमर के चरित्र में उभरता है वह उसके सम्पूर्ण जीवन में दिखाई देता है। वह गांधीवादी राष्ट्रीय कार्यकर्ता के रूप में सामने आता है। उसके इस चरित्र की आधारशिला प्रेमचन्द उसके पारिवारिक जीवन में ही डाल देते हैं। 'कायाकल्प' का चक्रधर एक सार्वजनिक कार्यकर्ता है। वह राष्ट्रीय और सामाजिक कार्यों के साथ जन-सेवा का भी कार्य करता है। चक्रधर के विवाह के लिए मुंशी यशोदानन्दन आए हुए हैं। मां निर्मला चक्रधर से दहेज के विषय में जानना चाहती है। चक्रधर कह देता है "अगर तुम मेरे सामने देने-दिलाने का नाम लोगी तो मैं जहर खा लूंगा।"[4] मां के अधिक आग्रह करने पर वह क्रोधित होकर कहता है - "तो बाजार में खड़ा करके बेच क्यों नहीं लेती? देखो के टके मिलते हैं।"[5] यही चक्रधर माता-पिता के विरोध करने पर भी अज्ञात माता-पिता वाली अहिल्या से विवाह करता है। घर में छुआ-छूत की घुटन से प्रयाग में आकर रहता है परन्तु अपने सामाजिक दायित्व को नहीं भुलाता। इस प्रकार से स्पष्ट है कि प्रेमचन्द यह जानते थे कि परिवार वह स्थान है जहां से राष्ट्रीय, सामाजिक तथा मानवीय मूल्यों के लिए संघर्ष करने वाले चरित्र उत्पन्न हो सकते हैं। उनके भावी चरित्र की नींव परिवार में पड़ना

- -

१-- 'रंगभूमि', पृ० २५

२-- 'रंगभूमि', पृ० २७

३-- 'कर्मभूमि', पृ० १०

४-- 'कायाकल्प', पृ० ११

५-- 'कायाकल्प', पृ० ११

अनिवार्य है । परिवार व्यक्तित्व के निर्माण में या व्यक्ति के विकास में कितना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं, यह भी उपर्युक्त चरित्रों के माध्यम से स्पष्ट हो जाता है।

अन्तिम प्रश्न जो परिवार के सम्बन्ध में रह जाता है वह है क्या प्रेमचन्द ने अपने युग और देश की पारिवारिक व्यवस्था से सम्बन्ध रखने का प्रयास किया है ? अथवा क्या वे परिवार के बदलते स्वरूप अर्थात विघटनकारी प्रवृत्ति से परिचित थे ? देश और काल की परिवार-व्यवस्था से जहां तक सम्बन्ध बनाए रखने का प्रश्न है इस प्रश्न के पर्याप्त अंश का उत्तर उनकी पारिवारिक विविधता के बीच में ही मिल जाता है । शेष भाग विघटनकारी प्रवृत्ति के साथ सम्बद्ध है । यहां पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि पारिवारिक विघटन से हमारा तात्पर्य मात्र परिवार के सदस्यों के आपस में अलग हो जाने तक ही सीमित नहीं बल्कि परिवार के उन मूल्यों के विघटन से भी है जो हमारे प्राचीन परिवारों में थे और आज के औद्योगिक भौतिकवादी युग में वे टूटते जा रहे हैं ।

निश्चित रूप से आधुनिक युग में हमारे देश में ही नहीं विश्व के प्रत्येक राष्ट्र के परिवारों की संयुक्तता और उनके पारिवारिक मूल्यों को धक्का लगा है। उसके लिए सबसे अधिक उत्तरदायी औद्योगिक क्रांति है । यंत्रीकरण और औद्योगीकरण ने संसार के ग्रामों की भीड़ को शहर की ओर आकर्षित किया । गांवों के लोग शहर में आकर केवल सामाजिक मूल्यों को ही नहीं छोड़ते बल्कि पारिवारिक मूल्यों से भी वे विमुख हो जाते हैं । धन की अधिकता ने रोमांस को जन्म दिया और कलबों की बहारों में पत्नियों का अस्तित्व समाप्त हो गया । 'गोदान' के मिस्टर खन्ना परिवार की यही स्थिति है । "खन्ना और गोविंदी में नहीं पटती ।"[1] कारण है "सम्पत्ति की यह दीवार दिन-दिन ऊंची होती जाती थी और दम्पत्ति को एक दूसरे से दूर और पृथक् करती जाती थी ।"[2] और "गोविंदी अपने एकांत कमरे में जा बैठती और रात की रात रोया करती और खन्ना दीवान खाने में मुजरे सुनता या कलब में जाकर शराबें उड़ाता ।"[3] गोविंदी अन्त में घर छोड़ने का

- -

१-- "गोदान", पृ० १६१

२-- "गोदान", पृ० १६२

३-- "गोदान", पृ० १६२

निश्चय करती है परन्तु मेहता उसे वापस बुला लाते हैं। औद्योगीकरण का प्रभाव गोबर पर भी पड़ा है। वह अपनी पत्नी झुनिया को शहर ले जाना चाहता है। मां धनिया नहीं चाहती कि झुनिया को गोबर शहर ले जाय। गोबर के हठ को देखकर होरी कहता है - "जो आदमी नहीं रहना चाहता, क्या उसे बांधकर रखेगी। ----- जो जाता है उसे असीस देकर विदा कर दे। हमारा भगवान मालिक है। जो कुछ भोगना बदा है भोगेंगे। चालीस सात सैंतालिस साल इसी तरह रोते-धोते कट गये। दस-पांच साल हैं वह भी यों ही कट जायेंगे।"[1] इस सबके बाद भी गोबर का बिस्तर बंध जाता है। पिता द्वारा मां के पांव छूने के लिए कहे जाने पर गोबर कह देता है - "मैं उसे अपनी माता नहीं समझता।"[2] गांव के निवासी कारखाने में काम करने वाले मजदूर गोबर की यह स्थिति है कि उसे माता-पिता के अच्छे-बुरे की चिंता नहीं है। धन के लिए मतवाले ओंन सेवक के परिवार में धन के पीछे ही कलह होता है। परन्तु ओंन सेवक को पुत्र और पुत्री से अधिक धन प्यारा है। यह धन प्रधान महाजनी सभ्यता की पारिवारिक स्थिति उदाहरण है।

जिस समाज में सामाजिक मूल्य विघटित हो जाते हैं उस समाज के मनुष्यों के व्यक्तिगत दोष बहुत अधिक बढ़ जाते हैं। हमारे यहां की सामन्ती व्यवस्था में ऐश्वर्य के मद और राजशक्ति या जमींदारों की शासनशक्ति के आगे सामाजिक अवहेलना की न तो चिंता थी और न भय। उनकी सामाजिक अवहेलना करने वाला था कौन? राजा विशालसिंह को एक नहीं दो नहीं चार-चार रानियों से संतोष नहीं है। वे सातवां विवाह करना चाहते हैं। 'गोदान' के दिग्विजयसिंह शराब, गांजा, अफीम, मदक चरस ऐसा कोई नशा न था जो वह न करते हों। और ऐयाशी तो रईस की शोभा है।"[3] उनका विवाह राय अमरपालसिंह की पुत्री मीनाक्षी से हुआ है। "दिग्विजयसिंह ऐयाश भी थे, शराबी भी। मीनाक्षी भीतर ही भीतर कुढ़ती रहती थी।"[4] मीनाक्षी अपने पति से तलाक लेने का

- -

१-- 'गोदान', पृ० २३०-३१

२-- 'गोदान', पृ० २३१

३-- 'गोदान', पृ० २३२

४-- 'गोदान', पृ० २३०

मुकदमा करती है यहां तक कि वह वेश्या की उपस्थिति में दिग्विजय सिंह पर सड़ासड़ हंटर भी जमाती है।[१] भारतीय परिवार में पति-पत्नी के आदर्श का इससे गिरा रूप और क्या हो सकता है ? आधुनिक जागृति के कारण पुरुष और स्त्री में वैचारिक भेद के कारण भी दाम्पत्य जीवन के भारतीय मूल्य समाप्त होते जा रहे हैं। 'स्त्रियां भर्ताहि दैवतम्' का आदर्शपूर्ण सिद्धान्त वो अब नहीं रहा। पुरुष भी ऐसे नहीं कि स्त्री उन्हें देवता मानें। 'रंगभूमि' के राजा महेन्द्रकुमार और इन्दु के पारिवारिक जीवन में ताल-मेल नहीं खाता क्योंकि उनमें वैचारिक मेल नहीं है। अन्त में स्थिति यह आती है कि इन्दु कह देती है - "आपके साथ विवाह हुआ है, कुछ आत्मा नहीं बेची है।"[२] इन्दु पिता के घर आकर रहती है। गरीबी के कारण सुमन और गजाधर के पारिवारिक जीवन में अड़चन आती है। गजाधर आधुनिक पत्नी सुमन की महत्वाकांक्षाओं को पूरा नहीं कर पाता और अपने अर्थाभाव के कारण उसे संदेह की दृष्टि से देखता है। यही वह स्थिति है कि सुमन और गजाधर में अलगाव होता है। पति के चरित्रगत दोष के कारण 'जीवन का शाप' और 'वेश्या' कहानी में दाम्पत्य टूटता हुआ दिखाई देता है। 'जीवन का शाप' कहानी की मिसेज शापूर अपने घुमक्कड़ और रंगीले किया मिस्टर शापूर से परेशान है। पत्रकार कावस जी से वह कहती है - "अगर तुम मुझे आश्रय दे सकते हो, तो मैं तुम्हारी बनकर रहूंगी ---- अगर तुममें इतना आत्मबल नहीं है तो मेरे लिए दूसरे द्वार खुल जायेंगे।"[३] 'वेश्या' कहानी में वेश्यागामी पति से ऊबकर पत्नी का कथन है - "मैंने निश्चय कर लिया है कि अगर मुझे कभी आंखें दिखायी, तो मैं उन्हें मजा चखा दूंगी।"[४] स्पष्ट है भारतीय परिवार के दाम्पत्य जीवन के आदर्श भी गिरते जा रहे हैं जिनकी ओर प्रेमचन्द ने संकेत किया है। प्रेमचन्द दाम्पत्य जीवन के इस बिखराव और मूल्यों के विघटन को बचाना चाहते हैं। उन्होंने स्वतः लिखा है - "सुखमय दाम्पत्य की नींव अधिकार साम्य ही पर रखी जा सकती है।"[५]

- -

१-- 'गोदान', पृ० २२८
२-- 'रंगभूमि', पृ० ६३४
३-- 'जीवन का शाप', मानसरोवर भाग २, पृ० २३१
४-- 'वेश्या', मानसरोवर भाग १, पृ० ४२
५-- 'कुसुम', मानसरोवर भाग २, पृ० ९०

इन्द्रनाथ मदान को भी अपने पत्र में लिखा था - "अगर कोई दम्पति सुखी होना चाहते हैं, तो उन्हें एक दूसरे का लिहाज करने के लिए तैयार रहना चाहिए।"[१]

भारतवर्ष में परिवारों के प्राचीनतम स्वरूप से संयुक्त प्रणाली को भी आधुनिक शिक्षा, भौतिकता, आधुनिकता, आर्थिक परिस्थितियाँ तथा पाश्चात्य प्रभाव के कारण धक्का लगा है। संयुक्त परिवार प्रणाली परिवार का वह स्वरूप है जहाँ व्यक्तियों का समूह प्राय: एक घर में रहता है, एक रसोई में तैयार भोजन करता है, संयुक्त सम्पत्ति के साथ संयुक्त कार्य प्रणाली पर आधारित होता है। प्रत्येक सदस्य एक दूसरे से घनिष्ट रूप से किसी न किसी रूप में सम्बद्ध रहता है।[२] भारतीय परिवारों में यह सामूहिकता नष्ट हो रही है। संयुक्त परिवार प्रणाली टूटती जा रही है और व्यक्ति परक मनोवृत्ति बढ़ी है जो केवल आर्थिक पृष्ठभूमि में ही परिवर्तन नहीं ला रही बल्कि व्यवहारगत समस्याएं भी उत्पन्न कर रही है।[३] प्रेमचन्द संयुक्त परिवार प्रणाली के इस विघटन से भली भांति परिचित थे। 'सेवासदन' में जहाँ पर वे पद्मसिंह और मदनसिंह पारिवारिक संयुकता का निर्वाह कर पाते हैं वहीं वह 'प्रेमाश्रम' में प्रभाशंकर और ज्ञानशंकर के परिवार के साथ ऐसा नहीं कर पाते। आधुनिक शिक्षा और ज्ञानशंकर की भौतिकवादी प्रवृत्ति ने उसे चाचा से अलग होने के लिए प्रेरित किया है। उन्होंने घर के प्रबन्ध में संशोधन प्रारम्भ किया। "जिसका फल यह हुआ कि उस मेल-मिलाप में बहुत कुछ अंतर पड़ चुका था, जो पिछले साठ वर्षों से चला आता था।"[४] स्थिति यह हो गई "न चाचा का प्रबन्ध भतीजे को पसंद था, न भतीजे का चाचा को।"[५] अपनी महत्वाकांक्षा और स्वार्थ को पूरा करने के लिए ज्ञानशंकर अपने चाचा के लाख प्रयत्न करने पर भी बंटवारा कर लेता है। साठ वर्ष तक लगातार एक साथ रहने वाला भाई-भाई का

- -

१-- 'चिट्ठी पत्री' भाग २, पृ० २३६

२-- आई० कर्वे: 'किनशिप अर्गनाइजेशन इन इण्डिया', १९५३ (पूना) पृ० १८

३-- जवाहर लाल नेहरू: 'डिस्कवरी आव इण्डिया', १९४७ (इण्डिया पब्लिशिंग हाउस) दे० पृ० २४८-४९

४-- 'प्रेमाश्रम', पृ० ६

५-- 'प्रेमाश्रम', पृ० ६

परिवार जटाशंकर की मृत्यु के बाद उनके पुत्र ज्ञानशंकर के भौतिकवाद और महत्वाकांक्षा के कारण टूट जाता है। पुरानी विचारधारा के प्रभाशंकर में ममत्व है, एका है, सहन शक्ति है। उनका कहना है "मैं उसे अपना ही समझता हूं। हम दोनों भाई एक दूसरे के लिए प्राण देते रहे। आज भैया के पीछे मैं इतना निर्लज्ज हो जाऊं कि दूसरों से पंचायत कराता फिरूं? मुझे ज्ञानशंकर से ऐसे द्वेष की आशा नहीं, लेकिन यदि उसके हाथों मेरा अहित भी हो जाय तो भी मुझे लेशमात्र भी दुख न होगा।"[1] परन्तु ज्ञानशंकर का तर्क है - "जीवन आनन्द से व्यतीत हो, यह हमारा अभीष्ट है। यदि संसार स्वार्थपरता कहकर उसकी हंसी उड़ाये, निन्दा करे तो मैं उसकी सम्मति को पैरों तले कुचल दूंगा। अपनी शिष्टता का आधार ही आत्मघात है।"[2] इस प्रकार से प्रभाशंकर और ज्ञानशंकर में प्राचीन और नवीन का भेद है। ज्ञानशंकर की नवीनता नए तरह के परिवार की सृष्टि करना चाहती है केवल अपने तक सीमित परिवार का और प्रभाशंकर की प्राचीनता पुराने संयुक्त व्यवस्था का। जीत होती है नवीनता की ही। संयुक्त परिवार के विघटन की स्थिति शहर में ही नहीं गांव-जीवन में भी है। 'प्रेमाश्रम' में यदि शहर के संयुक्त परिवार को गहरा धक्का लगा है तो 'गोदान' में होरी का गांव का संयुक्त परिवार बिखर गया है। परिवार के इस अलगाव से होरी को अवश्य दुख है। उसकी पीड़ा इन शब्दों में प्रकट हुई है - "मेरे जीते जी सब कुछ हो गया जिनके पीछे अपनी जवानी धूल में मिला दी वही मेरे मुद्दई हो गये।"[3] इस विघटन का परिणाम इतना घातक हुआ है कि केवल होरी ही महाजनों और जमींदारों से तबाह नहीं है बल्कि शोभा और हीरा की स्थिति भी दयनीय है। भाई-भाई का अहित करने पर तुला है। हीरा होरी की गाय को विष देता है। यह घटना होरी के जीवन की व्यथा बन जाती है। साथ ही हीरा को घर से भागना पड़ता है जो धुनिया के लिए संकट उत्पन्न करता है। 'बलचनमा' में भी 'शंकर और मंगल' का ग्रामीण परिवार टूट जाता है, जिसके कारण गांव का किसान शंकर किसान से मजदूर बनता है, फिर महाजन के कर्ज का

- -

१— 'प्रेमाश्रम', पृ० ३८
२— 'प्रेमाश्रम', पृ० ४२
३— 'गोदान', पृ० [illegible]

शिकार होकर आजन्म दासता करता है और पुत्र को गुलामी के लिए छोड़ जाता है।[1] 'अलग्योझा' कहानी में भी संयुक्त परिवार के टूटने की कहानी कही गई है। अपनी पत्नी मुलिया के कारण रग्घू को अपनी सौतेली मां पन्ना से अलग होना पड़ता है। सौतेला भाई केदार जानता है कि "भैया इसी अलग्योझे के दुख से मर गये।"[2] रग्घू की आर्थिक स्थिति अलगाव से खराब हो जाती है। रात-दिन के मेहनत और अलगाव की चिन्ता से उसकी मृत्यु हो जाती है। प्रेमचन्द-साहित्य में जहां संयुक्त परिवार टूटने का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है वहीं वे इसके जोड़ने के लिए प्रयत्नशील हैं। 'गोदान' में अलग होने के बाद भी होरी विश्वासघाती भाई हीरा की पत्नी पुनिया की संरक्षता करता है। 'अलग्योझा' कहानी में केदार अपनी विधवा भाभी मुलिया को अपना लेता है इसलिए नहीं कि उसे पत्नी चाहिए बल्कि इसलिए कि वह मृत भाई रग्घू के बच्चों का पालन-पोषण कर सके। 'बड़े घर की बेटी' कहानी में भी आनन्दी परिवार को टूटते-टूटते बचा लेती है।[3]

प्रेमचन्द-साहित्य में परिवार के उपर्युक्त विवेचन के पश्चात निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द को पारिवारिक भूमि अत्यंत प्रिय थी। उन्होंने परिवार और पारिवारिक जीवन का चित्रण अपने साहित्य में इतने विस्तार से किया है कि स्वतंत्र रूप से परिवार और पारिवारिक जीवन पर शोध प्रस्तुत किया जा सकता है। प्रेमचन्द-साहित्य के आद्योपान्त अध्ययन के पश्चात किसी भी पाठक को भारतीय परिवार, पारिवारिक मूल्य, उसके विविध स्वरूप और वर्तमान जीवन में उसकी परिवर्तनशील स्थिति का बोध हो जाता है। भारतीय परिवारों के सम्बन्ध में समाजशास्त्री को जिन तथ्यों की आवश्यकता हो वे प्रेमचन्द-साहित्य में सुलभ हैं।

अपराध और अपराधी

समाजशास्त्र समाज में अपराध की दशा, अपराध के कारणों तथा अपराधों को दूर कर सकने के उपायों का भी अध्ययन करता है। इस अध्ययन के लिए समाजशास्त्र

- -

१-- 'सवा सेर गेहूं', दे० मानसरोवर भाग ४

२-- 'अलग्योझा', दे० मानसरोवर भाग १, पृ० ३२

३-- 'बड़े घर की बेटी', दे० मानसरोवर भाग ७

के अन्तर्गत अपराधों का विज्ञान (क्रिमिनॉलोजी) का विकास हुआ है। समाजशास्त्री मानते हैं कि अपराध सम्बन्धी आचरण अन्य व्यवहारों की भांति दूसरों से असमाजिक तरीकों के अध्ययन से उत्पन्न होता है। समाजशास्त्र की दृष्टि में यह व्यक्ति द्वारा अपने वातावरण से ग्रहण किया जाता है। इस वातावरण में उसका परिवेश, परिवार, पड़ोस, मित्रता, समुदाय और सम्पूर्ण सभ्यता सम्मिलित रहते हैं।[१] यही कारण है कि डा० हैस अपराध के कारणों में (१) वंशानुक्रम (हैरेडिटी), (२) दूसरों से गृहीत अपराध (एक्वायर्ड ट्रेट्स) तथा वातावरण (इनवायरनमेन्ट) पर बल देते हैं। वातावरण में वे परिवार के वातावरण, सहयोगियों, अशिक्षा, सामाजिक अव्यवस्था, राजनैतिक दुर्व्यवस्था, शराब व्यापार तथा दूषित पड़ोस को लेते हैं।[२] डोनाल्ड आर० क्रैसी अपराधी व्यवहार (अपराधियों) पर विचार करते समय क्रिमिनलाजी के क्षेत्र विस्तार, सामाजिक अव्यवस्था और अपराध, सांस्कृतिक अव्यवस्था और अपराध दर, अपराधी व्यक्तित्व के विकास, प्रारंभिक सम्बन्धों अर्थात परिवार और अपराधी गैंगों, अपराध और सामाजिक वर्ग, समूह व्यवहार अर्थात समुदाय और समूह के प्रभाव तथा जनसंख्या और

- -

१--- "Criminal behaviour, like other behaviour, is thus considered to be due to learning - the learning of anti-social ways - from others. In other words, criminality, from the sociological point of view, is acquired by an individual from his environment, if that enviroment contains in it elements conducive to such behaviour. By environment here is meant the immediate surroundings, such as family, neighbourhood and friends, and the remoter ones, namely, the community and the culture as a whole."

सैमुएल कोइनिंग: "क्रिमिनॉलोजी", दे० जोसेफ एस० राउसेक: "कन्टेम्पोररी सोशियोलॉजी", १९ (न्यूयार्क), पृ० ३०२

२--- डा० ई० सी० हेस: "इन्ट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑफ सोशियोलॉजी", १९२५ (न्यूयार्क, लन्दन) का दे० अध्याय ३२ "क्राइम ऐण्ड इट्स कॉजेज", पृ० ५९६-६१०

परिस्थितिशास्त्र आदि पर विचार करते हैं।[१] इस प्रकार से स्पष्ट है कि अपराध और अपराधी समाजशास्त्र के विषय हैं। समाजशास्त्र केवल अपराधों का अध्ययन मात्र नहीं करता, बल्कि उसका दायित्व यह भी है कि वह अपराधों से समाज को प्रभावित होने से बचाए और समाज में ऐसे कानूनों की व्यवस्था का सुझाव दे जिससे समाज का वातावरण और संगठन ऐसा बने जिसमें अपराधों और अपराधियों के कारण समाज का वातावरण दूषित न हो और लोग उनसे प्रभावित न हों। ए० क्लेवेन्ड हाल 'अपराध और दण्ड' (क्राइम एण्ड पनिशमेन्ट) पर विचार करते हुए अपनी धारणा व्यक्त करते हैं कि अपराध समाज की एक अनिवार्य त्रुटि है, मानव प्रगति का आवश्य अंधेरा पक्ष है। उनका यह भी कहना है कि अधिक सभ्य और उन्नति प्राप्त राज्य अधिक अपराधों से युक्त है।[२] इस पक्ष पर विचार करते हुए क्लेवेन्ड हाल ने अपराधों को दूर करने के लिए विधानों की आवश्यकता पर विचार किया है परन्तु उनका कहना है कि व्यक्ति की अच्छी आदत (ओवर मास्टरिंग हेबिट इन इनडिविजुअल), सामाजिक नैतिकता (सोशल मारलिटी), तथा सामाजिक मस्तिष्क (सोशल माइन्ड) अपराधों की कमी में सहायक हो सकता है।[३] समाजशास्त्र अपराधों में सुधार के लिए प्रयत्नशील रहता है।[४]

प्रेमचन्द-साहित्य में अपराध और अपराधी की स्थिति पर विचार करने के पूर्व हमारे लिए यह निश्चित कर लेना आवश्यक है कि अपराध है क्या ? अथवा उसे

- -

१— डोनाल्ड आर० क्रेसी: 'क्रिमिनल बिहेवियर', दे० लिओनार्ड ब्रूम एण्ड फिलिप सेल्जनिक: 'सोशियोलॉजी' ए टेक्स्ट विद एडाप्टेड रीडिंग्स', १६५५ (न्यूयार्क), पृ० ६००-६५१

२— "Crime, therefore, is an inevitable social evil, the dark side of the shield of human progress. The most civilized and progressive states have the most crime."
ए० क्लेवेन्ड हाल: 'क्राइम एण्ड पनिशमेन्ट' दे० डा० थामस निक्सन कारवर: सोशियोलॉजी एण्ड सोशल प्रोग्रेस', १६०५, पृ० ६५५

३— ए० क्लेवेन्ड हाल: 'क्राइम एण्ड पनिशमेन्ट', दे० डा० थामस निक्सन कारवर: सोशियोलॉजी एण्ड सोशल प्रोग्रेस', १६०५, पृ० ६०२

४— डा० ई० डी० ले: 'इन्ट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑव सोशियोलॉजी', १६२५ (लन्दन, न्यूयार्क), का दे० अध्याय ३३ 'क्राइम एण्ड इट्स ट्रीटमेन्ट', पृ० ६११-६३१

किस सीमा में बांधा जा सकता है। सामान्य रूप से कानून की दृष्टि में अपराध सरकारी नियमों का उल्लंघन है। यह इसलिए कहा जा रहा है कि प्रत्येक सरकार के सामाजिक, नैतिक, धार्मिक, विषयों पर भी कानून होते हैं और उन नियमों के उल्लंघन पर व्यक्ति दण्ड का भागी समझा जाता है। समाजशास्त्र की परिभाषा में अपराध मात्र सरकारी नियमों के उल्लंघन तक सीमित नहीं है बल्कि उसका मुख्य रूप से सम्बन्ध सामाजिक नियमों, नैतिक मूल्यों, धार्मिक सुव्यवस्थाओं के उल्लंघन से है। कानून की दृष्टि में एक स्थान पर सड़क की दाहिनी ओर कार चलाना अपराध हो सकता है, दूसरे स्थान में सड़क की बाईं ओर चलाने से। परन्तु समाजशास्त्र ऐसे अपराध से बहुत अधिक मात्रा में सम्बद्ध नहीं है। जहां तक नियमों का सम्बन्ध है वे अनेक प्रकार के हो सकते हैं। यहां तक कानून के स्रोतों में प्राकृतिक नियम (नेचुरल ला), सामाजिक नियम (सोशल ला), नैतिक नियम (मारल ला), धार्मिक नियम (रिलिजस ला) आदि को भी माना गया है। समाज के उत्तम और अच्छे सामाजिक, धार्मिक, नैतिक और सरकारी नियमों का उल्लंघन सही अर्थों में अपराध है। परतंत्र भारत में स्वतंत्रता की मांग करना भी सरकारी दृष्टि से अपराध था परन्तु समाजशास्त्रीय दृष्टि और प्रेमचन्द की साहित्यिक दृष्टि में वह अपराध नहीं है। अनैतिकता, व्यभिचार, चोरी, डाका, शोषण, किसी को सामाजिक, आर्थिक दृष्टि से पीड़ा पहुंचाना आदि बातें अपराध की श्रेणी में आ जाती हैं।

प्रेमचन्द-साहित्य में अपराधों के जिन पक्षों को ग्रहण किया गया है वे प्रमुख रूप से सामाजिक और नैतिक पहलुओं से सम्बन्धित हैं। प्रेमचन्द मानव-चरित्र के निर्माण में वातावरण और परिस्थिति के महत्वपूर्ण स्थान को स्वीकार करते हैं। वे 'प्रेमाश्रम' में लिखते हैं "मानव-चरित्र न बिल्कुल श्यामल होता है न बिल्कुल श्वेत। उसमें दोनों ही रंगों का विचित्र सम्मिश्रण होता है। स्थिति अनुकूल हुई तो वह ऋषितुल्य हो जाता है, प्रतिकूल हुई तो नराधम। वह अपनी परिस्थितियों का खिलौना मात्र है।"[१] चरित्र से सम्बन्धित प्रेमचन्द की यह दृष्टि समाजशास्त्री की दृष्टि है। 'सेवासदन' के सुमन के नैतिक पतन की संभावना है। परिस्थिति और वातावरण है कि वह वेश्या बनने के लिए तैयार है, परिस्थिति है मजबूर की

- -

१-- "प्रेमाश्रम", पृ० ३२५

निर्धनता और सुमन का संदेह की दृष्टि से देखा जाना । वातावरण है भोली वेश्या का पड़ोस और (राय) यद्यपि प्रेमचन्द सुमन के चरित्र की रक्षा कर लेते हैं परन्तु अपराध और अपराधी के अध्ययन में कारण रूप में सुमन का यह उदाहरण परिस्थिति, वातावरण और मनोवैज्ञानिक स्थिति का अच्छा उदाहरण है। `प्रतिज्ञा` का कमलाप्रसाद विधवापूर्णा के लिए जाल फैलाता है। पूर्णा का वैधव्य और उसकी असहाय अवस्था कमला प्रसाद को अपराध के लिए प्रेरित करती है। रूपये बचाने के लिए पूर्णा को टाल देने के इरादे से गया कमला प्रसाद उसे अपने घर में आने का आमंत्रण दे बैठता है। `प्रेमाश्रम` के ज्ञानशंकर और गायत्री भी अपने नैतिक अपराध, मेल-मिलाप और एक दूसरे के प्रति आकर्षण के अपराधी हैं। गायत्री विधवा है, जवान है और सुन्दर भी। ज्ञानशंकर की वह साली है। ज्ञानशंकर के वासना के साथ धन की आकांक्षा की तृप्ति की सम्भावना है यही कारण है कि वह धन और सौन्दर्य दोनों पाने के लिए प्रयत्नशील है। फल यह होता है कि ज्ञानशंकर की पत्नी विद्या को आत्म हत्या करनी पड़ती है। प्रश्न है प्रेमचन्द ऐसे अपराधों के लिए कैसी व्यवस्था करते हैं।

प्रेमचन्द अनैतिक अपराधी को क्षमा नहीं करना चाहते हैं। `वरदान` का कमलाचरण प्रयाग जाकर माली की लड़की सरयूदेवी के प्रेमपाश में फंसता है। प्रारम्भ से ही लम्पट और दुश्चरित्र कमला के चरित्र में विवाह के बाद भी परिवर्तन नहीं आया है। "कोई भी स्त्री, जिसके शरीर पर यौवन की झलक हो, उसका मन बहलाने के लिए समुचित थी। कमला इस लड़की पर डोरे डालने लगा।"[1] एक एकान्त में वह सरयूदेवी के यहां बैठा रहता है। पिता माली के आने पर उसे भागकर इलाहाबाद छोड़ना पड़ता है जिस जल्दी के कारण बिना टिकट यात्रा के कारण उसे ट्रेन से कूदकर आत्म हत्या करनी पड़ती है।[2] `प्रतिज्ञा` का कमलाप्रसाद पूर्णा के साथ बलात्कार करना चाहता है। वह उसका हाथ पकड़ना चाहता है कि "सहसा पूर्णा ने दोनों हाथों से कुर्सी उठा ली और उसे कमला के मुंह पर झोंक दिया।"[3] फल यह हुआ कमला के मुंह और नाक में चोट आई और वह मूर्छित हो

- -

१-- `वरदान`, पृ० ८६

२-- `वरदान`, पृ० ९७

३-- `प्रतिज्ञा`, पृ० ११६

हो गया। मूर्छा और चोट का उतना महत्व नहीं है जितना कि अपराधी की असफलता का मूल्य है। कमला प्रसाद की सामाजिक अवहेलना होती है। घर से निकलना कठिन हो जाता है। `प्रेमाश्रम` का ज्ञानशंकर सभ्य समाज का अपराधी है। वह बुद्धि और समझ से काम लेता है। वह गायत्री का वफादार नौकर और सलाहकार मैनेजर है। कहीं पर वह धर्म का सिक्का जमाने के लिए लम्बा कुर्ता और खड़ाऊं पहन कर जटाधारी संन्यासी का रूप धारण करता है कभी वृन्दावन के रास की व्यवस्था करता है और कभी नाटक की भूमिका में गायत्री के साथ रंगमंच पर आता है। वह नहीं चाहता समाज और समाज के लोग इसके कुकर्म और अनैतिक भाव को जान सकें परन्तु वह चाहता है कि चुपके से उसके दोनों कामसफल जांय। प्रेमचन्द ऐसा होने नहीं देते। मृतशैय्या पर पड़ी पत्नी विद्या के शब्दों में "यह पिशाच है, इसके लम्बे बाल हैं। वह देखो दांत निकाले मेरी ओर दौड़ा आता है।"[1] गायत्री के शब्दों में "मुझे जरा भी भ्रम न था कि वह इतना बड़ा धूर्त और पाजी है।"[2] ज्ञानशंकर और गायत्री की इस अनैतिक प्रेम-लीला का परिणाम है गायत्री पहाड़ से कूद कर आत्म हत्या करती है।[3] ज्ञानशंकर को भी अपने पापों का प्रायश्चित्त करना पड़ता है। समाज तो उसे दण्ड नहीं दे पाता परन्तु आत्म ग्लानि के कारण गंगा में डूबकर आत्म हत्या करनी पड़ती है।[4] `गबन` की वेश्या जोहरा को भी प्रेमचन्द समाज में अधिक दिन नहीं रहने देना चाहते। वह एक लाश की रक्षा के बहाने गंगा में डुबा दी जाती है।[5] प्रेमचन्द अनैतिक अपराधी में सुधार लाकर उसकी भावनाओं को आदर्श रूप देकर उसे अधिक दिन तक समाज में जीवित नहीं रहने देना चाहते। समाजशास्त्र की दृष्टि में इस आकस्मिक अन्त का कोई मूल्य नहीं है परन्तु मनुष्य का हृदय-परिवर्तन, उसके चरित्र में प्रायश्चित्त की भावना और सद्गुणों का प्रवेश महत्व की बात है।

- -

१-- `प्रेमाश्रम`, पृ० ३५०

२-- `प्रेमाश्रम`, पृ० ३५०

३-- `प्रेमाश्रम`, पृ० ३०२

४-- `प्रेमाश्रम`, पृ० ४१८

५-- `गबन`, पृ० २८८-८९

अपराधी के आचरण परिवर्तन की कहानी प्रेमचन्द ने 'कर्मभूमि' उपन्यास में अपराधी काले खां के माध्यम से कही है। काले खां "अधेड़, बलिष्ठ, काला, कठोर आकृति का मनुष्य है।"[1] अपराधी की प्रवृत्ति, स्वभाव, शक्ति और शारीरिक क्षमता का चित्र प्रेमचन्द के इस चित्रण से प्रस्तुत हो जाता है। काले खां अमर की दुकान में सोने के कड़े बेचने आया है। काले खां के मुख से शराब की दुर्गन्ध आ रही है। अमरकान्त काले खां को भगा देता है। जेल जीवन में अमर के प्रभाव से संभावित परिवर्तित चरित्र वाले काले खां के शब्दों से अपराध के कारण, अपराधी के स्वभाव का चित्रण इस प्रकार हुआ है "मेरी क्या पूछते हो लाला, यहां तो छ: महीने बाहर रहते हैं तो छ: साल भीतर ------ मेरे लिए बाहर रहना मुसीबत है। सबको अच्छा-अच्छा पहनते, अच्छा-अच्छा खाते देखता हूं, तो खुद होती है, पर मिले कहां से। कोई हुनर आता नहीं इल्म है नहीं। चोरी न करूं, डाका न मारूं, तो खाऊं क्या ? यहां किसी से हसद नहीं होगी, न किसी को अच्छा पहनते देखता हूं न अच्छा खाते। सब अपने जैसे हैं, फिर डाह और जलन क्यों हो।"[2] काले खां का यह कथन अपराधी काले खां के अपराधी जीवन की 'केस हिस्ट्री' ही नहीं बल्कि किसी कुशल समाजशास्त्री द्वारा इस तरह के हजारों अपराधियों की "केस हिस्ट्री" परखने के पश्चात् का निष्कर्ष हो सकता है। प्रेमचन्द ने काले खां के चरित्र में अद्भुत परिवर्तन का चित्रण किया है। काले खां अमरकान्त को चक्की नहीं पीसने देता क्योंकि वह राष्ट्र सेवी है। नियमित निमाज पढ़ता है। मृतावस्था में भी अपनी मृत्यु के कारण जेलर से बदला लेने के लिए उतावले कैदियों को सेवा, अपराध करने से रोकता है।[3] "काले खां के आत्म-समर्पण ने अमरकान्त के जीवन को जैसे कोई आधार प्रदान कर दिया। अब तक उसके जीवन का कोई लक्ष्य न था, कोई आदर्श न था, कोई व्रत न था। इस मृत्यु ने उसकी आत्मा में प्रकाश-सा डाल दिया।"[4] काले खां के परिवर्तित चरित्र से अमरकान्त को प्रेरणा मिलती है। इस चित्रण के माध्यम से प्रेमचन्द अपराधियों को सुधार

- -

१-- 'कर्मभूमि', पृ० ३५

२-- 'कर्मभूमि', पृ० ३१२

३-- 'कर्मभूमि', पृ० ३१३-१४

४-- 'कर्मभूमि', पृ० ३१८

जाने के लिए प्रेरित करते हैं।

अपराधशास्त्र (क्रिमिनलॉजी) के क्षेत्र में समाजशास्त्री का सबसे बड़ा दायित्व तीन सामान्य बातों - कानून निर्माण (ला मेकिंग), कानूनों का परिवर्तन (ला ब्रेकिंग) तथा अनुचित कानून के परिवर्तन पर समाज में प्रतिक्रिया - के आधार पर अच्छी कानूनी-व्यवस्था और उपयोगी कानूनों को अध्ययन, विवेचन और परीक्षण के बाद जन्म देना है।[१] प्रेमचन्द इस दिशा में सजग प्रतीत होते हैं। वे ऐसे नियमों और कानूनी क्रिया के साथ सहमत नहीं दिखाई देते जो समाज के लिए उपयोगी न हो। उनके साहित्य में इस सम्बन्ध में दो उदाहरण दिए जा सकते हैं। पहला 'कर्मभूमि' में मुन्नी के मुकदमें का तथा दूसरा 'गबन' के क्रान्तिकारियों के मुकदमें का। गोरे सिपाहियों ने एक ग्रामीण युवती के साथ अरहर के खेत में बलात्कार किया है। समाज की उपेक्षित यह युवती विक्षिप्त अवस्था में गोरों पर प्रहार करती है।[२] और मुन्नी पर हत्या का अभियोग चलाया जाता है। मुन्नी को क्षमा नहीं चाहिए, वह दया भी नहीं चाहती परन्तु वह सामाजिक उपेक्षा के अन्याय से बचना चाहती है। वह भरी अदालत में कहती है "मैं न्याय नहीं मांगती, दया नहीं मांगती, मैं केवल प्राण-दण्ड मांगती हूं। हां अपने भाई-बहनों से इतनी विनती करूंगी कि मेरे मरने के बाद मेरी काया का निरादर न करना, उसे छूने से घिन मत करना, भूल जाना कि वह किसी अभागिन, पतिता की लाश है।"[३] मुकदमें में जूरी और जज एक मत हो जाते हैं और मानसिक अस्थिरता के दशा में की गई हत्या के आधार पर मुन्नी को बरी कर दिया जाता है। हत्या की सजा फांसी होती है परन्तु प्रेमचन्द उस अबला को, जिसका सतीत्व बलात लूटा गया है और उस बिरादरी के द्वारा लूटा गया है जो शासन के मालिक हैं फांसी दिला कर कानून की कानूनी क्षमा पूरी नहीं करना चाहते हैं। 'गबन' में परिस्थितियों का शिकार रमानाथ म्युनिसिपैलिटी के रुपये

- -

१-- डोनाल्ड आर० क्रेसी: 'क्रिमिनल बिहेवियर' का दे० अंश 'स्कोप ऑव क्रिमिनलॉजी' पुस्तक लिओनार्ड ब्रूम ऐण्ड फिलिप सेल्ज़निक: 'सोशियॉलॉजी: ए टेक्स्ट विद एडाप्टेड रीडिंग्ज', १९५५ (न्यूयार्क), पृ० ६००-६०१

२-- 'कर्मभूमि', पृ० ५५

३-- 'कर्मभूमि', पृ० ६३

गबन करता है। फलवश वह पुलिस के हथकण्डों का शिकार बनता है। पुलिस झूठे मुकदमे के आधार पर क्रान्तिकारियों को सजा दिलाना चाहती है। पुलिस को सफलता मिलती दिखाई देती है परन्तु यहीं पर प्रेमचन्द एक नया समाधान खोज निकालते हैं। रमानाथ जज साहब से सारी बातें पुलिस का सारा षड्यंत्र साफ शब्दों में कह देता है। जज पुन: मुकदमे की सुनवाई का निर्णय लेता है। इस मुकदमे की फिर पेशी होगी, इसकी सारे शहर में चर्चा होने लगी। अंगरेजी न्याय के इतिहास में यह घटना अभूत पूर्व थी। कभी ऐसा नहीं हुआ। वकीलों में इस पर कानूनी बहसें होतीं। जज साहब ऐसा भी कर सकते हैं? मगर जज दृढ़ था।"[१] इस मुकदमे के सभी अभियुक्त छूट जाते हैं। सच्चे न्याय के लिए जो अभूतपूर्व था वह भी प्रेमचन्द की लेखिनी कर गुजरती है। उसी जज के यहां मुकदमे की पुन: सुनवाई गैरकानूनी है परन्तु समाज को सच्चा न्याय देने के इच्छुक साहित्यकार प्रेमचन्द को सरकारी कानून की चिंता नहीं है। समाजशास्त्री भी ऐसे कानूनों की खुलकर निंदा करता है जो जनता को न्याय न दिला सके।

इसके अलावा प्रेमचन्द-साहित्य में अन्य अनेक छिट-पुट अपराधों एवं अपराधियों की ओर संकेत मिलता है। इनमें 'निर्मला' में निर्मला के पिता बाबू उदयभानुलाल की मतई गुण्डे द्वारा हत्या, 'डमोरसंख' कहानी का कथाकार जोखी नाम के ठग और डमोरसंख तथा आगरा के मिस्टर माथुर के साथ ठगी, तथा 'नरक का मार्ग' कहानी की बुढ़िया जो स्त्रियों को बहकाकर उनका सर्वनाश करती है आदि का उल्लेख किया जा सकता है। प्रेमचन्द समाज में प्रचलित अपराधों और समाज के अपराधियों से परिचित थे। यही कारण है कि उनके साहित्य में अपराध और अपराधियों की चर्चा प्रसंगानुकूल हो सकी है।

<u>भीड़ और प्रक्रिया</u>

साधारणतया भीड़ का तात्पर्य कुछ मनुष्यों के एकत्र होने से लगाया जाता है। परन्तु समाजशास्त्र अथवा मनोविज्ञान की दृष्टि में भीड़ का अर्थ एक स्थान पर एकत्र लोगों से नहीं है। सड़क में काम पर जाते हुए मनुष्यों अथवा बाजार में क्रय-विक्रय के लिए एकत्र मनुष्यों के समूह को सामान्य रूप से भीड़ की

- -

१— "गबन", पृ० ३१२

संज्ञा दी जा सकती है परन्तु समाजशास्त्र और मनोविज्ञान ऐसी भीड़ का अध्ययन नहीं करते। ऐसी भीड़ को अकेन्द्रित तथा एक सी रुचि वाली भीड़ (अनफोकस्ड ऐण्ड लाइक इन्टरेस्टेड) भीड़ कहेंगे। सड़क में दुर्घटना हो जाने पर एकत्र जन-समूह अथवा किसी आन्दोलन अथवा दंगे में एकत्र भीड़ को 'केन्द्रित तथा एक ही रुचि वाली भीड़' (फोकस्ड ऐण्ड कामन इन्टरेस्टेड क्राउड) कहेंगे। ऐसी भीड़ का समाजशास्त्र की दृष्टि में महत्व है। उल्लेखनीय यह है कि जनता और भीड़ में भेद है। भीड़ सामान्य संवेग और अनुभूतियों वाले मनुष्यों का समूह है। बिना शारीरिक निकटता वाले असंगठित समूह को जनता या पब्लिक कहते हैं।[1] इसी प्रकार से झुंड और भीड़ में भी भेद है। झुंड में रहना एक प्रवृत्ति है जो पशुओं में भी पाई जाती है। संकट के समय शरणार्थी झुंड में उद्देश्यविहीन एकत्र हो जाते हैं। समान रुचि न होने पर भी वे समूह में एकत्र होते हैं। परन्तु भीड़ में एक उद्देश्य का होना आवश्यक है भले ही वह अस्थाई और क्षणिक हो। आर० एम० मैकाइवर ने झुंड और भीड़ के भेद को इसी आधार पर स्पष्ट किया है।[2]

आर० एम० मैकाइवर के अनुसार भीड़ वास्तविक अर्थों में शारीरिक रूप से एकत्र मनुष्यों का प्रत्यक्ष, अस्थायी तथा असंगठित संगठन है। रार्बट ई० पार्क और अर्नेस्ट डब्लू बर्गेस के अनुसार भीड़ 'व्यक्तियों के एकत्र होने का कोई भी अवसर है ------ जबकि उसको निर्मित करने वाले व्यक्तियों के मध्य आपसी संबन्ध

- -

१-- फ्रांसिस ई० मैरिल: 'ऐन इन्ट्रोडक्शन टू सोशियोलॉजी : सोसाइटी ऐण्ड कल्चर' १९६२ (अमेरिका) का २० अध्याय २३ 'क्राउड ऐण्ड पब्लिक', पृ० ५०१-५२२

२-- आर० एम० मैकाइवर: 'सोसाइटी: ए टेक्स्ट बुक ऑव सोशियोलॉजी', १९३७ (न्यूयार्क) का १० अध्याय १०, 'द हर्ड ऐण्ड द क्राउड', पृ० १८४-१९५

३-- "The crowd proper we distinguish as physically compact aggregation of human beings brought into direct, temporary, and unorganised contact one with another."
आर० एम० मैकाइवर: 'सोसाइटी: ए टेक्स्ट बुक ऑव सोशियोलॉजी', १९३७ (न्यूयार्क), पृ० १८८

की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।"[1] भीड़ की विभिन्न विशेषताओं में विचारों का ह्रास, उद्वेग का विशेष महत्व, बुद्धि के स्थान पर उद्वेग से कार्य लेना, संकेत ग्रहण और अनुकरण की प्रवृत्ति में वृद्धि, सामूहिक शक्ति का आभास, उत्तरदायित्व हीनता, सहज विश्वास, अस्थिरता, आवेगात्मकता, नेतृत्व शक्ति की प्रमुखता तथा सामाजिक-सौकर्य (सोशल फेसिलिटेशन) आदि हैं।[2]

प्रेमचन्द-साहित्य में अनेक स्थलों में भीड़ का दृश्य चित्रित हुआ है। समाजशास्त्र भीड़ के अध्ययन के अन्तर्गत मनुष्यों की मनोवृत्ति, मनोवैज्ञानिक स्थिति, भौतिक स्थिति, भीड़ के कारण तथा उसकी विभिन्न प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है। इसी आधार पर प्रेमचन्द-साहित्य में चित्रित भीड़ और उसकी प्रक्रिया का अध्ययन प्रस्तुत किया जायगा। प्रेमचन्द-साहित्य में भीड़ के जो दृश्य उपस्थित हुए हैं वे प्राय: या तो किसी मुकदमे से सम्बन्धित है और किसी आन्दोलन से सम्बद्ध है। भीड़ में नेता का विशेष स्थान होता है। आन्दोलन से सम्बन्धित भीड़ के चित्रण में नेतृत्व की प्रधानता का चित्रण प्रेमचन्द की विशेषता है।

'प्रेमाश्रम' उपन्यास में लखनपुर के मुकदमे के सम्बन्ध में अपार भीड़ है। आज फैसला सुनाया जाने वाला था, इसलिए जमाव भी और दिनों से अधिक था।"[3] फैसले में अभियुक्तों को कारावास का दण्ड दिया जाता है। अदालत से बाहर आने पर मुकदमे की पैरवी बीच में ही छोड़ देने वाले बैरिस्टर ईर्फान अली को देखकर लोग उत्तेजित हो गए और "सैकड़ों आदमियों ने चारों ओर से घेर लिया।"[4] सबको ईर्फान अली पर रोष था। संवेगात्मकता भीड़ की

- -

१-- "Any chance collection of individuals....when a condition of rapport has been established among the individuals who compose it."
राबर्ट ई० पार्क ऐण्ड अर्नेस्ट डब्लू बर्गेस: 'इन्ट्रोडक्शन टू द साइन्स ऑव सोशियोलॉजी' १९२४, (शिकागो) पृ० ८९३

२-- दे० सत्यव्रत सिद्धालंकार: 'समाज-शास्त्र के मूल-तत्व', नवीन संस्करण (देहरादून) का अध्याय 'भीड़ के विशेष गुण तथा भीड़ का व्यवहार', पृ० ६६४-७०८ तथा इन्द्रदत्त त्रिपाठी: 'समाजशास्त्र के मूलाधार' १९५१ (कानपुर) का अध्याय 'भीड़' पृ० ६११-६२२

३-- 'प्रेमाश्रम', पृ० ३४१

४-- 'प्रेमाश्रम', पृ० ३४१

विशेषता होती है। इस संवेगात्मक सामूहिक स्थिति की ओर संकेत करते हुए प्रेमचन्द ने लिखा है 'कई कण्ठों से आवाज आयी, बिना कुछ अपमान किये इनकी अक्ल ठिकाने न आयेगी। सैकड़ों आवाजें आयीं, हां-हां लो। बेमाव की पड़े।'[1] यही स्थिति डाक्टर प्रियनाथ चौपड़ा से भेंट होने पर होती है। डाक्टर साहब ने पुलिस के दबाव में आकर अपना झूठा बयान अपराधियों के विरुद्ध दिया था। उनको देखते ही 'सहसा किसी ने कहा - जरा इनकी भी खबर लेते चलो। सच पूछो तो इन्हीं महाशय ने बेचारों की गर्दन काटी है। कई आदमियों ने इसका अनुमोदन किया हां-हां, पकड़ लो, जाने न पाये।'[2] प्रेमचन्द द्वारा लिखित इन अंशों में भीड़ की सामूहिक मनोवृत्ति, संवेग ग्रहण करने की दशा बिना सोचे-विचारे निर्णय तथा अनुकरण की सरलता के लक्षण दिखाई देते हैं।

भीड़ विशेष दशा में उग्र हो जाती है। 'प्रेमाश्रम' में चित्रित इस भीड़ में उग्रता के लक्षण है। यद्यपि प्रेमशंकर के नेतृत्व में कुछ अनर्थ नहीं हो पाता परन्तु आवेश और उन्माद भीड़ के सदस्यों में दृष्टिगत होता है। 'डामुल का कैदी' कहानी में भीड़ की उग्रता का चित्रण मिलता है। मजदूर नेता गोपीनाथ की सेठ खूबचन्द की गोली से मृत्यु होने पर मजदूरों का जुलूस सेठ से बदला लेने पर तुला हुआ है। भीड़ के उग्र रूप का चित्रण करते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं "फिसादियों ने कोठी के दफ्तर में घुसकर लेन-देन के बही-खातों को जलाना और तिजोरियों को तोड़ना शुरू कर दिया।"[3] 'गोदान' उपन्यास में भी मजदूर आन्दोलन चल रहा है। पुराने मजदूर हड़ताल पर हैं। नए मजदूरों की भर्ती होने वाली है। हड़तालियों ने नये मजूरों का टिड्डी-दल मिल के द्वार पर खड़ा देखा, तो उनकी हिंसा वृत्ति काबू के बाहर हो गई। ----- गोबर भी लड़ने मरने पर तैयार था।"[4] फल यह हुआ "दोनों दलों में फौजदारी हो गयी।"[5] आन्दोलनों विशेष रूप से मजदूर आन्दोलनों में दो दलों में आपस में इसी तरह की मार-पीट

- -

1-- 'प्रेमाश्रम', पृ० २८७

2-- 'प्रेमाश्रम', पृ० २८८

3-- 'डामुल का कैदी', मानसरोवर भाग २, पृ० २९६

4-- 'गोदान', पृ० ३७४

5-- 'गोदान', पृ० ३७५

होती रहती है। दो पक्षों की उपस्थिति भीड़ प्रायः अपने नेतृत्व की इच्छा अथवा नेतृत्व के अभाव में बिना कारण और परिणाम को सोचे-समझे मार-पीट कर लेती है। औद्योगिक मजदूरों का अध्ययन करते समय समाजशास्त्री ऐसी स्थिति के अध्ययन में विशेष रुचि लेता है।

'वरदान' और 'प्रतिज्ञा' उपन्यास में भी भीड़ की उग्रता के दृश्य मिलते हैं। बालाजी गौशाला में जाते हैं। पंडित बदलू शास्त्री और सेठ उत्तम चन्द बाला जी को हिन्दू विरोधी मानते हैं। दोनों पक्षों में तनाव है। गौशाले के बाहर का दृश्य था - "उभय पक्ष के लोग लाठियां संभाले अंगरखे की बाहें चढ़ाये गुथने को उद्यत थे।"[1] बाला जी के व्यक्तित्व और ओजपूर्ण वाणी से यहां संघर्ष की स्थिति बच जाती है। 'प्रतिज्ञा' में अमृतराय विधवाओं के लिए चन्दे की अपील करना चाहते हैं। कमला प्रसाद और उसके समर्थकों ने गुण्डे भेज रखे हैं। अमृतराय के भाषण में उपद्रव करने पर विद्यार्थी अमृतराय का पक्ष लेते हैं। अमृतराय विद्यार्थियों को समझाना चाहते हैं - "मगर उस वक्त कौन किसी की सुनता है? निकट था कि दोनों पक्षों में घोर युद्ध छिड़ जाय कि सहसा एक महिला आकर मंच पर खड़ी हो गयी।"[2] यह महिला लाला बद्री प्रसाद की बेटी प्रेमा थी। प्रेमा की प्रभावपूर्ण वाणी लोगों को शान्त कर देती है।

भीड़ में नेतृत्व का महत्वपूर्ण स्थान होता है। कुशल नेतृत्व भीड़ की मनोवृत्ति बदल सकता है। प्रेमचन्द इस तथ्य से परिचित थे। 'प्रेमाश्रम' में प्रेमशंकर का कुशल नेतृत्व डा० इर्फान अली और डा० प्रियनाथ चोपड़ा की रक्षा करता है। 'प्रतिज्ञा' में प्रेमा और 'वरदान' में बाला जी संघर्ष की स्थिति बचा लेते हैं। 'जुलूस' कहानी में आजादी के मतवाले चौराहे पर पुलिस द्वारा रोक दिए गए हैं। आगे बढ़ने का आग्रह करने पर पुलिस लोगों पर लाठियों का प्रहार करती है फलतः जुलूस के नेता इब्राहीम चोट खाकर गिर जाते हैं। भीड़ उग्र हो जाती है और शहर से बहुत अधिक संख्या में लोग एकत्र होने लगते हैं। बिगड़ती हुई स्थिति की रक्षा इब्राहीम करते हैं। "इशारे की देर थी। संगठित सेना की भांति लोग

१— 'वरदान', पृ० १२२

२— 'प्रतिज्ञा', पृ० ८८

हुक्म पाते ही पीछे फिर गये।"[1] इस प्रकार से स्पष्ट है कि भीड़ में नेतृत्व का विशेष स्थान होता है। भीड़ की मनोवृत्ति को बनाने बिगाड़ने में वह महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। ऊपर के उद्धरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

मुन्नी पर मुकदमा चल रहा है। उस पर गोरों की हत्या का अभियोग है। फैसले का दिन है। "आज वहां और दिनों से कहीं ज्यादा भीड़ थी, पर जैसे बिना दूल्हा की बारात हो। वहां कोई शृंखला न थी। सौ-सौ, पचास-पचास की टोलियां जगह-जगह खड़ी या बैठी शून्य दृष्टि से ताक रही थीं। कोई बोलने लगता था, तो सौ-दो-सौ आदमी इधर-उधर से आकर उसे घेर लेते थे।"[2] नेतृत्व के अभाव में, उत्तेजित वातावरण के न होने पर भीड़ की जो स्थिति होती है उसका दृश्य ऊपर के चित्रण से हमारे सामने उपस्थित हो जाता है। शान्त वातावरण में एकत्र भीड़ किसी एक व्यक्ति के कुछ बोलने पर जिज्ञासु होकर उसकी तरफ बढ़ती है इसकी ओर प्रेमचन्द ने स्पष्ट संकेत दिया है। शान्त वातावरण में भीड़ की यही मनोवैज्ञानिक स्थिति होती है।

प्रेमचन्द-साहित्य में जहां कहीं भी आन्दोलन या विशेष तरह के मुकदमे का उल्लेख है वहां पर भीड़ की चर्चा अवश्य है। 'रंगभूमि' के औद्योगीकरण के विरुद्ध सूरदास के आन्दोलन में भीड़ के दृश्यों की चर्चा है इसी प्रकार 'कर्मभूमि' उपन्यास के मन्दिर, आवास तथा लगान आन्दोलन के मध्य भीड़ की ओर संकेत किया गया है। मुन्नी के मुकदमे के अलावा 'गबन' में क्रान्तिकारियों के मुकदमे में भी अदालत में जन-समूह के एकत्रित होने का संकेत है। प्रेमचन्द-साहित्य में चित्रित इन भीड़ के दृश्यों में पाठक को भीड़ की मनोवृत्ति, उसकी प्रक्रिया तथा भीड़ के समस्त मनोवैज्ञानिक मिल जायेंगे। समाजशास्त्री भीड़ के अध्ययन के संदर्भ में इन्हीं पक्षों की खोज करता है।

<u>प्रेमचन्द की भाषा का समाजशास्त्रीय महत्व</u>

भाषा भावाभिव्यक्ति और वैचारिक आदान-प्रदान का महत्वपूर्ण साधन है। भाषा वह सबसे प्रबल स्रोत है जो सांस्कृतिक विकास का सबसे महत्वपूर्ण

- -

१— '[illegible]', मानसरोवर भाग ७, पृ० [illegible]
२— 'कर्मभूमि', पृ० [illegible]

भाग है। सांस्कृतिक विकास और परिवर्तन के साथ भाषा में उसके स्तर तथा उसके स्वरूप में परिवर्तन होता रहता है। किलफ्टन बार० जोन्स के अनुसार "भाषा सांकेतिक व्यवहार है। यह सांकेतिक इस रूप में है कि यह भौतिक दशा, व्यक्तियों, दशाओं, अथवा विचारों, संवेगों और अन्य वैचारिक स्तरों को प्रकट करती है। मनोवैज्ञानिक रूप से यह व्यक्तित्व के विकास के लिए महत्वपूर्ण संकेत है और समाजशास्त्र की दृष्टि में सामाजिक संगठन और सांस्कृतिक विकास की योग्यता के रूप में अर्थ के उपसर्ग की खिंची हुई क्रिया (रेखा) है।"[१] डा० आर्थर जेम्स टाड की विचारधारा है कि भाषा प्रत्येक पीढ़ी को क्षमता प्रदान करती है कि वह अपने द्वारा अर्जित बुद्धि, संगृहीत अनुभव, कटौतियों और खोजों को सुरक्षित रखकर उन्हें अपने उत्तराधिकारियों को प्रदान करे जिससे कि प्रत्येक व्यक्ति उस स्थान से जीवन को आगे बढ़ाए जहां तक उसके पुरखे पहुंच चुके हैं और प्रत्येक व्यक्ति अपनी जीवन-वृत्ति को वारिस के रूप में अपरिमित भूतकाल के संगृहीत सम्पत्ति के आधार पर आगे बढ़ाए। उनका यह भी कहना है कि भाषा प्रधान रूप से 'सोशल बान्ड' है। कम-से-कम यह वह आधार है जिसके द्वारा सोशल बान्ड गढ़े जाते हैं।[२] डा० हैब की धारणा है कि भाषा सामाजिक विकास की एक

- -

१-- "Language is symbolic behaviour. It is symbolic in the sense that it stands for, or refers to physical objects, persons, situations, or ideas sentiments and other feeling states. Psychologically, it has a profound significance for the development of human personality; Sociologically it is the Sine quva Non of social organization and cultural development."

किलफ्टन बार० जोन्स: 'द सोशियोलॉजी ऑव सिम्बल्स, लैंग्वेज ऐण्ड सैमैन्टिक्स' दै० जोसेफ एस० राउसेक: 'कन्टेम्पोररी सोशियोलॉजी', १९५८ (न्यूयार्क), पृ० ३४०

२-- "Language enables each generation to lay up securely and to hand over to its successors its own collected wisdom, its stores of experience, deduction, and invention, so that each starts from the point which its predecessors had reached, and

(शेष अगले पृष्ठ पर)

अनोखी देन है। यह प्राणशास्त्रीय देन नहीं है। उनका कहना है कि बहरा सदैव गूंगा रहता है और कोई भी किसी भी भाषा की जानकारी तब तक नहीं रख सकता जब तक वह दूसरों से न सीखे। इस प्रकार से भाषा, धर्म, नैतिकता, विज्ञान, राजनीति, कला, विशेष प्रकार की रुचियाँ और जीवन के सम्पूर्ण भागों की भांति है जो सामाजिक रूप से विकसित हुए हैं।[१] यही कारण है कि क्लिफ्टन आर० जोन्स दावा करते हैं कि "भाषा मानव-व्यवहार के रूप में अध्ययन और अन्वेषण का एक उत्पादक क्षेत्र है।[२] भाषा का अध्ययन

- -

every individual commences his career as heir to the gathered wealth of an immeasurable past.

Language is Pre-eminently the social bond. As least it is the tool by which social bends are forged.

आर्थर जेम्स टाड: 'थ्योरीज ऑफ सोशल प्रोग्रेस', १९१८ (न्यूयार्क) पृ० ४७७

१-- "Language is a typical product of social evolution. It is not produced by biological evolution, though for this as for all other social evolution biological evolution furnished the prerequisite organic conditions. Even to-day language is in no sense an inborn gift. The deaf remain dumb, and no one has knowledge of any language that he has not learned from others. In this, language is like religion, morality, science, politics, art, special fasters, and the whole content of life which has been specially evolved."

एलवर्ड केरी एब: "इन्ट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑफ सोशियोलोजी", १९२१ (लन्दन), पृ० ४४८

२-- "Language as a form of human behaviour has been a fertile field of study and research."

क्लिफ्टन आर० जोन्स: 'द सोशियोलोजी ऑफ सिम्बल्स, लैंग्वेज एण्ड सेमेन्टिक्स' हे० बेकर एण्ड रासेक (सं०): 'कन्टेम्पोरेरी सोशियोलोजी', १९५८ (न्यूयार्क), पृ० ४३७

समाज के अध्ययन के साथ आवश्यक माना गया है और विद्वान् समाज की व्याख्या के लिए, सांस्कृतिक विकास के ज्ञान के लिए भाषा का अध्ययन करते हैं।[१] और भाषा का समाजशास्त्रीय अध्ययन भी किया जाने लगा है। भाषा के समाजशास्त्रीय अध्ययन में युग धर्म के आधार पर उसके स्वरूप का अध्ययन किया जाता है तथा सामाजिक संकलन में, सांस्कृतिक विकास के निर्धारण में उसका क्या मूल्य है? भाषा के समाजशास्त्रीय अध्ययन में इन्हीं बातों का ध्यान रखा जाता है।[२]

प्रेमचन्द समाज में भाषा की महत्त्वपूर्ण स्थिति को जानते थे। उन्होंने २७ अक्टूबर १९३४ को `राष्ट्र भाषा-सम्मेलन' बम्बई में स्वागताध्यक्ष की हैसियत से कहा था - "किसी कौम के जीवन, और उसकी तरक्की में भाषा का कितना बड़ा हाथ है इसे हम सब जानते हैं और उसकी तशरीह करना आप जैसे विद्वानों की तौहीन करना है। यह दो पैरों वाला जीव उसी वक्त आदमी बना, जब उसने बोलना सीखा। यों तो सभी जीवधारियों की अपनी एक भाषा होती है। वह उसी भाषा में अपनी खुशी और रंज, अपना क्रोध और भय, अपनी हां या नहीं बतला दिया करता है। कितने ही जीव तो इशारों से ही अपने दिल का हाल और स्वभाव जाहिर करते हैं। यह दर्जा आदमी को ही हासिल है कि वह अपने मन के भाव और विचार सफाई और बारीकी से बयान करे। समाज की बुनियाद भाषा है। भाषा बगैर किसी समाज का ख्याल भी नहीं किया जा सकता।"[३] स्पष्ट है प्रेमचन्द भाषा के सामाजिक महत्त्व से भली भांति परिचित थे। प्रेमचन्द के उपर्युक्त विचार डा० टाड और डा० जेम्स जैसे प्रसिद्ध समाजशास्त्रियों और सामाजिक विचारकों के ऊपर उल्लेख किए गए विचारों से मेल खाते हैं।

- -

१-- आर्थर जेम्स टाड: `थ्योरीज ऑफ सोशल प्रोग्रेस', १९१८ (न्यूयार्क) का दे० अध्याय २८ `लैंग्वेज' पृ० ४००-४१२

२-- दे० जिल्फ्रूडन आर० जोन्स: `द सोशियोलॉजी ऑफ सिम्बल्स, लैंग्वेज एण्ड सेमाण्टिक्स' जोसेफ एस० राउसेक (सं०): `कन्टेम्पोररी सोशियोलॉजी', १९५८ (न्यूयार्क) पुस्तक के दे० पृ० ४४०-४६१

३-- `कुछ विचार' पृ० १६६

प्रेमचन्द-साहित्य में हिन्दी प्रदेश की भाषा का प्रतिनिधित्व मिलता है। प्रेमचन्द के युग में प्रचलित हिन्दी प्रदेश के विभिन्न वर्गों के लोगों, विभिन्न धर्मों को मानने वाले लोगों और विभिन्न स्तरों के लोगों की भाषागत विभिन्नता के दर्शन प्रेमचन्द-साहित्य में उनके विभिन्न पात्रों के कथोपकथनों में स्पष्ट होती है।

भाषा परिवर्तनशील होती है। संसार में अनेक तरह की भाषाएं बोली जाती हैं। अत: भाषा के अध्ययन में युग और क्षेत्र का ध्यान रखना आवश्यक है। प्रेमचन्द की भाषा के समाजशास्त्रीय अध्ययन के लिए प्रेमचन्द के समय में भाषा के स्वरूप और हिन्दी प्रदेश तक हमें सीमित रहना पड़ेगा। प्रेमचन्द ने साहित्य की कथा-साहित्य जैसी विधा को प्रधान रूप से अपने साहित्य का आधार बनाया। अत: पात्रों की बहुलता का आ जाना स्वाभाविक था। पात्रों की इस बहुलता के मध्य प्रेमचन्द अच्छे-से-अच्छे अंग्रेजीदां और पढ़े-लिखे विद्वान से लेकर मजदूर किसान, भिखारी आदि की बोल-चाल की भाषा का प्रयोग कर सके हैं। प्रेमचन्द की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनके पात्र जिस वर्ग अथवा जिस वातावरण के होते हैं उनकी अपनी वैसी ही भाषा होती है। उदाहरण के लिए 'सेवासदन' के डाक्टर श्यामाचरण के आचार-व्यवहार के साथ उनकी भाषा भी अंग्रेज साहबों की भाषा है। प्रेमचन्द इस सम्बन्ध में लिखते हैं - "डाक्टर श्यामाचरण मोटर से उतरे और उपस्थित सज्जनों की ओर देखते हुए बोले, I am sorry, I was late. कुंवर साहब ने उनका स्वागत किया। औरों ने भी हाथ मिलाया और डाक्टर साहब कुर्सी पर बैठकर बोले ये Where is the performance going to begin ?[1] 'वरदान' की गैर पढ़ी-लिखी रुक्मिणी की भाषा है - "सिलो! तुम्हारी भावज कहां हैं? दिखायी नहीं देतीं। क्या हम लोगों से भी पर्दा है? तो बीच में घर की नौकरानी रामदेई का उत्तर है - "पर्दा क्यों नहीं है? हमारी नजर न लग जायगी?[2] झाड़ू फांकने वाली गोंड़ स्त्री मुन्नी की भाषा है - "यहीं बैठे रहो, अब तुम जाय

- -

१-- 'सेवासदन', पृ० [illegible]

२-- 'वरदान', पृ० [illegible]

तो लेकर जाना । किसी दूसरे के दाने छुएं तो हाथ काट लेना ।"[१] किसान युवक बलराज की भाषा है - "सब मामला लैस है तुम्हारे हुकुम की देर है । तो वहीं मुसलमान किसान कादिर की जबान है - "न मैं तुम्हें आग में कूदने की सलाह दूंगा । जब अल्लाह को मंजूर होगा तब वह आपही यहां से चले जायेंगे ।[२] शहर का पढ़ा-लिखा मुसलमान अबुल वफा जब बोलता है तो वह कादिर से भिन्न पढ़े-लिखे लोगों की उर्दू बोलता है । सुमन से अपना प्रेम जताते हुए वह कहता है - "तब तो मैं भी अपना शुमार खुश नसीबों में करूंगा । वाह रे मैं, वाह रे मेरे साबे जिगर की तासीर ।"[३]

डा० श्यामाचरण अंग्रेज बहादुर की वाणी में बात करते हैं । रुक्मिणी की अपनी अनपढ़ स्त्री की भाषा है । रामदेई अपने वर्ग की भाषा का प्रतिनिधित्व करती है । मुनगी का अपना अलग प्रतिनिधित्व है । बलराज और कादिर की भाषा में थोड़ा भेद है । उत्तरी भारत के किसानों की भाषा में जो हिन्दू-मुसलमानों के रूप में एक साथ रहते हैं जो भेद होता है वही भेद बलराज और कादिर की भाषा में है । अबुल वफा पढ़े-लिखे मुसलमान की भाषा बोलता है । कादिर और अबुल वफा की भाषा में जो भेद है वह हिन्दी प्रदेश के मुसलमान किसान और पढ़े-लिखे शहर के मुसलमान की भाषा का भेद है । कादिर एकदम अपढ़ नहीं है परन्तु उसकी अपनी ग्रामीण जीवन की भाषा है ।

इस प्रकार से यदि हम यह कहें कि प्रेमचन्द की भाषा अपने युग के हिन्दी प्रदेश के समाज का प्रतिनिधित्व करती है तो यह अनुचित न होगा । सच तो यह है कि प्रेमचन्द की भाषा उत्तरी भारत के हिन्दी-भाषी समाज की भाषा की दृष्टि से अपने युग का सच्चा प्रतिनिधित्व करती है जिसके आधार पर किसी भी युग में समाजशास्त्री, दार्शनिक, राजनीतिक या संस्कृति के अन्वेषक तत्कालीन समाज की सामाजिक मानक भाषा के स्वरूप, उसके आधार पर उत्तर भारतीय समाज के सांस्कृतिक स्तर और सांस्कृतिक स्वरूप का अन्वेषण कर सकते हैं।

- -

१— 'विध्वंस', मानसरोवर भाग ८, पृ० १८०

२— 'प्रेमाश्रम', पृ० [illegible]

३— 'सेवासदन', पृ० [illegible]

प्रेमचन्द ही अपने युग के वह कलाकार थे जिनके साहित्य में सच्चे अर्थों में युग की सामाजिक मानक भाषा का स्वरूप चित्रित हो सका है। प्रेमचन्द जी की भाषा का यही सर्वाधिक महत्वपूर्ण समाजशास्त्रीय महत्व है, जो कालान्तर में समाजशास्त्रियों की यदि भाषा की दृष्टि से उनके युग में समाज का मूल्यांकन करना चाहेंगे अथवा उनके युग की उत्तर भारत के हिन्दी प्रदेश की भाषा का समाजशास्त्रीय मूल्यांकन करना चाहेंगे, सहायता कर सकेगा।

सप्तम अध्याय -

उपसंहार

उपसंहार

प्रेमचन्द-साहित्य की समाजशास्त्रीय व्याख्या के पश्चात् अनेक रोचक तथ्य सामने आए हैं। प्रेमचन्द का समग्र साहित्य अपने युग के यथार्थ का बोध कराता है। तत्कालीन भारतीय समाज की राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक स्थिति का जैसा बोध प्रेमचन्द-साहित्य में होता है वैसा साधारणतया कम साहित्यकारों के साहित्य में होता है। प्रेमचन्द का साहित्य सामाजिक साहित्य है। प्रेमचन्द समाज की उपेक्षा करके कल्पना के आधार पर साहित्य की रचना के विरोधी थे। इस तथ्य का ज्ञान उनके अनेक कथनों तथा लेखों से होता है जिनका उल्लेख यथोचित स्थानों पर शोध-प्रबन्ध में किया जा चुका है। प्रेमचन्द-साहित्य का आधार मानव और समाज है। मानव-जीवन और समाज से ऊपर उठकर जादूगर के खेल की तरह मात्र चमत्कार प्रदर्शन के लिए प्रेमचन्द साहित्यिक रचना में विश्वास नहीं करते थे। प्रेमचन्द का सामाजिक दर्शन अत्यंत स्पष्ट और सुलझा हुआ था। वे समाज में राजनीतिक भ्रष्टाचार अनाचार और दासता को यदि मिटा देना चाहते थे तो वहीं आर्थिक विसंगतियां, आर्थिक विषमता और आर्थिक शोषण को भी निर्मूल कर देना चाहते थे। धर्म को वे जीविकोपार्जन और ठगी का आधार बनाने के पक्षपाती नहीं थे बल्कि उसे वे मानव-सेवा के लिए प्रयोग केहु समर्थक थे। यही कारण है कि उन्होंने खुले रूप से धार्मिक आडम्बर और अंधविश्वास का विरोध किया है। प्रेमचन्द ऐसी संस्कृति का निर्माण चाहते थे जिसमें दिखावा, भौतिकता, स्वार्थ और छल-प्रपंच के लिए स्थान न हो। प्रेमचन्द अपने साहित्य के माध्यम से अपने उन सामाजिक मानदण्डों को प्राप्त करने के लिए संघर्ष करते रहे जिन पर उनकी आस्था और विश्वास थी। यही कारण है कि वे समाजशास्त्री के समकक्ष के साहित्यकार हुए और उनके साहित्य की समाजशास्त्रीय व्याख्या सम्भव हो सकी है।

प्रेमचन्द का साहित्य अपने युग का सबसे विस्तृत साहित्य है जिसमें जीवन का, समाज का कोई भी पक्ष अछूता नहीं रह सका है। गांव और शहर जीवन दोनों की स्वतंत्र तथा तुलनात्मक व्याख्या प्रेमचन्द-साहित्य की अपनी विशेषता है। प्रेमचन्द ने जहां एक ओर ग्रामीण अंचलों की झोपड़ियों तक को देखा था, वहीं पर

उन्होंने शहर की विकासमान स्थिति, शहर के जीवन तथा शहरों के आस-पास प्रतिस्थापित होने वाले औद्योगिक विकास को भी देखने का यत्न किया था। गांव और शहर के सम्बन्ध में आश्चर्य की बात तो यह है कि प्रेमचन्द ने गांव और शहर जीवन के उन समस्त क्षेत्रों का साहित्य में चित्रण किया है जिनकी समाजशास्त्रीय व्याख्या हो सकती है अथवा समाजशास्त्री जिनका मूल्यांकन करता है, जिन पर दृष्टि डालता है अथवा जिनका अध्ययन करता है। गांव और नगर की स्थिति, उसका परिस्थितिशास्त्रीय दृष्टि से चित्रण प्रेमचन्द ऐसे अनुभवी कलाकार से ही सम्भव था। गांव और शहर की आर्थिक स्थिति, ग्रामीण और शहरी समुदाय के तमाम पक्ष प्रेमचन्द साहित्य में उभर कर आए हैं जो उनके युग के किसी दूसरे साहित्यकार के साहित्य में नहीं मिलते हैं। गांव और शहर के विविध पक्षों का एक साथ निरूपण करने वाले वे हिन्दी के पहले कलाकार हैं। प्रेमचन्द हिन्दी के पहले उपन्यासकार हैं जिन्होंने ग्रामीण समुदाय के पुरातन के प्रति मोह और शहरी समुदाय के नवीनता के प्रति आग्रह के भाव को परखने का प्रयास किया है। वे शहर जीवन में पनपने वाले उस नए पन के विरोधी भी थे जो भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को विघटित करने वाले हों।

प्रेमचन्द ने युग के राजनीतिक दलदल को पहचानने का प्रयास किया था। तत्कालीन राजनीतिक परिवेश का जितना स्पष्ट और यथार्थ चित्र प्रेमचन्द के उपन्यासों, कहानियों और लेखों में हुआ है, विरले ही साहित्यकारों के साहित्य में सम्भव है। विदेशी शासन की रीति-नीति, राष्ट्रीय रंगमंच पर होने वाले राष्ट्रीय आन्दोलन के स्वरूप को साहित्य में साकार रूप देने वाले युग के महानतम साहित्यकार प्रेमचन्द थे। आर्थिक धरातल पर जिन वर्गों का निर्माण हो रहा था। शक्तिशाली लोग गरीबों का किस प्रकार शोषण कर रहे थे, तथा महाजनवाद और पूंजीवाद सामन्तवाद का किस प्रकार से स्थान ग्रहण कर रहा था आदि पक्ष प्रेमचन्द साहित्य के मूल आर्थिक विषय हैं। युग की संस्कृति, शैक्षणिक स्थिति प्रेमचन्द के साहित्य में प्रतिबिंबित हो उठी है। युग का धर्म, धार्मिक स्थिति, सामाजिक स्थिति, सामाजिक विसंगतियां और उनके कारण सामाजिक विघटन की स्थिति के साथ सामाजिक सुधार सम्बन्धी प्रयासों के चित्र भी प्रेमचन्द-साहित्य में उभर कर सामने आए हैं।

प्रेमचन्द ने सामाजिक विकृतियों एवं विसंगतियों को परखने का प्रयास किया था। प्रेमचन्द इस तथ्य को जानते थे कि सामाजिक विकृतियां और विसंगतियां समाज के ढांचे को जर्जर बना देती हैं। यही कारण है कि उन्होंने उनको दूर करने का साहित्यिक प्रयत्न किया है। प्रेमचन्द के युग की चाहे ये अछूतों से सम्बन्धित समस्याएं हों, चाहे धर्म के नाम पर किए जाने वाले सामाजिक अत्याचार अथवा उससे उत्पन्न सामाजिक प्रश्न हों, चाहे आर्थिक प्रश्नों से सम्बन्धित अथवा आर्थिक-व्यवस्था से उत्पन्न सामाजिक प्रश्न हों अथवा सामाजिक समस्याएं हों, चाहे भारतीय नारी-समाज से सम्बन्धित सामाजिक और आर्थिक विसंगतियां हों, चाहे विवाह अथवा वैवाहिक प्रथा से सम्बन्धित प्रश्न हों, सबका समाधान खोजने का प्रयास प्रेमचन्द साहित्य में किया गया है। प्रेमचन्द ने रूढ़ियों और भ्रामक धारणाओं का खुला विरोध किया है। वे मिथ्या, भ्रमों और आडम्बरों को मिटा देने के पक्षपाती थे। वे समाज को इन सबसे छुटकारा दिला कर गतिशील बना देना चाहते थे।

प्रेमचन्द-साहित्य में भारतीय सामाजिक वर्ग (सोशल क्लासेस) का स्पष्ट चित्रांकन हो सका है। समाजशास्त्री समाज में वर्गों का विभाजन करता है उन्हें आर्थिक, सामाजिक स्तर तथा राजनैतिक शक्ति के आधार पर परखने का प्रयास करता है। प्रेमचन्द के युग के सामाजिक वर्गों का जैसा यथार्थ चित्र प्रेमचन्द-साहित्य में चित्रित हो सका है तत्कालीन ऐतिहासिक ग्रन्थों में भी वैसा स्पष्ट चित्रण नहीं मिलता है। प्रेमचन्द के युग में यदि भारतीय समाज के वर्गों का अध्ययन करना हो तो प्रेमचन्द-साहित्य का अध्ययन आवश्यक हो जायगा। सामाजिक वर्ग के अथवा उत्तर भारत की जाति व्यवस्था का स्वरूप भी प्रेमचन्द-साहित्य में स्पष्ट हो गया है। उनके साहित्य को ध्यान से पढ़ने पर उत्तर-भारत में प्रचलित जातियों के भेद तथा उप-विभाजन का ज्ञान सुगमता से होता जाता है। इस दृष्टि से प्रेमचन्द-साहित्य समाजशास्त्री के लिए युग का इतिहास है। सामाजिक वर्ग और प्रजाति के अलावा भारतीय परिवारों की विविधता वर्तमान समय में उसके स्वरूपों और उसकी परिवर्तित दशा का बोध प्रेमचन्द-साहित्य की महत्वपूर्ण विशेषता है। शहर और गांव के परिवारों के स्वरूप, उनकी परिवर्तनशील स्थिति तथा विघटन की प्रवृत्ति का चित्रण पारिवारिक अध्ययन में समाजशास्त्री की यथेष्ट सहायता करने में समर्थ है।

इन सब बातों के अलावा प्रेमचन्द-साहित्य में समाजशास्त्रीय अध्ययन से सम्बन्धित अन्य अनेक पक्षों का भी चित्रण बन पड़ा है उनमें अपराध और अपराधी, भीड़ और प्रक्रिया तथा प्रेमचन्द की भाषा का समाजशास्त्रीय महत्व है। प्रेमचन्द-साहित्य में अपराध और उसके कारण, अपराधी तथा उसकी मनोदशा और स्थिति का जिन संदर्भों में चित्रण हुआ है उसका आधार मनोवैज्ञानिक और सामाजिक है। इसी प्रकार भीड़ और भीड़ की प्रक्रिया का भी भीड़ के संदर्भ में चित्रण हुआ है जो समाजशास्त्रीय कसौटी पर उचित ठहरता है। प्रेमचन्द की भाषा उत्तर-भारतीय समाज की अपने युग की मानक भाषा (स्टैन्डर्ड लैंग्वेज) है। समाजशास्त्री भाषा के माध्यम से सामाजिक स्तर, सामाजिक स्थिति आदि का पता लगाते हैं। प्रेमचन्द की भाषा अपने युग की एक मात्र भाषा है तो मानक भाषा के रूप में इस क्षेत्र में समाजशास्त्री और भाषाशास्त्री की सहायता कर सकती है।

अन्त में हमें निष्कर्ष रूप में यह कहना है कि प्रेमचन्द का समस्त साहित्य समाज परक है। वह मानव-जीवन और समाज से गुथा हुआ है। प्रेमचन्द की समाज परक दृष्टि ने उनके साहित्य को समाजशास्त्रीय दृष्टि से अत्यधिक मूल्यवान बना दिया है। समाज के यथार्थ को पहचानकर उसका चित्रण तथा जो कुछ भी त्रुटिपूर्ण है उसके निराकरण का प्रयास प्रेमचन्द-साहित्य का आधार स्तम्भ है। इन पहलुओं के साथ उनके साहित्य में समाज का जो बहुमुखी चित्रण हो सका है वह प्रेमचन्द-साहित्य को गौरवशाली और महान बना देता है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में प्रेमचन्द-साहित्य का समाजशास्त्रीय विवेचन तत्कालीन सामाजिक यथार्थ, गांव और शहर जीवन की स्थिति, सामाजिक युग बोध, सामाजिक विसंगतियां एवं विकृतियों का निरूपण तथा प्रेमचन्द द्वारा उनसे समाज की रचना का प्रयास तथा सामाजिक वर्ग जाति, परिवार आदि का विवेचन करने में कहां तक सफल हुआ है इसका निर्णय पाठक-वृन्द करेगा। हमें तो मात्र यह कहना है कि हमें आशा है यह अध्ययन साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन को आगे बढ़ायेगा।

परिशिष्ट -

पुस्तक - सूची

परिशिष्ट १

प्रेमचन्द का मौलिक साहित्य

उपन्यास-साहित्य :

१- मंगलाचरण, १९६२, प्रथम संस्करण, इलाहाबाद ।

(क) असरारे मआबिद उर्फ देवस्थान-रहस्य (रचनाकाल १९०३-१९०५) ।

(ख) हम ख़ुर्मा व हम सवाब (रचनाकाल १९०६ से पूर्व) ।

(ग) प्रेमा (रचनाकाल १९०४) ।

(घ) रूठी रानी (रचनाकाल १९०७) ।

२- वरदान (उर्दू कृति जलवए ईसार का हिन्दी रूपान्तर) ।

३- सेवासदन, १९६६, वर्तमान संस्करण, सरस्वती प्रेस, बनारस ।

४- प्रेमाश्रम, १९६७, नवीन संस्करण, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद ।

५- रंगभूमि, १९६५, वर्तमान संस्करण, सरस्वती प्रेस, बनारस-इलाहाबाद ।

६- कायाकल्प, १९६४, वर्तमान संस्करण, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद ।

७- निर्मला, (संस्करण तथा प्रकाशन वर्ष नहीं दिया), सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद ।

८- प्रतिज्ञा, १९६५, नवीन संस्करण, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद ।

९- गबन, १९६७, तीसवां संस्करण, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद ।

१०- कर्मभूमि, १९६५, नवीन संस्करण, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद ।

११- गोदान, १९६१, वर्तमान संस्करण, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद ।

१२- मंगलसूत्र, प्रेमचन्द स्मृति अंक १९६२ में प्रकाशित, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद ।

कहानी-साहित्य :

१- मानसरोवर, भाग १, १९६५, वर्तमान संस्करण, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद ।

२- मानसरोवर, भाग २, १९६५, वर्तमान संस्करण, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद ।

३- मानसरोवर, भाग ३, १९६५, वर्तमान संस्करण, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद ।

४- मानसरोवर, भाग ४, १९६५, वर्तमान संस्करण, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद ।

५- मानसरोवर, भाग ५, (संस्करण नहीं है), हंस प्रकाशन, इलाहाबाद ।

६- मानसरोवर, भाग ६, (संस्करण नहीं है), हंस प्रकाशन, इलाहाबाद ।

७- मानसरोवर, भाग ७, १९६५, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद ।

८- मानसरोवर, भाग ८, १९६५, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद ।

९- गुप्तधन, भाग १, १९६२, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद ।

१०- गुप्तधन, भाग २, १९६२, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद ।

११- पांच फूल, १९६६, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद ।

१२- सोजे वतन, १९६१, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद ।

१३- सप्त सरोज, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद ।

१४- कफन, १९६१, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद ।

१५- पूस की रात, १९५७, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद ।

अन्य-साहित्य :

नाटक -

१- संग्राम, १९५६, वर्तमान संस्करण, सरस्वती प्रेस, बनारस ।

२- कर्बला, संस्करण नहीं दिया, गंगा पुस्तक माला, लखनऊ ।

३- प्रेम की वेदी (एकान्की), १९५७, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद ।

निबन्ध -

१- साहित्य का उद्देश्य, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद ।

२- कुछ विचार, १९६५, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद ।

सम्पादकीय, लेख एवं भाषण -

१- विविध प्रसंग, भाग १, १९६२, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद ।

२- विविध प्रसंग, भाग २, १९६२, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद ।

३- विविध प्रसंग, भाग ३, १९६२, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद ।

पत्र-साहित्य -

१- चिट्ठी पत्री, भाग १, १९६२, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद ।

२- चिट्ठी पत्री, भाग २, १९६२, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद ।

जीवनी-लेखन -

१- कलम, तलवार और त्याग, १९६१, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद ।

परिशिष्ट २

सहायक - ग्रन्थ

हिन्दी-पुस्तकें :

१- अमृतराय : `प्रेमचन्द : कलम का सिपाही` , १९६२, इलाहाबाद ।

२- अमृतराय : `प्रेमचन्द - स्मृति` (संकलन), १९६२, इलाहाबाद ।

३- इन्द्रनाथ मदान (डा०): `प्रेमचन्द : एक विवेचन` , १९६८, दिल्ली ।

४- इन्द्रनाथ मदान (डा०): `प्रेमचन्द : चिन्तन और कला` (संकलन), बनारस ।

५- कर्नल सत्यव्रत सिद्धालंकार :

६- गुलाब राय (डा०) : `सिद्धान्त और अध्ययन` , पांचवां संस्करण, दिल्ली ।

७- चन्दी प्रसाद जोशी (डा०) : `हिन्दी उपन्यास : समाजशास्त्रीय विवेचन` , १९६२, कानपुर ।

८- देवेन्द्र इस्सर : `चिन्तन और साहित्य` , १९५८, दिल्ली ।

९- नगेन्द्र (डा०) : `विचार और विवेचन` , १९५३, दिल्ली ।

१०- नन्द दुलारे बाजपेई (डा०) : `प्रेमचन्द : साहित्यिक विवेचन` , १९५६, इलाहाबाद ।

११- मदन गोपाल : `कलम का मजदूर प्रेमचन्द` , १९६२, इलाहाबाद ।

१२- मन्मथनाथ गुप्त : `प्रेमचन्द : व्यक्ति और साहित्यकार` , १९६१, वाराणसी-इलाहाबाद ।

१३- महेन्द्र भटनागर (डा०) : `समस्या मूलक उपन्यासकार : प्रेमचन्द` , १९५७, वाराणसी ।

१४- मक्खन लाल शर्मा (डा०) : `हिन्दी उपन्यास सिद्धान्त और समीक्षा` , १९६५, दिल्ली ।

१५- महादेवी वर्मा : `साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध` , १९६२, इलाहाबाद ।

१६- राजेश्वर गुरु (डा०) : `प्रेमचन्द : एक अध्ययन` , १९७०, दिल्ली ।

१७- राम दरश मिश्र (डा०) : `हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा` , १९६८, दिल्ली ।

१८- रामदीन गुप्त : `प्रेमचन्द और गांधीवाद` , १९६१, पटना-दिल्ली ।

१९- रामरतन भटनागर (डा०) : `प्रेमचन्द` , १९५१, इलाहाबाद ।

२०- राम विलास शर्मा (डा०) : 'प्रेमचन्द और उनका युग', १९५७, दिल्ली ।
२१- लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय (डा०) : 'पश्चिमी आलोचनाशास्त्र', १९६५, लखनऊ ।
२२- लक्ष्मी नारायण सुधांशु : 'जीवन के तत्व और काव्य सिद्धान्त', १९४२, भागलपुर ।
२३- शचीरानी गुर्टू : 'प्रेमचन्द और गोर्की' (संकलन), १९५५, दिल्ली ।
२४- शिवरानी देवी : 'प्रेमचन्द घर में', इलाहाबाद ।
२५- शम्भूरत्न त्रिपाठी : 'समाजशास्त्र के मूलाधार', १९६१, कानपुर ।
२६- सुरेश सिनहा : 'हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास', १९६५, दिल्ली ।
२७- हजारी प्रसाद द्विवेदी (डा०) : 'साहित्य सहचर', १९६८, वाराणसी ।
२८- हंसराज रहबर : 'प्रेमचन्द : जीवन और कृतित्व', १९५२, दिल्ली ।
२९- हरस्वरूप माथुर : 'प्रेमचन्द : उपन्यास और शिल्प', १९५७, कानपुर ।
३०- त्रिलोकी नारायण दीक्षित (डा०) : 'प्रेमचन्द', १९५२, कानपुर ।

अंग्रेजी-पुस्तकें :

१- अर्नाल्ड डब्लू० ग्रीन (प्रो०) : 'सोशियोलॉजी ऐन एनालिसिस ऑफ लाइफ इन माडर्न सोसाइटी', १९६० (न्यूयार्क, लन्दन)।
२- अर्नेस्ट आर० ग्रोव्स : 'द फैमिली ऐण्ड इट्स सोशल फन्क्शन्स', १९४०, शिकागो ।
३- अर्नेस्ट बारकर : 'प्रिंसिपल्स ऑफ सोशल ऐण्ड पोलिटिकल थ्योरी', १९५२, आक्सफोर्ड ।
४- आर० एम० मैकाइवर : 'सोसाइटी', १९३७, न्यूयार्क ।
५- आर० एम० मैकाइवर ऐण्ड चार्ल्स एच० पेज : 'सोसाइटी : ऐन इन्ट्रोडक्टरी एनालिसिस', १९६२, लन्दन ।
६- आर० एम० मैकाइवर : 'एलीमेन्ट्स ऑफ सोशल साइन्स', १९२१, न्यूयार्क ।
७- आर्थर जेम्स टाड : 'थ्योरीज ऑफ सोशल प्रोग्रेस', १९१८, न्यूयार्क,बास्टन आदि।
८- आर० एन० शर्मा (डा०) : 'इण्डियन रूरल सोशियोलॉजी', १९६७, कानपुर ।
९- आर० एन० सक्सेना : 'सोशियोलॉजी, सोशल रिफार्म ऐण्ड सोशल प्राब्लम्स इन इण्डिया', १९६१, बम्बई ।
१०- आर० पी० दत्त : 'इण्डिया टुडे', १९४९, बम्बई ।
११- आर० पी० सक्सेना (डा०): 'लेबर प्राब्लम्स ऐण्ड सोशल वेलफेयर', १९६८, मेरठ।
१२- आई० कर्वे : 'किनशिप आर्गनाइजेशन इन इण्डिया', १९५३, पूना ।

१३- ई० डब्लू० बर्गेस : `द फन्क्शन ऑव सोशिलॉइजेशन इन सोशल इवोल्यूशन` १९१६, शिकागो ।

१४- ई० सी० सिम्पिल : `इनफ्लूएन्सेस ऑव ज्याग्रैफिक इनवायरमेन्ट, १९११, न्यूयार्क ।

१५- एडवर्ड केरी हेज़ (डा०) : `इन्ट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑव सोशियॉलॉजी`, १९२५, न्यूयार्क ।

१६- एल० एच० बेली : `द होली अर्थ`, १९१५, न्यूयार्क ।

१७- ए० पीपेगमेग : `देलही, ए स्टडी इन अरबन सोशियॉलॉजी`, १९५७, बम्बई ।

१८- ए० फ्लेक्सनर : `प्रास्टीट्यूशन इन यूरोप`, १९२०, न्यूयार्क ।

१९- ए० आर० देसाई : `सोशल बैकग्राऊन्ड ऑव इण्डियन नेशनालिज्म`, १९५९, बम्बई ।

२०- क्रिस्टोफर काडवेल : `स्टडीज़ इन ए डाईंग कल्चर`, १९५७, लन्दन ।

२१- के० एम० पाणिक्कर : `हिन्दू सोसाइटी ऐट क्रास रोड्स`, १९५५, एशिया पब्लिशिंग हाऊस,

२२- के० एस० वाइनबर्ग : `सोशल प्राब्लेम ऑव अवर टाइम`, १९६१, न्यूयार्क ।

२३- गुरुमुख निहालसिंह : `द चेंजिंग कन्सेप्ट ऑव सिटीजनशिप`, १९५८, कलकत्ता ।

२४- घुर (डा०) : `कास्ट ऐण्ड क्लास इन इण्डिया`, १९५७, बम्बई ।

२५- जवाहर लाल नेहरू : `डिस्कवरी ऑव इण्डिया`, १९६७, कलकत्ता, बम्बई आदि ।

२६- जवाहर लाल नेहरू : `ऐन ऑटोबॉयोग्रैफी`, १९६२, बम्बई, नई दिल्ली आदि ।

२७- जे० लिंविस्की : `ऑरिजिन ऑव प्रापर्टी ऐण्ड द फार्मेशन ऑव द विलेज कम्युनिटी`, १९१३, लन्दन ।

२८- जे० ए० डुबोयस एब : `हिन्दू मैनर्स, कस्टम ऐण्ड सेरीमनीस`, १९०६, आक्सफोर्ड ।

२९- जे० ए० लुन्डबर्ग : `फाउन्डेशन ऑव सोशियॉलॉजी`, १९३९, न्यूयार्क ।

३०- जे० एम० गिलेट : `रूरल सोशियॉलॉजी`, १९२२, न्यूयार्क ।

३१- ज्योति प्रसाद सूद : `इण्डिया एट सिविल लाइफ ऐण्ड ऐडमिनिस्ट्रेशन`, १९५७, मेरठ ।

३२- जार्ज ए० लुन्डबर्ग, क्लैरेन्स सी० शेग, आटो एन० लार्सेन : `सोशियॉलॉजी`, १९५८, लन्दन ।

३३- जोसेफ० एस० राउसेक (सं०) : `कन्टेम्पोररी सोशियॉलॉजी`, १९५८, न्यूयार्क ।

३४- टाल्काट परसन्स, एडवर्ड शिल्स, कास्पर डी० नेगेल ऐण्ड जे० आर० पिट्स (सं०) : `द थ्यौरीज़ ऑव सोसाइटी', प्रथम एवं द्वितीय भाग,१९६१, न्यूयार्क।

३५- टी० के० उनायन,:योगेन्द्र सिंह, इन्द्रदेव तथा नरेन्द्रसिंह (सं०) :`सोशियॉलॉजी फार इण्डिया', १९६७, नई दिल्ली ।

३६- टी० के० उनायन, इन्द्रदेव, योगेन्द्रसिंह : `टूवर्डस सोशियॉलॉजी ऑव कल्चर इन इण्डिया', १९६५, नई दिल्ली ।

३७- टी० बी० बाटमोर : `सोशियॉलॉजी' ए गाइड टू प्राब्लेम्स ऐण्ड लिटरेचर', १९६२, लन्दन ।

३८- ड्विट सैन्डर्सन : `रूरल सोशियॉलॉजी ऐण्ड रूरल सोशल अर्गेनाइजेशन', १९४६, न्यूयार्क ।

३९- ड्विट सैन्डर्सन : `रिसर्च मेमोरन्डम ऑव रूरल लाइफ इन डेप्रेशन', १९३७, न्यूयार्क ।

४०- डी० ग्रैहम पोल : `इण्डिया इन ट्रान्जिशन', १९३२, लन्दन ।

४१- डी० एन० मजूमदार : `रेसेस ऐण्ड कल्चर ऑव इण्डिया', १९५८, बम्बई ।

४२- डी० एन० मजूमदार (डा०) :`द मैट्रिक्स ऑव इण्डियन कल्चर',१९४७, लखनऊ।

४३- डी० डब्ल्यू० गोट्शाल्क : `आर्ट ऐण्ड द सोशल आर्डर', १९४७, शिकागो ।

४४- डेलबर्ट सी० मिलर, विलियम एच० फार्म : `इन्डस्ट्रियल सोशियॉलॉजी', १९५१, न्यूयार्क ।

४५- ताराचन्द (डा०) : `हिस्ट्री ऑव द फ्रीडम मूवमेन्ट इन इण्डिया', १९६१, कलकत्ता-दिल्ली ।

४६- थामस निक्सन कारवर (डा०) : `सोशियॉलॉजी ऐण्ड सोशल प्रोग्रेस', १९०५, न्यूयार्क-लन्दन ।

४७- नेल्स अन्डेरसन ऐण्ड के० ईश्वरन : `अरबन सोशियॉलॉजी', १९६५, नई दिल्ली ।

४८- प्यारे लाल : `महात्मा गांधी लास्ट फ्रेज', प्रथम भाग, १९५८, अहमदाबाद ।

४९- प्यारे लाल : `महात्मा गांधी लास्ट फ्रेज', द्वितीय भाग,१९५८, अहमदाबाद ।

५०- फ्रान्सिस ई० मेरिल : `सोसाइटी ऐण्ड कल्चर', १९६२, अमेरिका ।

५१- फ्रेवर मीमिन (सं०) : `स्पेस, टाइम ऐण्ड रिथ्मुस बाई मेयुयू अबीरल्ड', १९६०, कम्ब्रिज ।

५२- फ्रैंकलिन हेनरी गिडिंग्स (प्रो०) :`प्रिन्सिपल्स ऑव सोशियॉलॉजी', १९२४, लन्दन ।

५३- बट्रेन्ड ऐण्ड एसोसिएट्स : `रूरल सोशियोलॉजी` ऐन एनालिसिस ऑव कन्टेम्पोररी रूरल लाइफ`, १९५८, न्यूयार्क।

५४- बर्नर : `विलेज कम्युनिटी`, १९२७, न्यूयार्क।

५५- वेलादत्त गुप्त : `कन्टेम्पोररी सोशल प्राब्लेम्स इन इण्डिया`, १९६४, कलकत्ता।

५६- महात्मा गांधी : `यंग इण्डिया`, १९१९-२२, अहमदाबाद।

५७- मार्गरीटा बार्न्स : `इण्डिया टुडे ऐण्ड टुमारो`, १९३७, लन्दन।

५८- मोतीलाल नेहरू : `द वायस ऑव फ्रीडम`, १९६१, एशिया पब्लिशिंग हाउस।

५९- रुथनन्द अन्सहेन : `द फैमिली` इट्स फन्क्शन ऐण्ड डिस्टनी`, १९४९, न्यूयार्क।

६०- राजेन्द्र प्रसाद (डा०) : `ऑटोबॉयोग्रफी`, १९५७, बम्बई।

६१- राधा कमल मुकर्जी : `द सोशल फन्क्शन ऑव आर्ट`, १९५१, बम्बई।

६२- राबर्ट के० मर्टन, लियोनार्ड एस० ब्रूम, लियोनार्ड एस० कैट्रेल : `सोशियोलॉजी टुडे प्राब्लेम्स ऐण्ड प्रास्पेक्ट्स`, १९५९, न्यूयार्क।

६३- रामकृष्ण मुकर्जी : `द सोशियोलॉजिस्ट ऐण्ड सोशल चेन्ज इन इण्डिया टुडे`, १९६५, नई दिल्ली।

६४- लारी नेल्सन : `रूरल सोशियोलॉजी`, १९५२, न्यूयार्क।

६५- लेविस मम्फोर्ड : `द कल्चर ऑव सिटीज़`, १९३८, न्यूयार्क।

६६- लियोनार्ड ब्रूम ऐण्ड फिलिप सेल्जनिक : `सोशियोलॉजी` ए टेक्स्ट विद एडाप्टेड रीडिंग्स`, १९५५, न्यूयार्क।

६७- विलियम एफ० आगबर्न, मेयर एफ० निमकाफ : `सोशियोलॉजी`, १९५८, न्यूयार्क।

६८- विलियम हेनरी हडसन : `ऐन इन्ट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑव लिटरेचर`, १९५७, लन्दन।

६९- वी० एस० सन्याल : `कल्चर : ऐन इन्ट्रोडक्शन`, १९६२, एशिया पब्लिशिंग हाउस।

७०- वी० सी० जोशी : `लाला लाजपत राय राइटिंग्स ऐण्ड स्पीचेज़`, १९६६, दिल्ली।

७१- हावर्ड फास्ट : `लिटरेचर ऐण्ड रियलिटी`, १९५५, दिल्ली।

७२- हावर्ड डब्लू० ओडम (डा०) ऐण्ड कैथरीन जोचर (डा०) : `ऐन इन्ट्रोडक्शन टू सोशल रिसर्च`, १९२९, न्यूयार्क।

७३- सुभाष चन्द्र बोस : `द इण्डियन स्ट्रगल`, १९६४, कलकत्ता।